डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के निर्देशन में

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

हिन्दी उपन्यास में गाँव, नगर एवं महानगर का चित्रण

(१८८२ ई. से १९८२ ई. तक)

प्रस्तुतकर्ता

किरन श्रीवास्तव

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९८६ ई.

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

<u>सहायक ग्रन्थ सूची</u>

प्राक्कथन

अपने अध्ययन क्रम को उत्तरोत्तर सघन बनाये रखने के लिए मैंने शोध कार्य करने का निश्चय किया था। एम0ए0 [उत्तरार्द्ध] में विशेष प्रश्न-पत्र के अन्तर्गत डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी से पढ़ने का सुयोग मिला तब उनके ही निर्देशन में शोध-कार्य करने का संकल्प किया। मेरी रुचि, उपन्यासों में, प्रारम्भ से रही है -- मुझे लगता रहा है कि उपन्यास मानव-जीवन के समानान्तर तो है ही साथ ही दर्शन के उद्धरण रूप में सुधी पाठक को जीवन दृष्टि भी देते हैं। उपन्यासों की रोचकता ने पारिवारिक दायित्वों के बीच मेरे अध्ययन करते रहने की निरन्तरता को बनाये रखा।

मेरी रुचि को दृष्टि में रखते हुए गुरु जी ने शोध प्रबंध के लिए विषय दिया "हिन्दी उपन्यास में गाँव, नगर एवं महानगर का चित्रण" और अवधि सीमा रही एक शती के उपन्यास अर्थात् सन् 1882 ई0 से सन् 1982 ई0 तक के उपन्यास।

अभी तक कथा-साहित्य को लेकर गाँव, नगर एवं महानगरों के संदर्भ में जो कार्य हुए हैं उनमें किसी विशेष लेखक को लेकर ग्राम्य जीवन का चित्रण हुआ है जैसे डा0 गुप्ता का 'प्रेमचन्द साहित्य में ग्राम्य जीवन' [1972ई]। नगरों, महानगरों को लेकर जो अध्ययन हुए हैं उनमें नगर/महानगर की किसी एक विशेषता या प्रवृत्ति को लेकर उपन्यासों का अवलोकन किया गया है जैसे इन्द्रनाथ मदान का 'आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास' [1973ई]। जिसमें उन्होंने आधुनिकता के बोध को नगरीकरण की प्रक्रिया से जोड़ा है। इसी दिशा में डा0 विद्या शंकर राय की पुस्तक है 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन' [1981ई] जिसमें उन्होंने अजनबीपन की भावना को नगरीय समस्याओं के संदर्भ में देखा है। डा0 क्षमा गोस्वामी का "नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास" [1981 ई0] तो उपन्यासों के जन्म की सम्भावना ही "नगरीकरण और नगरीय सभ्यता के परिप्रेक्ष्य" में मानता है। "हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष" [1984 ई0] में संकलित एक लेख "समकालीन उपन्यास : नगर बोध का संदर्भ" में डा0 प्रेम कुमार ने महानगरों के संदर्भ में अनेकानेक उपन्यासों का विवेचन किया है। गाँव

और नगर से सम्बद्ध उपर्युक्त शोधकृतियों/अध्ययनों में या तो गाँव को लिया गया है या नगर को अथवा नगर/महानगर की किसी विशेषता को । प्रस्तुत शोध-प्रबंध एक शती के उपन्यासों में आये गाँव, नगर एवं महानगर को समग्रता के साथ चित्रित करने का प्रयास करता है । यह महाप्रयास गुरु कृपा से ही पूर्णता को प्राप्त हो पाया है, अन्यथा गृहिणी और विद्यार्थी की दो - भूमिकाओं का निर्वाह करते हुए, अनेकानेक समस्याओं से संघर्ष करते हुए तो वर्षों की यह उपन्यास यात्रा सम्भव न हो पाती । परम श्रद्धेय डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करने की औपचारिकता निर्वाह न करके मैं सादर अपनी कृतज्ञता अर्पित करती हूँ ।

प्रबंध प्रस्तुत करते समय मैं अपने आदरणीय गुरुजनों - डा० रघुवंश, डा० जगदीश गुप्त, प्रो० माता बदल जायसवाल, डा० राजेन्द्र कुमार वर्मा, डा० मोहन अवस्थी, डा० मीरा श्रीवास्तव, डा० सावित्री श्रीवास्तव, डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव को धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने नगरीय मूल्यहीनता के दौर में मेरे पारम्परिक गुरुभाव की अवधारणा की रक्षा की है और उसे समृद्ध भी किया है । डा० मालती सिंह की मैत्रीयुक्त सद्भावना, श्रीमती कृष्णा मल्लिक की सद्भावना और सहयोग, डा० दमयन्ती श्रीवास्तव के स्नेह को धन्यवाद देकर संकुचित करना नहीं चाहती --- सबको स्वीकारती हूँ ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के सहायक मंत्री श्याम कृष्ण पाण्डे, अन्यान्य अधिकारियों और कर्मचारियों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना मेरा नैतिक दायित्व है --- लगभग समस्त उपन्यास यात्रा मैंने संग्रहालय में बैठ कर सम्पन्न की है । पुस्तकालय - इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पुस्तकालय - एम० एन० के पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, कटरा ... , गोविन्द वल्लभ पन्त इन्स्टीट्यूट आफ सोशल साइंसेज के सौजन्य एवं सहयोग के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करती हूँ जिनकी औपचारिक-अनौपचारिक सहायता

के बिना शोध कार्य सम्पन्न होना दुष्कर था ।

मेरे अनुजवत् डा0 हेमन्त कुमार श्रीवास्तव की सहायता के बिना शोध प्रबंध कलेवरत्व को प्राप्त न हो पाता – उनके प्रति मैं अपना आत्मीय अनुग्रह प्रकट करती हूँ । अपने देवर श्री अशोक कुमार को धन्यवाद देना मैं अपना परम प्रिय कर्तव्य समझती हूँ जिन्होंने आर्थिक समस्या के समाधान रूप में शोध प्रबंध टाइप करके अपनी सेवायें मुझे दीं ।

अन्त में, मैं अपने परिवार के समस्त सदस्यों के प्रति अपना धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिनके सहयोग और सद्भावना ने पथ-गति को परिणीति तक पहुँचाया ।

किरन श्रीवास्तव
16- 10 - 86
किरन श्रीवास्तव

प्रथम अध्याय

गाँव, नगर और महानगर: एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

प्रथम अध्याय

गाँव, नगर और महानगर : एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

'वर्तमान युग में समाज द्वारा नाटक और काव्य की अपेक्षा उपन्यास के चयन का कारण मात्र यह नहीं है कि इस विधा ने एक बड़ी अभ्यर्थना (अपील) का उपयोग किया है, और कर रहा है। बल्कि इससे भी अधिक इसका कारण इसके अन्दर समाज में मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति की क्षमता का होना है।'[1]

यह उपन्यास आधुनिक नगरों की देन है। विश्व की भाषाओं के प्रारम्भिक उपन्यास के कथानक किसी नगर या नगरीय सभ्यता में से आते हैं। हिन्दी के सभी प्रारम्भिक उपन्यास काशी, प्रयाग, दिल्ली, आगरा अथवा बम्बई के किसी न किसी प्रसंग से जुड़े हुए हैं। 'परीक्षा-गुरु' (1882) पूंजीवादी समाज की विलासिता में फँसते हुए दिल्ली के एक व्यक्ति की दयनीय कथा है तो 'राधा-कान्त' (1912) में महानगरीय कलकत्ता के कृत्रिम चकाचौंध और स्वार्थ से भरे नगर जीवन का चित्रण है। 'आदर्श हिन्दू' (1915) यद्यपि कि अजमेर के 'मुक्तीपुर' नामक कस्बे से कथानक को प्रारम्भ करता है परन्तु प्रासंगिक रूप से मथुरा, प्रयाग, काशी, गया, जगदीशपुर और पुष्कर के भी चित्र प्रस्तुत करता है। कुछ उपन्यास ग्रामों में नगरीयता के प्रसार के त्रास का बोध कराते हैं।

ऐसा नहीं है कि उपन्यास केवल नगरों और महानगरों को ही पृष्ठभूमि बनाकर लिखे गए। अपना प्रारम्भिक चरण तो अवश्य उपन्यासों ने नगरों की भूमि पर रखा पर कालान्तर में उपन्यास धीरे-धीरे ग्रामों की ओर उन्मुख हुए। प्रेमचन्द के उपन्यास

---

(1)- फार्स्टर, ई० एम० : आसपेक्ट आफ द नावेल, लंदन, 1956, (पृष्ठ - 40)

इस दिशा का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

आज अपने विकसित रूप में उपन्यास गाँव, नगर, महानगर एवं कस्बे -- सभी के जन जीवन को लेकर चल रहे हैं । अतः उपन्यासों में गाँव, नगर, एवं महानगर के चित्रण को प्रस्तुत करने से पूर्व गाँव, नगर, {कस्बा} एवं महानगर पर समाजशास्त्रीय दृष्टि डाल लेना अधिक समीचीन होगा ।

गाँव

गाँव समाज की वह इकाई है जहाँ पर ग्रामीण जीवन विकसित होता है और कार्य करता है ।'[2] गाँव का विकास वस्तुतः कृषि सम्बन्धी अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ा है । प्रागैतिहासिक काल के बाद घुमन्तू कबीले ने जब सुस्थिर और व्यवस्थित जीवन का प्रारम्भ किया तभी गाँव बसने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । सच कहा जाय तो कृषि-कार्य के साथ ही सभ्यता का विकास हुआ । कृषि कार्य करते हुए मानव ने सर्व प्रथम समूह में रहकर जिस समाज की स्थापना की, उसका क्षेत्र गाँव कहा गया । और, गाँव ने अपने उपयोग से बचे खाद्यान्नों की आपूर्ति जिन बाहरी क्षेत्रों में की वे परिणामतः नगर के रूप में उभरे ।'[3]

गाँव और परिवार :- जिन - जिन संस्थाओं से ग्रामीण समाज की रचना होती है उनमें परिवार सबसे प्रमुख है । परिवार ही ग्रामीण समाज की नींव है जो गाँव के व्यक्ति और समूह के भौतिक एवं सांस्कृतिक जीवन को संचालित करता है बल्कि निर्णायक की भूमिका अदा करता है । गाँवो में परिवार पितृसत्तात्मक तथा सम्मिलित परिवार के रूप में पाया जाता है ।'[4]

2- देसाई, ए0आर0, : रूरल सोशियोलाजी, {पृष्ठ 13}
3- वही, {पृष्ठ 13-14}
4- वही{ पृष्ठ 31-32}

<u>जाति प्रथा</u> :- भारत मूलतः गाँवो का देश रहा है । यहाँ जाति प्रथा का समाज में विशेष स्थान है । जाति से ही क्रिया-कलाप, स्तर तथा अवसर की प्राप्तव्यता का निर्धारण होता है । ग्रामीण क्षेत्रों में तो पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन, आवासीय गृहों की निर्माण शैली तथा सांस्कृतिक पध्दति, सभी जाति से अनुशासित होती हैं । प्रशासन और धर्म भी जाति के आधीन है । वस्तुतः धर्म के व्दारा ही गाँव में प्रशासन होता है । जाति के आधार पर ग्रामीण समाज में उच्च स्तरीय और निम्न स्तरीय वर्ग का निर्धारण होता है जैसे कि ब्राह्मण, समाज का उच्च सामाजिक प्राणी है और अवर्ण जाति समाज के निम्न वर्ग का सदस्य । गाँवों में उच्च वर्गीय लोगों का मुहल्ला अलग होता है और अवर्ण या हरिजन बस्तियाँ इन उच्च वर्ग वालों से दूर तो होती ही हैं, गाँव की सामान्य बस्ती से भी बाहर और दूर होती हैं ।'[5]

इस प्रकार पितृसत्तात्मक सम्मिलित परिवार और जाति ग्रामीण समाज के महत्त्वपूर्ण और निर्णायक तत्व हैं ।

<u>गाँव और राजनीति</u> :- जहाँ तक गाँव के राजनीतिक जीवन का प्रश्न है, पूर्व ब्रिटिश काल में गाँवो में प्रशासन का कार्य ग्राम पंचायतें किया करती थीं । जिसमें गाँव के चुने हुए अथवा परम्परा से आ रहे विभिन्न जातियों के प्रतिनिधि हुआ करते थे । ये प्रतिनिधि अधिकांशतः अपनी जाति के वयोवृध्द ही हुआ करते थे । इन पंचायतों का सम्बन्ध अपनी गाँव की जनता के साथ-साथ उच्च अधिकारी वर्ग से भी होता था । इस प्रकार ये पंचायते गाँव की प्रशासनिक न्यायिक, आर्थिक और नीति निर्धारण सम्बन्धी सभी क्रिया कलाप को संचालित करती थीं । {गौण रूप में

{5}- देसाई, ए०आर० : रूरल सोशियोलाजी, { पृष्ठ - 38 }

जाति पंचायतें अपनी अपनी जाति का नियमन और संचालन करती थीं ।﴿ ब्रिटिश शासन काल में इन पंचायतों के पास प्रशासनिक शक्ति नहीं रह गई । आज स्वतंत्र भारत में गाँव, प्रशासन की प्राथमिक इकाई के रूप में कार्य कर रहे हैं जिसको ब्रिटिश शासकों ने प्रशासन के लिए गाँवों में लागू किया था । इसके अतिरिक्त आजकल गैर-सरकारी राजनीतिक संगठन भी गाँवों में कार्य कर रहे हैं ।[6]

जमींदारी प्रथा में जनता का राजनैतिक उद्देश्य केवल जमींदारों से मानवता पूर्ण व्यवहार की आशा थी । पर अब स्वतंत्रता और जमींदारी उन्मूलन के बाद गाँव की जनता किसान राज तक की कामना और मांग करने लगी है ।[7]

सन् 1924-25 ई० में किसानों ने राष्ट्रीय राजनीतिक आन्दोलनों में हिस्सा लेना प्रारम्भ कर दिया था । 1934 ई० के बाद किसानों ने अपनी संस्थायें संगठित की जैसे कि 'किसान-सभा' जिसने जमींदारों और शासन दोनों के विरुध्द अपना संघर्ष प्रारम्भ किया ।[8]

<u>गाँव और धर्म</u> :- धर्म के विषय में यह देखा गया है कि विशमर के गाँव के रहने वाले, नगर वासियों की तुलना में धर्म पर अधिक आस्था रखने वाले हैं । वे पारम्परिक धर्म की अवधारणा को मानकर चलते हैं । धर्म का प्रारम्भिक रूप -- पृथक

﴾6-7﴿- देसाई, ए० आर० : रूरल सोशियोलाजी ﴾ पृष्ठ 47-50 ﴿
﴾8﴿- वही, ﴾ पृष्ठ - 45 ﴿

अध्यात्मवाद, जादू, अनेकेश्वर वाद, भूत-प्रेत विश्वास आदि ही ग्राम समाज की धार्मिक अवधारणा के आधार हैं । नगर वालों की तुलना में गाँव वालों की धार्मिक भावना, परिष्कार रहित एवं स्थूल है ।'[9]

गाँव और शिक्षा :- ग्राम समाज में अधिकांश शिक्षा तो बालक अपने बड़ों से प्राप्त करते हैं । कृषि सम्बन्धी या कृषि व्यवसाय सम्बन्धी शिक्षा इन्हें अपने परिवार के बड़ों से दिन-प्रतिदिन के क्रिया कलापों के बीच मिलती रहती है । सामाजिक व्यवहार की शिक्षा भी उन्हें अपने परिवार के बड़-बूढ़ों से ही मिलती है । नैतिक शिक्षा एवं बौध्दिक शिक्षा वे 'पुरोहितों' 'कथाकारों' और साधु सन्तों'[10] से प्राप्त करते थे । गाँव में शिक्षा का दृष्टिकोण मूलत: धार्मिक था जिसमें संसार के सभी तत्वों को भगवान की इच्छा से अनुशासित माना जाता था । ग्रहण, भूचाल, बाढ़, महामारियों आदि को वैज्ञानिक रूप से विश्लेषित न करके भगवान के कोप के परिणाम के रूप में बताया जाता था ।'[11]

ब्रिटिश शासन काल में शिक्षा, धर्म निरपेक्ष और उदार रूप में स्वीकृत हुई । पर वह नगर के उच्च वर्ग और उच्च मध्य वर्ग में सीमित होकर रह गई । बहुत ही कम गाँवों में स्कूल थे और जहाँ थे भी, गरीबी के कारण गाँव के बालक उनसे लाभान्वित हो सकने से वंचित रहे । बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि गाँव, §औपचारिक§ शिक्षा की दृष्टि से उपेक्षित से रहे ।'[12]

---

§9§- देसाई, ए0आर0 : रूरल सोशियोलाजी § पृष्ठ-54§
§10§- वही § पृष्ठ-67 §
§11§- वही § पृष्ठ-67§
§12§- वही § पृष्ठ-69 §

स्वतन्त्र भारत में भी गाँवो में शिक्षा प्रसार के मार्ग में बड़ी बाधायें हैं — वैज्ञानिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक योजना, सुयोग्य शिक्षक और उचित आर्थिक स्थिति के साथ ही गाँव में शिक्षा का प्रसार किया जा सकता है ।[13]

गाँव और सौन्दर्यबोध एवं कलाभिव्यक्ति [14] (Aesthetic Culture)

सौन्दर्यबोध एवं कलाभिव्यक्ति किसी भी समाज की समग्र संस्कृति का सम्पूर्ण अंश होती है ।

समाज शास्त्रियों ने ग्राम - संस्कृति के संदर्भ में जिन प्रमुख कलाओं का विवरण दिया है वे निम्नलिखित हैं —

1- रेखाचित्र (ग्राफिक):- जिसमें रेखाचित्र बनाना, उनको रंगना और नक्काशी करना आदि आता है ।

2- प्लास्टिक कला — जिसके अन्तर्गत गढ़ाई (कार्विंग) मूर्ति बनाना आदि आते हैं ।

3- लोक-कथा, लोकगीत, मिथक, कहावतें, पहेलियाँ तथा तुकबन्दियाँ आदि है जो लोकधुनों से युक्त होती हैं ।

4- नृत्य एवं नाटक ।

लोक कलाओं की विशेषतायें :-

1- ये कलायें जीवन के साथ जुड़ी हैं । सोरोकिन[15] ने कहा

---

(13)- देसाई, ए०आर० : रूरल सोशियोलाजी (पृष्ठ 76)
(14)- वही, (पृष्ठ 77)
(15)- सोरोकिन : सिस्टमैटिक सोर्स बुक इन रूरल सोशियोलाजी वाल्यूम II, (पृष्ठ 445)

है कि ग्रामीण कलायें ग्रामीण जन-जीवन के साथ जुड़ी हुई हैं जो उनके प्रतिदिन के व्यावसायिक या कृषि कार्य के साथ-साथ चलती हैं और जो उनके धार्मिक और सांस्कृतिक क्रिया-कलापों से अविभाज्य हैं ।

2- इन क्रिया-कलापों में ग्राम समाज का कोई वर्ग या पूरा परिवार अथवा पूरा ग्राम समाज सहयोगी होता है और सम्मिलित होता है । पुरुष, स्त्री, बच्चे सभी इसमें भाग लेते हैं । पूरा ग्राम समाज ही भाग लेने वाला और वह ही प्रेक्षक भी होता है ।'[16]

3- पूरा ग्राम समाज एक बड़े परिवार की तरह रहता है और जीवन से जुड़े रहने के कारण कलाभिव्यक्ति में पारिवारिकता स्पष्ट परिलक्षित होती रहती है ।[17]

4- गाँव की कला में तकनीकीपन जैसी कोई बात नहीं है । वह सरल और सादी है । कला के लिए उपयोग में आने वाली वस्तुयें भी गाँव वालों के दिन - प्रतिदिन के उपयोग में आने वाली वस्तुएं ही हैं और वे गाँव के कारीगरों द्वारा बनाई हुई हैं । कला प्रदर्शन के लिए हाल या प्रेक्षागृह की कोई आवश्यकता नहीं होती । वह तो घर के आँगन या गाँव के खुले मैदान में प्रदर्शित की जाती है ।

5- चूँकि कला गाँव के जन-जीवन से अलग नहीं है अतः कृषि सम्बन्धी तत्वों को, उनके गीत, संगीत, कथाओं, मुहावरों, पहेलियों और साहित्य के साथ-साथ त्योहारों और नाटकों में, विशेष रूप से देखा जा सकता है ।'[18]

---

§16-17§- देसाई, ए0आर0 : रूरल सोशियोलाजी § पृष्ठ 78 §.
§18§- वही, § पृष्ठ 79 §

6- गाँव की कला वस्तुतः समूह रचनायें होती हैं अतः उनमें समूह भावना पोषित होती है । नगरीय क्षेत्र में गीत, कथा नाटक तथा अन्य कलायें कलाकारों के द्वारा व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुत की जाती हैं । ग्रामीण रचनाओं में रचनाकार का पता नहीं होता ।[19]

7- ग्रामीण कलायें व्यावसायिक नहीं होतीं । वे तो कला की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती हैं जबकि नगरीय क्षेत्र में कला, कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ व्यावसायिक भी होती हैं ।[20]

8- गाँवों में कला की परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती चली आती है ।[21]

ग्रामीण सौन्दर्यबोध एवं कला तथा संस्कृति का रूपान्तर होता जा रहा है । धीरे-धीरे कलाकार विशेष या कृति विशेष के रूप में इनकी पहचान बनने लगी हैं । कलाकार और कला दर्शक दो वर्ग बन गए हैं । यह जीवन से भी अलग हो रही है । तकनीक में भी बदलाव आ रहा है । संक्षेप में कहा जाय तो ग्रामीण कलाओं पर नगरीकरण का प्रभाव पड़ रहा है ।

आज ग्राम समाज तेजी से परिवर्तन की दिशा में है — अर्थव्यवस्था, सामाजिक संस्थायें, आदर्श, कला, धर्म सभी कुछ बदल रहा है ।

गाँव में परिवर्तन की प्रवृत्ति/ रुझान §Trends§

गाँवों में परिवर्तन की विशेष समान जाति-प्रथा, सम्मिलित

§19§- देसाई : रूरल सोशियोलाजी §पृष्ठ 80§
§20§- वही. §पृष्ठ 80§
§21§- वही. §पृष्ठ 80§

परिवार और पंचायत द्वारा प्रशासन की दिशा में रहा । जिनके कारण पुरानी सामाजिक मान्यताओं में समग्रता से परिवर्तन हुआ । यह सब, बाजार क्षेत्र के विस्तार, रेलवे लाइनों के बिछने तथा खेती के तकनीक में विदेशी वस्तुओं के आगमन के परिणाम स्वरूप हुआ । गाँव के नगरीकरण ने भी परिवर्तन को तीव्रता दी । दोनों विश्व-युध्दों में सेना में भरती होकर गए ग्राम क्षेत्र के लोगों ने वापस अपने गाँव लौट कर गाँवों को नई दृष्टि दी -- इसने भी ग्राम - समाज के परिवर्तन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।[22]

ब्रितानी शासन से मुक्ति अर्थात् देश की स्वतंत्रता, जमींदारी उन्मूलन, समाज सुधार आन्दोलन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रति समाज सुधारकों एवं शासन की नई दृष्टि ने ग्राम समाज की परिवर्तन की दिशा में एक तीव्र गति प्रदान की ।[23]

समाज व्यवस्था में सबसे बड़ा परिवर्तन यह आया कि विवाह की उम्र कुछ बढ़ गई, स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ, पर्दा-प्रथा कम हुई, जाति बंधन कुछ ढीले हुए तथा पारिवारिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन हुआ । यह सब मात्र झलक भर को रहा । गाँवों में जो गिने-चुने, पढ़े-लिखे लोग थे, उन पर ही ये परिवर्तन लक्षित हुए । शेष ग्रामीण समाज कमोबेश उसी तरह रहा । यद्यपि कि ब्राह्मणों की महिमा कम हुई फिर भी चमार, भंगियों की बस्ती गाँवों से दूर रही । अधिकांश परिवर्तन महज दृष्टिकोण तक ही सीमित रहा । व्यावहारिक रूप से पुरानी रूढ़ियाँ और परम्परायें चलती रहीं ।[24]

§22§- देसाई : रूरल सोशियोलाजी § पृष्ठ 691 - 692 §
§23§- वही § पृष्ठ 691 - 692 §
§24§- वही § पृष्ठ 691 - 692 §

नगर

समाजशास्त्रियों ने 'परिस्थिति, सांख्यकीय न्यायिक, व्यावसायिक और सामाजिक सम्बन्धों'[25] के आधार पर विभिन्न दृष्टिकोणों से नगर को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। नगर एक नहीं अनेक विशिष्टताओं की संयुक्त रचना है।[26]

'सार्वभौमिक रूप से 'नगर' उस बस्ती का नाम है जहाँ का जनसमूह कृषि कार्यों के स्थान पर अन्य उद्योगों में व्यस्त रहकर अपनी, जीविका का निर्वाह करता है। नगरीय जनसमूह उस परिपूर्णता के रूप में पहचाना जाता है जो मुख्यत: उद्योग, व्यापार तथा अन्य व्यवसायों में संलग्न होता है। जिस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र के कृषि के बिना अधूरा दृष्टिगत होता है, उसी प्रकार नगरीय क्षेत्र को पूर्णता प्रदान करने वाले कारकों में व्यवसाय तथा उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है। कारखाने, कार्यालय आदि नगरीय संरचना के प्रमुख अंग हैं।[27]

नगरों का आविर्भाव, गाँवों के विकास का प्रतिफलन है। अत: ग्राम तथा नगर के परस्पर तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर नगर की अवधारणा को समझना अधिक वैज्ञानिक एवं उचित होगा। नगर की अवधारणा का विश्लेषण निम्न तत्वों के आधार पर किया जा सकता है।[28]

§1§- व्यवसाय :- गाँव का मुख्य व्यवसाय खेती है जब कि नगरीय जनसमूह उद्योग, व्यापार तथा अन्य व्यवसायों में, §अर्थात् कृषि

---

§25-26§- बर्गल, ई0ई0.: अरबन सोशियोलाजी, मैग्राहिल बुक कं0.न्यूयार्क, 1955, §पृष्ठ 5-9§

§27§- क्षमा गोस्वामी : नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली 110032, प्रथम संस्करण सन् 1981 ई0 § पृष्ठ - 3 §

§28§- देसाई, ए0आर0, रूरल सोशियोलाजी इन इण्डिया के आधार पर § पृष्ठ - 10-12 §

कार्य से इतर धन्धों में॥ संलग्न होता है ।

॥2॥- पर्यावरण :- ग्रामों में प्रकृति की प्रमुखता होती है । यहाँ के जन - जीवन का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध होता है । जबकि, नगर प्रकृति से कटा होता है और मानवीकृत पर्यावरण प्रकृति को अनुशासित करता है । नगरीय पर्यावरण में विद्युत का प्रभावकारी स्थान होता है । लोहे और पत्थर से बनी मानव निर्मित भौतिकता का यहाँ बाहुल्य है ।

॥3॥- जनसंख्या का आकार एवं घनत्व :- गाँवों में खुले-खुले खेत तथा छोटे-छोटे जनसमूह होते हैं । वहाँ जनसंख्या फैली हुई होती है । 'कृषि कार्य और जनसमूह का आकार निषेधात्मक रूप से प्रतिसम्बध्द हैं ।'[29] नगरीय जनसमूह आकार में अपेक्षा-कृत बड़े होते हैं और वहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है । 'नगरीयता और जनसमूह का घनत्व एवं आकार सकारात्मक रूप से प्रतिसम्बध्द होते हैं ।'[30] लुइस विर्थ के अनुसार 'नगर अधिक विस्तृत एवं घने बसे हुए तथा सामाजिक रूप से विषम जनसमूह की स्थायी स्थापना है ।'[31]

॥4॥- जनसमूहों की विषमता एवं सजातीयता :- ग्राम जनसमूह जाति रूपों और मानसिक अथवा मनोवैज्ञानिक चरित्र में सजातीय या समरूप होते हैं । जबकि नगर जनसंख्या के विस्तृत आकार और घनत्व के कारण नगरीय जनसमूह में विषमता अधिक है । नगरों में सामाजिक सम्बन्ध अति सीमित होते हैं । ग्रामीण समाज में 'हम' जैसी एक रागात्मक भावना मानव सम्बन्धों में सहज द्रष्टव्य हैं ।[32]

॥29-30॥- देसाई : रूरल सोशियोलाजी ॥ पृष्ठ 11-12 ॥
॥31॥- विर्थ, लुइस : अरबेनिज्म ऐस ए वे आफ लाइफ, अमेरिकन जरनल आफ सोशियोलाजी, जुलाई 1938, से उद्धृत, पार्क के हाट एण्ड एलबर्ट जे० रीस०, में संकलित लेखमाला से । पृष्ठ 5।
॥32॥- देसाई : रूरल सोशियोलाजी ॥ पृष्ठ 12 ॥

§5§- <u>सामाजिक भेद एवं स्तरण :-</u> गाँव में जाति भेद के अनुसार वर्ग हैं अर्थात् वर्ण व्यवस्था वर्ग को अनुशासित करती है । नगर में जाति व्यवस्था के स्थान पर वर्ग व्यवस्था है । पूंजी की महत्ता के कारण नगर के निवासियों का सामाजिक स्तर जाति के आधार पर निर्धारित न होकर उसकी आमदनी, व्यवसाय तथा रहन-सहन के ढंग या स्तर व्दारा निर्धारित होता है । यह स्तर ही वर्ग निर्धारण का मापदण्ड है ।

§6§- <u>गतिशीलता :-</u> ग्राम जनसमूह की व्यावसायिक और अन्य सामाजिक गतिशीलता नगर की तुलना में कम है । बल्कि ग्राम जीवन स्थायी जीवन का पर्याय है । क्योंकि वह भूमि और प्राकृतिक साधनों पर निर्भर करता है । नगर का जीवन गतिशील है । क्योंकि नगर का व्यक्ति अपनी शक्ति, कुशलता, सामान्य ज्ञान, शिक्षा, धन, सम्पर्क तथा अन्य विशिष्ट योग्यताओं व्दारा अपने व्यावसायिक एवं सामाजिक स्तर में परिवर्तन लाने के लिए स्वतंत्र है । नगर समाज की इस विशेषता के कारण ही, सोरोकिन तथा जिमरमैन ने लिखा है, "ग्रामीण समुदाय एक घड़े में शान्त जल के समान है और नगरीय जीवन पतीली में उबलते हुए पानी के समान है । एक की विशिष्ट पहचान स्थिरता है तो दूसरे की गतिशीलता[33]

इसके अतिरिक्त एक विशेष ध्यान देने वाली बात यह है कि सामान्यतया गाँव के व्यक्तियों का गाँव से नगर की ओर निर्गमन हो रहा है । महान आपत्ति काल में ही नगर निवासी ग्राम की ओर जाते हैं अन्यथा नहीं ।

§7§- <u>अन्तः क्रियाओं की व्यवस्था :-</u> गाँव के लोग एक सीमित क्षेत्र में रहते हैं । अतः यहाँ आपसी

---

§33§- सोरोकिन, पी० ए०, सी० सी०, एण्ड जिमरमैन : प्रिंसिपुल आफ रूरल ऐण्ड अरबन सोशियोलोजी, हेनरी हाल्ट कं०, न्यूयार्क 1956, § पृष्ठ 44 §

सम्बन्ध 'प्राथमिक सम्पर्क'[34] पर निर्भर करता है । गाँव के व्यक्तियों के सम्पर्क व्यक्तिगत स्तर पर होते हैं । नगर की तुलना में गाँव के सम्बन्धों में सहजता § सिम्प्लीसिटी § और ईमानदारी § सिनसियरिटी § होती है । यहाँ व्यक्ति को मानवीय धरातल पर लिया जाता है । नगरों में जनसंख्या के विस्तृत आकार, घनत्व और विषमता से पूर्ण बस्तियों के कारण नगर समाज प्राथमिक सम्बन्धों से प्रेरित न होकर द्वैतीयक सम्बन्धों पर अधिक निर्भर होता है । यहाँ सामाजिक सम्बन्ध अति सीमित होते हैं विभिन्न वर्गों में ऊँचनीच की भावना विशेष द्रष्टव्य है । जनसंख्या के विस्तृत आकार के कारण नगरीय समाज भीड़ के समानान्तर प्रतीत होता है । भीड़ के व्यवहार में गुमनामता § अनामिनिटी § विशेष रूप से पायी जाती है । अतः यहाँ व्यक्ति आत्म केन्द्रित हो जाता है ।[35] नगरों में व्यक्ति 'संख्या और पता § नम्बर ऐण्ड ऐड्रेस § होता है ।[36]

नगरीय सम्पर्क आवृत्तिपरक § फ्रीक्वेन्ट § लेकिन ऊपरी, औपचारिक तथा अवैयक्तिक होते हैं । जबकि गाँव के सम्पर्क आमने - सामने के, अनौपचारिक एवं व्यक्तिगत होते हैं ।[37]

इस प्रकार 'स्पष्ट रूप से नगर एक भौतिक तथा मानसिक तंतु-जाल, आर्थिक और सांस्कृतिक संगठन एवं सामाजिक क्रियाओं की विषम इकाई के रूप में विश्लेषित किया जा सकता है ।[38]

---

§34§- देसाई; रूरल सोशियोलाजी इन इण्डिया, § पृष्ठ 12 §
§35§- लुइस विर्थ : अरबेनिज्म ऐज ए वे आफ लाइफ, § पृष्ठ 52 §
§36§- देसाई : रूरल सोशियोलाजी इन इण्डिया § पृष्ठ 12 §
§37§- चितम्बर, जे0बी0, : इन्ट्रोडक्टरी रूरल सोशियोलाजी, इलाहाबाद ऐग्रीकलचरल इन्स्टीट्यूट, विले ईस्टर्न लिमिटेड, न्यू देल्ही, बैंगलोर, बाम्बे, 1977, सेकेन्ड रिप्रिन्ट, § पृष्ठ 134-35 §
§38§- क्षमा गोस्वामी : नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास, § पृष्ठ-6 §

'नगर को संवैधानिक रूप से पारिभाषित करते हुए विथन ने कहा है नगर-सीमा के अन्दर एक वैधानिक { लीगल } संयुक्त क्षेत्र {इन-कारपोरेटेड} आता है जिसकी जनसंख्या एक विशेष न्यूनतम संख्या से अधिक हो और जिसमें अपने सीमा क्षेत्र के अन्दर राज्य द्वारा प्रतिनिधि रूप में भेजा गया स्थानीय शासन से अपने अधिकार का प्रयोग करता हो ।[39]

इस प्रकार संक्षेप में नगरों की सामान्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं[40]:-

1- कृषि कार्य से इतर व्यवसाय ।

2- प्रति सामान्य नगर कृषीनर कुछ विशेष प्रकार की व्यवसाय व्यवस्था से युक्त है जो श्रम - अर्थनीति से अनुशासित है ।

3- नगर में जनसंख्या का आधिक्य और घनत्व ।

4- जनसंख्या का आकार भी नगर में अधिक है और बढ़ने की ओर है —

{अ}- नगर की जनसंख्या गतिशील है ।

{ब}- नगर में निवासीय स्थायित्व है ।

{स}- नगर में जनसमूहों की विषमता है ।

5- औपचारिक, अवैयक्तिक और जटिल सामाजिक सम्बन्ध ।

6- आवागमन और संप्रेषण के माध्यम से सामाजिक सम्बन्धों का सम्पादन { समय और स्थान सापेक्षता की दृष्टि से } ।

{39}- जेम्स, ए0, विथन : अरबन सोशियोलाजी, यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, रामनगर, न्यु डेल्ही -1, फर्स्ट रिप्रिन्ट सन् 1967 { पृष्ठ 17-18 }

{40}- विथन : वही, { पृष्ठ 14 - 24 }

समाज सापेक्षता की दृष्टि से विभिन्न संस्थाओं और ग्रुप की विभिन्नता के साथ नगर का जनसमूह एक या अनेक संगठित सामाजिक इकाई होता है ।

व्यक्तित्व पर नगरीय सामाजिक सम्बन्धों का प्रभाव :-[41]

§1§- अति व्यक्तिपरकता ।

§2§- गणितीय व्यवहार § कैलक्यूलेटिवनेस § तथा प्रतिस्पर्धा की भावना ।

§3§- व्यक्तिगत मूल्यांकन की तुलना में व्यक्ति के बाहरी रख-रखाव जैसे टेबुल-मैनर्स, वेशभूषा, आवासीय घर की लागत और मोहल्ला, निजी परिवहन के प्रकार तथा विभिन्न क्लबों की सदस्यता की विशिष्टता के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति का मूल्यांकन होता है ।

§4§- निजीपन § प्राइवेसी § एवं स्वकेन्द्रीयता § रिजर्वनेस § का निर्वाह ।

§5§- सहनशीलता तथा वर्ग जाति मिश्रणता ।

§6§- तटस्थता या उदासीनता ।

§7§- समय - सजगता ।

§8§- नियंत्रण की मानव योग्यता एवं क्षमता पर विश्वास § प्रकृति पर अपेक्षाकृत कम निर्भरता § ।

---

§41§- विल्सन : अरबन सोशियोलाजी § पृष्ठ 176 - 182 § .

कस्बा, नगर और महानगर

नगरीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत प्राय: एक ग्रामीण क्षेत्र ही उत्तरोत्तर रूप से क्रमश: 'कस्बा' 'नगर' और 'महानगर' में परिवर्तित होता जाता है ।

कस्बा मानवीय स्थापना का वह स्वरूप है जो अपनी जीवन शैली में ग्रामीण एवं नगरीय दोनों प्रकार के लक्षणों को अन्तर्निहित रखता है । जब बड़े ग्रामों या केन्द्रीय ग्रामों की क्रियायें एवं प्रवृत्तियाँ नगरीय गतिविधियों को धारण करना प्रारम्भ करती हैं तो ये क्षेत्र कस्बा का रूप धर लेते हैं । किन्तु उल्लेखनीय है कि ग्राम और कस्बे में अन्तर होता है । ग्राम का प्रमुख व्यवसाय कृषि है । कस्बे के बहुउद्देशीय व्यवसाय होते हैं । कस्बा वस्तुत: वह स्थान होता है जो पड़ोसी ग्रामों के लिए बैंक, बीमा, यातायात आदि प्रकार्यों को करता है । कस्बे को परिभाषित करते हुए बर्गल ने लिखा है 'कस्बा एक नगरीय अधिस्थापना के रूप में पारिभाषित किया जा सकता है जो अपर्याप्त आयामों में ग्रामीण क्षेत्रों पर आधिपत्य रखता है ।'[42]

कस्बे का उत्तरोत्तर विकास नगर के रूप में होता है । नगर अपने पड़ोसी कस्बों के ऊपर आधिपत्य का काम करता है । नगर और ग्राम में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होने लगता है । नगर का उत्तरोत्तर विकास अपने क्षेत्र को महानगर में परिवर्तित कर देता है ।

नगर के विषय में इससे पूर्व विवेचन किया जा चुका है । अत: अब हम महानगर को लेते हैं ।

---

§42§- बर्गल, ई० ई०० : अरबन सोशियोलाजी, § पृष्ठ 122 §

•महानगर की निश्चित अवधारणा के सम्बन्ध में विद्वानों के बीच एकमतता नहीं पायी जाती है । महानगर की अवधारणा को उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है । 'महानगर' अंग्रेजी शब्द 'मेट्रोपालिटन' का पर्याय-वाची है । मेट्रोपालिटन शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द 'मेट्रोपोलिस' शब्द से हुई है । यह शब्द 'मेटर' तथा 'पोलिस' दो शब्दों से मिलकर बना है । ग्रीक साहित्य में जिसका अर्थ 'मातृनगर' होता है । कालान्तर में उच्च राष्ट्रीयता के आधार पर इन नगरों में अनेक विशेषतायें विकसित हो गईं । आज के युग में वे नगर जो अपने क्रमिक विकास के द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर पूर्ण रूप से प्रभाव स्थापित कर लेते हैं उन्हें महानगर कहा जाता है । इन महानगरों में उद्योग, व्यापार, राजनीति, शिक्षा आदि तत्वों में से कोई भी तत्व राष्ट्रीय प्रभाव का कारण बन सकता है । निश्चय ही ऐसे नगरों की ओर प्रव्रजन की प्रक्रिया विशेष रूप से उन्मुख होती है । नगरों की तुलना में महानगरों में जन-संख्या का आधिक्य एवं घनत्व बढ़ता जाता है । ये क्षेत्र नगरों की तुलना में अधिक विषम और गतिशील समुदाय दृष्टिगत होते हैं । इसी कारण जनसंख्या के घनत्व एवं विषमता को महानगर के विशेष लक्षण के रूप में माना गया है ।

मेलर के अनुसार महानगर जो नगरीय गुणों तथा वाणिज्य § कामर्स §, व्यापार § ट्रेड § और राजनीतिक नियंत्रण का संश्लिष्ट रूप है, उसको निम्नलिखित रूप से वर्णित किया जा सकता है ।

'महानगर में धन और पूंजी असीमित तथा सर्व शक्तिमान है ।-- ------यह विश्व बाजार और विश्व ट्रैफिक का प्रतिनिधित्व करती है, इसमें विश्व उद्योगों को केन्द्रित किया जाता है । इसके समाचार पत्र

विश्व समाचार पत्र हैं, इसके जनसमूह धरती के समस्त हिस्सों से आते हैं ।[43]

महानगरों के लक्षण के सम्बन्ध में संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यहाँ के जनसमूह विभिन्न जाति एवं वर्गों के समूह हैं । यहाँ परिवार प्राकृतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए आकस्मिक या घटनात्मक स्वरूप § ऐक्सीडेन्टल फार्म § हैं । महानगरों में उच्च वर्ग या सम्पन्न और मध्य वर्ग ही सक्रिय जीवनयुक्त / जीवित § अलाइव § हैं वे समाज में एक स्तर प्रस्तुत करते हैं जिनका अनुकरण करने की चेष्टा उनसे नीचे वाले वर्गों का समूह करता है ।[44]

महानगर में एक ऐसी व्यक्तिपरकता है जिसमें व्यक्ति स्वयं अपना स्वामी है । वह जहाँ चाहे, जिसके साथ चाहे रहे, उसे किसी की परवाह नहीं करनी होती । यहाँ एक स्वतंत्र व्यक्ति स्व-सजगता § सेल्फ कांशसनेस § के द्वारा एक कृत्रिम अस्मिता का निर्माण करता है ।[45]

महानगरों में जनसमूहों की विशालता तथा विभिन्न जाति, विभिन्न व्यवसाय और विभिन्न वर्गों के जनसमूह होने के कारण यहाँ बुद्धिप्रधान या बुद्धिजीवी, असंवेदनशील आत्म केन्द्रित एवं निःसंग § intellectual, unemotional, reserved and detached § व्यक्तित्व के व्यक्ति पाये जाते हैं ।[46]

धन और अर्थनीति § money and economy § इन महानगरों को प्रभावित करने वाले तत्व हैं । महानगर अर्थनीति द्वारा निर्धारित, वर्गीकृत श्रम और प्रतिस्पर्धा की भावना के स्थान हैं । यह

§43§- मेलर § Meller § जे0 आर0, : अरबन सोशियोलाजी इन अर्बनाइज्ड सोसाइटी, फर्स्ट पब्लिश्ड इन 1977 बाई राउतेज ऐण्ड कागन पाल लि0, 39 स्टोर स्ट्रीट, लंदन § पृष्ठ 179 §

§44, 45-46§- मेलर : अरबन सोशियोलाजी §पृष्ठ 180-187§

वर्गीकृत श्रम और प्रतिस्पर्धा विशेषज्ञता § specialization § को प्रेरित करती है । जो महानगर में पृथक्ता और व्यक्तिपरकता § differenciation and individualism § को जन्म देती है ।'[47]

उपर्युक्त इन सब तत्वों के कारण महानगर के निवासियों में एक अजनबीपन § alienation § की भावना पायी जाती है । व्यक्ति का व्यक्ति से तथा व्यक्ति का अपने समुदाय से यह अजनबीपन स्पष्ट परिलक्षित होता है । सिमेल के साक्ष्य पर मेलर कहता है कि संवेदनशीलता और भावना यहाँ मृत एवं कुंठित है । इस 'व्यक्तिगत संस्कृति' § personal culture § पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सिमेल का कहना है कि यह व्यक्तिगत संस्कृति भयावह होते हुए भी, महानगरीय संस्कृति के अपरिहार्य तत्व के रूप में स्वीकार की जानी चाहिए ।[48]

समग्र रूप से, गाँव से कस्बा, कस्बे से नगर और नगर से महानगर यह एक विकासमान प्रक्रिया है । गाँव से लेकर महानगर तक सबकी अपनी-अपनी सामाजिक एवं समाजशास्त्रीय विशेषताएँ हैं । उपन्यास अपने-अपने कथा क्षेत्रों के जनसमूहों की विशेषताओं के साथ गाँव, नगर और महानगर तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का चित्रण करते चलते हैं ।

---

§47§- मेलर : अरबन सोशियोलाजी इन अर्बनाइज्ड सोसाइटी, § पृष्ठ 180-187 §

§48§- मेलर, जे०आर० : वही, § पृष्ठ 187 §

द्वितीय अध्याय

उपन्यासों में जनसमूह का चित्रण

द्वितीय अध्याय

उपन्यासों में जनसमूह का चित्रण

उपन्यासों ने गाँव नगर या महानगर जिस भी क्षेत्र को अपनी कथा भूमि बनाया है, वहाँ के जनसमूहों के माध्यम से उक्त क्षेत्र का चरित्र प्रतिच्छवित किया है । अतः विभिन्न उपन्यासों में आये ग्रामीण नगरीय अथवा महानगरीय जनसमूहों के चित्रण द्वारा मैंने गाँव, नगर और महा-नगर को अपनी विशिष्टताओं के साथ देखने का प्रयास किया है ।

इस अध्याय में एक शती (1882 ई० से 1982 ई० तक) के उपन्यासों में आये जनसमूहों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है । सुविधा की दृष्टि से इस अध्याय को क्रमशः 'पूर्व प्रेमचन्द युग' (1882 ई० से 1918 ई० तक), 'प्रेमचन्द युग' (1936 ई० से 1982 ई० तक) तथा 'प्रेमचन्दोत्तर युग' (1936 ई० से 1982 ई० तक) शीर्षकों के अन्तर्गत रख कर कालक्रमानुसार कथाकृतियों में चित्रित जनसमूहों को विश्लेषित किया गया है ।

(क) पूर्व प्रेमचन्द युग

परीक्षा – गुरु (1882 ई०)

'मानव जीवन का महाकाव्य' होने के नाते 'मनुष्य के सामाजिक जीवन या सामाजिक सम्बन्धों को' प्रस्तुत करना उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है । 'परीक्षा-गुरु (1882 ई०) सामाजिक यथार्थ की चेतना का उपन्यास है । जिसमें दिल्ली की पृष्ठभूमि को लेकर पूरी कथा वस्तु का विस्तार किया गया है । और यह दिल्ली उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की दिल्ली है, जिसमें आधुनिक महा-नगरीय दिल्ली का चरित्र नहीं है । यह वो दिल्ली है जिसमें 'कुछ विदेशी व्यापारी, स्वदेशी व्यापारी, भिन्न पेशों के लोग तथा इन

सबके आपसी सम्बन्ध और रंग-ढंग, कचहरी, हवालात, रईसी दरबार और इससे सम्बन्धित घटनाएं और प्रसंग आए हैं ।[1]

लाला मदन मोहन जो पुराने रईस रहे हैं, इस उपन्यास के नायक हैं । उनमें विलायती ढंग के रहन-सहन को अपना कर अपने विशिष्ट स्तर को दिखाने का शौक है । मुसाहब और § अवसरवादी § मित्र उनके इस शौक को हवा देते हैं । सम्भवतः यही शौक विकसित होकर आज महानगरीय सभ्यता का एक अंग बन गया है । अन्तर केवल इतना है कि आज उस स्तर तक पहुँचने के लिए जीवन की आपा-धापी यान्त्रिकता की सीमा तक पहुँच गई है । और लाला मदनमोहन कर्ज और साख के बल पर वह प्रदर्शन करते हैं ।

उस समय दिल्ली में कीमती साज सज्जा के सामान, जो अधिकांशतः 'वलायत' से आते थे और मिस्टर ब्राइट जैसे अंग्रेज दुकानदारों की दुकान पर ही बिका करते थे । पाश्चात्य ढंग की जीवन पध्दति को बड़े लोगों के बीच मान्यता मिल रही थी । उनके शिष्टाचार भारतीय उच्च वर्गीय समाज में स्थान पा रहे थे §'लाला मदनमोहन ने मिस्टर ब्राइट से हाथ मिलाया' ।[2]

दिल्ली उस समय भी घनी ही आबाद थी । नई दिल्ली का हिस्सा तो असली दिल्ली का एक्सटेंशन है । अतः उस समय भी नगरपालिका की ओर से स्थान स्थान पर पार्क बना दिए गए थे । लाला मदनमोहन जैसे रईस दिल्ली के 'कम्पनीबाग' पार्क में अपने मित्रों की टोली सहित मोद मनाने के लिये आते रहते हैं । पार्क में

---

§1§- परीक्षा-गुरु : श्री निवास दास § पृष्ठ 6 §

§2§- वही, § पृष्ठ 21 §

रंग बिरंगे फूलों की बहार, कृत्रिम नहरों में बहता पानी लाला मदन मोहन के मित्र ब्रजकिशोर के मन को प्रमुदित करता है। परन्तु नहरों और हरियाली से कुछ लाभ तो होगा नहीं अतः अन्य मित्र लोग घर जाने की जल्दी मचाने लगते हैं। कोई दुकान आदि हो तो वे कुछ कमीशन भी पा सकते थे। इन अवसरवादी मित्रों के दन्द-फन्द के अनेक चित्र 'परीक्षा-गुरु' में यत्र तत्र देखे जा सकते हैं।

नगरों में औद्योगीकरण तथा तज्जन्य समस्यायें आज के नगर-महानगर के साथ साथ जुड़ी हैं। हर बड़े छोटे शहरों में 'इन्ड-स्ट्रियल इस्टेट' बनाई जा रही हैं। 'परीक्षा गुरु' में ही इसके स्पष्ट संकेत मिलते हैं। मिस्टर रसल 'शीशे के बरतन का एक कार-खाना' दिल्ली में खोलना चाहते हैं।

दिल्ली में जहाँ लखनऊ की बनी टोपियों के खरीदार हैं वहीं 'लखनऊ की अमीरजान, के गाने के कद्रदान भी हैं। उस समय में वो रईस ही क्या जिनके घर 'तवायफों' के गाने की महफिल न लगे। इन महफिलों की जीवन्त एवं कलात्मकता के साथ प्रस्तुति तो 'परीक्षागुरु' में नहीं है सीधे सपाट रूप में इन्हें लेखक वर्णन करता - चलता है —'वल्लाह क्या बहार आ रही है ? - - - - मैं सदके ! खुदा की कसम ! मेरी तरफ तिरछी नजर से न देखो।'[3] आदि वाक्यों व्दारा 'वेश्याओं के झूठे हाव-भाव का वर्णन है। स्तर के प्रदेर्शन के लिए रईसों के घोड़साल में तरह तरह के घोड़े होने आवश्यक थे। अतः लाला मदन मोहन घोड़े खरीदते रहते हैं। इन रईसों के घर से अलग दूर मनोरंजन के लिए विलास-भवन भी हुआ करते थे जिसमें सुन्दर बाग बगीचे, पाले हुए पशु-पक्षी भी होते थे और रेशमी गलीचे

§3§- परीक्षा-गुरु : श्री निवास दास § पृष्ठ 132 §

की उम्दा बिछावन' से लेकर 'काँच, कुर्सियाँ - - - मेजें : हाथीदाँत, चन्दन' आदि के खिलौने से युक्त विलास कक्ष भी । 'हारमोनियम बाजा अंटा खेलने की मेज, अलबम, सैरबीन, सितार और शतरंज वगैरह मन बहलाने का सब सामान[4] उस कक्ष में अपने अपने स्थान पर सुसज्जित होता था । उन दिनों पुरुषों की, घर की जिन्दगी और बाहरी जीवन दोनों अलग अलग थे । अतः ये विलास भवन इन रईसों की अनिवार्यता थे । घर की गृहिणी तथा अन्य लोगों में यह महत्व स्वीकार्य भी था । परन्तु ब्रजकिशोर जो लेखक के प्रतिनिधि पात्र हैं, उस 'नयी चेतना के प्रतीक हैं जो एक ओर विदेशों की महान मानवीय चेतना की विरासत को अपनाते हैं तो दूसरी ओर अपनी प्रबुद्ध गतिशील भारतीय चेतना की महान परम्परा को आत्मसात किये हुए हैं'[5] इन सबको उचित नहीं समझते और जब तब विरोध भी प्रगट करते हैं । संक्रान्तिकालीन, उचित-अनुचित, पुरानी मान्यताएँ बनाम नवीन चेतना के चित्रों का आकलन ही तो 'परीक्षा गुरु' का कथ्य है ।

महाकाव्य से उपन्यास केवल एक बात में भिन्न है कि शास्त्रीय मान्यता ने कुलीन उच्च वंश में उत्पन्न विख्यात ऐतिहासिक §पौराणिक§ पुरुष को नायकत्व दिया था और उपन्यास अधिकांशतः मध्य वर्ग के साधारण § आम आदमी के § जीवन को लेकर चलता है । 'परीक्षा गुरु' में लाला मदन मोहन की मित्र मंडली में बाबू बैजनाथ, ईस्ट इण्डिया रेलवे कम्पनी में बाबू हैं ; शिंभूदयाल - मास्टर हैं ; छोटे - मोटे दुकानदार हैं ; पंडित जी हैं ; हकीम हैं और हैं मुंशी ब्रजकिशोर वकील । इसप्रकार ये सब टिपिकल मध्यवर्गीय चरित्र हैं । लेखक ने

§4§- परीक्षा गुरु : श्री निवास दास § पृष्ठ §

§5§- परीक्षा गुरु : श्री निवास दास, रामदरश मिश्र द्वारा लिखित परिचयात्मक भूमिका से § पृष्ठ 8 §

इनके जीवन का अलग अलग कोई चित्र नहीं दिया है । मदन मोहन के जीवन के उतार चढ़ाव के साथ साथ इन लोगों का सम्बन्ध है, इस नाते ही इनका स्थान है । केवल मुंशी ब्रजकिशोर को छोड़कर सब लाला मदन मोहन की खुशामद करके अपना उल्लू सीधा करते हैं । लक्ष्मीपतियों, अच्छी पोस्ट और पोजीशन वालों के आस-पास आज भी ऐसे अनेक शिंभूदयाल, बैजनाथ, चुन्नीलाल, अहमद हुसैन देखे जा सकते हैं --- सभी जगह और दिल्ली में तो और भी अधिक ।

नगर पालिका या 'म्युनिसिपेलीटी' के बिना नगर क्या ? तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार नगर पालिका का चुनाव नहीं होता था । बल्कि नगर के प्रतिष्ठित लोगों को 'मेम्बर' बना लिया जाता था । और तब भी सम्पन्नता ही प्रतिष्ठा और योग्यता का पर्याय हुआ करती थी । इस सदस्यता को प्राप्त करने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से कोशिश भी की जाती थी । लाला मदन मोहन इस सिलसिले में 'एक बार हाकिमों के पास'[6] जाना चाहते हैं ।'[7]

रईसों के घर मुकदमें लगे ही रहते हैं — जमीन - जायदाद के, लेन-देन के । लाला मदन मोहन के ऊपर लेनदारों ने मुकदमा दायर कर दिया है । 'अदालत में हाकिम कुर्सी पर बैठे इजलास कर रहे हैं सब सलाहकार अपनी अपनी जगह पर बैठे हैं।

लाला मदन मोहन के दिन गिर गए हैं । खुशामदी मित्रों ने किनारा कस लिया है । घर के नौकरों ने घर की वस्तुओं पर

---

§6§- परीक्षा-गुरु : श्री निवास दास § पृष्ठ 67 §

§7§- परीक्षा-गुरु : श्री निवास दास § पृष्ठ 189§

हाथ साफ करना प्रारम्भ कर दिया है । ऐसे ही अनेक चित्र हैं । ये चित्र 'स्थिर चित्र' बन कर आए हैं । गतिशील नहीं बन पाए ।

पारिवारिक जीवन की कुछ झलक भर ही है । लाला मदन मोहन पहले तो पत्नी की ओर ध्यान देते थे । परन्तु लोगों की मोहब्बत में नाच रंग में लिप्त हुए तो पत्नी उपेक्षिता हो गई । लाला मदन मोहन की पत्नी पारम्परिक ढंग की स्त्री है । उसकी दृष्टि में पति 'एक देवता' है, पति की प्रसन्नता ही उसकी प्रसन्नता है । खाने-पीने से लेकर वह उनकी हर सुख सुविधा का ध्यान रखती है । सुगृहणी है और कसीदा काढ़ने के साथ साथ 'चित्रादि बनाने में भी उसकी रुचि है । बच्चों की शिक्षा और सही ढंग से लालन पालन के लिए सजग है और उनके व्यक्तित्व के निर्माण के लिए 'निर्दोष खेलकूद और हँसने बोलने की स्वतंत्रता' की कायल है । पति के मित्र बृजकिशोर को भाई मानती है । घर से बाहर निकलने पर 'टहलनी' साथ लेकर चलती है । तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में स्त्री की भूमिका अन्तःपुर तक ही सीमित थी । घर के बाहर कुलशीलवती स्त्रियाँ नहीं ही निकलती थीं । एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि स्त्री-पात्र के निर्माण में भी लेखक की संक्रान्तिकालीन मनोवृत्ति का प्रभाव देखा जा सकता है । घरेलू स्त्री होने पर भी लाला मदन मोहन की पत्नी में वैचारिक सजगता है और कला के प्रति अभिरुचि है ।

सम्मिलित परिवार का प्रचलन परम्परागत रूप से था । लाला बृजकिशोर के परिवार का कोई विशेष उल्लेख तो नहीं है । फिर भी अपने छोटे भाइयों को पढ़ाने का दायित्व उन पर है — ऐसा संकेतित होता है ।

नगरों में अखबार का प्रचलन था, परन्तु लोगों में लोकप्रिय

नहीं था । गण्यमान्य लोग ही अखबार खरीदा करते थे । वह दिनचर्या की अनिवार्यता के रूप में तब ग्राह्य नहीं था, जैसा अब है । ये अखबार बुद्धिजीवी लोगों के शौक और साहस के बूते पर निकलते थे और घाटे पर चलते थे । लोगों में जागरण फैलाना ही उनका उद्देश्य होता था व्यापारिक दृष्टि से दूर । इस घाटे को पत्रकार लोग चन्दा और दान से प्राप्त धन से पूरा करते थे ।

इस प्रकार 'परीक्षा-गुरु' में लाला मदन मोहन की जीवन-गाथा के माध्यम से तत्कालीन समाज परिवार और जन-जीवन के कुछ स्फुट चित्र सामने आते हैं जो सतही होने पर भी कुछ रूप रेखा तो अवश्य ही दे जाते हैं । वस्तुतः कथानक और चरित्र दो ही इसके प्रमुख पक्ष हैं । कथोपकथन और लेखकीय कथन के माध्यम से उसका विस्तार हुआ है । कथाकार बहुधा कथानक में उपस्थित होकर दिल्ली के रईस के चित्र को 'जैसे का तैसा § अर्थात् स्वाभाविक § दिखाने के लिए दिल्ली के रहने वालों की साधारण बोल चाल' पर § उदाहरणार्थ -'में' के लिए 'मैं,' 'से' के लिए 'सै', 'क्यों' के लिए 'क्यौं', 'उनसे' के लिए 'उन्सै' आदि § दृष्टि रखता है । दिल्ली की बोली दिल्ली उपन्यास नगर की पृष्ठ भूमि को रंग देती है । 'इस पुस्तक मै दिल्ली के एक कल्पित § फर्जी §रईस का चित्र उतारा गया है और उसको जैसे का तैसा§अर्थात् स्वाभाविक§ दिखाने के लिए संस्कृत अथवा फारसी अरबी के कठिन कठिन शब्दों की बनाई हुई भाषा के बदले दिल्ली के रहने वालों की साधारण बोल चाल पर ज्यादः दृष्टि रखी गई है ।'[8] हिन्दी उपन्यास विधा का प्रथम सफल प्रयास 'परीक्षा गुरु' है । अतः इसमें नगर अथवा मध्यवर्गीय जन-जीवन से सम्बध्द एक आरंभिक चित्रशाला मिल जाती है । और यह संयोग से कुछ अधिक है कि हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास दिल्ली नगर के जीवन को केन्द्र बनाकर चलता है, जिस जीवन

---

§8§- परीक्षा गुरु : श्री निवास दास § पृष्ठ ।4 §

में पाश्चात्य और भारतीय विचार - धारा की टकराहट आरंभ हो चुकी है ।

राधाकान्त § 1912 ई0 §

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों में बाबू बृजनन्दन सहायकृत 'राधा-कान्त' का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसमें लेखक ने प्रत्यक्षतः 'आधुनिक § तत्कालीन § भावों और घटनाओं' का समावेश करके 'परोक्ष रूप से सामाजिक कुरीतियों' पर प्रकाश डाला है ।

लेखक ने, दो पात्रों - हरेन्द्र और राधाकान्त के माध्यम से नगर बनाम गाँव की संस्कृति का चित्र प्रस्तुत किया है । हरेन्द्र कलकत्ता शहर का रईस है और राधाकान्त पास के किसी गाँव का रहने वाला निम्न मध्यवर्गीय परिवार का व्यक्ति है । दोनों साथ-साथ पढ़े हैं । राधाकान्त को कलकत्ता नगरी की तड़क - भड़क आकर्षित करती है और धन - वैभव से पूरी तरह घिरा हुआ हरेन्द्र नगर की मोहक परन्तु हृदयहीन सभ्यता से ऊब चुका है । कलकत्ता के अच्छे मोहल्ले में एक विशाल अट्टालिका में रहता है । हरेन्द्र और उसी कलकत्ते की अँधेरी सीलनदारी कोठरी में रहकर राधाकान्त अपनी जीविका कमाता है ।

कलकत्ते खास के जितने अपने रहने वाले हैं उनसे कई गुनी अधिक संख्या है कलकत्ता में जीविका के लिए आस-पास के गावों से आने वाले लोगों की। जीविका के लिए गाँव से नगर में आए हुए अनेक लोगों की तरह राधाकान्त भी हैं जो कलकत्ते में 'भाड़े का घर' लेकर रहता है । वर्षा में जहाँ तहाँ से टपकने वाली छत, घर और घर में रहने वाले की स्थिति की चुगली करती है । ऐसे लोगों का काम पर जाते समय वेश होता है साधारण धोती और कुर्ता, कभी कभी कंधे पर

छाता भी । उन दिनों कलकत्ते में शनिवार को आफिस एक बजे बन्द हो जाया करता था । अतः किरानी वर्ग के लोग कभी-कभी 'स्टार थियेटर'[9] चले जाया करते थे । पारसी थियेटर के स्तर तक उनकी पहुंच न थी । 'एलफिंस्टन' नामक नाटक मण्डली उच्च स्तरीय लोगों के लिए थी । नाटक में पुरुष ही स्त्री पात्रों की भूमिका में उतरा करते थे ।

कलकत्ता में जहाँ 'राधाकान्त' जैसे 'साधारण कुल' के 'दरिद्र सन्तान' जीविका के लिए संघर्षरत थे वहीं हरेन्द्र जैसे लक्ष्मी-पतियों का भी निवास स्थान था । बचपन में ही हरेन्द्र स्कूल जोड़ी-गाड़ी में आता था, साथ में अरदली और नौकर'[10] आते थे । चाँदी के कटोरे में वह दूध पीता था और आज भी उसका रहन-सहन वही है ।

तत्कालीन § सन् 1912 § कलकत्ता नगरी में भी भीड़ और कोलाहल उसका प्रमुख चरित्र रहा है । 'एलफिंस्टन रंगशाला' के सामने गाड़ियों तथा टमटमों की भीड़ है । बड़े आदमी थियेटरों में 'बाक्स' में बैठते हैं । 'ग्रीन रूम' में भी इनका प्रवेश निषिध्द नहीं है । पारसी थियेटरों ने जन रुचि को काफी आकर्षित किया था । §शास्त्रीय दृष्टि से वर्जित§ फाँसी आदि के दृश्य पारसी थियेटर कम्पनियाँ स्टेज पर दिखाती थीं । परन्तु तत्कालीन बुध्दिजीवी वर्ग उसे सारहीन समझता था । §'हाय ! कालिदास की सन्तान आज ऐसा निन्दनीय अभिनय देखकर आनन्द प्रकाश कर रही है ! - - - - - - - - - जिस देश के लोगों में ऐसे नाटक का इतना आदर हो रहा है, वह देश क्या सभ्य समाज में कोई उच्च आसन ग्रहण कर सकता है ?'

कलकत्ते में बड़े लोगों की कोठियों के मुख्य द्वार पर दरबान बैठे होते हैं । घर-पर्दे, कीमती कालीनों और बहुमूल्य चित्रों से सुसज्जित

§9§- राधाकान्त - बाबू व्रजनन्दन सहाय § पृष्ठ 13 §
§10§- वही. § पृष्ठ 2 §

होते हैं । बिजली की रोशनी का प्रचलन नहीं हो पाया है अत: 'गैस की रोशनी' से प्रासादों में प्रकाश होता है । नौकर हर वक्त हुकुम बजा लाने को तैयार हैं । महल अनेकानेक अहातों में विभक्त हैं । नौकरों के लिए स्थान जमींदारी का काम-काज देखने के लिए कचहरी, बाग-बगीचा आदि सब अलग अलग हिस्सों बने हैं । पुस्तकालय, शास्त्रलय, नाट्य तथा नृत्यशाला आदि भी हैं । अन्त:पुर वैभव-विलास की वस्तुओं से आपूरित है । कलकत्ता नगरी अपनी जिस तड़क-भड़क के लिए प्रसिध्द और चर्चित रही है उन सबका प्रतिनिधित्व हरेन्द्र का महल करता है ।'[11]

गाँव इससे बिल्कुल अलग है । गाँव प्रकृति का पुत्र है और शहर का निर्माण मनुष्य की बुध्दि करती है । अत: दोनों में अन्तर स्वाभाविक है । कलकत्ते के पुष्पोद्यान में वह अकृत्रिम सौन्दर्य कहाँ जो गाँव की हरियाली में है । सौन्दर्य वहाँ निर्मित या आरोपित नहीं बल्कि गाँव का एक अंग है ---'ऐसा सुन्दर हरा - भरा खेत ऐसा सुहावना बगीचा, ऐसे सुन्दर ताड़ तथा खजूर के पेड़ एवं पल्लव वहाँ कहाँ दिखाई देते थे ? यहाँ के पक्षी कैसे स्वच्छन्द बोल रहे हैं ? यहाँ की हवा कैसी सुखद है ? ऐसा शान्तिप्रिय स्थान उस वृहद नगर में कहाँ है ?'[12] कलकत्ते की स्त्रियों की तुलना में गाँव की स्त्रियों को देखकर हरेन्द्र के 'मन में भक्ति का उदय होता है ।'[13] वह कहता है, 'जो पवित्रता, स्वच्छता, सरलता, निरोगता तथा आनन्द यहाँ राज्य करता है वह स्वप्न में भी हम लोगों के नगर में प्राप्त नहीं हो सकता ।'[14]

गाँव में, सम्बन्धों में सहज आत्मीयता है । कोई बनावट या दिखावा नहीं है । साधारण घरों में अतिथि के बैठने के लिए धरती

---

§11§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय, § पृष्ठ 38 §
§12§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय, § पृष्ठ 41 §
§13§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय, § पृष्ठ 43 §
§14§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय, § पृष्ठ 43 §

पर आसन बिछाकर उनका स्वागत किया जाता है । 'चमेली' में 'चिउड़ा' 'मूड़ी' 'बूँट की चबैनी' के साथ नमक मिर्च - जलपान के लिये दिया जाता है । भोजन चौके में किया जाता है । माँ पुत्र के मित्र को अपने हाथ से पंखा करते हुए स्नेह और आग्रह के साथ खाना खिलाती है । शयन की व्यवस्था भूमि पर पुआल के ऊपर दरी डाल कर की जाती है । अपने मित्र राधाकान्त के घर ऐसा आत्मीय आतिथ्य पाकर हरेन्द्र अन्तर से भीग उठता है ।

हरेन्द्र ने अनुभव किया कि प्रेम, पवित्रता और सहानुभूति गाँव - देहातों की संस्कृति का सहज स्वभाव है ।[15] बड़े बड़े नगरों में 'व्यर्थ की मान बड़ाई के लिए' लोग मरा करते हैं । माता-पिता भाई-बहन, पति-पत्नी सभी रिश्ते नगर में स्वार्थ के रिश्ते हैं । मित्र पैसे का साथी है । हरेन्द्र की माँ ने पैसे के लिए हरेन्द्र पर नालिश की है और वारण्ट व्दारा उसे पकड़वा कर उसे जेल भेजना चाह रही है । बहन-बहनोई की माँ से मिली भगत है । हरेन्द्र की पत्नी की अपने पति से अनबन ही रही और वह अपने पीहर में रहती है । शहर के लोग एक दूसरे के लिए कष्ट उठाना बेवकूफी समझते हैं । अपनी चिन्ताओं से वे इतने घिरे होते हैं कि दूसरों के प्रति सहानुभूति प्रगट करने का उन्हें समय ही नहीं । इसके विपरीत गाँव में 'खइनी तम्बाकू मलते हुए, घिरनी पर रस्सी लपेटते हुए'[16] ऐसे अनेक लोग अकारण आकर हरेन्द्र से बात चीत करते हैं । वह किसी घर का अतिथि नहीं, गाँव का अतिथि हो जाता है ।

इधर कलकत्ता नगर में बड़े आदमी लोग घर के भोग विलास से ऊब कर "गारडिन-पार्टी" का आयोजन करते हैं । शहर के बाहर पुष्पोद्यान के बीच कोठी में खाने तथा 'पीने' § शाम्पीन' 'व्हिस्की'[17] § का पूरा प्रबन्ध है । मनोरंजन के लिए "नृत्यकियाँ" हैं । नाच गाना

§15§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय § पृ0 49§, §16§- वही, §पृ0 51§
§17§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय § पृ0 58§,

हो रहा है । इनका पूरा मन बहलाव यहाँ भी नहीं हो पाता तब वे आनन्द और सुख की खोज में 'सोना गाछी'[18] की ओर बढ़ जाते हैं ।

गाड़ी, घोड़े, और मनुष्यों की भीड़ से भरी सड़कों वाली कलकत्ता नगरी में रात और दिन में अधिक भेद नहीं होता ।'[19] गैस और बिजली के आलोक से चारों ओर उजेला ही उजेला दिखाई पड़ता है । शाम को किले के मैदान में 'म्यूनिसपल के बेंच' पर बैठ कर कलकत्ता के साधारण स्थिति के लोग थोड़ा खुली हवा और विश्रान्ति का अनुभव करते हैं और रात होते-होते घर चले जाते हैं । कलकत्ते के रेलवे प्लेटफार्म और थर्ड क्लास के डब्बे में तो भीड़ का कहना ही क्या ?

नगर में संवेदना - शून्य होकर जीनेवाला सफल है । संवेदन-शील व्यक्ति अपने मन और वाह्य वातावरण तथा परिस्थिति से ताल-मेल नहीं बिठा पाता । हरेन्द्र की परिस्थिति बदल गई है । वह कलकत्ता छोड़कर बनारस पहुंच गया है । जहाँ वह काशी विश्वनाथ के दर्शन करता है । विश्वनाथ मन्दिर में सभी श्रेणी के लोग भक्ति भाव पूर्वक आरती देख रहे हैं । विश्वनाथ और अन्नपूर्णा की नगरी में व्यभि-चार के अड्डे भी कम नहीं है । हरेन्द्र का § तथा कथित § मित्र किसी 'खतरानी' बुढ़िया के घर में टिक कर उसकी सुन्दरी लड़की को पटाने में लगा है और अन्ततः उसे लेकर भाग जाता है ।'[20]

कानपुर जैसे शहरों में प्रकाशकों और लेखकों का धंधा खूब पनप रहा है । उपन्यास लोकप्रिय हो रहे थे अतः अधकचरे लम्पट लोगों ने कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा जोड़कर अनेकानेक पुस्तकों से कथानक का भाव ग्रहण करके नये नये उपन्यास लिखना प्रारम्भ कर दिया है और

---

§18§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय § पृष्ठ 59 §

§19§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय § पृष्ठ 64 §

§20§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय§ पृष्ठ 99, 103 §

उन्हें प्रकाशित करके पाठकों का एक अच्छा वर्ग तैयार कर लिया है। प्रकाशकों के निर्देशानुसार वे 'प्रबंध' लिखा करते हैं। उनका उद्देश्य नाम और धन कमाना है। स्वतंत्र समालोचना का अभाव है। सम्पादक लोग ही प्रायः समालोचना किया करते हैं।[21]

अस्पताल में भी भ्रष्टाचार का बोल बाला है। रोगियों को कोई देखने वाला नहीं है। कम्पाउन्डर दवा की जगह पानी का प्रयोग करता है। डाक्टर से लेकर अस्पताल के साधारण कर्मचारी तक सब अपने अपने लाभ के फेर में पड़े हैं। जो 'खास तरह से डाक्टर और कर्मचारियों का कृपाभाजन बना रहता है'[22] उसको सब सुविधाएं उपलब्ध हैं। कानपुर अस्पताल में पड़ा हुआ हरेन्द्र अपनी आंखों सब देखता है।

कारागार में हरेन्द्र ने जाना कि लोहे के बर्तन में कच्चा-पक्का मोटा चावल किस प्रकार खाया जा सकता है। पत्थर तोड़ना, कोल्हू चलाना, चक्की पीसना कैदियों की दिनचर्या का अंग है और वक्त बेवक्त वार्डरों के लात जूता और हन्टर खाना उनका कर्तव्य।[23]

नगर में पैसे §घूस§ के बल पर न्याय खरीदा जा सकता है। सुखदेव की अप्रत्यक्ष सहायता से पुलिस ने हरेन्द्र के विरूद्ध काफी प्रमाण एकत्र कर लिया है ताकि सुखदेव को निर्दोष साबित किया जा सके। अतः निर्दोष होते हुए भी हरेन्द्र 'कातिल' ठहराया जाता है। पुलिस विभाग में भ्रष्टाचार था पर 'जासूस विभाग' अभी तक भ्रष्टाचार से मुक्त है और उसमें कर्तव्यनिष्ठा है।[24]

---

§21§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय § पृष्ठ 116 - 117 §
§22§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय § पृष्ठ 143 §
§23§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय § पृष्ठ 148 §
§24§- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय § पृष्ठ 173 §

'राधाकान्त' नामक उपन्यास में लेखक ने प्रमुख रूप से कलकत्ता की पृष्ठ भूमि लेकर कथानक का विस्तार किया है । बनारस और कानपुर प्रसंगतः आ गए हैं और उनकी स्फुट झलकियाँ ही हैं । राधाकान्त के देश—गाँव - देहात के जीवन का संक्षिप्त सा चित्र नगर और गाँव के अन्तर को विशेष रूप से स्पष्ट करता है । नगर-जीवन, दिखावा, बनावट, स्वार्थ से भरा और छलछन्दमय है, ग्राम्य जीवन सहज, मनोहारी, अपनत्व से भरा, सुखकर और शान्तिदायक है । गाँव के इन्हीं गुणों का प्रतिनिधित्व करता है 'राधाकान्त' और सम्भवतः कृति के 'राधाकान्त' नामकरण का कारण भी यही है ।

<u>आदर्श हिन्दू §पहला भाग, दूसरा भाग, तीसरा भाग ; 1914-15ई0§</u>

प्रेमचन्द पूर्व के उपन्यास सामाजिक हित की दृष्टि से लिखे गए थे । और यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द पूर्व के कथाकार भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू संस्कृति को एक दूसरे का पर्याय मानते थे । 'आदर्श हिन्दू' में 'तीर्थयात्रा के ब्याज से एक ब्राह्मण कुटुम्ब में सनातन धर्म का दिग्दर्शन, हिन्दूपन का नमूना, आजकल की त्रुटियाँ, राजभक्ति का स्वरूप, परमेश्वर की भक्ति का आदर्श और अपने विचार की बानगी प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है ।'[25] प्रस्तुत उपन्यास में राजपुताने के एक मौजे मुक्तीपुर §अजमेर§ की पृष्ठभूमि में पंडित प्रियानाथ उनकी पत्नी प्रियंवदा तथा भाई कान्तानाथ और उनकी पत्नी सुखदा के परिवार को लेकर कथानक का विस्तार किया गया है । उस समय जब शहरों में ही आज की सामाजिक मान्यता और व्यक्ति चेतना का अभाव था तो मुक्तीपुर जैसे छोटे कस्बे में परम्परागत रूढ़ि पालन और पुरानी मान्यता अपने मूल रूप में विद्यमान रही हों तो क्या आश्चर्य ! यद्यपि संक्रान्ति कालीन मनोवृत्ति के स्पष्ट संकेतों का अभाव नहीं है ।

---

§25§- आदर्श हिन्दू, भाग - 1 : मेहता लज्जाराम शर्मा ; भूमिका §पृष्ठ 2§

मौजा मुफ्तीपुर की कचहरी में तहसीलदार हाकिम-परगना था । कचहरी की भाषा फारसी मिश्रित उर्दू थी । तहसीलदार मुरव्वत अली ऐसी ही भाषा का प्रयोग करते हैं । हर वाक्य के आगे - पीछे गाली देकर बात करना इनकी आदत में शुमार है । नागरिकों में हाकिमों के लिए भय था ---'हजार भला होने पर भी है हाकिम । और हाकिम मिट्टी का भी बुरा होता है ।'[26] और समाज में 'इज्जतदार की सब तरह पर मुश्किल है'[27] इसलिए हाकिम नाराज न होने पाये ऐसा प्रयत्न करते रहना होता था ।

सरकारी मोहकमों में घूस का लेन देन चलता था । सामान्यतया लोग यह मानते थे कि 'जो किसी को सताकार न लेवे और जो मिल जाय उसी पर संतोष कर ले' 'जमाने को देखते हुए वह भी बुरा नहीं समझा जा सकता'[28] पर समाज में गिने-चुने कुछ ऐसे लोग भी थे जो इस तरफ दृष्टि ही नहीं करते थे । पंडित प्रियानाथ ऐसे लोगों में एक थे ।

समाज में 'संयुक्त कुटुम्ब' प्रणाली का प्रचलन था और उसकी प्रतिष्ठा थी । पंडित प्रियानाथ अपने छोटे भाई कान्तानाथ के साथ रहते थे । घर का बड़ा - पिता या भाई गृहपति होता था । पंडित प्रियानाथ अपने घर के प्रमुख थे । बेटों, बहुओं और पोते, पोतियों से भरे अपने घर के मुखिया, पचहत्तर वर्ष के बूढ़े बाबा भगवान दास थे ।

संयुक्त परिवार चल तो अवश्य रहे थे । पर विघटन की आशंका घर करने लगी थी । अतः पंडित प्रियानाथ के पिता स्वर्गीय रमानाथ ने अपनी धन - दौलत, जमीन - जायदाद को अपने दोनों पुत्रों के लिए दो हिस्सों में बाँट दी थी[29] इधर बाबा भगवान दास की

{26}- आदर्श हिन्दू भाग - 1 : मेहता लज्जाराम शर्मा { पृष्ठ 154 }
{27}- आदर्श हिन्दू भाग - 1 : मेहता लज्जाराम शर्मा { पृष्ठ 161 }
{28}- आदर्श हिन्दू भाग - 3 : मेहता लज्जाराम शर्मा { पृष्ठ 182 }
{29}- आदर्श हिन्दू भाग - 3 : मेहता लज्जाराम शर्मा { पृष्ठ 50 }

अनुपस्थिति में बाबा के घर में भी भाइयों भाइयों के बीच रोज कलह होने लगी । अतः बाबा भगवानदास ने भी मजबूर होकर अपने सब लड़को में माल, जमीन, जायदाद, रुपया, पैसा का बराबर बराबर बंटवारा कर दिया है ।'[30]

लोग अंग्रेजी पध्दति की शिक्षा के कायल न थे । उनका विचार था कि स्कूल कालेज की शिक्षा नवयुवकों का चरित्र बिगाड़ देती है । परन्तु विश्वविद्यालय की डिग्री के बिना सांसारिक कार्य § जीविका आदि § नहीं चल सकता । अतः प्रतिष्ठित लोग अपने लड़कों को विश्वविद्यालय में भेजते थे । "जब तक विश्वविद्यालय की शिक्षा प्रणाली का उचित संशोधन न हो जाय, तब तक पास का पुछल्ला लगाना, वह चाहे अनावश्यक, निरर्थक, निकम्मा, हानिकारक और बोझा क्यों न समझे किन्तु जब आजकल परीक्षा के बिना योग्यता की नाप नहीं होती और हर जगह सर्टिफिकेट रूपी लकड़ी की तलवार अपेक्षित होती है तब स्कूल और कालेज की शिक्षा दिलाए बिना काम न चलेगा ।"[31] इस बात को पंडित जी अच्छी तरह समझते हैं । अतः अपने पुत्र और भतीजे दोनों को 'हिन्दू विश्वविद्यालय' में शिक्षा दिल-वाते हैं ।

कस्बों के भद्र समाज में लड़कियों के लिए भी शिक्षा आवश्यक समझी जाने लगी थी । पर 'आजकल की स्कूली तालीम' स्वीकार्य न थी । लड़कियों को घर पर पढ़ाना उचित समझा जाता था । स्त्री अपने को पति का 'बेटर हाफ § उत्तमार्ध §' समझे या समकक्ष समझे, ऐसी शिक्षा निन्दनीय थी । स्त्री 'पति की दासी बन कर रहे, पति को अपना जीवन सर्वस्व समझे'[32] ऐसी शिक्षा स्त्री के लिए मान्य थी ।

§30§- आदर्श हिन्दू भाग - 3 : मेहता लज्जा राम शर्मा § पृष्ठ 154§
§31§- आदर्श हिन्दू भाग - 3 : मेहता लज्जा राम शर्मा § पृष्ठ 130§
§32§- आदर्श हिन्दू भाग - [illegible] : मेहता लज्जा राम शर्मा § पृष्ठ 33 §

घर के काम - काज करना, सिलना, काढ़ना आदि के अतिरिक्त खाली समय में 'तुलसीकृत रामायण, महाभारत, रागरत्नाकर, ब्रज विलास, प्रेमसागर' पढ़ सकती थीं । इसके अतिरिक्त वो उपन्यास जो मन में विकार न लाए उन्हें भी पढ़ने की अनुमति थी । गीत-भजन तथा पति को प्रसन्न करने के लिए प्रेम-रस, श्रृंगार - रस के गीत सीखना तथा गाना कुल ललनाओं के लिए आदर्श स्वीकृत कला थी । लड़की का विवाह कच्ची उम्र में हो जाना चाहिए - ऐसी सामाजिक मान्यता थी । अतः प्रियंवदा का विवाह ।। वर्ष की आयु में हो गया था और गौना 16 वर्ष की अवस्था में । घर के अन्तःपुर में वय प्राप्त पुरुष और नेकचलन स्त्रियों को नौकर नौकरानियाँ रखा जाता था । इन सब के बीच सुधारवादी दृष्टि की भी झलक मिलती रहती है । विवाह शादी में 'गालियाँ' गाना मूर्ख स्त्रियों का काम माना जाता था । अतः गाँव के भी भद्र - समाज में 'गालियाँ' गाना निषिध्द अथवा वर्जित था ।

सम्भ्रान्त महिलाएँ 'पर्देदार औरतें' कहलाती थीं । मुसलमानों, कायस्थो और क्षत्रियों में 'दमघोंट पर्दे का रिवाज'[33] था । पर पढ़े लिखे ब्राह्मण समाज में न दम-घोंट पर्दा था, न 'मुंह खोलकर' पर पुरुष से हँसी मजाक करना उचित माना जाता था । 'पर्दा' इस प्रकार का था कि घर के भीतर जनाने में दस, पन्द्रह वर्ष के लड़कों के सिवाय कोई न आने पावे, स्त्रियाँ भी जो आवें वे ऐसी आवें जिनका चलन बुरा न हो । बाप, भाई इत्यादि नातेदारों को भी युवतियों से एकान्त में मिलने का अवसर न मिलने पावे । जब जाति-बिरादरी में जाने के लिए, दर्शनादि के लिए मंदिर या तीर्थों में नारियों के जाने की आवश्यकता पड़े तब वे अदब के कपड़े पहन कर निकलें ताकि मार्ग

---

§33§- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जा राम शर्मा § पृष्ठ 44 §

में किसी को छूने का मौका न मिले ।'[34] सम्भ्रान्त महिलाएं यदि पति के साथ भी बाहर जाती थीं तो बूढ़ी नौकरानी को साथ लेकर जिससे यदि पति को पत्नी को छोड़कर बाहर जाना पड़े तो नौकरानी साथ रहे । यों तीर्थादि के अतिरिक्त मात्र घूमने घुमाने के लिए पत्नी को लेकर पति का निकलना प्रचलित न था । स्त्रियाँ स्वयं ही घर से बाहर निकलने में हिचकती थीं । पंडित प्रियानाथ चूंकि एम० ए० पास थे अतः वे मानते थे कि स्त्रियों को थोड़ा-बहुत घूमने निकलना चाहिए । क्योंकि 'बाहर की हवा खाने और परिश्रम करने से उनकी सन्तान हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ट होती है ।'[35] स्त्रियों के अपने स्वयं के मानसिक शारीरिक स्वास्थ्य का विकास होगा-ऐसी दृष्टि फिर भी पनप नहीं पाई थी । भद्र महिलाएं घर में 'घुर-घुर' कर मर जाना उचित समझती थीं पर खुले मुँह बाहर फिरना उन्हें स्वयं पसन्द नहीं था । पंडित प्रियानाथ आबू के पहाड़ पर सपत्नीक घूमने गए हैं । पर उनकी पत्नी प्रियंवदा की स्त्री लज्जा उसे इस प्रकार मुक्त विहार में बाधा पहुँचाती है । उसका विचार है 'भले घर की भामिनी का अपने मालिक से भी समय पर अपने कमरे ही में बात चीत करना अच्छा है । ऐसे बीबी को बगल में दबा कर सैर करने में लाज ही है ।'[36]

परिवार में साधारणतया स्त्रियाँ अनपढ़ और मूर्ख थीं भूत - प्रेत में विश्वास करती थीं । समाज में कुटनी स्त्रियाँ भी थीं जो भले घर की मूर्ख स्त्रियों को बहला - फुसला कर उनका गहना, कपड़ा हथियाती रहती थीं और कुराह पर चलने के लिए प्रलुब्ध करती रहती थीं । 'मथुरा' ऐसी ही कुटनी स्त्री है जो पं० कान्ता नाथ की पत्नी सुखदा को घर और पति छुड़वा कर सड़क पर ला खड़ा कर देती है ।

---

§34§- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जा राम शर्मा §पृष्ठ 45§
§35§- आदर्श हिन्दू, भाग-1 : मेहता लज्जा राम शर्मा §पृष्ठ 6 §
§36§- आदर्श हिन्दू, भाग-1 : मेहता लज्जा राम शर्मा §पृष्ठ 6 §

ऐसी मूर्खा और मर्यादा भ्रष्ट स्त्री को घर के मुखिया और पुरोहित की आज्ञा से पुनः पत्नी की मर्यादा मिल सकती है । समाज में स्त्री की स्थिति कुछ ऐसी है कि वे 'आटे का दिया हैं, घर में रहती हैं तो चूहे नोचते हैं और बाहर जाती हैं तो कौवे टोंचते हैं ।'[37] नितान्त असमर्थ होने पर भी लड़की-दामाद से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता लेना सनातन हिन्दू परिवार में निषिध्द था । अतः सुखदा की विधवा माता सीना पिरोना करके अपना भरण पोषण करती है पर दामाद कान्ता नाथ की कोई सहायता स्वीकार नहीं करती ।'[38]

साधारण घर की स्त्रियाँ कुएँ पर पानी भरने जाया करती थीं । वहीं अपने सुख-दुख की बात, सास नन्द की बात करती थीं । 'गाँवों में अब तक नीच-ऊँच का, धनवान - दरिद्र का विचार छोड़कर आपस में एक दूसरे से किसी न किसी रिश्ते नाते से ही बोलते चालते हैं ।'[39] जाति कुछ भी हो, बूढ़ा होने पर गाँव भर के सुवर्ण-असवर्णों का वह 'बाबा' है । गाँव की औरतें उसके सामने घूंघट निकाले बिना न निकलेंगी । बूढ़ा काछी भगवानदास सारे गाँव का बाबा है ।

कस्बों में परम्परागत नीति-मर्यादा, सामाजिक और पारिवारिक रीति रिवाजों का नियमन करती थीं । बड़े बूढ़ों के सामने पति-पत्नी बात नहीं कर सकते हैं, बड़ों के सामने पिता अपने पुत्र को प्यार नहीं कर सकता है । इसमें कुछ बड़ाई नहीं कि बड़ों के सामने "बेटा, मुन्ना, लाला, राजा ।" कहकर बालक के गालों का चुंबन करें पति पत्नी हँस हँस कर आपस में बातें करें ।'[40]

{37}- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जा राम शर्मा { पृष्ठ 87 }
{38}- आदर्श हिन्दू, भाग-1 : मेहता लज्जा राम शर्मा { पृष्ठ240 }
{39}- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जा राम शर्मा { पृष्ठ 53 }
{40}- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जा राम शर्मा {पृष्ठ 132 }

गाँवों का जीवन सहज और सीधा सादा था । गाँव-घर से बाहर निकलना कम होता था । परन्तु जब भी कभी तीर्थयात्रादि शुभ कार्य के लिए बाहर निकलना होता था - मुहूर्त निकलवा कर निकला जाता था । पंडित प्रियानाथ मुहूर्त निकलवा कर शुभ दिन पर तीर्थ-यात्रा के लिए निकलना चाहते हैं । पंडितों में जीविका उपार्जन ही प्रमुख था, पांडित्य नहीं था । उल्टा सीधा बोल कर जजमानों को मूर्ख बनाने की कला तक ही पंडितों का पांडित्य था । हिन्दू लोगों में इन पुरोहित पंडितों से धीरे-धीरे श्रध्दा उठ रही है - कुछ तो अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से और कुछ ब्राह्मणों की मूर्खता, अशिक्षा और लोभ आदि दुर्गुण के कारण ।'[41]

कार्यगत वर्ण व्यवस्था के वैज्ञानिक आधार को उचित मानते हुए और जन्मगत वर्ण व्यवस्था को न मानते हुए भी गाँव का पढ़ा लिखा व्यक्ति यह स्वीकार नहीं कर पाता कि धोबी 'बाबू' {क्लर्क} का काम करने लगे । बल्कि उसे समर्थ लोग सहायता देकर 'अंग्रेजी ढंग से कपड़े धोने की लांड्री'[42] खुलवा दें -- यह पंडित प्रियानाथ की दृष्टि में उचित ठहरता है । हाँ, होली में वर्ण व्यवस्था के बन्धन शिथिल हो जाते हैं । परम्परा से चले आ रहे उचित अनुचित रीति-रिवाजों को नई दृष्टि से वैज्ञानिक ठहरा कर उसे उचित माना जाता है । परम्परा और नई दृष्टि साथ साथ चल रही है । होली में गाँव के लोगों का भद्दे भद्दे कबीर गाना, रंग खेलना, फूहड़ हँसी मजाक करना आदि को वासनाओं के विरेचन का माध्यम मानकर प्रियानाथ उसे स्वीकार करते हैं । दृष्टि अभी भ्रमित है - वेश्या, कुमार्गगामी पुरुष समाज में निन्द-नीय हैं ऐसा वे मानते हैं । पर दूसरी ओर वे वेश्याओं को समाज की आवश्यकता मानते हैं, अन्यथा कुमार्गगामी पुरुष कुलवधुओं पर कुदृष्टि

{41}- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जा राम शर्मा {पृष्ठ 138}
{42}- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जा राम शर्मा {पृष्ठ 218}

डाल कर उन्हें अपवित्र करेंगे । अतः घर-गाँव की गन्दगी बहाकर ले जाने वाली नाली के समान वेश्याओं की समाज में आवश्यकता है ।•43

परिवार और समाज के लिए मान्यताएं परम्परावादी हैं । परन्तु कर्म क्षेत्र में आधुनिक दृष्टि का स्पष्ट प्रभाव है । औद्योगीकरण के अंकुर भी देखे जा सकते हैं । खेती के काम में पश्चिमी साइंस को स्वीकार किया जा रहा है । परन्तु प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति भी दृष्टि सजग थी । अतः संस्कृत के 'शार्ङ्गधर ब्रज्या' की भी उपेक्षा नहीं की । इन दोनों को उपयोग में लाकर पं० प्रियानाथ और कान्तानाथ ने नमूने के खेत तैयार करने का कार्य आरम्भ किया है•44 'सुरपुर' जमींदारी के आस-पास दस-बीस कोस तक के उद्योगहीन जुलाहों को बुलाकर 'फ्लाई-शटल' से हैंडलूम की मदद से कपड़ा बुनवाने का प्रयत्न हो रहा है । 'टैंक' और 'मालपुरे' के कारीगरों को अपने गाँव में रखकर उनसे 'धुगी' और 'नमदों' के अलावा नयी तकनीक की मशीनों द्वारा 'फेल्ट टोपियाँ' बनवाने की योजना बनाई गई है । गाँव के पढ़े लिखे समाज में राष्ट्र भावना के दर्शन होते हैं । पंडित प्रियानाथ देश की मृतप्राय कारीगरी को पुर्नजीवित करने के लिए 100-100 रु० के हिस्सेदारों के साथ एक कम्पनी खड़ा करना चाहते हैं । अजमेर के रेलवे वर्कशाप की नौकरी छोड़कर जो कारीगर स्वतंत्र उद्योग करना चाहे, उनको भी प्रियानाथ सहायता करने को तैयार हैं । वे काशी, राजपुताना तथा ऐसे ही भारत के अन्य अन्य विशेष कारीगरी वाले स्थान की चीजों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार तक पहुँचाना चाहते हैं जिसके लिए उन्होंने अजमेर में 'रमानाथ राधानाथ' नामक दुकान भी खोली है । उल्लेखनीय है यह दुकान अजमेर शहर में खुली है, 'मुफ्तीपुर' कस्बे में नहीं । क्योंकि विशेष कारीगरी की वस्तुओं के ग्राहक शहर में ही होंगे और शहर में हर तरफ के लोगों का आना जाना भी लगा रहता है ।

---

§43§- आदर्श हिन्दू, भाग-3, : मेहता लज्जा राम शर्मा §पृष्ठ 223§

§44§- आदर्श हिन्दू, भाग-2, : मेहता लज्जा राम शर्मा §पृष्ठ -48§

आधुनिक दृष्टि का व्यावहारिक पक्ष संस्कृत पढ़ने वाले पंडितों को अर्थकारी विद्या की सुविधा दिलवाने के लिए भी सचेष्ट है। जिससे संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने वाले दारिद्र्य दुःख से संस्कृत पठन-पाठन छोड़ न बैठें।[45] यह भी विचार पनप रहा है कि जिन ब्राह्मणों के लिए विद्या से जीविका चलाना कठिन है वे व्यापार करके, कारीगरी सीखकर और नौकरी करके पेट पाल लें[46]। फिर भी कस्बे का पुराना संस्कारी मन यह स्वीकार नहीं कर पाता कि ब्राह्मण जूते बनावें या शराब की दुकान खोल लें।

प्राचीन और आधुनिक विचारों की यह द्वन्द्वात्मक स्थिति जहाँ तहाँ दिख जाती है। जगदीशपुरी में कोढ़ियों को देखकर पंडित प्रियानाथ के लिये पहला भाव यह आता है कि उन्होंने कोई ऐसे बुरे पाप किए हैं जो कोढ़ी होकर पाप का परिणाम भोग रहे हैं[47] दूसरी ओर वे पंडों की सहायता से कोढ़ियों के लिए अन्न, वस्त्र, आश्रय और इलाज की व्यवस्था करना चाहते हैं।[48] तंत्र शास्त्र से अनुमोदित पशुबलि पूजा विधान का अंग है फिर भी प्रियानाथ बलिदान के बकरों का क्रन्दन और मृत्युभय की छटपटाहट देख नहीं सकते। अतः वह विन्ध्यवासिनी देवी, कलकत्ता की काली जी का दर्शन करने नहीं जाते हैं। परन्तु पुराना संस्कारी मन इस अमानवीय कर्म की स्पष्ट रूप से निन्दा या अस्वीकार प्रगट नहीं कर पाता है[49]।यह द्विधाग्रस्त मन तत्कालीन मनोवृत्ति का स्पष्ट चित्र देता है।

{45}- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जाराम शर्मा { पृष्ठ 63 }

{46}- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जाराम शर्मा { पृष्ठ 147 }

{47}- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जाराम शर्मा { पृष्ठ 29 }

{48}- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जाराम शर्मा { पृष्ठ 43 }

{49}- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जाराम शर्मा { पृष्ठ 69 }

राष्ट्रवादी चेतना गाँवों, कस्बों में भी घर कर रही है। अंग्रेजियत का तिरस्कार § सिगरेट सोडावाटर पान करना आदि § और भारतीयता की वकालत § छालियाँ, लौंग, इलायची, जावित्री आदि का मुख शोधन के लिए प्रयोग करना § हर पढ़े लिखे व्यक्ति के चरित्र का अंग बन गई है। हिन्दी राष्ट्रभाषा बने, ऐसे विचार अंकुरित हो रहे हैं। पंडित प्रियानाथ अपने सहयात्रियों से इस विषय पर तर्क करते हुए यह स्थापना करते हैं 'इस तरह हिन्दी के प्रचार से यदि बीस वर्ष में भारत की एक भाषा हो सकती है तो उर्दू को कम से कम सौ वर्ष चाहिए - - - - ।'[50]

सामाजिक/सार्वजनिक जीवन दृष्टि में उदार व्यावहारिकता और आधुनिक सचेतना के दर्शन होते हैं परन्तु व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक स्तर पर दृष्टि वही संकुचित एवं परम्परावादी हो उठती है। स्त्रियों की दृष्टि तो और संकुचित है। यात्रा के समय गाड़ी के डब्बे में मेमों सा जूड़ा बनाए खुले सिर, मोजे के ऊपर एड़ीदार सैंडिलें पहने स्वतंत्र सी महिला-यात्री को अन्य महिला - यात्रियों ने अपने से अलग माना। स्त्रियों का आजन्म अविवाहित रहना भी समाज में स्वीकार्य नहीं है'[51]

पंडित प्रियानाथ अपनी 'यात्रा-पार्टी' [52] जिसमें उनकी पत्नी प्रियंवदा, भोला कहार तथा बाबा भगवान दास, उनकी पत्नी और पुत्र शामिल हैं, के साथ तीर्थ-यात्रा पर निकलते हैं। वे मथुरा, प्रयाग, काशी, गया, जगदीशपुरी और पुष्कर की यात्रा करते हैं। इन तीर्थ-स्थानों के कुछ विशिष्ट चित्र ही मिलते हैं। नगर के सामान्य चित्रों का अभाव है क्योंकि दृष्टि 'आदर्श हिन्दू' की है और उद्देश्य है तीर्थ-यात्रा।

---

§50§- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 68 §

§51§- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 79 §

§52§- आदर्श हिन्दू, भाग-1 : मेहता लज्जाराम शर्मा, § पृष्ठ 66 §

सभी तीर्थों के ब्राह्मणों में वृत्ति ही शेष रह गई थी, कर्म-काण्ड का ज्ञान और पांडित्य नाम मात्र को भी नहीं रह गया था। मथुरा में मूर्ख चौबे जी से साक्षात्कार होता है जो पत्नी से अनुशासित होते हैं। इन पति-पत्नी के झगड़े में मथुरा के दिल्लगीबाज लोग धोती, कपड़ा खींच कर और रंग देते रहते हैं। ये चौबे जी भोजन भट्ट हैं और भंग प्रेमी भी। बाहर के पहलवान हैं पर घर के भीतर चौबाइन जैसे नचातीं वैसे नाचते हैं।

मथुरा में यमुना नदी पर स्नानार्थी यात्रियों के कपड़े उठाकर बन्दर भाग जाते हैं तो कहीं चोर उचक्के सामान और रुपया पैसा लेकर। भिखारियों की जमात अलग तीर्थ-यात्रियों को परेशान कर डालती हैं, यहाँ तक कि पं० प्रियानाथ को पुलिस की सहायता लेनी पड़ती है। तीर्थ स्थानों पर लफंगों और बदमाशों की भी कमी नहीं है। स्नाता प्रियंवदा को देखकर किसी मनचले बदमाश ने 'बिहारी की सतसई का एक दोहा कहकर आवाजा फेंक ही दिया'[53]

मथुरा में दोनों ही प्रकार के लोग हैं —— भले और सन्तोषी तो इतने कि कोई हजार रुपये भी दे तो उसकी ओर आँख न उठावे'[54] और 'मुँह में राम बगल में छुरी' वाले ढोंगी साधु जो 'चोरी और उठाई गीरी' में उस्ताद' हैं। मथुरा शहर में 'आजकल के जमाने की बनावट है पर उसके गाँवों में उतना ही सीधापन है।' वहाँ आजकल के तीर्थों का प्रपंच नहीं है।

मथुरा स्टेशन पर अनियंत्रित भीड़ का प्रवाह है। टिकट की खिड़की पर 'हटटे कटटे मुस्टंडे' धक्का मुक्की करके आगे जाकर आसानी से टिकट ले आ पाते थे, बाकी पिसे जाते थे। स्टेशन पर पुलिस डाँट-डपट कर और आवश्यकता पड़ने पर डंडे चला कर भीड़ को व्यवस्थित करने

{53}- आदर्श हिन्दू, भाग-1, : मेहता लज्जाराम शर्मा, {पृष्ठ 84}
{54}- आदर्श हिन्दू, भाग-1, : मेहता लज्जाराम शर्मा {पृष्ठ 130}

का सफल - असफल प्रयत्न करती है । भीड़ में जेबकतरों और उचक्कों की बन आती है । किसी की नथुनी खिंच जाती है और नाक फट जाती है।[55] किसी का चन्द्रहार छिन गया है । प्रियंवदा का ट्रंक उठ जाता है । स्टेशन पर 'खुदाई खिदमतगार' भी खूब मिल जाते हैं । जो यात्रियों की सहायता करके उनका विश्वास जीत कर ठगी, बदमाशी करते हैं । पं० प्रियानाथ की यात्रा पार्टी को गाड़ी में भली भांति चढ़ने - चढ़ाने में सहायता करने वाला अपरिचित गाड़ी के जनाने डब्बे में बैठी हुई प्रियंवदा पर आवाजकशी करके छेड़ने का प्रयत्न करता है ।

प्रयाग यद्यपि तीर्थ राज है । पर प्रयाग का तीर्थ राजत्व एक तरफ और प्रयागी पंडे एक तरफ । तीर्थ यात्री उतरे नहीं कि वे उनके सिर पर सवार । कैसे यात्रियों को अपना यजमान साबित करें, उसी में उन सबमें आपस में गाली - गलौज, मारपीट तक हो जाती है । अधिकांश पंडे अशिक्षित हैं ।

गंगा त्रिवेणी के तट पर विभिन्न दृश्य दिखते हैं । तट पर तीर्थ यात्रियों का क्षौर कर्म करने के लिए अनेक नाई बैठे हैं § त्रिवेणी तट पर क्षौर कर्म करवाकर ही स्नान करने का विधान है § जो आधा आधा सिर मूँड़कर अनेक यजमानों को फंसाये हैं । घाट पर और जल में नौका पर भगवान की मूर्तियों को चढ़ाए, भगवान के नाम पर भीख मांगने वालों की भीड़ यहां कम नहीं है । जेब कतरे भी सक्रिय हैं । कोई जेब कतरा भगवान दास की जेब से डेढ़सौ रुपये की दस गिन्नियां काट कर भाग गया ।

तीर्थ में पितरों के नाम पर श्राध्द करने का विधान है अतः पं० प्रियानाथ और भगवान दास काछी अपने अपने पितरों का श्राध्द करते हैं । वर्ण व्यवस्था का विचार हिन्दू समाज में परम्परागत रूप में माना जा रहा था अतः पं० प्रियानाथ को 'वेद मंत्रों' से श्राध्द कराया जाता है और शूद्रों को 'शूद्रकमलाकर' से । गौड़ बोले ने, जो दाक्षिणात्य ब्राह्मण

§55§- आदर्श हिन्दू, भाग-1 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 165 §

थे शूद्र को श्राध्द-कर्म कराना भी स्वीकार नहीं किया । अतः काम-चलाऊ 'घुरहू' पंडित भगवानदास आदि को श्राध्द-कर्म कराते हैं । ब्राह्मण और शूद्रों की श्राध्द सामग्री भी 'जुदी-जुदी है ---- ब्राह्मण के लिए खोवे के पिंड और शूद्रों के लिए जौ के पिंड । घुरहू पंडित वास्तव में श्राध्द कराने के नाम पर धंधा कमाते थे । अतः सभी जाति के श्राध्द करने वालों को इकटठा करके सबको 'एक तंत्र' से श्राध्द करवा-कर कृतकृत्य होते हैं ।

प्रयाग में भी भिखारियों की भीड़ है, जो यात्रियों का नदी के अन्दर तक पीछा करते हैं और न मिलने पर गालियाँ देते हैं । भीख माँगना इनका पेशा है, मजबूरी नहीं । किनारे पर 'लूले, लंगड़े, अंधे, टुंडे और कोढ़ी' जैसे असमर्थ और दयनीय भिखारी भी हैं । गंगा तट के मल्लाह चतुर गोताखोर हैं — भोला व्दारा जल में डाले गए रुपये को वे गोता लगाकर जल में से निकाल लाते हैं ।[56] नाव पर चलते समय त्रिवेणी संगम के तट पर लहराती हुई विभिन्न पताकाएँ दिखलाई पड़ती हैं जो विभिन्न पंडों की हैं । उस समय प्रयाग में इक्के का ही प्रचलन था अतः पं0 प्रियानाथ की यात्रा पार्टी इक्के पर बैठ कर अपने विश्राम-स्थल पर आती है । प्रयाग के मुख्य मुख्य देवालयों और पुण्यस्थलों का दर्शन करने के बाद यात्रा पार्टी 'अरैल' में वल्लभाचार्य महाराज की बैठक देखती है और झूंसी में महात्माओं के दर्शन करती है । झूंसी को देखकर पंडित प्रियानाथ को लगा कि 'जहाँ वन के कन्दमूल फल खाकर गंगाजल पान करने की सुविधा थी वहाँ अब जंगल काट कर खेती होने लगी । गाँव के गाँव बस गए । §जंगल का गाँव, गाँव का शहरीकरण प्रारम्भ हो चुका था§ । प्रयाग जहाँ कभी 'उपदेश का धन और भक्ति का व्यापार' होता था आज युक्त प्रान्त की राजधानी है और वहां 'आजकल व्यापार से, लेनदेन से, नौकरी - [illegible] से रुपये ठनाठन बजते हैं ।[57] 'दारागंज'

§56§- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जाराम शर्मा, §पृष्ठ 10§

§57§- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जाराम शर्मा, §पृष्ठ 25-30§

'मुटठीगंज' और 'कीटगंज' जैसे अनेक छोटे-मोटे गाँवों का मिलाकर 'एक नगर' बन गया है। वेदध्वनियों के स्थान पर दीन दुखियों का हाहाकार सुनाई देता है। जो महर्षि भरद्वाज का आश्रम और हजारों शिष्यों का स्थल था, आजकल वहाँ अनेक विद्यामन्दिर हैं, विशाल प्रासाद हैं — पौराणिक प्रयाग अब लुप्त हो रहा है। अब इक्के, बग्घी और मोटरों की घरघराहट वाला नगर प्रयाग है।

प्रयाग में यदि त्रिवेणी संगम का महत्व है तो काशी में गंगा का। अन्य तीर्थों में कहीं ऐसे घाट नहीं है, काशी में घाटों की शोभा निराली है। कहीं नर, नारी स्नान कर रहे हैं, स्त्रियाँ कलश में पानी भर रही हैं, ब्राह्मण जप कर रहे हैं, कोई गंगा स्तुति कर रहा है, कोई तिलक लगा रहा है, बर्तन और वस्त्र भी धोए जा रहे हैं। संध्या स्नान का आनन्द और शान्ति जैसी यहाँ है वैसी प्रयाग में भी नहीं। परन्तु यहाँ गुंडे बहुत हैं जो युवतियों को जेवर के लालच से घसीट ले जाते हैं।

मेले या पर्व पर गंगा का वक्षस्थल यहाँ नावों से ढक जाता है। कुछ रसिक लोग इन नावों पर वेश्याओं को लेकर आते हैं और नाच-रंग की महफिल सजती है। काशी के लिए जनश्रुति प्रचलित है — 'राँड़, साँड़, सीढ़ी, सन्यासी। इनसे बचे तो सेवे काशी।।' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेमयोगिनी प्रमाण है कि 'भाँड' 'भँडरिया' 'बाम्हन' 'सन्यासी' 'रंडी' 'खानगी' 'भँगेड़ी' 'गँजेड़ी' 'लुच्चे' और अविश्वासी, 'आलसी शोहदे,' 'बेफिकरे बदमाश उचक्के' 'दालमंडी की रंडी को पूजने वाले' और प्रदर्शन के लिए हजारों लुटाने वाले, पर बाप की तिथि पर ब्राह्मणों को सड़ा बासी अन्न खिलाने वाले, ऐसे लोगों से काशी भरी पड़ी है।[58] मथुरा और प्रयाग की तुलना में काशी में भिखारी गिरहकट और लफंगों की संख्या अधिक है। भिखारी से अधिक गुंडे हैं - जिसके शिकार पंडित प्रियानाथ और उनकी पत्नी दोनों हुए। प्रयाग

§58§- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 78 §

में त्रिवेणी के तट पर खुले मैदान में आश्वस्ति का अनुभव होता था पर काशी की गलियाँ दम घोंट देती है ।

पंचकोशी यात्रा में काशी वासी को उन्मुक्त जीवन का अनुभव और स्त्रियों को भी एकरस दिनचर्या से मुक्त होकर जीने की ललक उन्हें पुलकित कर देती है । काशी के प्रधान देवस्थान - विश्वनाथ मन्दिर, अन्नपूर्णा, बिन्दुमाधव, कालभैरव, ढुंढिराज और दुर्गा मन्दिर आदि हैं जिनका दर्शन प्रत्येक तीर्थ यात्री करता है । काशी में ज्योतिषी पर लोगों को बड़ा विश्वास है अतः जब प्रियंवदा का अपहरण होता है तो पहले ज्योतिषी जी से पता करते हैं फिर पुलिस की सहायता लेते हैं ।

यों काशी में सच्चे साधु- अकारण सहायता करने वाले परोपकारी जीवों की कमी नहीं है । ऐसे लोगों का उद्देश्य भगवद् भक्ति और समाज सेवा है । पंडित दीनबंधु इसी प्रकार के व्यक्ति हैं जिन्होंने बदमाशों के चंगुल से प्रियंवदा को बचाया और पंडित प्रियानाथ की सहायता की । काशी में साधु, ब्राह्मणों में 'अविचल भक्ति स्वार्थ त्याग' और 'अप्रतिम भक्ति' तथा असाधारण प्रतिभा के दर्शन होते हैं । अंग्रेजी पढ़ने वाले कलक्टरी, वकालत या 'सरकारी उहदा' प्राप्त करने के लिए पढ़ते हैं । पर संस्कृत पढ़ने वाले भिक्षा, दान और कथा-वार्ता से जीविका उपार्जन करते हं फिर भी बीस बीस वर्ष तक संस्कृत पढ़ते हैं — ज्ञान लाभ करते हैं, जो उनका निस्वार्थ विद्या व्यसन है ।

भारत का गाँव, नगर संक्रान्तिकालीन विचार धारा से गुजर रहा है अतः स्थितिऐसी है कि पुराना कुछ छोड़ा नहीं जाता और नई दृष्टि, सुधारवृत्ति और राष्ट्रीय चेतना की ओर उत्प्रेरित करती है । गया में श्राध्द करने के लिए गए पं० प्रियानाथ तीर्थ स्थानों पर भ्रष्टाचार देखकर दुःखी होते हैं — श्राध्द सामग्री गौ के मुख से छीनकर पुनः

बेची जाती है अथवा भूखे भिखारी गाय के मुँह से छीन कर उसे खा जाते हैं। वस्तुओं के दाम दस गुने अधिक बताए जाते हैं। वे सोचते हैं ऐसे बेइमान व्यापारी अपने देश के स्वयं शत्रु हैं।

गया के पंडितों के पास अनेक श्राध्द प्रणालियाँ हैं — कम समय में सम्पन्न होने वाली और अधिक समय में सम्पन्न होने वाली, जैसी यजमान की श्रध्दा हो। पंडित प्रियानाथ सत्रह दिन में शास्त्रीय विधि से सांगोपांग श्राध्द - क्रिया करते हैं। गया में श्राध्द कर्म निष्पन्न करते समय उन्हें अपनी मृत माता के दर्शन होते हैं जो उनकी परम्परावादी पुरानी मान्यता का प्रतिफलन कहा जा सकता है। गया में 'गुरु' लोग निरक्षर, बुलबुल लड़ाने वाले, दो - तीन विवाह करने के अतिरिक्त रखैलें अलग से रखने वाले हैं'[59] पर यजमानों की कृपा से ठाट की कमी नहीं है। चपरासी, कारिन्दा, अर्दली के साथ ये पालकी में सवार होकर यजमानों के पास जाते हैं — गुरु केसरी प्रसाद शर्मा ऐसे ही गुरु हैं। परन्तु वाचस्पति जैसे कुछ युवा गुरु भी हैं जो सुशिक्षित और सच्चरित्र हैं। जिन्होंने अपने सद्-प्रयत्नों से 'गयावाल स्कूल' और धर्मशाला खुलवाई हैं। गयावाल गुरुओं में आपस में एक दूसरे से लाग-डाट भी चलती है। प्रेतशिला, विष्णुपद'[60] आदि समस्त वेदियों पर श्राध्द करके अक्षयवट पर सुफल बोला जाता है, जहाँ पर पाजामा, कोट, टोपी में सुसज्जित गुरु मार्जन करके रेशमी किनारे की धोती पहन कर और बढ़िया पीताम्बर कंधे पर उत्तरीय की जगह डाल कर यजमानों के गले में माला डालते हुए दक्षिणा - भेंट लेते हैं। गया में भिखारियों की अपेक्षा 'फेरीवाले' यात्रियों को अधिक तंग करते हैं।

अब यह यात्रा - पार्टी जगदीशपुरी §जगन्नाथपुरी§ पहुँची है। भगवान के दर्शन से पूर्व मार्कण्डेय कुंड में स्नान करना आवश्यक है

---

§59§- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 203 §

§60§- आदर्श हिन्दू, भाग-2 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 200 §

अतः सभी लोग स्नान करने जाते हैं । कुंड के किनारे गलित कोढ़ वाले भिक्षुओं की भीड़ थी । पंडित-पंडिताइन इन लोगों को बाजार से पूड़ी मँगवा कर खिलाते हैं और पंडित जी स्वयं कोढ़ियों के घाव की मरहम पट्टी करते हैं । यहाँ भी आधुनिक मानवतावादी उदार दृष्टि के दर्शन होते हैं ।

कोई पर्व विशेष न होने पर भी जगदीशपुरी में तीर्थ यात्रियों की बड़ी भीड़ है । इन तीर्थ यात्रियों और 'उड़िया लोगों के ठट्ठ के मारे कोहनियाँ छिली जाती थीं, पैर कुचे जाते थे । पुरी निवासी इन 'उड़ियों' के शरीर में से निकलती तेल तथा मछली की गँध के मारे सिर भिन्नाया जाता था ।'[61]

मन्दिर के सामने खड़े हुए लोगों की दर्शनाशा ने अमीर - गरीब, भले-बुरे, स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण - शूद्र सबका भेद भुला दिया था । दर्शनार्थी भजन गाते हैं । पंडित प्रियानाथ, उनकी पत्नी तथा गौड़ बोले भी मिलकर सूरदास के पद गाते हैं । परिक्रमा की संकरी गली में इतना अंधकार है दिन में भी दीपक की आवश्यकता होती है । मंदिर के शिखर के नीचे 'स्त्री-पुरुष के संयोग की मूर्तियाँ'[62] हैं को तीर्थ यात्रियों का ध्यान आकर्षित करती हैं और प्रबुध्द दर्शनार्थी को उनके वहाँ होने के औ- चित्य पर सोचने को विवश करती हैं । प्रियंवदा अपने पति से उन मूर्तियों के विषय में प्रश्न करती हैं ।

पुरी में कार्तिक अमावस्या दीवाली के दिन मंदिर में जगन्नाथ जी की मंगला की झाँकी करने का प्रचलन है । पुरी में समुद्र तट पर यात्रियों तथा भिखारियों की भीड़ नहीं है । समुद्र से शहर की ओर जाते समय रास्तों में मछली बाजार पड़ता है । जहाँ पर पर- देशियों को तो एक ओर मछली की दुर्गंध दूसरी ओर उड़ियों के शरीर

§61§- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 5 §
§62§- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 24 §

से निकलती तेल की दुर्गंध असहनीय लगती है । यहाँ के ब्राह्मण मछली खाते थे जो तत्कालीन समाज में सम्भवतः ग्राह्य नहीं था । शिक्षित लोग भी इस पर विश्वास करते थे कि विदेश - यात्रा वर्जित है'[63] अलबत्ते वे तर्क दूसरा देते हैं कि गो-वध आदि दोषों से अपवित्र होने के कारण विदेश भूमि त्याज्य है ।

यहाँ 'नवीन काट-छाँट से, गमलों की माला से और दूब के तख्ते बनाकर बाग-बगीचों को चाहे कृत्रिम सौन्दर्य की साड़ी न उठाई जाय परन्तु पुरी की पवित्र पृथ्वी को प्रकृति ने वन - उपवन की स्वाभाविक हरियाली में नैसर्गिक लता पल्लवों की साड़ी पहना कर,उन पर जंगली पुष्पों के हीरा-मोती जड़ दिये हैं ।'[64] समुद्र के 'श्रुति मधुर निनाद' तथा 'पल्लवों की खड़खड़ाहट' एक विचित्र संगीत उत्पन्न करती है । जलवायु यहाँ की इतनी अच्छी है कि अनेक यूरोपियनों ने गर्मी में रहने के लिए बंगले बनवा लिए हैं तथा क्षय रोगियों के लिए एक 'सेनी-टोरियम' भी है । भारतीयों में युरोपियनों के लिए यह धारणा है कि वे सफाई पसन्द होते हैं अतः पं० प्रियानाथ यह आशा करते हैं कि पुरी में युरोपियनों की बस्ती बढ़ने पर यहाँ की गन्दगी समाप्त हो जावेगी ।

पुरी के पंडे सिर पर बनारस का बना जरीदार रेशमी साफा, 'सूती बनयान' के ऊपर मलमल का कुर्ता, कमर में धोती धारण करते हैं । हाथ में पान का बटुआ भी होता है । पंडा जी के साथ दो नौकर हैं -- एक के बगल में दो-तीन बहियाँ और हाथ में दवात कलम ; दूसरे के पास कंठी, प्रसाद और भगवान का चित्र है ।

उड़िया प्रदेश के 'आशो आशो' के स्थान पर पंडा जी शुद्ध हिन्दी बोलते हैं । पंडा जी स्वयं कारण स्पष्ट करते हैं कि बंगाली,

§63§- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 36 §
§64§- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 38 §

गुजराती, मराठे, मदरासी, पंजाबी तथा अन्य भाषा भाषी प्रान्त के लोगों के बीच हिन्दी ही सम्पर्क भाषा है । अतः हिन्दी जानना अनिवार्य हो गया । यहाँ पंडे तथा उनके नौकर चाकर सभी टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेते हैं । समाचार - पत्रों का प्रचलन और प्रियता बढ़ रही है । बौध्दिक और सुशिक्षित लोगों के अतिरिक्त अल्पशिक्षित लोगों में भी अखबार के प्रति रुचि बढ़ रही है । पुरी के पंडे अखबार पढ़ने लगे हैं ।

पंडित जी की यात्रा पार्टी अजमेर होते हुए 'पुष्कर' पहुँचती है । 'पुष्कर' को तीर्थों का गुरु कहते हैं । अतः अन्य तीर्थ-स्थानों की तुलना में यहाँ निरक्षर तीर्थ-गुरुओं §पंडों§ और भिखारियों की संख्या और अधिक है । 'पुष्कर के भिखारी और जगह से भी दो हाथ बढ़कर हैं । वे यदि गाड़ी में सवार होते ही यात्रियों का पिंड छोड़ देते हैं तो पुष्कर वाले गाड़ी इक्कों के आगे खड़े हो जाते हैं और जब तक पैसा नहीं पा लेते यात्रियों की सवारी के साथ मीलों तक दौड़े जाते हैं ।'[65] पुष्कर सरोवर में आदमखोर मगर और घड़ियाल थे जो गाय, यात्री सभी को अवसर पाते ही अतल जल में घसीट ले जाते हैं ।

पुष्कर में पितामह ब्रह्मा का मंदिर है और पहाड़ी चढ़कर गायत्री जी का मंदिर है जिसकी विशेष महिमा है ।

इस प्रकार अजमेर के मौजे मुक्तीपुर के पारिवारिक सामाजिक जीवन के चित्र, भारतीय परम्परावादी जीवन बनाम आधुनिक सुधारवादी तथा राष्ट्रीय चेतना के विधाग्रस्त जनमानस के चित्र हैं, जहाँ पर परम्परा को लगाए रहने का मोह है और समाज में शिक्षा, देशभक्ति, समाज सुधार तथा औद्योगीकरण के लिए कसमसाहट भी । दृष्टि स्थिर नहीं हो पाई है । संक्रान्ति कालीन मनोवृत्ति के प्रतिफलन के रुप में कस्बाई जीवन समाज तथा तीर्थों के गुण-दोष मय चित्रों का अंकन है 'आदर्श हिन्दू' ।

§65§- आदर्श हिन्दू, भाग-3 : मेहता लज्जाराम शर्मा § पृष्ठ 115 §

सौ अजान और एक सुजान [1915 ई0]

प्रस्तुत उपन्यास में अवध प्रान्त के अनन्तपुर नामक पुराने कस्बे का तत्कालीन परिवेश में चित्रण किया गया है जिसमें केवल सेठ हीराचन्द के परिवार को लेकर कथा का ताना-बाना बुना गया है ।

पुराने लोगों की तरह सेठ हीराचन्द पैसा बहुत समझ बूझ कर खर्च करते थे । उस समय सेठ जमींदार लोग स्वयं बहुत पढ़े लिखे न होते थे, पर बहुश्रुत होते थे । उनकी सभा में विद्वानों और गुणवन्तों का आदर था । निर्धन एवं मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति के रूप में ये सेठ महाजन सहायता किया करते थे । ये लोग इतने अनुभवी और सजग होते थे कि धन एवं धनिकों से फायदा उठाने वालों की दाल यहां गल नहीं पाती थी ।

परन्तु तीसरी पीढ़ी तक यह बात नहीं रही । 'दौलत पर गीध के समान ताक लगाए बैठे हुए मीर, शिकार, भाँड़, मसखरे'[66] दूर दूर से आकर जमा होने लगे हैं । शहर हो या गाँव अथवा कस्बा, धन ऐसी वस्तु है जिसके आगे पीछे फिरने वाले सब जगह एक से मिल जायेंगे । सेठ हीराचन्द के पौत्र ऋद्धिनाथ और निधिनाथ की करोड़ों की सम्पत्ति देखकर मतलबी चाटुकारों की भीड़ उनके आस-पास लगी रहने लगी है ।

लेखक काशी को विद्या और संस्कृति के पीठ के रूप में स्वीकार करता हुआ हीराचन्द के समय के अनन्तपुर की तुलना काशी से करता है । लखनऊ और दिल्ली ही लेखक की दृष्टि में सारहीन मनोरंजन और तड़क-भड़क का केन्द्र हैं । अतः बड़े बाबू और छोटे बाबू के समय में "भाँड़, मसखरे, कत्थक, कलावन्तों" से युक्त होकर अनन्तपुर कस्बा लखनऊ और दिल्ली की 'अनुहार करने लगा' है ।[67] कस्बे के रईस लखनऊ

---

[66]- सौ अजान और एक सुजान : पं0 बाल कृष्ण भट्ट [पृष्ठ 15]

[67]- सौ अजान और एक सुजान : पं0 बाल कृष्ण भट्ट [पृष्ठ 16]

और दिल्ली के लोगों के रहन-सहन को अपने घर में उतार कर अपने धन वैभव का प्रदर्शन करना चाहते हैं। स्वर्गीय सेठ हीराचन्द के पौत्रों ने अवध के बड़े-बड़े नवाबजादों और ताल्लुकेदारों के अमीरी ठाट - बाट को अपने जीवन में उतारना प्रारम्भ कर दिया है। लखनऊ के 'एस० बी० कम्पनी' से कमरे की सज्जा के लिए शीशे की सजावट की सामग्री मँगाई गई है। यहाँ तक कि दिल्ली, आगरा, बनारस, पटना की 'नामी तायफें'[68] अनन्तपुर में सदा के लिए बुलाकर टिका ली गई हैं।

कस्बे में साधारण गृहस्थों के घर में कुछ लोग दिन के भोजन के बाद विश्राम करते हैं और हाथ के पंखों से हवा करते जाते हैं § बिजली कस्बों में अभी नहीं आई है §। हाँ, बँगलों और कोठियों में छत पर लगे पंखों को पंखाकुली खींच - खींच कर विश्राम करने वालों को हवा करते हैं। साधारण घर की औरतें घर - गृहस्थी के काम से छुट्टी पाकर बच्चों को खिलाती हैं, कहानियाँ सुनाती हैं। 'नवोढ़ा अपनी हमजोली सखी सहेली से गत रात में अनुभूत अपने प्राणनाथ के प्रेमालाप की कथा' सुना रही है।'[69] 'जंगरैतिन' गृहस्थिन सूप से अनाज फटक रही हैं। कोई कर्कशा बात बेबात लड़ रही है। कहीं घर की 'पुरखिन' बहू बेटियों को उपदेश दे रही हैं। कहीं कोई पढ़ी लिखी स्त्री तुलसीकृत रामायण या सूर के पदों का अभ्यास करती हैं, कोई कसीदा काढ़ती हैं। 'खेलवाड़ी बालक' दिन में या तो खेलते हैं या गप्पें मारते हैं।

अनन्तपुर में एक मठ है जो न तो देवस्थान है न कोई तीर्थ है पर कस्बाई मनोवृत्ति ने वहाँ पर स्थित एक चबूतरे को पूजापीठ बना दिया है। उनका विश्वास है कि वहाँ पर की गई मनौती सफल होती है। गाँव, कस्बों का यह सामान्य चरित्र है कि किसी कोई विशेष व्यक्ति या स्थान को लेकर कोई कथा § Legend § अवश्य जुड़ी रहती है § या

§68§- सौ अजान और एक सुजान : पं० बाल कृष्ण भट्ट § पृष्ठ 67 §

§69§- सौ अजान और एक सुजान : पं० बाल कृष्ण भट्ट § पृष्ठ 68 §

जोड़ दी जाती है} जैसे मठ के चबूतरे पर जलती अग्नि अर्जुन द्वारा जलाए गए खाण्डव वन की 'परिशिष्ट अग्नि' है जो अब तक जलती आ रही है ।'[70] मठ के प्रधान या मुखिया लोग चढ़ावे के हकदार हैं परन्तु वे 'आवारगी, उजड्डपन और असत व्यवहार' के साक्षात रूप हैं । अतः 'भलेमानुस शिष्ट जन' वहाँ जाना उचित नहीं समझते हैं ।

कस्बे में सामाजिक जीवन और पारिवारिक जीवन के बीच कोई विशेष अन्तर नहीं है । व्यक्तिगत जीवन या व्यक्तिपरकता का तो कोई प्रश्न ही नहीं है । किसी के घर की कोई बात किसी से छिपी नहीं है । अतः स्वर्गीय सेठ हीराचन्द के पौत्रों को गुमराह करने वाले लोगों के लिए जन साधारण के मन में आक्रोश है { "न जानिए कहाँ कहाँ के ओछे छिछोरे इकटठे हो गए कि हमारे बाबुओं को कुंठा पर चढ़ाय बिगाड़ डाला" ।}।[71] सभी स्थान के मेलों की तरह यहाँ भी मेले में दुराचारियों को अपकर्म करने का पूरा अवसर मिल जाता था । 'बलम्ता' नामक व्यक्ति मठ के मेले में स्त्री का 'भेष' धर का घूमता है ।

कस्बे का सवेरा चिड़ियों के चहचहाने से पता चलता है । भोर में विद्यार्थी बालक अपना पाठ दोहराते और वृद्ध जन 'हरिनामोच्चार' करते सुने जा सकते हैं । मंदिरों में मंगला आरती के साथ बजते हुए घड़ियाल और शंख ध्वनि वायुमण्डल को आपूरित करती है । सड़क और गलियों में 'भोरही अलापते' भिखारी देखे जा सकते हैं ।

परम्परागत मर्यादा का निर्वाह यहाँ प्रतिष्ठा सूचक है । अतः बड़े घरों की विधवा रात दिन में केवल एक बार भोजन करतीं और अनाभरण होकर केवल 'दो धोती से काम रखती थीं' ।[72] घूंघट उनकी

{70}- सौ अजान और एक सुजान : पं0 बाल कृष्ण भट्ट { पृष्ठ 27 }

{71}- सौ अजान और एक सुजान : पं0 बाल कृष्ण भट्ट { पृष्ठ 29 }

{72}- सौ अजान और एक सुजान : पं0 बाल कृष्ण भट्ट { पृष्ठ 40 }

मर्यादा का अंग था । स्व० सेठ हीराचन्द की विधवा पत्नी इसका उदाहरण हैं । सम्मिलित परिवार की परम्परा और प्रतिष्ठा है । सेठ हीरा चन्द की पत्नी, पौत्र तथा पौत्र वधुएं साथ साथ और सुमति से रहती हैं ।

कस्बे में थोड़ा भी पढ़ा लिखा व्यक्ति सुशिक्षित माना जाता है और अगर कहीं थोड़ी बहुत अंग्रेजी §'टूटी फूटी अंग्रेजी'§[73] भी बोल ले तब तो उसकी विद्वत्ता की धाक जम जाती है । सेठ हीराचन्द के बिरादरी भाई 'नन्दबाबू' ऐसे ही व्यक्ति हैं । लखनऊ से आकर अनन्तपुर में बसने वाले हकीम साहब जैसे लोग यहाँ पर लखनऊ की संस्कृति §9§ का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । 'बाहर तो बड़े तुम तड़ाँग और लिफाफे से रहते थे पर भीतर मियाँ के पास सिवाय एक टूटी खाट और तीन सनहकी के और कुछ नहीं था ।'[74] 'पढ़ालिखा तो यह बहुत ही कम था पर शीन काफ का ऐसा दुरूस्त- - - - कि कहीं से पकड़ न हो सकती थी कि यह मूर्ख है ।'[75]

अनन्तपुर के इन नई रोशनी पसन्द बाबू लोगों की बदौलत एक सुन्दरी वार वनिता ने यहाँ अपना स्थाई निवास बना लिया था । यद्यपि वहाँ के जन-सामान्य को आश्चर्य होता था कि दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता, बम्बई को छोड़कर यह हुस्न यहाँ क्योंकर आ बसा ?

'अनन्तपुर में छोटे छोटे मुकदमों की कार्यवाही के लिए तीसरे दर्जे की मुंसिफी और तहसीली की कचहरी तथा पुलिस का एक थाना था ।'[76] फौजदारी और दीवानी के बड़े मुकदमें जिले की कचहरी लखनऊ में भेज दिये जाते थे । कस्बे में आम कस्बाई वेश - भूषा से भिन्न

---

§73§- सौ अजान और एक सुजान : §पं0 बाल कृष्ण भट्ट § पृष्ठ 42 §
§74§- सौ अजान और एक सुजान : §पं0 बाल कृष्ण भट्ट § पृष्ठ 45 §
§75§- सौ अजान और एक सुजान : §पं0 बाल कृष्ण भट्ट § पृष्ठ 45 §
§76§- सौ अजान और एक सुजान : §पं0 बाल कृष्ण भट्ट § पृष्ठ 53 §

रहने वालों को वहां के लोग अपने से अलग मानते थे अतः दाढ़ी चुटिया विहीन अंग्रेजी वेश-भूषा वाले गौर वर्ण के लोगों को अनन्तपुर के लोग 'हाफ कास्ट § Half Cast §' मान लेते हैं। अन्य छोटी जगहों की तरह यहां भी व्यक्ति के परिचय में सबसे प्रमुख है जाति। सरकारी मोहकमों में भ्रष्टाचार और घूसखोरी यहां भी प्रचलित है। सरकारी अफसरों का यहां बोल बाला है। प्रमुख हैसियतदार लोगों -- छोटे-बड़े ताल्लुकेदार रईस, सेठ, साहूकार और महाजन - को सरकारी अफसर अपनी निगाह में रखते हैं ताकि कोई मामला मुकदमा फँसने पर इनसे पूरा फायदा उठाया जा सके। 'अनन्तपुर के मुंसिफ साहब ने जहां बड़े आदमियों पर निगाह रखी' वहीं ईमानदार मातहतों को स्थानान्तरित करके, अपने काम में सहायक होने वाले लोगों को अपने पास रख लिया है। कस्बे के प्रतिष्ठित लोग इनकी कृपा - दृष्टि प्राप्त करने के लिए उनके पास 'तोहफे और नजर' -- भेंट की चीजें भेजा करते थे। सेठ हीरा चन्द के दोनों पौत्र मुंसिफ साहब के पास जब तब तोहफे भेजा करते हैं।

इसी अनन्तपुर में 'गुरू का भी गुरू' 'बुद्धदास' रहता है जिसके नन्दू जैसे चेले हैं जो अनन्तपुर में ही नहीं लखनऊ तक फैले हुए हैं और चार सौ बीसी का धंधा करते हैं।

कस्बे के धनाढ्य लोग बस्ती से बाहर बाग उद्यान बनवाया करते थे। जिसमें रंग बिरंगे फूल और हरियाली के अलावा 'बारह दुआरी' भी हुआ करती थी। जहां वे सेठ, जमींदार लोग पंडित, साधु अभ्यागत तथा गुणी लोगों से मिला करते थे। पर 'आजकल रईस और प्रतिष्ठित लोगों में बरसात के दिनों में बाहिरी बाग - बगीचों में आमोद-प्रमोद का आम दस्तूर हो गया है।'[77] अनन्तपुर से आध मील दूरी पर स्व0 सेठ हीराचन्द द्वारा बनवाया गया 'नन्दन उद्यान' था जिसमें

---

§77§- सौ अजान और एक सुजान - पं0 बाल कृष्ण भट्ट § पृष्ठ 74 §

सब ऋतु के फल फूल के वृक्ष थे, लता कुंज थे, 'संगमर्मर की रविशों पर जगह जगह फौव्वारे थे। जिसका उपयोग मुसाहबों से घिरे उनके पौत्र 'तमाम लखनऊ और दिल्ली के हसीन' के साथ मौज मस्ती मनाने में करते हैं। बारह - दुआरी 'भीतर बाहर सभी ओर से झाड़ - फानूसों से आरास्ता' है और इन महफिलों में पीना पिलाना भी चलता है।

सेठ हीराचन्द के समय में अनन्तपुर के प्रतिष्ठित लोगों के बीच मुसलमानों और असवर्णों को अस्पृश्य माना जाता था और समाज में इस विचार को सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखा जाता था। 'बारह दुआरी' के भीतर किसी मुसलमान के आ जाने पर सेठ हीराचन्द ने सारी बारह दुआरी धुलवा डाली थी। पर तीसरी पीढ़ी तक यह आचार-विचार नहीं रहे। कारण उदार - दृष्टि न होकर विलास प्रियता थी। आचार, आचरण सब उपेक्षित हो गया था।

अन्य कथाकृतियों की भाँति तथा जनधारणा के अनुरूप 'सौ अजान एक सुजान' में भी दरोगा का वही रूप उतरा है कि हर स्थान और हर परिस्थिति में 'कुछ पुजावें।'[78] पर कस्बों में व्यक्तिगत स्तर पर लोग एक दूसरे का लिहाज करते हैं। अतः दरोगा जी सेठ हीराचन्द की शख्सियत का लिहाज करते हैं और बाबू लोगों के लिए (सेठ हीराचन्द के पौत्र - ऋद्धिनाथ, निधिनाथ के लिए) उनके मन में सहानुभूति है। सरकारी मुलाजिम की दृष्टि में अदालत इन्साफ के लिए है पर मुजरिम जानते हैं कि अदालत तो रुपये की है।'[79]

कस्बों में 'कोतवाली का ओहदा भी एक छोटी सी बादशाहत'[80] है। पर सफल कोतवाल होने के लिए कुछ गुर हैं --'शहर के

(78)- सौ अजान और एक सुजान : पं० बाल कृष्ण भट्ट (पृष्ठ 82)
(79)- सौ अजान और एक सुजान : पं० बाल कृष्ण भट्ट (पृष्ठ 86)
(80)- सौ अजान और एक सुजान : पं० बाल कृष्ण भट्ट (पृष्ठ 89)

आवारा और बदमाशों को दाब में रखना और उनके जरिये अपना मतलब भी निकालना इधर रईसों पर भी धाप चढ़ाए रहना, ऐसा कि जिसमें कोई उभड़ने न पावे । जंट से मैजिस्ट्रेट तक सबको खुश रखना - - - -।' उस समय में भी 'पाँच सौ रुपये रोज पैदा किये बिना' दातुन करना अनन्तपुर के कोतवाल के लिए हराम था । उनका खर्च भी बेइन्तिहा -- दस रुपये रोज 'बी बन्नो' का प्रतिदिन का खर्च, दस पाँच दोस्त दस्तरखवान पर न शरीक हों तो 'नाम में फर्क' पड़ता था ; फिटन और घोड़े का खर्च और सबसे ऊपर 'किले सी बड़ी इमारत' बन रही थी उसका खर्च -- इन सबका प्रबन्ध वह रोज रोज फँसने वाले अपने 'शिकार' से करते थे । परन्तु 'बेलौस और मुनसिफ मिजाज कलक्टर से डरते रहते थे

'सौ अजान एक सुजान' के 'अनन्तपुर' कस्बे में व्यक्तिपरकता का अभाव है । व्यक्ति समाज सापेक्ष है अतः परिवार भी सामाजिक मर्यादा से अनुशासित है । समाज पुरुष प्रधान है और किसी विशेष पुरुष की स्त्री होने के कारण ही स्त्री की पहचान है जैसे स्व0 सेठ हीरावन्द की विधवा पत्नी का उल्लेख केवल इसलिए है कि वह सेठ हीरावन्द की पत्नी हैं । स्वतंत्र रूप से जिन स्त्रियों का चित्रण हुआ है वे या तो वेश्या हैं या वे जो कस्बे की सामाजिक मर्यादा के भीतर नहीं हैं । कोई ही पढ़ी लिखी स्त्री पाई जाती है जो तुलसीकृत रामायण या सूर के पदों का अभ्यास करती है । सामान्यतया स्त्री का गृहिणी रूप ही चित्रित है । समाज में जहाँ परम्परा का पालन प्रतिष्ठाजनक है वहीं जीवन के उदात्त मूल्यों और सदाचरण के प्रति आस्था और सम्मान है । एक बात और संकेतित होती है - तत्कालीन प्रतिष्ठित लोगों की दृष्टि में काशी, विद्या और संस्कृति का स्थान मानी जाती थी जबकि दिल्ली और लखनऊ ओछे प्रदर्शन और तड़क भड़क का केन्द्र । फलक विस्तृत तो नहीं पर अनन्तपुर कस्बे का जो चित्र उभरता है वह इतना अपर्याप्त भी नहीं है ।

हृदय की परख {1917 ई0}

'हृदय की परख' वास्तव में एक चरित्र प्रधान उपन्यास है जिसमें गाँव और नगरों की सामाजिक पृष्ठभूमि गौण है क्योंकि कथावस्तु, व्यक्ति परक है। पूरी कथा वस्तु 'वसन्तपुर' गाँव और 'प्रयाग' की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। वसन्तपुर गाँव का नामालूम सा वर्णन है जिसमें लोकनाथ जैसा अविवाहित वृध्द किसानी करता हुआ रहता है। गाँव के अन्य खेतिहर किसानों की भाँति उसने भी गाएँ-भैंसे पाल रखी है। लोकनाथ के घर के पास ही पीपल का पेड़ था, जिसके नीचे किसी महात्मा की समाधि थी और पास ही गुफा में हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रहालय था।

गाँव प्रातः से पूर्वार्ध्द तक गुलजार रहता पर दोपहर होते होते वहाँ सन्नाटा छाने लगता था। गाँव में उस समय पढ़ने - पढ़ाने की कोई समुचित व्यवस्था न थी अतः गाँव के लड़के कस्बों या शहरों में पढ़ने के लिए भेज दिये जाते थे और उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता। लोगनाथ का पालित पुत्र 'सत्यव्रत' कस्बों और शहरों में ही पढ़ता रहा।

शहरों की अपेक्षा गाँवों में लोगों को एक दूसरे के विषय में जानने की अधिक उत्सुकता होती है। लोकनाथ की रक्षिता कन्या 'सरला' अविवाहित लोकनाथ के लिए थोड़ा कुछ प्रवाद का कारण बन जाती है --- गाँव वाले सरला को उसकी अवैध सन्तान होने की शंका करने लगते हैं। यों गाँव का रहन-सहन अकृत्रिम और सीधा-सादा है। घर में न कोई बैठक का प्राविधान है न कोई बाहर का कमरा। घर में दो-एक कोठरी - कमरे हैं जो सार्वजनिक भी हैं और निजी भी। भीतर-बाहर, अपना-पराया ऐसा कुछ भेद गाँव में नहीं चलता। कहीं कहीं तो गरीब किसान छप्पर विहीन घरों में सर्दी की रात बिताने के लिए मजबूर हैं। पशु के लिए भी वहीं पास में व्यवस्था होती है।

शहर की व्यवस्था दूसरी है । प्रयाग के प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न घरों में, अन्तःपुर का हिस्सा अलग है और बाहर की ओर एक बैठक के कमरे का प्राविधान है । स्त्रियाँ घर की हों अथवा सम्बन्धियों या परिचित लोगों की, अन्तःपुर ही उनका स्थान है । बैठक का प्रयोग पुरुषों के लिए होता था ।

पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन और वितरण शहरों में प्रचलित हो रहा था । किसी पत्रिका की दो हजार प्रतियाँ बिक जाना असाधारण बात थी । सरला द्वारा लिखे गए लेख 'हृदय'[81] के कारण उक्त पत्र की दो हजार प्रतियाँ बिक गईं, जो कलकत्ते से प्रकाशित होता था । शहर में भद्र घरों की लड़कियों को अतिथि पुरुषों से बात चीत करने की स्वतंत्रता मिलने लगी थी । सरला पत्र के सम्पादक से स्वतंत्रता पूर्वक बात करती है । वह 'विद्याधर' नामक युवक से चित्रकला सीखती है — अभिभावकों से उसे अनुमति मिली हुई है । पत्र में छपे लेखों की आलोचना समालोचना भी की जाती थी जो पत्रों में छपती रहती थी । सरला के लेख 'हृदय' पर 'सत्य' द्वारा की गई समालोचना भी प्रकाशित होती है ।

गाँव में, बड़े घरों में अतिथियों को लेने के लिए रेलवे स्टेशन पर सवारी भेजी जाती है । बड़े घरों की गृहिणियाँ बढ़िया वस्त्र और कीमती 'जड़ाऊ आभूषणों' से सुसज्जित रहती हैं । शशिकला 'बहुत बड़ी आदमी' है ।[82] अतः बहुमूल्य वस्त्र आभूषण उनके रहन-सहन का आवश्यक अंग है । गाँव में वैद्य का प्रचलन है । हाँ, गंभीर हालत होने पर शहर से 'सिविल सर्जन डाक्टर' को बुला लिया जाता है । शशिकला के बीमारी के गंभीर रूप लेने पर शहर के वैद्य तथा प्रतिष्ठित डाक्टर बुलाए जाते हैं ।

{81}- हृदय की परख : चतुरसेन शास्त्री आयुर्वेदाचार्य { पृष्ठ 65 }

{82}- हृदय की परख : चतुरसेन शास्त्री आयुर्वेदाचार्य { पृष्ठ 92 }

उस समय नवयुवक और युवती कन्या का मेल-भाव और आपस में बात-चीत समाज में, उँगली उठाने का कारण बनता है --- कम से कम शहर में तो अवश्य । विद्याधर का सरला को चित्रकला सिखाने के लिए सरला के घर आना-जाना समाज की आँखों में खटकता है । तत्कालीन समाज में शहर में भी अज्ञात-कुलशील कन्या से तो लोग विवाह कर सकते हैं पर 'व्यभिचार की सन्तान'[83] को ग्रहण करना असम्भव है । लड़कों के अभिभावक ही नहीं उत्साही नवयुवक भी कतराते हैं । सरला की जन्म कथा सुनकर उससे प्रेम करने वाला विद्याधर अपने पिता की राय {विवाह सम्बन्ध के लिए सरला की अपात्रता} से सहमत हो जाता है । क्योंकि जाति बिरादरी से डरना पड़ता है ।[84] परन्तु समाज में 'सुन्दर बाबू' जैसे एक दो आदर्श पुरुष भी मिल जाते हैं जो पति परित्यक्ता बहिन के भरण-पोषण के लिए स्वयं को विवाह बंधन में नहीं बांधते ।

कथा के विभिन्न चरित्र --- लोकनाथ, सरला, सत्य, विद्याधर, शशिकला, सुन्दर बाबू के जीवन - घटनाओं के बीच, गौण रूप में अनायास ही आ गए गाँव नगर के कुछ स्फुट चित्रों की कृति है 'हृदय की परख' ।
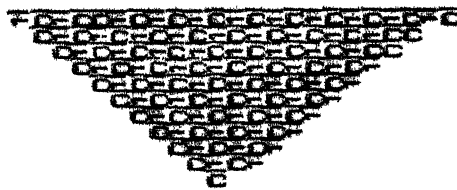
{83}- हृदय की परख : चतुरसेन शास्त्री आयुर्वेदाचार्य { पृष्ठ 145 }
{84}- हृदय की परख : चतुरसेन शास्त्री आयुर्वेदाचार्य { पृष्ठ 140 }

प्रेमचन्द युग

'सेवासदन' (1918 ई०)

§ख§ प्रेमचन्द युग

सेवासदन §1918 ई0§

प्रेमचन्द कृत 'सेवासदन' की कथावस्तु 'अमोला' और 'चुनार' गाँव तथा 'बनारस' शहर की पृष्ठभूमि पर फैली हुई है ।

रसिक, उदार और सज्जन कृष्ण चन्द्र एक गाँव के दरोगा हैं । दरोगा होने पर भी वे ईमानदार व्यक्ति हैं — न लेते हैं, न देते हैं । अतः दरोगा जी के अफ्सर उनसे प्रसन्न नहीं रहते क्योंकि दूसरे थानों में उनके अहलमद, मुहर्रिर, अरदली को दावत के अलावा नज़राना व इनाम मिलता और अफसरों को डालियाँ मिलती हैं ।

दरोगा जी के हल्के में एक महंत रामदास रहते हैं — वह साधुओं की एक गद्दी के महंत हैं । उनका अपना सारा कारोबार 'श्री बाँके बिहारी जी' के नाम पर चलता है — मालगुजारी वसूल करना, रेहन नामा, बैनामा लिखना, सूद पर लेन-देन करना आदि । उनके यहाँ दस-बीस मोटे-ताजे साधु सदा रहा करते हैं जो अखाड़े में दण्ड पेलते, भैंस का ताज़ा दूध पीते और शाम को भंग चढ़ाते हैं । वहाँ गाँजे, चरस की चिलम कभी ठंडी नहीं होती — अतः गाँव की धर्म भीरु जनता एक तो बाँके बिहारी जी और दूसरे 'बलवान जत्थे' के सामने सिर उठाने की हिम्मत नहीं कर पाती ।

गाँव के लोग महंत जी से डरते और दबते हैं। चूँकि श्री बाँके बिहारी जी अधिकारियों को 'मोतीचूर के लड्डू और मोहनभोग' खिलाया करते थे अतः अधिकारियों पर भी उनकी धाक है ।

जब महंथ जी अपने इलाके की निगरानी करने निकलते तो आगे हाथी पर श्री बाँके बिहारी जी की सवारी होती और उसके पीछे

पालकी पर महंत जी चलते । उसके बाद घोड़े पर सवार साधुओं का समूह और सबसे पीछे ऊँटों पर छोलदारियाँ, डेरे और शामियाने होते हैं । यह दल जिस गाँव में पहुँचता, लोग भयभीत हो जाते ।

एक और गाँव है, काफी बड़ा गाँव —'अमोला,' ढाई तीन हज़ार की जनसंख्या है उसकी । पंडित उमानाथ का वहाँ बड़ा मान है । उमानाथ के बिना गाँव वालों का कोई काम नहीं होता है । स्त्रियों के गहने बनवाने होते तो वे उमानाथ से कहतीं । गाँव के लड़के लड़कियों के विवाह तय कराने में पंडित जी की प्रमुख भूमिका होती । रेहननामे, बैनामे, दस्तावेज उन्हीं के परामर्श से लिखे जाते ; मामला – मुकद्मा में उनका सहयोग अपेक्षित और आवश्यक होता । अतः गाँव में कहीं मछली मारी जाय, बकरा काटा जाय, आम टूटे, भोज हो उमानाथ का हिस्सा आपही आप पहुँच जाता । वे जानते हैं कि 'गाँव वालों से तनने में अपना काम सिद्ध होता है, अधिकारियों से झुकने में ।'[1] थाने और तहसील के अमले से लेकर तहसीलदार तक सभी उनपर कृपा दृष्टि रखते हैं । वे तहसीलदार साहब के लिए वर्षफल बनाते, डिप्टी साहब को भावी उन्नति की सूचना देते । कानून-गो और कुर्क-अमीन उनके यहाँ खाते पीते रहते हैं । गाँव में भी किसी को यन्त्र देते, किसी को भगवत-गीता सुनाते, अन्य लोगों को 'मीठे अचार और नवरत्न की चटनी खिलाकर प्रसन्न रखते हैं । वे गाँव के एक व्यवहार कुशल एवं सफल व्यक्ति का पूरा प्रतिनिधित्व करते हैं ।

गाँव में लोग कन्या के लिए, आस-पास के गाँव में वर खोजने निकलते हैं तो शोर सा हो जाता है — लड़के वाले सजग हो जाते हैं । उमानाथ अपनी भांजी के लिए वर की खोज में जिस गाँव में जाते हैं वहाँ के नवयुवक गठरियों में से निकाल कर वे कपड़े पहन लेते हैं जो वे बारातों में पहनते थे । यही नहीं, मँगनी माँग कर मोहनमाला और अंगूठी भी पहन

---

[1]- सेवासदन : प्रेमचन्द, [पृष्ठ 10]

लेते हैं । विवाहेच्छु बूढ़े, नाइयों से मोंछ कटवाने लगते और पके बाल चुनवाने लगते हैं । कोई अपना बड़प्पन दिखाने के लिए नाई से पैर दबवाने लगता है । स्त्रियाँ जो आमतौर पर घर के लिए स्वयं पानी भरा करतीं थीं, खेतों पर खाना ले जाया करती थीं इस बीच घर से न निकलती, न पानी भरतीं और न खेतों पर ही जाती है । उधर शहर में विवाह के योग्य वरों में बड़े आदमियों की क्या बात दफ्तरों के 'मुसद्दी और क्लर्क भी हजारों के राग अलापते' हैं ।[2] वरों का मूल्य उनकी शिक्षा के अनुसार है - यह अनुभव दरोगा कृष्ण चन्द्र को आश्चर्य में डाल देता है ।

'चुनार' गाँव में मदन सिंह रहते हैं जहाँ उनकी थोड़ी सी जमींदारी है और कुछ वे लेन-देन का कारोबार भी करते हैं । गाँव के नवयुवक के लिए शहर का बड़ा आकर्षण है — घर में सब कुछ होते हुए भी शहरी फैशन की सामग्रियाँ उसे शहर की ओर खींचती रहती हैं । मदन सिंह का पुत्र सदन अपने चाचा पद्मसिंह, जो बनारस में वकालत करते हैं, के साथ शहर जाने को बड़ा उत्सुक है । उनके साबुन, तौलिये, जूते, स्लीपर, घड़ी, कालर को देख-देख कर वह ललचाया करता है ।

गाँव में जहाँ धर्म पर अविचल आस्था है, वहीं भूत-प्रेतों के अस्तित्व पर कम विश्वास नहीं । चुनार के गाँव से दो मील पर पीपल का एक वृक्ष है । यह जनश्रुति है कि वहाँ भूतों का अड्डा है । एक कमली वाला भूत उनका सरदार है । वह आने जाने वालों के सामने काली कमली ओढ़े, खड़ाऊँ पहने आता है और हाथ फैलाकर कुछ माँगता है ; ज्यों ही वह व्यक्ति देने के लिए हाथ बढ़ाता है, वह अदृश्य हो जाता है ।

गाँव का व्यक्ति शहर में लम्बी अवधि से रहते रहने पर भी अपनी पूर्व मानसिकता से अलग नहीं हो पाता । पद्मसिंह गाँव से आये

---

§2§- सेवासदन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 15 §

अपने भतीजे से गाँव-घर की अनेक बातें करते हैं । गाँव का कोई कुर्मी, कहार, लोहार, चमार ऐसा नहीं बचता जिसके विषय में शर्मा जी ने कुछ न कुछ पूछा न हो । 'ग्रामीण जीवन में एक प्रकार की ममता होती है जो नागरिक जीवन में नहीं पायी जाती । एक प्रकार का स्नेह बंधन होता है जो सब प्राणियों को, चाहे छोटे हों या बड़े, बाँधे रहता है ।'[3] शहर के नवयुवक सम्भवतः अपनी भावी पत्नी के विषय में प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अभिज्ञ रहते हैं पर गाँव में, सदन, फलदान चढ़ाने आए हुए नाई को भंग पिला कर मिठाइयाँ खिलाकर, धोती देकर अपनी भावी वधू के रूप-रंग के विषय में अपनी जिज्ञासा शान्त करता है ।

गाँव की अपनी कुछ मान्यताएं और परम्परायें हैं जैसे शादी बारात में नाच न ले जाने से 'मुँह में कालिख' लगने का भय है । क्योंकि वहाँ लोग 'खोल-खोल कर कहेंगे, गालियाँ देंगे । कहेंगे कि नाम बड़े दर्शन थोड़े ।' और फिर 'नाच के बिना जनवासा क्या ?' यों, मदन सिंह जैसे गाँव के लोग भी इस प्रथा को निन्द्य समझते हैं पर 'नक्कू' नहीं बनना चाहते । जब सब लोग छोड़ देंगे तो वे भी छोड़ देंगे । मदन सिंह मानते हैं कि गाली गाना, दहेज लेना आदि सब कुप्रथायें हैं पर लोकनीति पर न चलने से लोग उंगलियाँ उठाते हैं । अतः जब चुनार से बारात अमोला चलती है तो पालकी पर कारचोबी का परदा पड़ा हुआ होता है, भले ही कहारों की वर्दियाँ फटी और बेडौल हों । §फटेहाल§ मजदूर हाथ में 'गंगा जमुनी सोटे और बल्लम' लिए पीछे पीछे चल रहे होते हैं -- अपने भटसक §सामन्ती§ परम्परा का निर्वाह होता है ।

इधर अमोला में जनवासे में शामियाना और छोलदारियाँ लगी हैं । शामियाना 'झाड़-फानूस और हाँडियों' से सुसज्जित है । 'कार-चोबी, मसनद, गावतकिये और इत्रदान' यथास्थान रखे हुए हैं । द्वारपूजा पर पंडित उमानाथ बारात का स्वागत कर रहे हैं, स्त्रियाँ दालान में

§3§- सेवासदन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 48 §

मंगल गीत गा रही हैं । बाराती देख रहे हैं कि स्त्रियों में कौन सबसे सुन्दर है और स्त्रियाँ मुस्करा रही हैं । कन्या का पिता वर के चरणों की पूजा कर रहा है और वर का पिता देख रहा है कि थाल में कितने रुपये हैं ।

शामियाने के चारो ओर खड़े जन-समाज शामियाने और छोलदारी में झाँक कर 'नाच के डेरे' का पता पाना चाहते हैं । 'नाच' का प्रबंध न देखकर कोई एक कह उठता है, "एक भी डेरा नहीं, कहाँ के कंगले हैं ।" और हतोत्साह भीड़ शामियाने पर पत्थर फेंकना प्रारम्भ कर देती हैं ।

यहाँ कन्या पक्ष के लिए थोड़ा भी जन प्रवाद, सही हो या गलत, घातक सिध्द होता है । मदनसिंह, यह सुनकर कि कन्या का पिता जेलखाने से छूट कर आया है और कन्या की बहन वेश्या हो गई है, बिना विवाह किये बारात वापस लौटा ले जाते हैं । आधी रात होते होते डेरे खेमें सब उखाड़ दिये जाते हैं ।

समाज का अनुशासन गाँव वालों के लिए अपरिहार्य है, उससे टक्कर लेकर कोई गाँव में रह नहीं सकता । सदन ने देखा था कि उसके गाँव के एक ठाकुर ने एक 'बेड़िन' बैठा ली थी तो सारे गाँव ने उसके घर आना जाना छोड़ दिया था । और हार कर ठाकुर साहब को, अन्त में, उस बेड़िन को निकाल देना पड़ा था । इसी प्रकार जब पंडित उमानाथ शान्ता को वर के चाचा के साथ विदा करने को तैयार हो जाते हैं तो गाँव वाले चकित होकर कहते हैं कि "विवाह तो हुआ नहीं गौना गौना कैसा ?" बिदाई के समय घर में गाँव की कोई स्त्री सम्मिलित नहीं होती है । यहाँ "बिरादरी अनुचित दबाव नहीं मानती ।"[4] यह बात अलग है कि गाँव की स्त्रियाँ अपने अपने द्वारों पर खड़ी, जाती

---

§4§- सेवासदन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 181 §

हुई पालकी देखती जाती हैं और रोती जाती हैं ।

'शहर में घर किसके होता है ? सब किराये के घर में रहते हैं ।'[5] सुमन का पति गजाधर प्रसाद जो बनारस के एक कारखाने में क्लर्क है, किराये के मकान में रहता है जिसमें दो कोठरियाँ और एक सायबान है । बाहर से नालियों की दुर्गंध आया करती है । न धूप का प्रवेश है और न हवा का । तिस पर किराया है तीन रुपया प्रति माह । जनसंख्या शहर की भीषण समस्या है । बनारस में बारह पाठ-शालाएं हैं पर कहीं स्थान नहीं है । अतः पद्मसिंह अपने भतीजे सदन को किसी स्कूल में प्रवेश नहीं दिला पाते हैं और बीस रु० प्रति माह पर एक मास्टर रखकर उसकी शिक्षा का प्रबंध करते हैं ।

गाँव से सर्वथा विपरीत यहाँ व्यक्ति स्नेह सम्बन्धों में नहीं जीते — पुरुष उनके लिए मात्र एक पुरुष है और स्त्री मात्र एक स्त्री । अतः मुहल्ले के 'रसिक' और 'शोहदे' लड़के सुन्दरी युवती सुमन के द्वार पर टकटकी लगाए हुए आते-जाते हैं, कोई वहाँ पहुँच कर 'राधा और कान्हा के गीत' गाने लगते हैं ।

बनारस का दालमण्डी मोहल्ला वेश्याओं का है । वे उधर आने-जाने वालों पर अपने छज्जे पर खड़ी होकर 'प्रेम कटाक्ष के बाण' उन पर छोड़तीं । सदन जब उधर घूमने जाता तो वे अपने नेत्र विलास से उसे आकर्षित करने का प्रयत्न करती हैं । दालमण्डी के अतिरिक्त अन्य मोहल्लों में भी कुछ एक वेश्यायें रहती हैं । सुमन के घर के सामने भोली बाई नामक वेश्या रहती है । वह 'नित नये सिंगार करके' अपने कोठे के छज्जे पर बैठती है । रात को उसके कमरे से गाने की ध्वनि आती रहती है । उसके कमरे में फर्श बिछी हुई है और उस पर यथास्थान मसनद रखा हुआ है । कमरा चित्रों और शीशे के सामान से सजा हुआ है । एक

{5}- सेवासदन : प्रेमचन्द { पृष्ठ 15 }

छोटी चौकी पर चाँदी का पानदान रखा है । एक दूसरी चौकी पर चाँदी की तश्तरी और चाँदी का गिलास रखा है ।

गाँव में ही नहीं बनारस जैसे शहर में भी कोई उत्सव नाच या मुजरा के बिना अर्थहीन है । 'रामनौमी के दिन' राम जन्म के उत्सव के उपलक्ष में मंदिर खूब सजाया जाता है और मन्दिर के प्रांगण में बैठ कर भोली बाई गा रही होती हैं । प्रेक्षक समाज में सामान्य जनों की भीड़ के अतिरिक्त आगे की ओर विशिष्ट लोग बैठे हैं —— तिलक लगाये वैष्णव, कोई भस्म रमाये, कोई गले में कंठी माला डाले, कोई रामनामी चादर ओढ़े और कोई गेरुआ वस्त्र पहने ।

पद्म सिंह शर्मा वकील कई बार विफल होकर जब इस बार बनारस म्यूनिसपैलिटी के मेम्बर बनने में सफल होते हैं तो मित्र लोग इस विजयोत्सव में भोज के अतिरिक्त भोली बाई का मुजरा करवाने पर जोर देते हैं । सिध्दान्ततः इसके विरुध्द होते हुए भी वकील साहब को मुजरे का आयोजन करना पड़ता है । भोली बाई गाती है ——

'ऐसी होली में आग लगे - - - - -'[6]

शहर के कुछ सुधारवादी पढ़ेलिखे लोग शादी विवाह में नाच-मुजरे नहीं कराते । वे इसे अपव्यय समझते हैं । डा० श्यामाचरण ने अपने लड़के के विवाह में 'बाजे-गाजे, नाच-तमाशे' में बहुत कम खर्च किया । यह बात अलग है कि 'डिनर-पार्टी' में इससे अधिक खर्च हो गया । गरीब बाजे वाले, आतिशबाजी वालों को जो पैसे मिलते, वह 'मुरे कम्पनी' और 'ह्वाइट वे कम्पनी' के पास पहुँच गया ।

शहर में पैसा और पैसे वालों का महत्त्व है । बेनीबाग में एक चौकी पर जब सुमन बैठती है तो चौकीदार उसे डाँटता है —'अरे यह कौन औरत बेंच पर बैठी है ? उठ यहाँ से । क्या सरकार ने तेरे ही लिए

---

[6]- सेवासदन : प्रेमचन्द [पृष्ठ 30]

बेंच रख दी है ।' वही चौकीदार भोली वेश्या के आने पर बिछ-बिछ जाता है और गुलदस्ता भी भेंट करता है । कारण '§ये लोग§ जिससे चार पैसे पाते हैं उसी की गुलामी करते हैं ।'[7]

शहर में जहाँ कनक और कामिनी की विशेष महिमा है वहीं उनसे मुक्ति का प्रयास भी है । शिक्षित समाज प्रचलित कुरीतियों के उन्मूलन के लिए प्रयत्नशील है । बाबू विट्ठल दास जैसे देशानुरागी, समाजसेवी व्यक्ति सुमनबाई को समझाने दालमण्डी जाते हैं । इधर सेठ बलभद्र दास, जो शहर के प्रधान नेता, ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट और म्यूनिसपल बोर्ड के चेयर मैन हैं, विट्ठलदास का ध्यान व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर आकर्षित करते हैं । वे कहते हैं कि सुमनबाई को दालमण्डी से निकालकर यदि विधवा आश्रम में रखा जायगा तो विधवा आश्रम बदनाम हो जायगा और यदि अलग मकान में रखा जाय तो मुहल्ले के नवयुवकों में 'छुरी चल जायगी ।'[8]

यहाँ के म्यूनिसपैलिटी के मेम्बरों में अधिकांश बड़े व्यापारी, धनवान और प्रभावशाली व्यक्ति हैं जिनकी दृष्टि स्वार्थ एवं राजनीति से अनुशासित होती है । सेठ चिम्मन लाल को राजनीति से भय है, अतः जो संस्था इससे सर्वथा मुक्त है वहाँ ही यह चन्दा आदि देते हैं । वे राम लीला आदि में खुले दिल से चन्दा देकर अपनी प्रतिष्ठा बनाए हुए हैं, सेठ बलभद्रदास सरकारी अफसरों को खुश रखने के लिए हजारों खर्च कर सकते हैं पर वेश्या-वृत्ति उन्मूलन एवं पुनर्वास के लिए किसी को राजनीति की बू आती है तो दूसरे को इस सुधार में विश्वास नहीं है । लाला भगतराम ठेकेदार मनहीमन इस सुधार के कायल हैं पर वह कहते हैं, "मैं अपनी राय का मालिक नहीं हूँ । मैंने अपने को स्वार्थ के हाथों बेंच दिया है - - - आप जानते हैं मेरा सारा कारोबार सेठ चिम्मन लाल की मदद से चलता

---

§7§- सेवासदन :: प्रेमचन्द § पृष्ठ 27 §

§8§- सेवासदन :: प्रेमचन्द § पृष्ठ 74 §

है । उन्हें अगर नाराज कर लूँ तो यह सारा ठाठ-बाट, मान-मर्यादा बिगड़ जाय । विद्या और बुध्दि है ही नहीं, केवल इसी स्वाँग का भरोसा है ।"[9]

यहाँ के म्युनिसिपल बोर्ड में डा० श्यामाचरण गवर्नमेन्ट के नामजद किये हुए मेम्बर हैं अतः उनकी अपनी स्वतंत्र राय नहीं है । सरकार की रुचि अरुचि के अनुकूल कार्य करने की उनकी प्रतिबध्दता है । वे अंग्रेजी रहन-सहन के व्यक्ति हैं । उनके घर पर 'टेरियर' कुत्ते पले हुए हैं । उनकी पुत्री अंग्रेज लड़कियों के साथ बोर्डिंग हाउस में रहती है । पिता को अपनी बेटी के अंग्रेजी पर गर्व है कि वह अपने पिता को भी कितने नये अंग्रेजी मुहाविरे सिखा सकती है ।

सार्वजनिक संस्थाओं में बड़े आदमियों के सहयोग से जान पड़ जाती है । विट्ठलदास अपने सामान्य अनुयायिओं के साथ इस सुधार कार्य को खींच रहे थे पर पद्म सिंह के सक्रिय सहयोग के कारण प्रोफेसर रमेशदत्त, लाला भगतराम, मिस्टर रुस्तम भाई खुलकर सहायता करने लगते हैं और सहायकों की संख्या दिनों दिन बढ़ने लगती है ।

सुधारवादी एवं उदार दृष्टि के लोग शहरों में भी उँगलियों पर हैं । दालमण्डी छोड़कर सुमन बाई के विधवा आश्रम में रहने पर अन्य आश्रम वासिनी विधवायें - आनन्दी, राजकुमारी, गौरी आदि आश्रम छोड़कर जाने लगती हैं । कुछ को उनके संरक्षक निकालने को तैयार हो जाते हैं । कई लोग आश्रम को चन्दा न देने की धमकी देने लगते हैं । क्योंकि विधवा आश्रम में वेश्या का रहना उन्हें सह्य नहीं है ।

समाचार-पत्र इस सामाजिक उथल-पुथल में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं — कभी पक्ष में, कभी विपक्ष में । प्रभाकर राव अपने पत्र

---

§9§- सेवासदन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 144 §

'प्रभात' के द्वारा समाज की क्रिया – प्रतिक्रियाओं को प्रकाशित करते रहते हैं। कुछ तो वे पत्रकार – धर्म का निर्वाह करते हैं, कुछ व्यावसायिक दृष्टि, ग्राहकों की संख्या और रुचि बढ़ाने के लिए भी, होती है।

बनारस में वरुना के तट पर कितने ही धनी-मानी लोगों के बंगले हैं। कुँवर अनिरुध्द सिंह का भी बंगला वहीं है। वे मनमौजी व्यक्ति हैं। उनका बंगला सफाई और सजावट से हीनहै। बरामदे में कई कुत्ते जंजीर में बँधे खड़े हैं और दूसरी ओर घोड़े। वे शिकार के शौकीन हैं। उनके कमरे के एक कोने में कई बंदूके और बर्छियाँ रखी हुई हैं, दूसरी ओर मेज पर एक भूसा भरा घड़ियाल। भारतीय संगीत और हिन्दी साहित्य में उनकी रुचि है। वे स्वयं भी सितार बजाया करते हैं। जब तब वे कलावन्तों को निमंत्रित करते रहते हैं – ग्वालियर के जलतरंग बजाने वाले को उन्होंने आमंत्रित किया है साथ ही सुरसिक सहृदय मित्रों को भी। सिध्दान्तः वे वेश्या सुधार कार्य का अनुमोदन करते हैं और साधारण भारतीय कृषक 'जो अपने पसीने की कमाई खाते हैं, अपने जातीय भेष, भाषा और भाव का आदर करते हैं और किसी के आगे सिर नहीं झुकाते हैं'[10] उनकी दृष्टि में सच्ची स्वाधीनता का आनन्द प्राप्त करने वाले लोग हैं।

वेश्या सुधार कार्य के सम्बन्ध में बनारस में आये दिन सभायें होतीं, व्याख्यान आयोजित होते रहते हैं। कुइन्सपार्क में किसी दिन प्रोफेसर रमेश दत्त भाषण देते हैं, किसी दिन अबुलवफा।

जागृति की लहर ने नवयुवकों में साहस का संचार किया है। सदन ने शान्ता से विवाह करके नदी किनारे अपना झोपड़ा बना लिया है —— जिसमें एक बैठक का कमरा है, एक भोजन बनाने का और एक सोने का। सामने एक चबूतरा है। जीविका के लिए उसने नाव खरीद कर चलवानी प्रारम्भ कर दी है। उसकी नाव विशेष रूप से सजी है —— जाजिम के ऊपर दो तीन मोढ़े भी पड़े रहते उसकी नाव पर। इसलिए

﴾10﴿- सेवासदन : प्रेमचन्द ﴾ पृष्ठ 173 ﴿

शहर के रसिक – विनोदी मनुष्य उसकी नाव पर सैर किया करते हैं ।

सामाजिक परम्परा को तोड़कर साहस भरा कदम उठाने वाले व्यक्ति को घर-परिवार में, गाँव-शहर में, सब कहीं विरोध का सामना करना पड़ता है । सदन का शान्ता से विवाह सुनकर चुनार में रहने वाले उसके पिता उसका सिर काटने को तैयार हो जाते हैं । गाँव में चारों ओर 'बतकहाव' होने लगती है । लाला बैजनाथ तो फ़तवा दे बैठते हैं कि 'संसार से धर्म उठ गया' ।[11]

बनारस के मल्लाहों ने भी सदन के घर का पानी पीना और स्त्रियों ने आना जाना छोड़ दिया है क्योंकि उन्हें मालुम हो गया है कि शान्ता की बहन सुमन 'कस्बीन' है, चौक में 'हरजाईपन' करती थी । यहाँ तक कि शान्ता भी कहने को मजबूर हो जाती है 'बहन बुरा न मानना, जब संसार में यही प्रथा चल रही है तो हम लोग क्या कर सकते हैं ।'[12] सदन की माँ को सुमन के हाथ के बनाए भोजन और घड़े बर्तन छूने पर आपत्ति है । सुमन का 'नेम-धरम' उनकी दृष्टि में पाखण्ड है —'सात घाट का पानी पीकर आज नेम वाली बनी है । देवता की मूरत टूट कर फिर नहीं जुड़ती । वह देवी बन जाय तब भी मैं विश्वास न करूँ ।'[13]

एक ओर परिवार में, गाँव में, शहर में अपने अपने ढंग की प्रतिक्रियायें अभिव्यक्ति हो रही है, दूसरी ओर वेश्याओं को दालमण्डी से निकाल कर अन्य स्थान पर बसाने का प्रयत्न चल रहा है । पुरानी मान्यता और आधुनिक दृष्टि समानान्तर चल रही है । बोर्ड की ओर से अलईपुर के निकट वेश्याओं के लिए मकान बनाये जा रहे हैं — कुछ कच्चे, कुछ पक्के और कुछ दो मंजिले । वहीं एक छोटा सा औषधालय और एक

---

§11§- सेवासदन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 217 §
§12§- सेवासदन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 222 §
§13§- सेवासदन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 235 §

पाठशाला बनाने की योजना है । हाजी हाशिम ने मसजिद बनवानी शुरू कर दी है और सेठ चिम्मन लाल ने मन्दिर । इस पुण्यकार्य में वेश्याओं ने भी यथा सम्भव अपना अपना सहयोग दिया है । महबूबजान जो एक सम्पन्न वेश्या थी, उसने अपना सब कुछ अनाथालय के लिए दान कर दिया है । सभी वेश्यायें दालमण्डी से पैदल ही अलईपुर की ओर चल पड़ती हैं । दालमंडी में अब अँधेरा छाया हुआ है । इस योजना ने दालमण्डी को भी नया जीवन देना चाहा है । सुमनबाई के कोठे पर संगीत-पाठशाला खुल गई है । गायनाचार्य की स्वर माधुरी स्पष्ट सुन पड़ती है ---

> दयामयि भारत को अपनाओ
> तव वियोग से व्याकुल है माँ, सत्वर धैर्य बँधाओ'[14] ---

सुन्दर बाई के भवन के सामने कुँवर अनिरुध्द सिंह ने 'कृषि सहायक सभा' खोली है ।

महत् उद्देश्य का अंकुर कार्य रूप में पल्लवित हो रहा है । पं० पद्मसिंह शर्मा ने वकालत छोड़ दी है । अब वह म्यूनिसपैलिटी के 'प्रधान कर्मचारी' हैं ।'[15] शहर दिनोंदिन उन्नति कर रहा है --- नई सड़कें, नये बाग बन गए हैं । इक्के और गाड़ी वालों के लिए शहर के बाहर एक मोहल्ला बनवाने की योजना है । कृषकों की सहायता के लिए एक कोष स्थापित करने का विचार है जिसमें किसानों को बीज और रुपये नाम मात्र ब्याज पर उधार देने का प्राविधान होगा । स्वामी गजानन्द ने देहातों में रहकर कन्याओं का उध्दार करने के निमित्त अपना जीवन लगा दिया है ।

सुमन बाई का 'सेवासदन' सफलता पूर्वक चल रहा है । बारह से पन्द्रह वर्ष की लड़कियों को एक कमरे में रुस्तम भाई की पत्नी

---

§14§- सेवासदन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 227 §
§15§- सेवासदन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 244 §

पढ़ाती हैं । अन्य कमरे में आठ से बारह वर्ष की लड़कियाँ एक बूढ़े दर्जी से कपड़ा काटना और सिलना सीख रही हैं । तीसरे कमरे में पाँच वर्ष की बालिकाएं गुड़ियाँ खेल रही हैं, तस्वीरें देख रही हैं -- सुमन इस कक्षा को स्वयं देखती हैं ।

'चुनार' और 'अमोला' गाँव के जन-जीवन के जिस चित्र के साथ प्रस्तुत कथाकृति का प्रारम्भ होता है उसका विस्तार और समापन होता है बनारस शहर में आकर । गाँव में लोग परम्परा और रूढ़ि को तोड़ कर चलने में 'नक्कू' होने का अनुभव करते हैं और यदि साहस भी करते हैं तो सामाजिक बहिष्कार और हिंसात्मक परिणाम भोगने पड़ते हैं । शिक्षा के प्रसार ने शहर को सोते से जगाया है और साहस भी दिया है कि वे अर्थहीन परम्पराओं को नकार कर मानवीय मूल्यों पर स्वस्थ परम्पराओं को जन्म दें -- 'सेवासदन' इसका प्रमाण है ।

प्रेमाश्रम §§1922 ई0§§

'प्रेमाश्रम' का कथाक्षेत्र मुख्य रूप से 'काशी' नगरी तथा 'लखनपुर' गाँव है । प्रासंगिक रूप से 'लखनऊ' और 'गोरखपुर' भी कथाक्षेत्र की परिधि में आ गए हैं ।

लखनपुर के जमींदारों का मकान काशी में है । पुराने जमींदारों की तरह उनके मकान के दो खण्ड हैं -- एक जनाना मकान और दूसरी मर-दानी बैठक अर्थात् दीवानखाना । किसी समय इस परिवार की नगर में बड़ी प्रतिष्ठा थी पर अब दिन फिर गए हैं । इस मकान के स्वामी स्वर्गीय लाला जटाशंकर मरते मरते मर गये पर जब घर से बाहर निकलते तो पालकी पर । लड़के-लड़कियों के ब्याह, 'अतिथि सेवा,' साधु-सत्कार में जायदाद का काफी हिस्सा बिकता गया या रेहन हो गया । अब लखनपुर के अलावा चार छोटे-छोटे गाँव रह गये हैं जिनसे कोई चार हजार वार्षिक आमदनी हो जाती है । अब मालिक हैं स्वर्गीय जटाशंकर के छोटे भाई प्रभाशंकर ।

दूसरी पीढ़ी अर्थात् जटाशंकर के पुत्रों के वयस्क होते होते दोनों पीढ़ी की मान्यताओं में टकराहट होने लगी -- ज्ञान शंकर § जटा शंकर के पुत्र § घर के प्रबंध में संशोधन करना चाहते हैं । उनकी दृष्टि में झूठी मर्यादा रक्षा में जायदाद चौपट करना बुद्धिमानी नहीं है बल्कि वह तो यह कहते हैं, "आपने सारी जायदाद चौपट कर दी, हम लोगों को कहीं का न रखा ।".[16] फलतः आपसी सम्बन्ध में अन्तर पड़ने लगता है । लाला प्रभाशंकर अभी भी अपने भाई जटा शंकर की बरसी में एक हजार ब्राह्मणों को भोज और नगर भर के प्रतिष्ठित पुरुषों को निमंत्रण देने का विचार रखते हैं । इसके अलावा चाँदी के बर्तन, कालीन, पलंग, वस्त्र आदि महापात्र को देना चाहते हैं । उनके भतीजे ज्ञानशंकर इसको धन का अपव्यय समझते हैं । उनकी दृष्टि में इससे बेहतर है कि दीवानखाने को आधुनिक सामग्रियों से सजाया जाय । वह चाचा से कहा करते हैं कि 'सारी जायदाद भोग-विलास अतिथि-सत्कार और मर्यादा रक्षा में उड़ा दी अगर उसे अधिकारी वर्ग की सेवा-सत्कार में लगाते तो वह आज डिप्टी कलक्टर होते ।'.[17]

यही नहीं, नगर की यह पीढ़ी हिसाब-किताब में भी बड़ी कुशल है । दूध का दूध, पानी का पानी, कोई शील मुलाहिज़ा नहीं । चूँकि लाला जटाशंकर के उत्तराधिकारियों की संख्या कम है और लाला प्रभाशंकर की अधिक, अतः ज्ञान शंकर सोचते हैं कि धन का अधिक भाग प्रभाशंकर के ऊपर खर्च होता है, जो न्यायतः बराबर होना चाहिए अतः वे अपने चाचा से अलग अपनी गृहस्थी बसाना चाहते हैं ।

इस काशी नगरी में आधुनिक और अंग्रेजी रहन-सहन के शौकीन बैरिस्टर साहब रहते हैं । उनका बंगला फूल पत्तियों से सजा है । दिनभर वे अदालत में मुकदमों की पैरवी करते हैं, शाम को किसी तरह मुवक्किलों से जान छुड़ाकर आराम करते हैं, सिगार पीते हैं, विलायती कुत्तों पर प्यार

---

§16§- प्रेमाश्रम : § प्रेमचन्द § पृष्ठ 13 §
§17§- प्रेमाश्रम : § प्रेमचन्द § पृष्ठ 15 §

उड़ेलते हैं। डा० इरफान अली बैरिस्टर की मामला सुनने की फीस है पाँच रुपये, सम्पत्ति की फीस पाँच सौ रुपये, कुछ शंकायें हों तो समाधान के लिए फीस दो सौ रुपये प्रति घंटे। अपने पेशे के सब काम निबटा कर वे शाम को मोटर पर हवा खाने जाते हैं।

ईजाद हुसैन जैसे अनेक बिगड़े रईस भी बनारस में शरण लेते हैं। उनके वालिद टोंक की रियासत में ऊँचे मंसबदार थे - हजारों की आमदनी, हजारों का खर्च। पिता के मरते ही खानदान का बोझ इजाद हुसैन पर पड़ा और वे उनसे मुँह मोड़ लें ऐसा उनके खानदानी गैरत ने न करने दिया। अतः कुछ दिन बाद घर की पूँजी समाप्त होने के बाद 'अंजुमन इत्तहाद' नामक संस्था खोलकर चन्दे की रकम से घर चलाने लगे।

अब इजाद साहब दारानगर की एक गली में रहते हैं। नीचे बरामदे में 'अंजुमन इत्तहाद' का मकतब चलता है। जिसमें दस-पन्द्रह दीन-हीन बालक फटे बोरियों पर बैठ कर 'करीमा' और 'खालिक बारी' की रट लगाया करते हैं। बीच बीच में गाली, मुँह चिढ़ाना आदि भी चलता रहता। बरामदे के बीच में एक तख्त पर 'दढ़ियल मौलवी' लुंगी बाँधे, गंदा सा तकिया लगाए 'मदरिया' पिया करते और झपकियाँ लिया करते हैं।

बरामदे के ऊपर वाला कमरा साफ सुथरा तथा यथास्थान फर्श, कालीन और मसनद, बड़ी बड़ी तस्वीरों और रंगीन हाँड़ियों से सुसज्जित है। वहाँ पर 'इत्तहादी यतीमखाने' की लड़कियाँ डा० इकबाल के 'शिवाजी' के शेरों को मधुर स्वर में गाने का अभ्यास किया करती हैं। ये लड़कियाँ उन इजाद हुसैन की पुत्री, भांजियाँ आदि हैं। इसी प्रकार स्वरचित गजल बालकों से गवा कर अभ्यास कराया जाता है। ये लड़के भी उन्हीं के बहनों आदि के लड़के हैं जो औपचारिक रूप से 'इत्तहादी यतीमखाने' के बालक कहे जाते हैं।

आर्थिक दृष्टि से जिले के 'सब-इन्जीनियर' और वकीलों की

तुलना में प्रियनाथ जैसे सरकारी डाक्टर कहीं नहीं ठहरते हैं । यद्यपि वे चाहते तो अपनी अर्थ-व्यवस्था में आशातीत बढ़ोत्तरी कर सकते थे । पर उनका विवेक अभी उनके आड़े आता था । अपने शील स्वभाव और उदारता के कारण उनकी प्रैक्टिस अन्य डॉक्टरों की तुलना में काफी अच्छी चलती हैं । जब वे बनारस आये थे तब 'पैरगाड़ी' पर चलते थे अब उनके पास फिटन है । मकान, फर्नीचर, फर्श आदि सरकारी है । नौकरों को भी पास से नहीं देना पड़ता । अतः वे अपनी स्थिति से संतुष्ट है सरकारी डॉक्टर की दोहरी भूमिका है । व्यक्तिगत स्तर पर उनका विवेक उनका मार्ग दर्शक है पर सरकारी कामों में व्यावहारिक नीति अपनानी होती है । अत गौस खाँ कीहत्या काण्ड में डा० प्रियनाथ डॉक्टरी रिपोर्ट में वही लिखते हैं जो पुलिस चाहती है क्योंकि सरकारी डॉक्टर पुलिस विभाग को असंतुष्ट नहीं कर सकता ।

शहर में रहने वालों में अफसरों का विशेष वर्ग है । वे हिन्दु-स्तानी -अंग्रेज हैं । इनकी दिनचर्या आम भारतीय से अलग है । मैजिस्ट्रेट साहब सवेरे शिकार खेलने जाते हैं, पुलिस सुपरिंटेन्डेन्ट सबेरे देर से सोकर उठते हैं । सरकारी दफ्तर के छोटे-छोटे भी कर्मचारी अपने आगे सामान्य जनता को कुछ नहीं समझते--'बड़े बेमुरौवत और निर्दय' लाला प्रभाशंकर का स्वयं का अनुभव है ।

डिप्टी साहब के पास शहर में भी दरोगा आदि फल, घी-दूध और मछली आदि के उपहार भेजा करते हैं । पर गाँव में तो डिप्टी साहब के साथ सारे कर्मचारी बेताज के बादशाह हो जाते हैं। क्वार्न्ति पर अधि-कारियों के दौरे देहात में होते हैं, साथ में होते उनके कर्मचारी । गाँव में उनके डेरे पर घी, दूध, दही, शाक, भाजी, मांस-मछली की भरमार रहती है । अतः 'घी से भरे कनस्तर, दूध से भरे मटके, उपले और लकड़ी, घास और चारे से लदी हुई गाड़ियाँ' वे शहर की ओर घर भेज देते हैं । देहात वालों के लिए ये दिन संकट के दिन होते हैं -- पैसा, वस्तु तो देनी ही पड़ती है, बेगार भी भरना पड़ता है ।

गाँव में इनके कैम्प के पास जगह जगह लकड़ी के अलावा जलते रहते हैं, कहीं पानी गर्म होता रहता है, कहीं चाय बन रही होती है। कहीं बूचड़ मांस काट रहा होता है, उधर किसी वृक्ष की छाया में कितने ही आसामी सिकुड़े बैठे होते हैं जिनके मुकदमों की पेशी होने को है।

लखनपुर गाँव लाला प्रभा शंकर की जमींदारी में पड़ता है जो बनारस से उत्तर की ओर बारह मील पर है। यहाँ ठाकुरो, कुर्मी के अलावा कुछ घर अन्य जातियों के भी हैं। 'हाकिम की परताल' के समय गाँव के नेतागण हाकिम के पीछे पीछे लगे रहते हैं। हाँ, शाम को गाँव में अलावा के पास बैठकर नारियल पीते जाते हैं और हाकिमों पर टीका टिप्पणी करते हैं। ज़मीदार, जो बनारस में रहता है, के और गाँव निवासियों के बीच हैं जमीदार के चपरासी गिरधर महाराज जो जमींदार के सामने जमींदार सी कहते और आसामियों के सामने आसामियों सी। गौस खाँ जमींदार के कारिन्दे हैं। इनसे बैर लेकर गाँव के भाई चारे का भी निर्वाह करना गाँव वालों की हिम्मत के बाहर की बात है। अतः जब मनोहर ने गिरिधर महाराज से अपने अधिकार को लेकर 'गर्मागर्म बातें' की तो सुक्खू और दुखरन उसका साथ छोड़कर गिरिधर महाराज के साथ चल देते हैं। गाँव के चौपाल के सर्वो-सर्वा हैं गौस खाँ और उनके दायें, बायें हाथ हैं मुंशी मौजी लाल पटवारी और सुक्खू चौधरी। इन तीनों से गाँव के सभी आदमी डरते हैं और सामने पड़ने से कतराते हैं। पर नई पीढ़ी चाहे गाँव की ही हो अपेक्षाकृत अन्याय और जबरदस्ती को सहन नहीं कर पाती। बलराज, मनोहर का लड़का, बड़ा 'मस्त-नौजवान' है। अपने साथी, संगतियों के बीच भाँग छानकर लावनी और ख्याल की तानें उड़ाता है। वह गाँव के कारिन्दे, पटवारी से तो भिड़ ही जाता है, यहाँ तक कि डिप्टी साहब के पास जाकर उनकी ज्यादतियों की शिकायत भी करता है, "सरकार इसे सिरदर्द समझते हैं और यहाँ हम लोगों की जान पर बनी हुई है। हुजूर यहाँ धर्म के आसन पर बैठे हैं और चपरासी लोग परजा को लूटते फिरते हैं।" (प्रेमाश्रम, पृष्ठ ६३)

x--x

सामान्यतया गाँव के लोग सहनशील होते हैं और न्याय-अन्याय को भाग्य का विधान मानकर अपने ढंग से जीवन बिताते हैं। जाड़ों में रात नौ बजे तक सोना पड़ जाता है। अलाव भी ठंडा हो चुकता है। कहीं कहीं समर्थ किसानों के घर गुड़ पकता होता है। लखनपुर में सुक्खू चौधरी के कोल्हाड़े में गुड़ पक रहा है। कई आदमी भट्ठे के आगे आग ताप रहे हैं। गाँव की कुछ गरीब औरतें घड़े लिए गर्म रस की प्रतीक्षा कर रही हैं।

गाँव में जीवन संघर्ष के सम्मुख प्लेग आदि महामारी की विभीषिका गौण हो जाती है। लखनपुर गाँव में प्लेग फैल रहा है। लोगों ने घर छोड़ कर बागों में झोपड़ियाँ डाल ली हैं। वहाँ छप्परों पर महुए भी सुखाये जा रहे हैं। चक्कियों, मूसलों और छाछ बिलोने की ध्वनि जीवन क्रम की सूचना देती रहती है। बालक महामारी और जीवन संघर्ष दोनों से निस्संग होकर आमों पर ढेले चला रहे हैं।

उधर प्लेग का प्रकोप बढ़ रहा है। प्रतिदिन दो-तीन मौतें होती हैं। गाँव वालों को उनके अन्तिम संस्कार के लिए गाँव से छ कोस दूर नदी पर जाना पड़ता है। स्थिति यहाँ तक आ गई है कि खेतों में अनाज सड़ रहा है -- कैसे काटें और कब काटें, रखें कहाँ ?

दैहिक, दैविक, भौतिक ताप की अग्नि में झुलसते हुए इन गाँव वालों की जितनी आस्थावान जिजीविषा है उतना ही सहज, सरल मन। प्रेम शंकर के आतिथ्य मनोरंजन के लिए लखनपुर के ग्रामवासी उन्हें रामायण सुनाना चाहते हैं -- बिसेसर साह ढोल मजीरा लाते हैं, कादिर मियां ढोल ले लेते हैं और फिर सस्वर रामायण गान होने लगता है। कादिर मियां उन्हें भजन भी सुनाते हैं ---

"मैं अपने राम को कैसे रिझाऊँ"[18]

---

(18)- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द (पृष्ठ 187)

वे सब मिलकर एक नकल §अभिनय§ भी प्रस्तुत करते हैं । छोटा-बड़ा कोई भी खुशी का अवसर मिला कि गाने बजाने का कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता है । लखनपुर के सब आदमियों के मुकदमे में बरी हो जाने पर लाला प्रभाशंकर के दरवाजे पर भी भजन होता है । बाबा सुखदास गाने लगते हैं ——

'सतगुरु ने मोरी गह लई बाँह नहीं रे मैं तो जात बहा ।'[19]

उत्तर प्रदेश के नगरों में लखनऊ का अन्यतम स्थान है । राय-बहादुर कमलानन्द लखनऊ के एक बड़े रईस और ताल्लुकेदार हैं —— उनकी वार्षिक आय है एक लाख रुपये सालाना । अमीनाबाद में उनका विशाल भवन है । शहर में उनकी और भी अनेक कोठियाँ हैं । परन्तु वह अधिकांशतः नैनीताल या मसूरी में रहते हैं । घुड़दौड़ और शिकार के साथ साथ सरोद और सितार का भी शौक है । साहित्य और राजनीति में उनकी विशेष रुचि है ।

नैनीताल में भी हिमाच्छादित चोटियों की सैर, कभी शिकार, कभी झील में बजरे पर सैर, कभी पोलो कभी गोल्फ, कभी सरोद और सितार कभी पिकनिक पार्टियाँ-नित्य नये जलसे और प्रमोद होते रहते हैं । जिसमें 'लेडियाँ' भी भाग लेती हैं और 'देशी टाइप' के आदमी को निमंत्रित करके 'उन्हें आड़े हाथों' लेती हैं और 'फबतियाँ' कसती हैं ।

इन रईसों का सारा समय और पैसा इन्हीं शगलों में जाता है । रायसाहब लखनऊ में रामलीला पर हजारों खर्च करते हैं —— नौकरों को नई वर्दियाँ मिलती हैं, रईसों को दावतें दी जाती हैं । दिसम्बर में क्रिसमस के अवसर पर वे अंग्रेज अधिकारियों को डालियाँ भेजते हैं ।

भारत की हिन्दू जाति कितनी भी समुन्नत क्यों न हो जाय समाज के संदर्भ में शहर वालों को भी परम्परागत रूढ़ियों को मानना पड़ता

§19§- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द § पृष्ठ 384 §

है । प्रेमशंकर के अमेरिका जाने से — समुद्र पार जाने से 'हिन्दू धर्म घुल जाता है' । अतः जब तक वे प्रायश्चित्त न करें, अस्पृश्य हैं — अपनी पत्नी श्रद्धा के लिए भी । श्रद्धा भी 'अपने प्राणप्रिय स्वामी से हाथ धो सकती थी, किन्तु अपने धर्म की अवज्ञा करना अथवा लोक निन्दा सहन करना उसके लिए असम्भव था ।'[20]

गाँव में अपने ढंग का अंधविश्वास व्यक्तियों में व्याप्त है । लखनपुर के बिसेसर साह को हर घड़ी यह लगता है कि 'मनोहर §का प्रेत§ उसके गले पड़ा हुआ है । वह रात-दिन उसके द्वार पर खड़ा रहता है, जिसको पाता है चपेट लेता है ।'[21]

ग्राम वासी यों तो सहज विश्वासी हैं पर ज़मींदार और पढ़े-लिखे शहरी लोगों पर वे विश्वास नहीं कर पाते । लखनपुर के कादिर मियाँ कहते हैं, "इतनी उमिर गुजर गई, सैकड़ों पढ़े-लिखे आदमियों को देखा पर आपके सिवा कोई ऐसा न मिला जिसने हमारी गरदन पर छुरी न चलाई हो । विद्या की सारी दुनिया बड़ाई करती है । हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि विद्या पढ़कर आदमी और भी छली हो जाता है' ।[22] रानी गायत्री §गोरखपुर§ के सुधार कार्यों और सद् चेष्टाओं को बिन्दा-पुर §गाँव§ के किसान सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और सोचते हैं कि यह भी लाभ उठाने की कोई चाल है ।

गाँव में सामान्य लोगों की वेषभूषा है घुटनों तक, धोती, गाढ़े की मिर्जई । यहाँ जात-पात अपनी जगह है और आपस में भाई चारे के रिश्ते अपनी जगह । लखनपुर के कादिर मियाँ गाँव के नाते मनोहर के बड़े भाई होते हैं अतः मनोहर की घरवाली विलासी उन्हें देखकर घूंघट निकाल लेती है ।

---

§20§- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द § पृष्ठ 114 §
§21§- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द § पृष्ठ 228 §
§22§- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द § पृष्ठ 214 §

गाँव में भी अर्थ एवं पद के आधार पर वर्ग विभाजन है । अपेक्षाकृत समर्थ या रुतबेदार लोग जैसे ज़मींदार के चपरासी गिरिधर महाराज धोती और मिर्जई के अतिरिक्त सिर पर पगड़ी बाँधते हैं और कंधे पर मोटा सा लट्ठ भी रहता है । बिन्दापुर छावनी {गोरखपुर के पास, रानी गायत्री की ज़मींदारी} के पंडित लेखराज रेशमी अचकन, रेशमी पगड़ी, रेशमी चादर, रेशमी धोती, पाँव में दिल्ली का सलेमशाही कामदार जूता, माथे पर चन्द्र बिन्दु, आँखों पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा और केवड़े के सुगंध में बसे हैं — ये रानी गायत्री के पुरोहित हैं, वो गाँव के गरीब किसानों के पंडित थे ।

गाँव का पुरुष वर्ग खेत - पात, ज़मींदार कारिन्दा को लेकर व्यस्त रहता है और स्त्रियाँ गृहचर्या से मुक्त होने पर आपस में सास-बहू की बातें करती हैं । मनोहर की घरवाली बिलासी तथा गाँव{लखनपुर} की वृध्दायें बहुओं के रोने रोतीं उधर बिलासी की बहू गाँव की अन्य बहुओं के साथ मिलकर सासों की बुराई करतीं, कभी कभी सामने ही सास को आड़े हाथों लेती । बिलासी की बहू कहती है 'अम्मा- - - - - तुम सब सुख विलास कर चुकीं अब विधवा ही हो गईं तो क्या ?- - - - -अपनी मरजाद सबको प्यारी होती है पर उसके लिए जनम भर का रंडापा सहना कठिन है । तुम्हारे भी खेलने खाने के दिन होते तो देखती कि अपनी लाज को कितनी प्यारी समझती हो ।'[23]

शहर हो या गाँव ज़मींदार और ताल्लुकेदारों का रहन-सहन दोनों जगह पर आम लोगों से अलग और विशिष्ट है । गोरखपुर में रानी गायत्री की कोठी के द्वार पर वरदी पहने दो दरबान टहलते रहते हैं । सामने अँगनाई में एक घंटा लटका हुआ है । एक ओर अस्तबल में कई बड़ी रास के घोड़े बँधे हुए हैं । दूसरी ओर टीन के झोपड़े में दो हवागाड़ियाँ हैं । दालान में पिंजड़ों में मैना, पहाड़ीश्यामा, सफेद तोता आदि लटक रहे हैं और कटहरे में विलायती खरहे पले हैं । भवन के सामने एक बंगला,

---

{23}- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द {पृष्ठ 239}

जो पर्दा, मेज-कुर्सी आदि से युक्त हैं — दफ्तर है । दीवान-खाने की सज्जा बहुमूल्य कालीनों और बड़े बड़े आइनों से की हुई है ।

रानी गायत्री के दरबार का उत्सव भी विशेष होता है । अभ्यागत में देशी और अंग्रेज सभी विशिष्ट व्यक्ति होते हैं । उत्सव की सज्जा, आतिथ्य, भोजन, उपहार, इनाम बख्शीश आदि के विवरण से अखबार भर उठते हैं । दरबार के उत्सव के अलावा सनातन धर्म मण्डल का वार्षिकोत्सव भी रानी गायत्री के सभापतित्व में, गोरखपुर में होता है । जिसके लिए विशाल भवन में मेहमानों के स्वागत सत्कार के साथ-साथ उपदेशकों के लिए बहुमूल्य उपहार का भी प्रबंध है । पंडाल के अहाते में दुकानों के अतिरिक्त एक सरकस और दो नाटक कम्पनियाँ बुलाई गई हैं । सभा में पंडित जी अपने व्याख्यान द्वारा, मौलवी साहब गजल और कसीदे द्वारा तथा सन्यासी महाराज संस्कृत में व्याख्यान देकर अपना झंडा ऊँचा करते हैं, सब बटोरने में लगे हैं; इरशाद हुसैन का कथन प्रमाण है, "इन बछिया के ताउओं की कुछ तारीफ कीजिए - - - -फिर इनसे जितना चाहिए वसूल कीजिए ।"[24] वह कहते हैं, "दुनिया में कामयाबी का नुस्खा है तो वह शतरंज बाजी है । आदमी बड़ा सल्तान (बाक्चतुर) हो, बड़ा मर्दुमशनास हो और बड़ा फिकरेबाज हो, बस उसकी चाँदी है ।"[25]

इन जैसे वालों को धन के प्रदर्शन और प्रभाव जमाने के लिए अवसरों की कमी नहीं है । कभी किसी उत्सव के बहाने, कभी गोद लेने के संस्कार के उपलक्ष्य में, कभी विवाह-शादी पर, कभी राजतिलक के उत्सव पर, यहाँ तक कि अन्तिम संस्कार में भी उन्हें खर्च करने ही हैं, जिनके पास केवल प्रतिष्ठा की ही पूंजी बची है वे कर्ज लेकर खर्च करते हैं — पीढ़ियों से चली आ रही मान-मर्यादा की रक्षा करते हैं । रानी गायत्री जब अपनी बहन का पुत्र गोद लेती है तो संस्कार-पूजा के बाद दावत, संगीत समारोह तथा कंगलों को अन्न वितरण होता है । ज्ञान शंकर की पत्नी

---

(24)- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द (पृष्ठ 261)

(25)- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द (पृष्ठ 261)

विद्या की मृत्यु पर अन्तिम संस्कार में लाला प्रभाशंकर ब्रह्मभोज और बिरादरी की दावत को लेकर व्यस्त होते हैं। लाला प्रभाशंकर की लड़कियों की शादी में साज-सज्जा के — फर्श, कालीन, दरियों के अतिरिक्त वर एवं बरातियों को बहुमूल्य उपहार दिये गए हैं। दोनों वरों को सोने की घड़ियाँ और एक एक मोहन माला दी गई है, बरातियों को एक-एक अशर्फी। बरात के नौकरों, कहारों और नाइयों तक को पाँच-पाँच रुपये विदाई में दिये गए हैं। सारे शहर में वाह वाह हो रही है। लोग कहते हैं, "मरा हाथी तो भी सवा लाख का। - - - - यह पुराने रईसों का ही गुर्दा है।"[26]

गोरखपुर में रानी गायत्री के उत्तराधिकारी उनके दत्तक पुत्र माया शंकर के राज्यतिलक का उत्सव है। विशाल मंडप की सजावट के लिए लखनऊ से फर्राश बुलाए गये हैं। मंच पर गंगा - जमुनी कुर्सियाँ रखी हैं। गोरखपुर, लखनऊ और बनारस के सभी मान्य लोग आमंत्रित किये गये हैं। फौजी बाजा और बनारस की शहनाई दोनों का प्रबंध है। एक शामियाने में नाटक खेलने की तैयारी हो रही है। अंग्रेज मेहमानों का स्थान अलग हैं और उनकी सेवा-सत्कार का विशेषातिविशेष प्रबंध है।

मुख्य अतिथि गवर्नर के स्पेशल ट्रेन से, स्टेशन पर उतरते ही उन पर पुष्प-वर्षा की जाती है। उन्हें एक सजी हुई फिटन पर बिठाया जाता है। तब जुलूस चलता है — आगे आगे हाथी, उसके पीछे राजपूतों की रेजीमेन्ट। फौज के बाद गवर्नर महोदय की फिटन जिस पर कारचोबी का छत्र लगा हुआ है। फिटन के पीछे शहर के रईसों की सवारियाँ हैं। उसके बाद पुलिस वाले सवारों की एक टोली — सबसे पीछे बाजे हैं। इस प्रकार यह शोभा यात्रा शहर के प्रमुख सड़कों पर घूमती चिराग जले ज्ञान शंकर के मकान पर पहुँचती हैं। तत् पश्चात् तिलकोत्सव का प्रारम्भ पंडित श्री — निवासाचार्य की ईश्वर प्रार्थना से होता है।

---

§26§- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द § पृष्ठ 366 §

शहर के पुराने रईस, लोगों को खिला-पिला कर प्रसन्न हैं। पर नई पीढ़ी की दृष्टि में थोड़ा अन्तर है। प्रभाशंकर अपने परिवार, अपने भाई के परिवार, गाँव की परजा सभी की खुशी में उत्सव-दावत करके आत्म-तोष का लाभ करते हैं पर उनका भतीजा ज्ञानशंकर लखनऊ और गोरखपुर दोनों शहरों के रईसों से मेल जोल बढ़ाकर, सत्कार्यों के लिए दान देकर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा सुदृढ़ करना चाहते हैं। अन्ततः वे लखनऊ के ताल्लुकेदार-सभा के मंत्री चुने जाते हैं।

शहर में अपनी इस सामाजिक स्थिति के रख-रखाव के लिए गाँव के {जमींदारी के} असामियों पर अखराज, बकाया और इजाफा की नालिशें की जाती हैं। लगान और नजराने बड़ी कहरता से वसूल किये जाते हैं। पर गाँव की भोली जनता जमींदार ज्ञानशंकर से असन्तुष्ट नहीं है क्योंकि गायत्री की बरसी में उन्होंने असामियों को एक हजार कम्बल बाँटे हैं। रायसाहब के इलाके में, होली में जलसे कराये हैं, पेटभर भाँग पिला कर उन्हें खुश कर दिया है। जगह जगह मंडियाँ लगवा दी हैं जिससे किसानों को अनाज बेचने की सुविधा हो गई है।

शहरों में रईसों की वर्तमान पीढ़ी राजनीतिक क्षेत्र में अब अपना स्थान बनाने के लिए कुछ प्रयत्न हुई है। स्थानीय राज्यसभा के चुनाव में डा० इर्फानअली बनारस विश्वविद्यालय की ओर से खड़े हुए हैं, डा०प्रियनाथ बनारस म्यूनिसपैलिटी की ओर से; ज्वालासिंह इटावा के कृषकों की ओर से और सैयद इज़ाद हुसैन मुस्लिम जाति की ओर से खड़े हुए हैं। ज्ञानशंकर गोरखपुर के किसानों की ओर से खड़े हुये हैं और प्रेमशंकर को बनारस के किसानों ने अपनी ओर से खड़ा किया है। प्रचार और प्रसार को लेकर सारे प्रान्त में धूम मची हुई है जैसे 'सहालग के दिनों में ढोल और नगाड़ों का नाद गूंजने लगता है।' छापेखानों में 'ट्रैक्टों' की छपाई धकाधूम चल रही है। दावतें खिला-खिलाकर और नाटक दिखा-दिखा कर जनता को अपनी ओर आकर्षित किया जा रहा है।

चुनाव के दिन इन प्रत्याशियों का 'सदुत्साह उनकी तत्परता, उनकी शीलता और विनय' दर्शनीय है । प्रचार और प्रसार करने वाले मोहन भोग और मेवे खा रहे हैं और मोटरों पर घूम रहे हैं ।

राज सभा में पहुँच जाने के बाद इन प्रतिनिधियों में कोई मुवक्किलों में लग जाता है, कोई अपने बही खाते की देखभाल में और कोई अपने सैर-शिकार में । लोग मनोविनोद के लिए जैसे राजसभा में आते हैं और कुछ 'निरर्थक प्रश्न पूछ कर या अपने वाक् नैपुण्य का परिचय' देकर चले जाते हैं ।

कथाकार मुख्य रूप से गाँव {लखनपुर} को लेकर चला है । परन्तु तत्कालीन जमींदारी प्रथा के कारण गाँव चाहे लखनपुर {बनारस के पास} हो या बिन्दापुर {गोरखपुर के पास} उसके स्वामी और प्रशासक जमींदार शहरों में — बनारस, गोरखपुर में रहते हैं, अतः गाँव और शहर समानान्तर रेखाओं पर चित्रित होते रहे हैं । फिर भी, कृतिकार के मन में एक आदर्श गाँव की परिकल्पना है अतः वह हाजीपुर के रूप में एक आदर्श गाँव को प्रस्तुत करता है ।

काशी नगरी से पाँच मील पर वरुणा नदी के तट पर हाजीपुर गाँव है जिसे प्रेमशंकर के समर्पित सद्प्रयत्नों से आदर्श गाँव का स्थान प्राप्त है । डा० इर्फान अली, डा० प्रियनाथ सभी अब यहाँ आ बसे हैं । सहकारिता और श्रम के आधार पर गाँव की आमदनी वहाँ के निवासियों में वितरित होती है । प्रेमशंकर नये ढंग से समुन्नत बीजों के व्दारा अच्छी खेती कराते हैं । उनकी पत्नी श्रध्दा और डिप्टी ज्वाला सिंह की पत्नी शीलमणि घर के काम सँभालती है । बाकी समय में चर्खा कातती या मोजे बुनती हैं । ज्वाला सिंह वहाँ के युवकों को नये ढंग के करघों पर कपड़ा बुनना सिखाते हैं । प्रतिदिन राजनीतिक, सामाजिक एवं दार्शनिक विषयों पर 'सम्वाद' होते हैं । हाजीपुर 'साख्य, संतोष और सुविचार की तपोभूमि' सी विकसित हो गई है । डा० इर्फान अली सच्चे ही मुकद्दमें लेते हैं और अपनी जीविका निर्वाह भर को पारिश्रमिक लेते हैं । डा० प्रियनाथ निःशुल्क

औषधालय चलाते हैं और देहात देहात घूम कर रोगियों का इलाज करते हैं । गाँव की अपनी गोशाला है जिसका दूध, मक्खन शहर बिकने जाता है । सैयद साहब का यतीमखाना भी यहीं है जिसमें सच्चे यतीमों का पालन-पोषण होता है — सैयद साहब का परिवार शहर में ही है । वह हिन्दू मुस्लिम एकता का सच्चे दिल से प्रचार करते हैं । ऐसा गाँव गाँधी जी का स्वप्न था जिसे प्रेमचन्द की लेखनी ने 'प्रेमाश्रम' के रूप में प्रस्तुत किया है ।

रंगभूमि (1925 ई0)

वाराणसी नगरी में लगी ग्रामीण बस्ती (देहात) 'पाँड़ेपुर' प्रस्तुत कथाकृति 'रंगभूमि' की कथा भूमि है, जो प्रसंगवश वाराणसी नगरी को भी स्पर्श करती चलती है ।

बनारस शहर से लगा हुआ पाँड़ेपुर' नामक एक देहात बल्कि ग्रामीण बस्ती है जहाँ भिन्न-भिन्न जाति और व्यवसाय के लोग रहते हैं । वहाँ रहता है सूरदास जो भिक्षा वृत्ति करता है, भैरों ताड़ी बेचता है और ठाकुर दीन पान की दुकान लगाता है । बजरंगी गाय-भैंस रखे है और दूध-घी का व्यवसाय करता है, जगधर खोंचा लगाता है ।

इस बस्ती के दूसरी ओर ऊँची कुर्सी पर एक मन्दिर है जिसके चारों ओर तीन-चार गज चौड़ा चबूतरा है । इस मन्दिर के पुजारी हैं दयागिरि जो मन्दिर के समीप एक कुटिया में रहते हैं । शहर के पुराने रईस कुँवर भरत सिंह से उनकी मासिक वृत्ति बँधी हुई है । बस्ती से भी कुछ न कुछ मिलता रहता है । मन्दिर के पास एक पक्का कुँआ है जिस पर जगधर अपना खोंचा लगाता है — तेल की मिठाइयाँ, मूंगफली, रामदाने के लड्डू । राहगीर उससे मिठाइयाँ लेते, खाकर पानी पीते और अपने रास्ते चले जाते । वहीं रहता है नायक राम पंडा । पूरी बस्ती में लगभग दस बीघे का एक मैदान है जिसमें बजरंगी की तथा इधर उधर की गाय-भैंसे

चरती हैं, पर्वों पर नायक राम पंडा के यजमान यात्री भी उसी मैदान में ठहरते हैं और यथा अवसर सारी बस्ती के लोग उसे उपयोग में लाते हैं । वस्तुत: वह जमीन है सूरदास की ।

ग्रामीणों का जन जीवन, जीवन-जीविका के प्रश्न से आक्रान्त नहीं है । दिन भर के काम धंधे से निवृत्त होकर पांडेपुर की बस्ती के लोग मन्दिर के चबूतरे पर आठ-नौ बजे के लगभग एकत्र होते और घंटे दो घंटे भजन कीर्तन करते हैं । ठाकुरदीन ढोल बजाता, बजरंगी करताल ; मजीरा कोई भी ले लेता । सूरदास तो ढोल, मजीरा, करताल, सारंगी सब बजा लेता है पर गाने में तो आस-पास कोई भी उसकी बराबरी का नहीं है । वह कबीर, दादू, मीरा आदि के भजन गाता है ।

सूरदास भिखारी है, उसकी झोंपड़ी में किवाड़ों के स्थान पर टहनियों की टट्टी लगी हैं । गृहस्थी के नाम पर एक पुराना काई लगा मिट्टी का घड़ा, चूल्हे के पास एक हांडी, पुराना छेद भरा तवा, एक छोटी सी कठौत और एक लोटा है ।

गाँव-देहात के समाज में आवश्यकतानुसार लेना-देना सहज प्रचलित है । सूरदास का भतीजा मिठुआ दूध से रोटी खाने की जिद करता है तो सूरदास बजरंगी के घर से दूध माँग लाता है ।

पारिवारिक कलह-सास बहू का झगड़ा इस बस्ती में भी है । भैरों पासी अपनी माँ का विशेष ध्यान रखता है अत: बुढ़िया का मन बढ़ गया है । बहू से तनिक भी चूक होने पर वह उसके 'बाप भाइयों के मुँह में कालिख लगाती, सबों की दाढ़ियाँ जलाती - - - - - और भैरों से 'एक-एक की सौ सौ' लगाती है और भैरों फिर सुभागी को जली-कटी सुनाता और कभी कभी डंडे से भी खबर लेता है ।

यहाँ के लोग तत्क्षण में रहने के अभ्यासी हैं और यह उनका स्वभाव बन गया है । क्रोध-आवेश में होनी-अनहोनी का विचार नहीं और प्रेम-व्यवहार में उनका कोई मीत नहीं है । 'सूरे' से अदावत के कारण भैरों

उसके झोपड़े में आग लगा देता है तो गाँव वाले सहानुभूति में उसकी झोपड़ी फिर बना देते हैं -- किसी ने बांस दिया है किसी ने धरन और किसी ने फूस । बजरंगी की घरवाली जमुनी दो घड़े, दो तीन हाँडियाँ लाकर वहाँ रख देती है और चूल्हा भी बना देती है ।

इन ग्रामीणों के स्वभाव में क्रोध-द्वेष, उदारता-सहृदयता का सहज स्वाभाविक संगम है । जीवन का हर रंग उनके अस्तित्व और व्यक्तित्व में बड़ी सहजता से घुला है । काम धंधे से मुक्त होकर हँसी मजाक का भी वे खुले दिल से आनन्द उठाते हैं । सूरदास को हँसते देख कर सुभागी पूछती है, 'क्या मिल गया है सूरदास जो फूले नहीं समाते ।'

'सूरदास ने हँसी रोक कर कहा -- मेरी थैली मिल गई' - - - -

सुभागी -- तो सब माल अकेले हजम कर जाओगे ?

सूरदास -- नहीं, तुझे भी एक कंठी ला दूंगा, ठाकुर जी का भजन करना ।

सुभागी -- अपनी कंठी घर रखो, मुझे एक कंठा बनवा देना ।

सूरदास -- तब तो तू धरती पर पाँव ही न रखेगी ।

जगधर -- इसे चाहे कंठा बनवाना या न बनवाना, इसकी बुढ़िया को एक नथ जरूर बनवा देना । पोपले मुँह पर नथ खूब खिलेगी, जैसे कोई बँदरिया नथ पहने हो ।'[27]

देहात के बच्चों के पास पर्याप्त समय होता है अतः जिससे बदले में हानि की सम्भावना न हो ऐसे दुर्बल, दीन अंधो को छेड़ना उनका मनोरंजन है । बस्ती के बच्चे सूरदास को तंग करते हैं, कोई छड़ी छीन कर भागता है तो कोई गलत रास्ता बता देता है । सूरदास से लाठी छीनने के फेर में घीसू को चोट लग जाती है तो घीसू की माँ जमुनी सूरदास को खूब खरी-खोटी सुनाती है । गाँव के अन्य लोग भी दो-चार बातें सुना जाते हैं । पर शहरी

---

§27§- रंगभूमि : प्रेमचन्द § पृष्ठ 241 §

सभ्यता से दूर यहाँ के लोग 'दीन की हाय' से डरते हैं । सूरदास को रोता देखकर जमुनी सहम जाती है । वह सूरदास के भतीजे मिट्ठू को गोद में ले जाकर पीने को दूध देती है ।

सारे देहातियों के मन में थाना, पुलिस, कचहरी और दरबार के लिए डर होता है पर उससे भी अधिक ये डरते हैं 'भूत-प्रेतों' से - स्त्रियाँ विशेष रूप से । ताहिरअली की विमाता 'जैनब' जब जमुनी को 'जिन्नात' और मंत्र-तंत्र का भय दिखाती है तो वह डर कर जैनब को पच्चीस रुपये §की घूस§ देकर अभयदान पाती है ।

गाँवों में नशे-पानी का भी चलन है । जाड़े में भैरो और जगधर रात को घर में भुनी मटर और नमक, मिर्च, प्याज के साथ ताड़ी पीते हैं । गाँव की बहू बेटी पर दृष्टि रखना इनके यहाँ पाप है । तो भी इस तरह के प्रसंग आते रहते हैं । पति द्वारा मारी गई सुभागी सूरदास के घर शरण लेती है । अन्य गाँव वाले भी चुटकियाँ लेते हैं । नायकराम पंडा व्यंग्य करता है, 'क्यों सूरे अच्छी सूरत देखकर आँखें खुल जाती है क्या ?' फिर थोड़ा गंभीर होकर वह कहता है, 'ये हजारों आदमी, जो तड़के गंगा स्नान करने जाते हैं, वहाँ नजरबाजी के सिवा और क्या करते हैं ! मंदिरों में इसके सिवा और क्या होता है ! मेले-ठेलों में भी यही बहार रहती है ।'[28]

गाँव-देहात में पादरी के आने की सूचना आनन्द-समाचार है क्योंकि पादरी तस्वीरें दिखाता है, किताबें देता है, मिठाइयाँ और पैसे बाँटता है । अतः पादरी के आगमन के अनुमान मात्र से अनेकों लड़के 'लूट का माल' लेने के लिये एकत्र हो जाते हैं । शहर से दूर ग्रामीण मुहल्लों में 'अंग्रेजी वस्त्रधारी पुरुष पादरी का पर्याय है ।'[29] जब कि शहर के शिक्षित समाज में अंग्रेजी पहनावा उनकी सभ्यता का अंग है ।

---

§28§- रंगभूमि : प्रेमचन्द §पृष्ठ 115§

§29§- रंगभूमि : प्रेमचन्द §पृष्ठ 128§

बनारस शहर में रहते हैं कुँवर भरत सिंह जिनका भवन 'आमोद, विलास, रसज्ञता और वैभव का क्रीड़ा स्थल' है जो संगमरमर के फर्श पर बहुमूल्य कालीन, दीवारों पर सुन्दर पच्चीकारी, कमरों की दीवारों में बड़े बड़े आदम कद आइने ; शीशे की बहुमूल्य वस्तुएँ ; प्राचीन चित्रकारों की कृतियाँ ; चीनी के गुलदान ; चीन, जापान, ईरान, यूनान की कला कृतियाँ ; सोने के गमले ; लखनऊ की मूर्तियाँ ; इटली के बने हाथी दाँत के पलंग आदि से सुशोभित है । बाहर पिंजड़ों में चहकती हुई विभिन्न प्रकार की चिड़ियाँ, आँगन में संगमरमर का हौज और उसके किनारे 'संगमरमर की अप्सरायें' आगतों का मन मोह लेती हैं । भवन के बाहर एक अच्छी उपवन वाटिका महल की शोभा में चार चाँद लगा रही है । इस भवन का नाम है- 'सेवा भवन' ।

इसी बनारस के सिगरा मोहल्ले में एक नया उठता हुआ ईसाई 'सेवक' परिवार का बंगला है । यहाँ गृहपति की दृष्टि सुरुचि की अपेक्षा उपयोगिता पर अधिक है । अतः बंगले के हाते में फूल-पत्तियों के स्थान पर शाक-सब्जी और फलों के वृक्ष अधिक हैं । बेलें परवल, कद्दू आदि की लगाई गई हैं जिससे शोभा के साथ-साथ फल-सब्जी भी मिलती रहती है । बंगले के एक किनारे खपरैल के बरामदे में गाय-भैंसे पली हुई हैं । दूसरी ओर अस्तबल हैं । बाद में फिटन रख रखी है जिसका प्रयोग सेवक तामजान पर बैठकर गिरजे जाया करते हैं जिसे एक आदमी खींचता है । इस परिवार में प्रातः का जल-पान 'छोटी हाजिरी' कहा जाता है और दिन का भोजन अंग्रेजी प्रथा के अनुसार डेढ़ बजे होता है । अपने समय के सम्पन्न ईसाई परिवारों के समान मिसेज सेवक को हिन्दुस्तानियों से चिढ़ है । उनकी एक मात्र आकांक्षा यह है कि वह 'ईसाइयों के श्रेणी से निकल कर अंग्रेजों में जा मिले' उन्हें लोग 'साहब' समझें --- अतः वे अंग्रेजों से 'रब्त जब्त' बढ़ाने का कोई अवसर चूकना नहीं चाहती । मिस्टर सेवक शहर के उद्योगपति - व्यवसायियों का पूरा प्रतिनिधित्व करते हैं । उनके लिए धर्म-कर्म, गिरजे जाना - दिनचर्या का अंग और सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए है, धार्मिक मान्यताएँ अपनी जगह हैं और व्यवसाय अपनी जगह है । वे मानते हैं 'ढंग मिलाये बगैर भी दुनिया का कोई काम चल सकता है ?

सफलता का यही मूलमन्त्र है और व्यवसाय की सफलता के लिए तो यह सर्वथा अनिवार्य है ।'[30]

नगर के स्वायत्त शासन में वहाँ के प्रतिष्ठित व्यक्ति पदाधिकारी हैं । चतारी के राजा महेन्द्र सिंह, जो बनारस में रहते हैं, म्युनिसिपैलिटी के प्रधान हैं । शहर के 'आम और खास' के लिए हाकिमों के बंगले वाले मोहल्ले और 'अँधेरी गलियाँ' पर उनकी सम-दृष्टि है — मूल में है यशलिप्सा ही । जनता में अपने पक्ष का बहुमत तैयार करने के लिए वह समाचार पत्रों के सम्पादकों को खुश किये रहते हैं — 'आवश्यक, अनावश्यक विज्ञापन' छपवाते रहते हैं ; दावत या उत्सव में उन्हें सबसे पहले निमंत्रित करते रहते हैं । लगता है कि उस समय भी समाचार पत्र की समाज में अपनी शक्तिशाली और प्रभावशाली स्थिति हो चली थी और अक्सर वे अपनी निष्पक्ष भूमिका का निर्वाह करते थे । एक दैनिक पत्र राजा महेन्द्र कुमार सिंह की विवेकशीलता पर शंका व्यक्त कर चुका है । शहर के अधिकांश सम्पन्न प्रतिष्ठित लोग समाचार पत्रों से डरते हैं — 'अंधे' को पुलिस के हवाले कर देने की बात पर ईश्वर सेवक कहते हैं 'ऐसा भूल कर भी न करना, नहीं तो अखबार वाले बात का बतंगड़ बना कर तुम्हें बदनाम कर देंगे ।'[31]

पाँड़ेपुर की ग्रामीण बस्ती और बनारस के बड़े आदमियों के बीच पाँड़ेपुर की बस्ती से थोड़ी दूर जॉन सेवक के मुंशी ताहिरअली रहते हैं जो निम्न मध्यवर्गीय परिवार का प्रतिनिधित्व करते हैं । मुंशी जी धर्मभीरु और रोज़ा-नमाज़ के पाबंद तथा 'हराम की कमाई से कोसों भागते हैं' । पर उनकी विमातायें उनकी गैर हाज़िरी में चमारों से (जॉन सेवक चमड़े की आढ़त करते हैं) तथा अन्य अन्य लोगों से काम करवा देने के बहाने रुपया वसूल करती हैं । इस वर्ग की मुस्लिम अर्धशिक्षित परिवार की स्त्रियाँ बुरी नज़र और आसेब से बचाने के लिए अपने बच्चों को गंडे-ताबीज़ पहनाये रखती हैं । ताहिर अली के घर के बच्चे 'गंडे-ताबीज़ों से मढ़े' हैं । जब तब 'राई-नोन' उतार कर नज़र उतारी जाती है ।

---

(30)- रंगभूमि : प्रेमचन्द (पृष्ठ 107)

(31)- रंगभूमि : प्रेमचन्द (पृष्ठ 201)

ताहिर अली की मासिक आय है तीस रुपये और स्वयं को लेकर नौ प्राणियों का परिवार । अतः आर्थिक रूप से वे सदैव तंग रहते हैं । मिठाई वाला, दूधवाला, पानवाला सभी तकाज़े करते रहते हैं । हाँ, जब सैकड़ों चमारों से घिरे वह चमड़े की खरीदारी में लगे होते तो उनको अपने 'महत्व का हल्का सा नशा हो जाता था ।'[32] कोई चमार दरवाजे पर झाड़ू लगाता, कोई उनके बैठने का तख्त झाड़ता, कोई पानी भरता है । कभी किसी चमार को साग-भाजी लाने के लिए भेज देते और किसी से लकड़ी चिराते हैं । इतने आदमियों को अपनी सेवा में तत्पर देख कर उन्हें लगता कि 'मैं भी कुछ हूँ ।' इन चमारों से ताहिरअली की विमातायें पान-पत्ते का खर्च वसूला करती है ।

शहर हो या देहात सभी जगह साधारण आदमी संध्या समय दिनभर काम करके घर की ओर लौटते होते हैं । बनारस में 'कचहरी के अमले बगल में बस्ते दबाये भीरुता और स्वार्थ की मूर्ति बने' घर की ओर चले आते दिखते हैं । शहर के शोहदे पान वालों की दूकान पर खड़े हैं । रोज कमा कर रोज खाने वाले मजदूरों की स्त्रियाँ बनिया की दुकानों से खाद्य-सामग्री ले रही होती है । बड़े लोगों के बंगले के लॉन पर लोग टेनिस खेल रहे होते हैं । रविवार की शाम को ईसाई स्त्रियाँ-पुरुष साफ-सुथरे कपड़े पहनकर गिरजे जा रहे होते हैं ।

शहर और गाँव के बीच स्थित चुंगीघरों में मुंशी जी आराम कर रहे होते हैं जबकि कई गाड़ियाँ 'रवन्ने' के लिए खड़ी हैं । मुंशी जी प्रति गाड़ी एक रुपया लिए बिना उन्हें 'रवन्ना' नहीं देना चाहते और गाड़ियाँ खड़ी रहती हैं । यही स्थिति कचहरी की भी है । सूरदास जब कचहरी से रुपये लाने चलता है तो इन्द्र दत्त कहता है, 'अकेले न जाना नहीं तो कचहरी के कुत्ते तुम्हें बहुत दिक करेंगे ।'[33]

शहर के शिक्षित और उच्च समाज में वार्ता-चर्चा का विषय अधिकांशतः

{32}- रंगभूमि : प्रेमचन्द { पृष्ठ 230 }
{33}- रंगभूमि : प्रेमचन्द { पृष्ठ 367 }

राजनीति है । कुंवर भरत सिंह, राजा महेन्द्र कुमार सिंह, जॉन सेवक आदि जैसे लोग शासन के 'दाहिने हाथ' भी बनते हैं पर करना उन्हें वही पड़ता है जो शासक चाहते हैं । प्रकारान्तर से शहर का उच्चवर्गीय शिक्षित समाज 'राज्य का आश्रित रहा है और रहेगा ।' क्योंकि उनके कृपा-पात्र होकर वे अतिरिक्त सामाजिक प्रतिष्ठा के अधिकारी हो जाते हैं ।

गाँव-देहात में जो सच है वह सामने है । भैरो और सूरदास की लाग-डाट जाहिर है पर शहर में जो प्रत्यक्ष दिखता है वह सत्य नहीं है और चाहे जो कुछ हो । प्रत्यक्ष रूप से सब मित्र हैं -- मिस्टर क्लार्क, राजा महेन्द्र कुमार ऐसे ही सब । पर भीतर भीतर एक दूसरे को चोट पहुँचाने में लगे हैं । जिलाधीश मिस्टर क्लार्क के विरुध्द गवर्नर को याचिका भेजी जा रही है ﴾ जिसमें शहर के अधिकांश प्रतिष्ठित लोगों के हस्ताक्षर हैं﴿ साथ ही मिस्टर क्लार्थ के यहाँ हाजिरी भी लगाई जा रही है और अपनी सफाई भी पेश की जा रही है । शहर के इन रईसों की दोहरी नीति है । कुँवर भरत सिंह प्रभुसेवक से कहते हैं, "मैं ऐसे किसी प्रस्ताव का विरोध न करूँगा जिससे कारखाने की हानि हो । कारखाने से मेरा स्वार्थ सम्बन्ध है- - - -हाँ, तुम्हारा वहाँ से निकल आना मेरी समिति के लिए शुभ लक्षण है - - - - - - - मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम इस भार ﴾समिति के अध्यक्ष﴿ को ग्रहण करो ।"[34]

शहरी सभ्यता में सब उसी समय तक मित्र हैं जब तक उनका काम निकलता है या आपके पास सत्ता है । पर ग्रामीणों का सम्बन्ध मानवीयता का सम्बन्ध है । ताहिरअली के जेल जाने के बाद माहिर, उनकी माँयें अपना बनाती जाती हैं, कुल्सुम और उनके बच्चों को पूछती नहीं । पर चमारों का चौधरी इस दुर्दिन में ताहिरअली के परिवार की रुपये-पैसे सहायता करना चाहता है । सुभागी शाक - भाजी, फल - अमरूद आदि उनके बच्चों को भेंट कर आती है । ताहिर अली को हिरासत में जाते देख माहिर अली अपना मुँह फेर लेता है और बाद में फिर कभी भाई के परिवार की खोज

﴾34﴿- रंगभूमि : प्रेमचन्द ﴾ पृष्ठ 376 ﴿

खबर भी नहीं लेता । इधर गाँव की बस्ती वाले उसके सुख-दुख के साथी हैं।

'रंगभूमि' का मुख्य उद्देश्य शहरीकरण और औद्योगीकरण के चित्र प्रस्तुत करना रहा है । पांडेपुर में सिगरेट का कारखाना बनना प्रारम्भ हो गया है । मजदूर वहाँ बसने लगे हैं अपने घर-गाँव से दूर इन मजदूरों की कोई नैतिकता नहीं है और न ही बिरादरी का डर । वे सूरदास के खिलाफ भैरों की ओर से गवाही देने को तैयार हो जाते हैं कि सूरदास भैरों की घरवाली को निकाल ले गया है {जबकि उसकी बस्ती के लोग गवाही देने को तैयार नहीं हैं} । मिल का मिस्त्री कोयले से अटा-पटा, चमरौधा जूता डाटे, हाथ में हथौड़ा लिए भैरो से कहता है, "गाँव वालों को मारो गोली । तुम्हें कितने गवाह चाहिए ? जितने कहो, दे दूँ, एक-दो, दस-बीस ? ------ आज ही ठीक किये देता हूँ । बस, सबों को भरपेट पिला देना ।[35] उधर कारखाने के आदमी प्रसन्न होकर कहते हैं, "मौका अच्छा है । अंधे के घर से निकल कर जायगी कहाँ । भैरो अब उसे न रखेगा।" ------ दूसरा कहता है, "आखिर हमारे दिलबहलाव का भी तो कोई सामान होना चाहिए ।"[36] अभी ठीक कारखाना बनने की शुरूआत है और औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के रोगाणुओं का प्रवेश प्रारम्भ हो गया है ।

पांडेपुर में फैक्ट्री तैयार हो गई है । प्रारम्भ में तो मजदूर, मिस्त्री आदि प्रायः मिल के बरामदे में ही रहते थे, वहीं पेड़ों के नीचे खाना बनाते और सोते थे । पर संख्या बढ़ने पर वे मुहल्ले में मकान लेकर रहने लगते हैं । पांडेपुर में रहने वाले किराये के लालच में परदेशियों को अपने अपने घरों में ठहराने लगे हैं । भैरो अपनी लकड़ी की दुकान में माँ के साथ रहने लगा है और मकान-किराये पर दे दिया है । ठाकुर दीन सामने टट्टी लगाकर रहने लगा है और घर एक ओवरसियर को किराये पर उठा दिया है । जगधर ने सारा मकान उठा दिया है और स्वयं फूस की झोपड़ी बना-कर रहने लगा है । बजरंगी ने भी मकान का एक हिस्सा उठा दिया है ।

{35}- रंगभूमि : प्रेमचन्द {पृष्ठ 342}

{36}- रंगभूमि : प्रेमचन्द {पृष्ठ 342}

'पुतलीघर' के मजदूर सारी बस्ती में फैल गए हैं और प्रतिदिन ऊधम मचाते हैं -- जुआ - चोरी प्रारम्भ हो गई है, शराब पीकर हुल्लड़-बाजी होती है, औरतों को भी छेड़ने लगे हैं । जब तक मजदूर लोग काम पर नहीं चले जाते बस्ती की औरतें घर में पानी भरने नहीं निकलती हैं ।

गवर्नर साहब मिल खोलने की रस्म अदा करने के लिए आ रहे हैं अतः रात-दिन काम हो रहा है । मिल के आस-पास पक्के मकान भी बन चुके हैं । सड़क के किनारे और निकट के खेतों में मजदूरों ने झोपड़ियाँ डाल रखी हैं । एक मील तक सड़क के दोनों ओर झोपड़ियाँ ही झोपड़ियाँ दिखती हैं । दुकानदारों ने भी अपने अपने छप्पर डाल दिये हैं । पान, मिठाई, अनाज, गुड़, घी, साग, भाजी और मादक वस्तुओं की भी दुकानें खुल गई हैं । मिल के मजदूर दिन भर मिल में काम करते, रात को ताड़ी या शराब पीकर जुआ खेलते । कुछ बाजारू औरतों ने भी अपना-धंधा प्रारम्भ कर दिया है ---'यहाँ भी एक छोटा-मोटा चकला' आबाद हो गया है ।

पुराना गाँव 'पाँड़ेपुर' विलीन होता जा रहा है । औद्योगीकरण का दानव यहीं नहीं रुकता वह पाँड़ेपुर की बस्ती खाली कराना चाहता है । राजा महेन्द्र कुमार सिंह मिस्टर जॉन सेवक के साथ पाँड़ेपुर के निवासियों को बताते हैं, "सरकार को एक खास काम के लिए इस मोहल्ले की जरूरत है । उसने फैसला किया है कि तुम लोगों को उचित दाम देकर यह जमीन ले ली जाय - - - - - ।"[37] अतः एक मुंशी मुहल्ले के निवासियों के नाम, मकानों की हैसियत -- पक्के हैं या कच्चे, पुराने हैं या नये, लम्बाई चौड़ाई आदि की तालिका बनाने लगते हैं, पटवारी भी साथ हैं । नायक राम पंडा बस्ती के प्रतिनिधि की हैसियत से उनके साथ रहते हैं । मकानों की हैसियत का आधार 'इस त्रिमूर्ति (मुंशी जी, पटवारी, नायकराम पंडा) को चढ़ाई गई भेंट है । त्रिमूर्ति की पूजा न होने से भैरो के मकान का क्षेत्रफल घट जाता है वहीं जगधर की भेंट पूजा से प्रसन्न होकर जगधर के छोटे मकान का क्षेत्रफल बढ़ जाता है । सूरदास की झोपड़ी का मुआवजा एक

---

(37)- रंगभूमि : प्रेमचन्द (पृष्ठ 461)

रूपया और नायकराम के घर का पूरा तीन हजार ठहराया जाता है । इस प्रकार इस ग्रामीण बस्ती में शहर के जीवाणु पनपने का पूरा वातावरण तैयार होता जा है ।

बनारस शहर और पांडेपुर गाँव के चित्रण के बीच राजस्थान के 'जसवन्त नगर' रियासत का प्रसंग एक सामन्ती चित्र प्रस्तुत करता है । जसवन्त नगर में दीवान साहब सरदार नीलकंठ के भवन के विशाल फाटक पर दो सशस्त्र सिपाही खड़े हैं, फाटक से थोड़ी दूर पर पीतल की दो तोपें रखी हुई हैं, । दीवान साहब स्वयं ऊँचे सुगठित, गौरवर्ण के प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी हैं 'तनी हुई मूछें थी, सिर पर रंग-बिरंगी उदयपुरी पगिया, देह पर एक चुस्त शिकारी कोट, नीचे उदयपुरी पाजामा, ऊपर एक भारी ओवर-कोट । छाती पर कई तमगे और सम्मान सूचक चिन्ह शोभा दे रहे थे ।'[38]

सरकार द्वारा नियुक्त पोलिटिकल एजेन्ट रियासतों में भगवान की तरह पूजे जाते हैं । जागीरदार दर्शनों को आते हैं, नजराने भेंट किये जाते हैं । जहाँ ये जाते हैं, बड़ी धूम धाम से स्वागत किया जाता है, सलामियाँ दी जाती हैं, मान-पत्र दिये जाते हैं, मुख्य मुख्य स्थानों की सैर करायी जाती है । अब वे जसवन्तनगर पहुँचे हैं — वहाँ के राजकर्मचारी पगड़ियाँ बाँधे इधर उधर भाग दौड़ रहे हैं । ' किसी के होश-हवास ठिकाने नहीं हैं, जैसे नींद में किसी ने भेड़िये का स्वप्न देखा हो ।'[39] बाजार सजाये गए हैं, सड़क के दोनों ओर सशस्त्र सिपाहियों की कतारें खड़ी हैं । फौजी बाजे के साथ पोलिटिकल एजेन्ट साहब का जुलूस निकलता है तो सिपाही लोग फूलों की वर्षा करते हैं ।

गाँव हो या शहर, रियासत हो या वन प्रान्त एक हिन्दू अपने संस्कार से मुक्ति नहीं पा सका है । कुँवर भरत सिंह ने अपना भोग विलास त्याग दिया है पर पुत्र के लिए सारी सुख सुविधा जुटा जाने के लिए चिन्तित हैं । उधर मृत्यु शैय्या पर पड़ा सूरदास अपने भतीजे से कहता है,

---

[38]- रंगभूमि : प्रेमचन्द [पृष्ठ 192]

[39]- रंगभूमि : प्रेमचन्द [पृष्ठ 269]

"मैं मर जाऊँ तो मेरा किरिया-काम करना, अपने हाथों से पिंड-दान देना बिरादरी को भोज देना और हो सके, तो गया कर आना ।"[40]

'रंगभूमि' में कथाकार ने औद्योगिक सभ्यता बनाम कृषि सभ्यता (अथवा शहरी सभ्यता बनाम ग्राम्य संस्कृति) को केन्द्र में रखकर 'बनारस' और 'पांडेपुर' के जन-जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें 'टाउनशिप' (Township) में रूपान्तरित होते 'पांडेपुर' के चित्र बड़े सशक्त एवं जीवन्त हैं ।

देहाती दुनिया (1926 ई0)

'देहाती दुनिया' लेखक के अनुसार 'ठेठ देहात का औपन्यासिक चित्र' हैं, जो 'देहाती भाइयों के मनबहलाव' के लिए लिखा गया था । कथानक है बालक तारकेश्वर नाथ या भोलानाथ जो स्वयं 'रामसहर' नामक एक बहुत बड़े गाँव के जनजीवन का चित्र प्रस्तुत करता चलता है ।

गाँव में माँ बालक के सिर में कडुआ तेल डालकर नहलाती है फिर 'फूलदार लट्टू' बाँध कर चोटी गूंथती है । नाभी और मस्तक में काजल की बिन्दी लगाकर (बुरी नज़र बचाने के लिए) रंगीन टोपी कुर्ता पहना कर सजा देती है । गले में चाँदी की ताबीज़ और बघनखा तो बालक को स्थायी रूप से पहने होना होता है । तदुपरान्त भोलानाथ की माँ दही भात का तोता, मैना, कबूतर, मोर आदि के लिए अलग अलग हिस्सा बना कर बालक को खिलाते हुए कहती है कि खालो नहीं तो तोता उड़ जायगा या मैना उड़ जायगी ।

गाँव में बालकों का खेल अपने तरह का होता है । सारे समवयस्क बालक एकत्र होकर कभी मिठाइयों की दुकान सजाते जिसमें 'खपड़े थाले में ढेले के लड्डू, पत्तों की पूरी कचौरियाँ, गीली मिटटी की जलेबियाँ, फूटे घड़े के टुकड़ों के बताशे आदि मिठाइयाँ' सजाई जातीं । सभी घरौंदों का खेल होता जिसमें 'पानी के घी, धूल के पिसान और बालू की चीनी से

---

(40)- रंगभूमि : प्रेमचन्द (पृष्ठ 508)

ज्यौनार' तैयार होती । और कभी बारात निकलती --'कनस्तर का तम्बूरा बजता, अमोले को घिस कर शहनाई बजाई जाती, टूटी चूहेदानी की पालकी बनती ।'[41] ऐसे ही खेती का, खलिहान का खेल चलता रहता है ।

लड़के को भागते में चोट लग जाने पर, पिता के डर से माँ की गोद में छिपकर हाँफते देख कर माँ को लगता है 'इसका दम फूल रहा है, कुछ बोलता भी नहीं, आँखें भी नहीं खोलता ।' उसका विश्वास है कि पंडित जी के भभूत देने से वह ठीक हो जायगा । -------'आजकल हवा बयार बिगड़ी हुई है' । इस सबसे बालक की रक्षा के लिए 'काली जी और महाबीर जी के यहाँ संपुट पाठ' करवाना चाहती है । अंधा मोह और अंध विश्वास गाँव की स्त्रियों का विशेष चरित्र है । पुरुष अपेक्षाकृत बुध्दि से काम लेते हैं । भोलानाथ के पिता कहते हैं, "भरम से भूत पैदा होता है------ पैरों में नागफनी के काँटे चुभे हुए देख पड़ते हैं, हरी दूब पीस कर गाय के गाढ़े दही के साथ तलवों में लेप दो और घावों पर कपूर मिलाया गाय का कच्चा घी लगा दो, आराम से नींद आ जायगी ।"[42]

'रामसहर' अपेक्षाकृत बड़ा गाँव है -- बहुत बड़ा गाँव । गाँव की बस्ती के चारों ओर आम के घने बाग हैं । बाबू रामटहल सिंह यहाँ के प्रमुख व्यक्ति और ज़मींदार आदमी हैं । उनके घर के सामने एक ऊँचा मंदिर है । जिसे गाँव वाले 'पंचमन्दिल' कहते हैं । पास में एक 'पोखरा' है जिसमें चारों ओर पक्के घाट हैं । इस मन्दिर के पुजारी हैं 'पसुपत पाँडे' । गाँव के यह निरक्षर पंडित अपने तथा आस-पास के गाँव वालों के लिए 'ज्योतिषी, तांत्रिक, कर्मकांडी और कथक्कड़' समझे जाते हैं ।

गाँव के बाबू रामटहल सिंह के घर 'सुख' हो या 'गमी' पुजारी जी पहले बुलाये जाते हैं । हवेली में उन्हें कम्बल का आसन दिया जाता है तब घर भर की स्त्रियाँ बारी बारी से आकर आँचल से पैर छूकर सिर नवाती हैं ।

बाबू साहब की हवेली यद्यपि मिट्टी की दीवारों से बनी है पर

---

[41]- देहाती दुनिया : शिव पूजन सहाय । पृष्ठ 5 ।
[42]- देहाती दुनिया : शिव पूजन सहाय । पृष्ठ 13 ।

दीवारें इतनी चौड़ी हैं कि चोर अगर सेंध मारे तो 'जाड़े की सारी रात बीत जाने पर भी दीवार आर-पार न होगी ।' बाबू साहब का जनाना मकान 'बड़ी हवेली' कहलाता है और उनकी गोशाला को गाँव वाले 'बाबू की गोठ' कहते हैं । गोशाला के पास बैठकखाना है जो 'बड़ी देवढ़ी' कहा जाता है । बैठकखाना और गोशाला के बीच एक और मकान है जिसमें बाबू रामटहल सिंह की रखेली 'बुधिया' रहती हैं ।

गाँव में विश्वास है कि ब्राह्मण की हत्या हो जाने पर वह मृत ब्राह्मण प्रेतयोनि में 'ब्रह्मपिसाच' हो जाता है । बाबू रामटहल सिंह के पिता सरबजीत सिंह ने एक बीघा खेत के लिए एक ब्राह्मण की हत्या कर दी थी । अब वही 'ब्रह्म पिसाच' होकर गाँव में उपद्रव मचाने लगा है । सरबजीत सिंह 'ब्रह्मद्वेषी' करार दे दिए गये थे । गाँव के लोग उनके यहाँ पानी भी नहीं पीते और बिरादरी वालों ने 'रोटी-बेटी' का सम्बन्ध भी बन्द कर दिया है । क्योंकि उनके साथ किसी तरह का सम्बन्ध रखने वालों को 'ब्रह्मपिसाच' सताने लगता था ।

यहाँ का एक और विश्वास — कि जब कभी गाय बैलों के घाव में कीड़े पड़ते थे तो सात, बेटी बेचने वालों के नाम लिखकर गले में बाँध दिया जाता था — यह उनका उपचार था । चूँकि रामटहल सिंह के ससुर अपनी नौ लड़कियों को बेंच चुके थे (विवाह में पैसा लेकर अपनी लड़की दी थी) अतः उनका अकेले का नाम लिखकर बाँध देने से उक्त उपचार हो जायगा — यह सोचकर गाँव वाले प्रसन्न हैं ।

गाँव का जमींदार क्रुद्ध होकर अपने कहार तथा उसके परिवार के साथ मनमाना अत्याचार कर सकता है । बाबू साहब ने 'खेदू' कहार से रुष्ट होकर उसे पीटा, उसकी स्त्री 'सोमिया' को उसके जवान बेटों के सामने नंगी करके उसे डंडे से पीटा और बहुओं की इज्जत उतार ली । इन्हीं अत्याचारों से बचने के लिए गाँव का 'पलटू' चमार ईसाई हो गया है और खेदू के लड़के 'बहोरन' और 'सजीवन' अपनी स्त्रियों के साथ कलकत्ते चले गए हैं ।

जैसे 'मेघनाद की अवाई सुनकर देवलोक में' भगदड़ मच गई थी वैसे ही गाँव में पुलिस के आने से तूफान सा आ जाता है । पास के गाँव का मुखिया, जो 'चोरों का मेठ' था, के घर पुलिस का धावा हुआ तो गाँव के सारे पुरुष अपनी अपनी जान लेकर भाग जाते हैं । जो जा सकती थी वह स्त्रियाँ अपनी नैहर या ससुराल चली जाती हैं । पर्दे में रहने वाली स्त्रियाँ गाँव में ही भटकती रह जाती हैं । पुलिस के सिपाही स्त्रियों की लाज लूट कर, अपना बल प्रदर्शन कर आतंक फैलाने लगते हैं -- अनेकों के प्राण ले लिए, घरों में आग लगा दी । 'मल-मूत्र से गाँव के कुएं तक गंदे कर दिये' । 'सनीचर की नजर से बच जाना आसान है, नदी में मगर से पिंड छुड़ा लेना सहज है पर यमलोक में छिपकर भी पुलिस के चंगुल से बचना बड़ा कठिन है ।'[43] इसलिए 'देहात में दरोगा जी को जो दावत दी जाती है वह दुनिया में दामाद को भी दुर्लभ है ।' रामसहर में बाबू रामटहल सिंह के देवढ़ी पर दरोगा जी उतरे हैं । अतः उनकी खातिर में 'कहीं खसी कटता है, कहीं गरम मसाले पिसते हैं, कहीं कड़ाही छनछनाती है, कहीं छौंक - बघार की सोंधी सुगंध उड़ती है ।'[44]

रामसहर केवल पुलिस और ज़मीदार के अनाचार आतंक का ही क्षेत्र नहीं है, रस-रंग और भागवत चर्चा का भी यहाँ अच्छा प्रवेश है । चैत के महीने में रामसहर के 'पंचमन्दिल' के 'चौतरे' पर गाँव के आदमी बैठ कर कहीं 'रामायन-महाभारत' कहीं 'सुखसागर' और कहीं गोसाईं जी की चौपाइयों पर चर्चा करते हैं । रामटहल सिंह के 'ठाकुर-बारी' में रामनौमी और जन्माष्टमी में वृन्दावन की रास लीला होती है । सावन के झूले के अवसर पर 'रास मंडल वाले' और 'रंडियों के कई गिरोह' पखवारे तक टिके रहते । कभी 'बनारस, आगरे और लखनऊ के नाच' उतरते तो कभी 'गाजीपुर की घुंघरू कसबियाँ' ही चहल-पहल मचाती ।' रामसहर वालों को 'टकाही रंडियों' का ही नाच गाना अच्छा लगता है ; उनके लिए वे 'लाख लछमन सुरी' से बढ़कर

[43]- देहाती दुनिया : शिव पूजन सहाय [पृष्ठ 68]
[44]- देहाती दुनिया : शिव पूजन सहाय [पृष्ठ 143]

हैं । इधर नाच होता रहता उधर गाँव वालों की आँखों से बचकर अभिसार भी चला करता —— पुजारी जी के पुत्र गोबरधन और रामटहल की पत्नी रामदेई में ।

तारकनाथ का ननिहाल रामसहर तो बड़ा गाँव हैं, उसके अपने गाँव की पाठशाला में हर 'सनीचर' को 'धोये हुए चावल, पैसा भर गुड़ और एक गोरखपुरिये पैसे से' हर विद्यार्थी का पाठ पुजता था । उस दिन सब लड़के पाठशाला में जमा होकर, गाय के गोबर से पाठशाला को लीप-पोत कर गुरु जी के साथ गंगा नहाने जाते थे । फिर सब लड़के घर से चावल और गुड़ की 'शिरनी' और एक गोरखपुरिया पैसा' लाते थे । शिरनी चढ़ाकर, गंध-धूप देकर अपनी अपनी जगह पर घुटनों के बल झुककर सब लड़के धरती में सिर टेकते थे । गुरु जी एक तरफ शुरू करके लगातार सब लड़कों की पीठ पर मीठी-मीठी छड़ी लगा जाते थे ——यही पाठ पूजा थी । गुरु जी लड़कों से प्राप्त 'सीधा' घर पर भेज दिया करते थे और पैसे से सत्तू खरीद कर खाया करते थे । अनेक गरीब लड़कों के यहाँ उनका 'दरमाहा' और सीधा बाकी भी पड़ा रहता था । इस पाठशाला में वर्णमाला एवं गिनती का अभ्यास 'बरतावन' से होता था ——

क से करम करो, ख से खाओ
ग से गोविन्द के गुन गाओ- - - - - - - - - -आदि तथा
एकै राम, दूज के चाँद
तीन तिरलोक, चारो वेद - - - - - - - - - -आदि'[45]

रामसहर के 'हिन्दी मिडिल स्कूल' में किसी लड़के के माँ बाप न तो गुरु जी से अपना दुखड़ा रोने आते हैं और न गुरु जी सुनते ही हैं । जिनकी फीस का रुपया नहीं मिलता उनका नाम कट जाता है । वहाँ विद्यार्थी 'धूल की मँड़ई' में चटाई पर बैठते थे, यहाँ 'टिपकारी की हुई लाल ईंटों' से बनी पक्की छत वाली 'बंगलानुमा इमारत' में स्कूल है । वहाँ 'गुरुजी' सिर पर टोपी पहन कर कंधे पर मैला अंगोछा

{45}- देहाती दुनिया : शिवपूजन सहाय {पृष्ठ5।}

डाले, डोरी से बँधा हुआ चश्मा पहन कर ऊँची वेदी पर बैठ कर पढ़ाते थे। यहाँ के 'मास्टर साहब' कामदार चमरौधा जूता, कमीज कोट और कंघी किये हुए बालों पर नीची दीवाल की काली टोपी पहने हुए, कुर्सी पर बैठकर पढ़ाते हैं। हाँ, छड़ी दोनो जगह समान रूप से विद्यमान है। अब तो गाँव वालों के यहाँ बहुत दरमाहा और सीधा बाकी रह जाने से गुरु जी बिचारे ऊब कर चले गए अतः उस गाँव की पाठशाला उठ गई है।

छोटा हो या बड़ा, गाँव तो गाँव है। अतः यहाँ भी टोने-टोटके चलते हैं, 'राकस' 'पिसाच' सताते हैं। छोटी छोटी बात पर झगड़ा-झंझट होना यहाँ की दिनचर्या का अंग है। पसुपत पाँडे की स्त्री, गोबरधन की माता अपने कर्कश स्वभाव के कारण गाँव में 'पाताल की डाइन' कही जाती है। रोज ही किसी न किसी से झगड़ा कर बैठती 'हुंडहो – पुतहो करने में कोई पेश न पाता।' पाँड़े जी को 'मदारी के बन्दर' की तरह नचाती है। अपने कोई बच्चे न जीने पर तरह तरह के टोटके करती-करवाती है। वह अपनी पतोहू को 'किसी न किसी काम में नाथे रहती'—आधी रात तक तेल लगवाती, देह दबवाती, पंखा झलवाती, बरतन मंजवाती, 'ममसाघर' लिपवाती और चक्की पिसवाती रहती है।

यहाँ तिवारी जी पर 'राकस' आता है। एक बार 'राकस' आने पर वह देवघर पर कूदने-फाँदने लगे, कहने लगे—"मैं जाति का नट हूँ। मसान घाट के पीपर पर रहता हूँ। यह रोज उसी तरफ डोल-डाल करने जाता है। दिशा-जंगल फिरने के लिए इसे दूसरी जगह नहीं मिलती ? इसका बरकना छुड़ाऊँगा।" वह 'नकली नट' गरजता रहा —"खसी लूंगा, भेंड़ा लूँगा, सुअर बौना लूंगा, मुर्गा लूंगा। – – – जल्दी दे न मारूँगा – —— – –"[46]

गाँव के ब्याह-बारात में बड़े आदमी का विशेष सत्कार

---

§46§– देहाती दुनिया : शिव पूजन सहाय § पृष्ठ 164 §

होता है । 'मूसन तिवारी' के भतीजे की बारात में तारकनाथ और उसके पिता पालकी पर चलते हैं, साथ में टट्टू पर दरबान 'पूरन सिंह' और उसके पीछे 'खेदू' बँहगीदार । पालकी के कहार 'हुँः हाँः' करते चलते हैं । बबूल के काँटे को देखकर कहते 'रमहला है ।' भंटकटैया और नागफनी को कहते 'सुनहला है ।' बहुत 'ऊँच-खाल' देखते तो कहते 'कमरतोड़' है । बीच बीच में वे 'गँवारू विनोद' करते चलते हैं । रास्ते में वे जब किसी बस्ती के पास पहुँच कर पालकी रखते तो बोलते ———

जय बजरंगबली ध्वजा धारी[47]

— — — — — — — — — — — — — हे

विवाह में कन्या के दरवाजे पर स्त्रियों का झुंड खड़ा है — जो 'नई नवेली' है वे अपने मुँह पर 'आँचर' दिये हैं । वर की पालकी लिए कहार 'गँवारू-मसखरी' करते संकरी गलियों में पालकी लिए चले जा रहे हैं । कहीं कहीं जब मोरी-पनाली की गड्ढी बीच में उनके पैर घुटने तक फँस जाते तब वे हाँफ भरी हँसी में कहते, 'यह देसावर का पातानी चोवा चन्दन' है ।

बारात के दरवाजे लगने पर दोनों ओर के पंडित 'द्वारस्य पुजा द्वार पूजा किंमर्कम्' और 'अशुद्धं किं वक्तव्यं' आदि कह कर जूझने लगे जो बीच बचाव करने पर शान्त हो सका । स्त्रियाँ जी खोल कर गाली गा रहीं हैं और बाराती दिखा दिखा कर फुलझड़ियाँ छोड़ रहे हैं ।

जनवासे पर नाच वाली गा रही है — 'फिराय मोरी अँखियाँ, हमसे न बोलो', तमाशबीनों में से एक बूढ़ा बोल उठता है, "तनिक बताती चलो बीबी, कैसे फिराय मोरी अँखियाँ ।"[48] दूसरी ओर स्वांग चलता रहता है ।

इधर ब्याह की रस्में चल रही हैं उधर दुलहे के बाप 'लक्खू

§47§- देहाती दुनिया : शिव पूजन सहाय § पृष्ठ 168 §
§48§- देहाती दुनिया : शिव पूजन सहाय § पृष्ठ 180 §

'तिवारी' बिगड़ रहे हैं, 'घोड़े के वास्ते एक मन चना लिए बिना हम मँड़वे में लात नहीं धरेंगे।' बात बढ़ती जाती है --'मूँज की तरह धूरने' तक की नौबत आ जाती है। जैसे तैसे ब्याह सम्पन्न होता है।

रामसहर जैसे गाँव का जन-सामान्य बे पढ़ा और जाहिल है। तार चिट्ठी उसके लिए समान हैं और उसके जानते तार भी चिट्ठी के बम्बे में डाला जाता है। यहाँ चिट्ठी 'सुक्र और सोमार' को बाँटी जाती है। पर अधिकांशतः 'गाँव जवार का आदमी कभी हाट बजार करने उधर जाता है तो डाक मुंशी उसी के हाथ सबकी 'चीट्ठी भेज देते हैं। जब कोई भारी रकम का मनीआर्डर होता है, तब फी दहाई एक दुअन्नी, लेने के लिए खुद आते हैं।'[49]

इनकी जहालत से फायदा उठाने वाले यहाँ बहुत हैं--गाँव में भी और बाहर के भी। एक कोई व्यक्ति 'उकौनिया' बनकर हाथ देखते 'नवाब' की जवान बेवा लड़की 'मंगिया' को ले उड़ा था अब वह हबड़े में पकड़ा गया है।

गाँव के व्यक्ति को और जब कि वह अंधा हो 'हबड़ा स्टेशन का शोर गुल और आपा-धापी चकित कर देता है। वह अपने साथी 'सजीवन' से पूछ बैठता है, "मालुम होता है कि हम लोग नये मुलुक में पहुँच गए। यहाँ तो बहुत हल्ला हो रहा है। कहीं आग तो नहीं लगी है?" सजीवन उसे बताता है कि पुल पार करके कलकत्ते को देखो तो यह कलकत्ता 'हरिहर के मेले का नकड़ दादा' लगता है।'[50]

रामसहर से भागे बहोरन और सजीवन कलकत्ते आकर प्रसन्न हैं ---- बहोरन को अंग्रेज मालिक के घर से चाय, बिस्कुट, शराब और सिगरेट मुफ्त मिला करती है संजीवन एक सेठ का नौकर था अतः वह आटा घी चीनी चावल और पापड़ से घर भरे रहता। सेठ-सेठानी, और

---

§49§- देहाती दुनिया : शिव पूजन सहाय § पृष्ठ 175 §

§50§- देहाती दुनिया : शिव पूजन सहाय § पृष्ठ 123 §

मेम साहब के उतारन से उन लोगों के वस्त्र की आपूर्ति होती रहती ।

'देहाती दुनिया' में लेखक ने देहात के विशेष और सामान्य दोनों प्रकार के व्यक्तियों को लेकर जिस ग्रामीण समाज का चित्र प्रस्तुत किया है उसमें सारा जन समाज जहालत और अंधविश्वास से ग्रस्त है । जमींदार तथा पुलिस के निरंकुश अत्याचार के भी चित्र हैं । इस पर भी ग्रामीण समाज की जीवन्त जीवन दृष्टि इन सबसे ऊपर है — आगरा लखनऊ की नाचवालियों से लेकर 'टकही रंडी' तक सबमें उनको जैसी रस-रुचि है, रामायण, महाभारत की कथा-चर्चा में भी वैसा सोत्साह सहयोग है । देहाती दुनिया अतीत से अनभिज्ञ, भविष्य चिन्ता से मुक्त, केवल वर्तमान में बसती, जीती है ।

<u>लगन § 1927 ई0 §</u>

लेखक ने बुन्देलखण्ड के 'बरौल' और 'बजटा' गाँवों की पृष्ठभूमि में घटित एक घटना को अपनी कथाकृति की विषय-वस्तु बनाया है । 'चिरगाँव' से पूर्व की ओर लगभग पाँच मील पर 'बजटा' नामक एक गाँव था जो अब उजड़ गया है और 'चिरगाँव' से उत्तर-पूर्व की ओर लगभग सात मील पर 'बेतवा' नदी के उस पार 'बरौल' गाँव है – ये दोनों गाँव कथा-क्षेत्र हैं 'लगन' के ।

गाँव में प्रायः सभी के पास कुछ न कुछ खेत होता है और घर में जानवर । अतः खाने लायक अनाज और घी-दूध सब घर में होता है । 'बजटा' के 'शिबू माते' और 'बरौल' के 'बादल चौधरी' दोनों के घर तीन-चार सौ गायें-भैंसे हैं । जो अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न हैं उनके घर खेत और जानवरों के दूध की आमदनी चिरगाँव के 'रावसाहब' का लगान चुकता कर देने के बाद भी बचती है । बजटा के शिबू माते इस बची हुई धनराशि को घर में गाड़ देते हैं ।

उस समय तक बजटा और बरौल के रहने वालों में विवाह-शादी में दहेज करार का चलन नहीं था । फिर भी शिबू माते अपने बेटे

देवसिंह के ब्याह में बादल चौधरी से सौ रुपये दहेज़ में देने की बात पक्की करते हैं । यद्यपि जाति के लोग समझाते हैं कि लेन-देन की ऐसी नई प्रथा निकालना उचित नहीं है । विवाह में लड़की के घर के मुख्य द्वार पर बन्दनवार लगाई जाती है जिसमें जामुन के पत्ते भी गूँथे जाते हैं । दीवारों पर चित्रांकन करके अलंकृत किया जाता है ।

विवाह-शादी के अवसर पर सामान्यतया लड़की वालों को दबना पड़ता है और अक्सर लड़के वालों से गालियाँ तक खानी पड़ती हैं । बादल जू ने अपने लड़के ब्याह कर लड़की वालों को 'गालियाँ दी थीं ।' पर लड़की के ब्याह में उन्हें सुनना पड़ता है ---'नाक न कटवा ली तो क्या बात रही । जा यहाँ से, कह दे उस नकटे से कि अपनी लड़की को चाहे जहाँ बिठवा दे, हमारे घर से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा । और यदि अब कोई संवाद लेकर यहाँ आया तो जूतों से सिर उड़वा दूंगा ।'[51] विवाह में लेन-देन को लेकर ऐसे झगड़े गाँवों में सामान्य हैं ।

बुन्देलखण्ड के गाँवो में विवाह हो जाने पर भी उस विवाह को अमान्य करके लड़के वाले लड़की को 'छोड़-छुट्टी' कर सकते थे । शिबू ने देवसिंह और रामा के विवाह को न मानकर लड़की को 'छोड़-छुट्टी' कर दी है । भले घरों में ब्याह करके छोड़ी हुई लड़कियों का दूसरे आदमी को 'बैठलवा' देने का रिवाज तो था §पर प्रतिष्ठा की हानि समझी जाती थी§ । जाति के कुछ लोगों ने विशेष कारणों से लड़कियों के ब्याह सधवा होने पर भी दूसरी जगह कर दिये थे । ~~परन्तु जिनके घरों में नहीं हुआ था दूसरी जगह कर दिये थे ।~~ परन्तु जिनके घरों में नहीं हुआ था उनके मन में थोड़ी हिचक थी । बादल जू के मन में भी यही 'खटक' थी । इन सामाजिक सीमाओं से भली भाँति अभिज्ञ शिबू भी कहता है, "भलेघर वाला तो उस लड़की को अपने घर बिठलवाएगा नहीं ------ ।" इधर ब्याह को 'छोड़-छुट्टी' करने वालों पर भी बिरादरी का अनुशासन है । बादल कहता है "छोड़-छुट्टी हो जाना इतना सहज थोड़ा ही है । बिना जाति के दण्ड के क्या मैं कचटा वालों को यों ही छोड़ दूँगा ।"[52] इस दुबारा

§51§- लगन : वृन्दावन लाल वर्मा, § पृष्ठ 13 §
§52§- लगन : वृन्दावन लाल वर्मा § पृष्ठ 77 §

विवाह को बुन्देलखण्ड में 'घरीचा' कहते हैं । विवाह-शादी में लड़की का मन या इच्छा जैसी किसी बात पर ध्यान देना परम्परा में नहीं है । अतः रामा जानती है कि "घर के लोग जो तय कर देंगे, सिर के बल मानना पड़ेगा ।"[53]

बरौल के लोग नहाने-धोने के लिए बहुधा गाँव से बाहर जाया करते हैं । रामा भी कभी-कभी अपनी सखी सुभद्रा के साथ बाहर नदी या नाले पर जाया करती है । एकान्त में सखियाँ आपस में निर्दोष व्यंग्य-परिहास भी कर लेती हैं । सुभद्रा रामा से कहती है नाले के पास बैठ कर क्या "किसी की बाट जोहती है ?" हँसी में धौल-धप्पा भी चलता है ।

गाँव में सम्भ्रान्त घर की लड़कियाँ अजनबी पुरुषों से बात-चीत नहीं करती — अनावश्यक प्रवाद का कारण बन जाता है । रामा नाले के पास उस अजनबी 'पन्नालाल' से बात नहीं करती । इस गाँव में पीपल के पेड़ के नीचे चबूतरे पर स्थापित देवी-देवता के स्थान पर संध्या को दीपक जलाने की रीति है । रामा अपनी सखी सुभद्रा के साथ 'आँचल से दीप शिखा की रक्षा करती हुई' पीपल के पेड़ के नीचे दिया रखने आती है । और देवता से अपनी 'आन रक्षा' निबाहने के लिए पीपल की खोह में एक 'बिंदी' रख देती है ।

गाँव के लोगों में आपस में परिचय प्राप्त करने के बाद पहला प्रश्न जाति के विषय में होता है । 'पहाड़ी' का 'पन्ना लाल' जो रंग-बिरंग साफे और रसिक तबियत का होने के कारण पहाड़ी के स्त्री-पुरुषों में 'बन्ना छैला' के नाम से प्रसिद्ध था, 'बजटा' के देवसिंह से पूछता है, "कौन लोग हो ?" गाँव-देहात वालों के लिए अभिमान की और उल्लेखनीय बात है कि उन्होंने दिल्ली, लाहौर आदि बड़े बड़े शहर देखे हैं ।

वहाँ अफवाह बिना आधार के ही फैलती है और यदि थोड़ा कुछ मिल जाय तो कहना ही क्या । बादल चौधरी के दरवाजे पर रात को

§53§- लगन : वृन्दावन लाल वर्मा §पृष्ठ 36§

कोई आया था । बस, उसी बात को लेकर कोई कहता है, 'चोर घर में घुस आया था, कोई कहता है कोई और बदमाश स्त्रियों के घर में आ बिलमा था, कोई कहता है बखटा वाला भैंस चुराने आया था ।'[54] बरौल की बस्ती भर में शोर है कि पहाड़ी वाले लाला रात को खिड़की की राह रामा के पास आया करते हैं । रामा अपनी अटारी में अकेले और खिड़की खोल कर सोती ही इसलिए है । लड़की के विषय में प्रवाद फैल जाने पर न तो ससुराल वाले उसे 'ग्रहण' करेंगे और न कोई दूसरा ही 'अंगीकार' करेगा ।

देहात में लड़कियाँ सावन में मायके आती हैं । सावन बीतने पर घरवाला बिदा कराने आता है लड़कियाँ उसके साथ ससुराल चली जाती हैं । सुभद्रा सावन भर अपने मायके 'बरौल' रही, अब उसका घरवाला बिदा कराने आया है ।

देहात के मकान 'सीधे सादे नमूने के' होते हैं । उनमें कोई 'भूल-भुलैया' नहीं होती बादल चौधरी का मकान बड़ा होने पर भी सीधा-सादा था - अतः पन्नालाल जब अन्दर जाता है तो उसे सारे घर की रूप-रेखा स्पष्ट हो जाती है । यहाँ किसी के घर थोड़ा भी शोर होने पर पड़ोसी लाठियाँ, बर्छे और कुल्हाड़ियाँ लेकर सहायता के लिए आ जाते हैं । बादल जू के घर चोर आया जान कर सभी पड़ोसी आ पहुँचते हैं ।

गाँव के लोग सहृदय और निष्कपट होते हैं — आवेश आने पर मरने मारने को तैयार और प्रसन्न होने पर हर्षातिरेक में नाचने लगते हैं । लड़ाई झगड़ा करके बारात वापस ले आने पर और लड़की को 'छोड़-छुट्टी' बोल देने पर भी ब्याही पुत्रवधू के बखटा के निबू माते के घर स्वयं आ जाने पर निबू प्रसन्नता से नाचने लगता है और बहू को घर के भीतर पहुँचा कर पड़ोस की औरतों को पुकारने लगता है 'अरी आओ री आओ । देख जाओ, कैसी हीरा सी बहू आई है ।' यहाँ तक कि हर्षातिरेक में बहू की प्रशंसागाथा कहते कहते रो पड़ता है । अन्त में तारा लेने देन भूल कर

[54]- अमरः वृन्दावन लाल वर्मा [पृष्ठ 78]

स्वयं ही भाई बन्दों को साथ ले जाकर, समधी बादल चौधरी के घर बरौल जाकर अपने बेटे से कहता है- - - - - -'बहू के पुण्य प्रताप से हम सब बच गए ।'[55] दोनों समधी भी अपने अपने दोषों को स्वीकार करते हुए निर्मल हृदय से मिल जाते हैं ।

इस प्रकार 'लगन' में एक कथा के माध्यम से बुन्देल खंड के गाँवों के रीति रिवाज से युक्त सामाजिक जीवन का चित्रण किया गया है जिसमें व्यक्ति की सत्ता भी है और समाज की भी । गाँव की संकुचित मानसिकता के भीतर एक निर्मल एवं सहज जीवन-दर्शन उसका अपना चरित्र है ।

संगम § 1927 ई0 §

बुन्देलखण्ड प्रदेश का 'झाँसी' जनपद तथा उसके "ढिमलौनी" और 'बरुआसागर' गाँव की पृष्ठभूमि पर 'संगम' की कथावस्तु का विस्तार किया गया है । झाँसी से उत्तर-पूर्व की ओर चार कोस पर 'ढिमलौनी' गाँव है । झाँसी से बरुआसागर के रास्ते में दाईं ओर दूरी पर बैंगनी रंग के झुलसे हुए से पहाड़ों की कतार और बीच बीच में सम-विषम, विस्तृत रूखी भूमि, केवल कहीं कहीं इधर-उधर महुओं, पलाश, करौंदी और जरिया के हरे हरे झाड़ लगे हैं । बाईं ओर 'लम्बे-चौड़े सूखे खेत और ऊँचाई में छोटी परन्तु विस्तार में बड़ी-बड़ी कठोर ज्वाला सी उगलने वाली चट्टाने' हैं । सड़क पक्की है और दोनों ओर बड़े-बड़े पेड़ — यह है कथा-क्षेत्र का भूगोल ।

ब्राह्मण की कुलीनता से ही उस समय झाँसी जैसे नगर-समाज में ब्राह्मण की प्रतिष्ठा नहीं चल सकती थी--सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए लक्ष्मी की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो चली थी । शहर में बेरोजगारी की समस्या सिर उठाने लगी थी । कुलीन पर दरिद्र ब्राह्मण 'भिखारी लाल' का पुत्र 'सम्पत लाल' केवल हिन्दी ही पढ़ा है अतः किसी दफ्तर में छोटी-मोटी जगह भी उसे न मिल पायी क्योंकि दफ्तर के लिए अंग्रेजी

§55§- लगन : वृन्दावन लाल वर्मा § पृष्ठ 126 §

का ज्ञान आवश्यक है । जीविका हीन निर्धन ब्राह्मण का विवाह भी सहज सम्भव नहीं है । अतः अठारह-उन्नीस वर्ष का हो जाने पर भी सम्पत लाल का विवाह अभी तक हो नहीं पाया है ।

गाँव में व्यक्ति के अस्तित्व से अधिक महत्वपूर्ण है जाति की शुद्धता । अतः किसी की जाति के विषय में निश्चय पूर्वक कुछ न पता होने पर या थोड़ी भी शंका होने पर उसकी सामाजिक स्थिति बड़ी विडम्बना पूर्ण हो जाती है । 'बरुआसागर' नामक गाँव में नाई द्वारा पोषिता, मातृ-पितृ हीना ब्राह्मण कन्या को ब्राह्मण समाज स्वीकार करने में डरता है क्योंकि उसे स्वीकार कर लेने पर जाति च्युत कर दिये जाने की आशंका है । कन्या के साथ प्रचुर धन का भी संयोग है । अतः उस कन्या से ब्याह करने के लिए आये हुये साहसी दरिद्र ब्राह्मण कुमार को बरुआ सागर के सज्जनों के 'निष्क्रिय और सक्रिय उपद्रव से घबराकर' बिना ब्याह किए ही भाग जाना पड़ा है ।

झाँसी जैसे शहर में भी पर जाति की स्त्री से सम्बन्ध रखना सामाजिक मर्यादा के विपरीत है । पं० सुखलाल जिन्होंने अपनी जवानी के समय 'अहिरिन' को रख लिया था, उन्हें झाँसी के सब ब्राह्मण 'न्यौता-हँकारी' में नहीं बुलाते । यद्यपि पं० सुखलाल ने अहीरिन के हाथ का खाना न खाकर और उससे उत्पन्न पुत्र 'रामचरण' से सम्बन्ध रखकर सामाजिक अनुशासन का पालन किया है । हाँ, खुल्लमखुल्ला उन्हें जाति-च्युत करने की हिम्मत बिरादरी में नहीं है क्योंकि 'लेन-देन' और जमीं-दारी की कृपा से वे सम्पन्न हैं ।

बुन्देलखण्ड का विशेष पहिरावा है --'झब्बूदार बुन्देलखण्डी जूते' और 'घुटन्नू धोती', सिर पर ऊँचा साफा, बदन पर चादर और हाथ में लम्बा लठ' । आपस में परिचय का प्रारम्भ होता है जाति पूछकर झाँसी से बरुआसागर जाते समय नन्दराम से उसका सहयात्री सबसे पहले उससे उसकी जाति पूछता है और नन्दराम की ओर से भी वही प्रतिप्रश्न होता

है ।

बुन्देलखण्ड प्रदेश में डाकुओं का बड़ा आतंक है । पर वहाँ डाकू औरतों को बचाकर आक्रमण और लूटपाट करते हैं । डाकू लालमन कहता है, "औरतों को हटा दो । हम लालमन है औरतों पर हाथ नहीं डालते ।"[56] परन्तु जनमानस में पुलिस का भी आतंक कम नहीं । ये कहते हैं, "संसार में ऐसा कौन है जो पुलिस से नहीं डरता" क्योंकि "ये साले बड़े बदमाश होते हैं । ये बेइमान अपने बुरे बर्ताव से डाकुओं की संख्या बढ़ाते हैं ।"[57] इसके अतिरिक्त जब कभी गाँव में पुलिस आती हैं तो देहातियों को जो कष्ट बेगार आदि के रूप में होता है उससे वे लोग आपत्तिकाल में भी पुलिस का न आना ही श्रेयस्कर समझते हैं । अतः डाका या मारपीट, दंगा के अवसर पर यदि कभी किसी एक घर पुलिस आती थी तो पूरे मुहल्ले के लोग घर-मकान बन्द करके अपने को अन्दर बन्द कर लेते थे । वैसे 'पुलिस पूजा' का 'सांगोपांग' विधान है जिसमें 'वाक्-चातुर्य' और 'झंकार बजने' की विशेष और प्रभावी भूमिका है । भिखारी लाल के पुत्र सम्पतलाल के विवाह में, बरुआसागर में, विवाह के समय हुई मारपीट की 'तहकीकात' के लिए आई पुलिस से मामले को 'रफा-दफा' कराने के लिए पं० सुखलाल ने इन्हीं दोनों अस्त्रों की सहायता से सफलता पायी है ।[58]

बुन्देलखण्ड में विवाह की पारम्परिक रीति है--बारात आगमन के बाद टीका, टीके के बाद चढ़ावा और फिर 'कच्ची रसोई की पाँत' तदुपरान्त 'भाँवरे' पड़ती है । शादी में वर पक्ष दिखावे के लिए माँग कर जेवर लाया है । शादी-विवाह में झगड़े-टंटे भी बड़े होते रहते हैं — कभी जात-पात को लेकर तो कभी और किसी बात पर । बारात के साथ 'रंडी का नाच' एक प्रकार से आवश्यक है । अन्यथा बारात की प्रतिष्ठा गिरती थी और लड़की वाले भी अपने दरवाजे की तौहानी

॥56॥- संगम : वृन्दावन लाल वर्मा ॥ पृष्ठ 12 ॥

॥57॥- संगम : वृन्दावन लाल वर्मा ॥ पृष्ठ 27 ॥

॥58॥- संगम : वृन्दावन लाल वर्मा ॥ पृष्ठ 61 ॥

समझते हैं । किसी विकल्प – नौटंकी मंडली से बात सँभल जाती है । भिखारी लाल स्वाँगी से नौटंकी मण्डली के साथ बारात लेकर बलआसागर आया है, बाजों का भी प्रबंध है । लड़की वालों के द्वार पर धमकते [illegible] रखे हुए हैं । स्त्रियाँ "टीका" का गीत गा रही हैं —

'सीस नवे, परखा नवे जब साजन आए' [59]- - - - - - दूल्हा पालकी पर चढ़कर लड़की के दरवाजे आता है । भाँवरों के बाद "कच्ची पंगत" पर हँसी-मजाक चलते रहते — कटाक्ष इतने "व्यंग्यात्मक", "अभद्र" और "रोचक" होते थे कि "विवाह का अवसर न होता तो लाठी-डंडे चलते ।" भोजन आरम्भ करने के लिए कन्या पक्ष का प्रमुख व्यक्ति वर को भेंट में रुपये देकर भोजन प्रारम्भ करने की प्रार्थना करता है । कन्या विदाई के समय का "करुण क्रन्दन" सामान्यतया सभी को द्रवित कर देता है फिर निकटतम आत्मीयों के लिए कहना ही क्या ? अपनी धर्मपुत्री 'जानकी' की विदा के समय धनीराम बहुत रोया ।

झाँसी की ओर नई बहू से प्रायः एक महीने तक कोई काम नहीं लिया जाता है । "खिचड़ी-पत्ता" की पंगत हो जाने के बाद ही नई बहू पर गृहस्थी का कोई भार डाला जाता है । परन्तु जानकी को तीसरे दिन से ही काम करना पड़ा — सास का "शासन" आरम्भ हुआ । बहू की असहनशीलता सास – बहू के पारस्परिक कलह का सूत्रपात करने में सहायक हुई । जानकी की सास कहती है, "पतुरियों की तरह दिन भर माँग-पट्टी किए रहती है,- - - - - - - -अब देखूँगी तो बाल नोंच लूँगी ।" तो बहू कहती है, "मेरे बाल नोंच के नहीं हैं, बाई ।- - -जिस दिन बाल नोंचने को हाथ उठाओगी, उसी दिन घर भर को हत्या दूँगी ।"[60]

सावन के महीने में सभी लड़कियाँ अपनी अपनी ससुराल से मायके आ जाती हैं, हाथ-पैर में मेंहदी रचाती हैं, झूला झूल-झूल कर सावन गाती हैं और श्रावण पूर्णिमा को भाई की कलाई में राखी बाँधती हैं । ब्राह्मण

|59|- हंसमयूर : वृन्दावन लाल वर्मा | पृष्ठ 33 |

|60|- हंसमयूर : वृन्दावन लाल वर्मा | पृष्ठ 101 |

लोग भी यजमानों को राखियाँ बाँधते हैं और आशीर्वाद के बदले में पैसे पाते हैं ।

झाँसी के अशिक्षित जन-समुदाय में प्रतिष्ठा प्रश्न बड़ी गंभीरता से लिया जाता है । कर्ज-दर-कर्ज लेकर प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए मुकद्दमा लड़ा जाता है । बारात में हँसी-मजाक से प्रारम्भ हुए और मार-पीट तक पहुँची उस घटना को प्रतिष्ठा-प्रश्न बनाकर नन्दराम दिवालिया होने की स्थिति तक मुकद्दमा लड़ता जाता है । वह कहता है -- "बाप दादों की डूब जायगी । मेरे - घराने में मुखिया और जमींदार रहे हैं । कभी किसी ने मार नहीं खायी । सदा दूसरों को पीटते रहे । मैं मार नहीं पाया ------- इसीलिए अदालत से जेलखाने की सजा कराऊँगा ।"[61]

कचहरी में व्यस्त वकील भी हैं और जो दूसरों के मुवक्किलों को पटा कर अपना धंधा चलाते हैं ऐसे भी वकील हैं जैसे 'मुरारी लाल', जो विपक्ष की ओर से पैरवी करे तो प्रतिपक्ष वाला अपनी जीत के लिए आश्वस्त हो जाता है । कुछ ऐसे भी वकील हैं जो मैजिस्ट्रेट के बंगले पर 'नमस्कार-वन्दना' के लिए जाते हैं । कचहरी में वकील लोग अपने अपने मुवक्किलों से पेशकार और अहलकार को 'रुपये दो रुपये' दिलवा देते थे क्योंकि 'अवसर पड़ने पर सुबीते के लिए, पहले नंबर की मिसिल बीसवें नंबर पर और बीसवें नंबर की मिसिल पहले नंबर पर रखा देने में पेशकार सहायक' हो सकता है ।"[62]

यहाँ {झाँसी में} जाति-बिरादरी के झगड़े भी चलते रहते हैं और तीज-त्यौहार अपने ढंग से मनते रहते हैं । विजयादशमी के कुछ दिन पहले 'टेसू' बनाए जाते हैं । लड़के रात की चाँदनी में --

'टेसू टमम्न के, सींग लागे हिम्न के,
दाढ़ी लागी जोग की, जय बोलो त्रिलोक की ।'

गाकर कबड्डी खेलते । सूर्योदय से पहले, भोर के समय छोटी-बड़ी लड़कियाँ गाने लगतीं --

{61}- संगम : वृन्दावन लाल वर्मा {पृष्ठ 78}
{62}- संगम : वृन्दावन लाल वर्मा {पृष्ठ 92}

हिमालय जू की कुंवरि लड़ायती,
नारे सुअटा, ।[63]

- - - - - - - - - - - - - - -

दीवारों पर 'सुअटा' की मूर्ति थोपी जाती है । जिसका श्रृंगार किया जाता "हरी दूबा और लाल कनेर तथा कद्दू के पीले फूलों" से । सामने चबूतरे पर रंग-बिरंगे चौक पूरे रहते हैं । लड़कियाँ अपने रंग-बिरंगे 'सुअटा' के सामने बड़ी चाव से गाती है ।——

तिलके फूल तिली के दानै
चन्दा उगौ बड़े भुन्सारें ।[64]

उधर ब्राह्मण महासभा का अधिवेशन चल रहा है—पहले दिन वेद भगवान की सवारी के साथ 'बड़े बड़े पग्गड़ और पगोटे बाँधे, तिलक लगाए "वेद भगवान की जय" का घोष करते' ब्राह्मणों की शोभा-यात्रा शहर के सड़कों पर निकली । फिर सभापति का भाषण, विषय निर्वाचिनी समिति की बैठक, प्रस्ताव और व्याख्या आदि हुई । लोगों को तब मालुम हुआ वेद चार हैं । सभा में स्पष्ट रूप से कहा गया —'यह सब हिन्दुओं की सभा नहीं है । यह ब्राह्मणों की सभा है ।- - - - यह सब ब्राह्मणों की सभा नहीं है — केवल हमारी जाति की सभा है ।[65] कुछ प्रस्ताव जैसे दहेज न लेना, आतिशबाजी न फूंकना, रंडी का नाच न कराना आदि प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हो गए । हाँ, विधवा-विवाह, सहभोज आदि प्रस्ताव विवादग्रस्त रहे ।

सामान्य जनता अंधविश्वास और जहालत से ग्रस्त है—ललितपुर में प्लेग फैला और झाँसी में खबर आई कि सरकार शहर और देहात में भी प्लेग फैलावेगी । कोई कहता था कि एक लालटेन विशेष के द्वारा सरकार प्लेग फैलाती है और कोई कहता था कि अंग्रेज लोग रात को एक शीशी खोल देते हैं जिससे हिन्दुस्तानियों को प्लेग हो जाता है ।

---

§63§- संगम : वृन्दावन लाल वर्मा § पृष्ठ 121 §
§64§- संगम : वृन्दावन लाल वर्मा § पृष्ठ 122 §
§65§- संगम : वृन्दावन लाल वर्मा § पृष्ठ 126 §

झाँसी में भी प्लेग फैल रहा है । लोग शहर छोड़ कर जा रहे हैं । सुखलाल झाँसी छोड़ कर 'टिमलौनी' गाँव चला गया है । केवल वही लोग नहीं गए हैं जिनका बाहर ठहरने या पेट भरने का ठिकाना नहीं है या जिनमें ऐसे सुयोग पर चोरी करने की हिम्मत है, जो वृध्द या असहाय हैं, या जो धन-सम्पत्ति को प्राणों से बढ़कर समझते हैं । इन सबसे अलग कुछ ऐसे भी हैं वहाँ कर्तव्य भाव से रह गए हैं -- रामचरण भी ऐसा ही व्यक्ति है ।

इस भयानक आपत्तिकाल में भी 'जाति--प्रश्न' अपने स्थान पर है । प्लेग से मरे ब्राह्मण शवों की ऐसी दुर्दशा' जैसा विचार आता है ; वहीं कायस्थ लड़कों की सेवा समिति वीरता और दृढ़ता की पात्र होते हुए भी केवल कायस्थों के शव को 'ठिकाने लगाने' का उत्तरदायित्व निर्वाह करती है ।

प्लेग और प्लेग के भय के कारण झाँसी शहर बड़ी दुर्दशा में है । किसी को यदि साधारण ज्वर भी हुआ तो उसे 'क्वारन्टाइन' में जाना पड़ता था । ये 'क्वारन्टाइन' दतिया दरवाजे के बाहर सड़क से हट कर बने हुए थे । खुले हुए टपरे, जहाँ रोगियों की कराह को सुनने वाला कोई भी न था । सबेरे एक डाक्टर दूर से मरीज की नब्ज देखकर और दवा-दारु के लिए अपने मातहतों को सख्त हुक्म देकर चला आता था । मातहत लोग संध्या के पहले एक बार 'क्वारन्टाइन' में दवा दारु रख आते थे और फिर सबेरे डाक्टर के आने से पहले वहाँ पहुँच जाते थे । केवल आधे दर्जन मेहतर जरुर ऐसे थे जो अपने प्राणो को हथेली पर लिए रहते थे और यथाशक्ति रोगियों की देखभाल किया करते थे । लोगों में अफवाह थी कि जो रोगी अपनी मौत नहीं मरता उसे डॉक्टर अपनी दवा से खत्म कर देते हैं । नगर में रामचरण ऐसा व्यक्ति था जो रोगियों की सेवा और मुर्दे को सद्‌गति देने में दत्तचित्त लगा हुआ था । पुलिस का 'साधारण कार्य--डाँट-डपट' भी ठीक चल रहा था । रात के समय, लोग कहते हैं कि कुछ 'पुलिस वालों' की सहायता से मकानों के बन्द ताले टूटते थे और

उनका बोझ हल्का हो जाया करता था ।"[66] कोतवाल लोग बिना जाँच किए झूठे मुकददमें और झूठे गवाह बना लिया करते थे । नन्दराम बनाम सुखलाल का मुकद्दमा इसका उदाहरण है । जब कभी उनकी यह धोखाधड़ी पकड़ी जाती तो सजा के तौर पर इनका तबादला करके आगे की तरक्की रोक ली जाती थी । कभी कभी पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट और कलेक्टर घोड़ों पर चढ़ कर नगर की दशा देखने के लिए आते थे ।

बुन्देलखण्ड में एक और व्यापार पनप रहा है । पंजाबी व्यापारी आकर औरतों को खरीद खरीद कर पंजाब ले जा रहे थे । झाँसी के 'निठल्ले' भी इधर उधर से औरतों को पकड़ कर उन्हें व्यापारियों को बेंच कर पैसा पाने की युक्ति सोच रहे हैं । 'जालंधर' से आया पंजाबी एक एक औरत के पाँच-पाँच सौ रुपये दे देता है । वह तीन चार औरतें खरीद चुका है और उन्हें 'पंजाब के घाट उतार चुका है ।'

समाचार-पत्र की शक्ति प्रभावशाली थी । रामचरण के द्वारा लिखे गए तथा समाचार-पत्र में प्रकाशित 'पुलिस की पैशाचिकता' लेख ने पुलिस साहब को झकझोर दिया है । 'बुन्देलखंड की स्त्रियाँ प्रबल' होती हैं । आन के लिए जान दे देना उनके लिए साधारण बात है । 'रामचरण' की प्राण रक्षा के लिए 'गंगा' ने अपने जान की बाजी लगाकर उस पर पड़ते डाकुओं के वार को अपने ऊपर झेल लिया ।

कोई नई दृष्टि, सुधारवादी ही क्यों न हो, झाँसी के रहने वालों के लिए ग्राह्य नहीं है । रामचरण के साथ विधवा गंगा के विवाह की खबर ने नगर भर में हलचल मचा दी । कोई रामचरण के गेरुआ वस्त्रों की निन्दा करने लगा और कोई उसके आडम्बर की । जाति वालों ने तो निश्चय कर लिया है कि वे सुखलाल के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखेंगे । हाँ, केशव और सम्पतलाल जैसे इक्का दुक्का लोगों ने इस बहिष्कार का साथ न दिया ।

बुन्देलखंड का झाँसी जनपद और आस-पास के दो-एक गांव

{66}- संगम : वृन्दाबन लाल वर्मा, { पृष्ठ 165 }

§कथा क्षेत्र§ का समाज रूढ़िग्रस्त, परम्परा सेवी और जातिवादिता से आबध्द है — पर इन सबसे मुक्त होने की कसमसाहट अनुभव की जा सकती है । रामचरण के माध्यम से नये मूल्यों की व्यवहार्य स्वीकृति दिखाई पड़ती है तथा केशव और सम्पत लाल के रूप में उन मूल्यों के प्रति आस्था और सहयोग भी ।

प्रत्यागत §1927 ई0§

'प्रत्यागत' की कथावस्तु का क्षेत्र है 'बाँदा' । बाँदा के ब्राह्मण समाज और उनके समानान्तर अन्य जाति तथा उनकी जातिवादिता और जातिगत राजनीति का चित्रण प्रस्तुत करती है यह कथाकृति ।

बाँदा के ब्राह्मण समाज में एक हैं पंडित टीकाराम शर्मा — धर्मभीरु, शान्त स्वभाव और परम वैष्णव । पं0 टीकाराम अपने लड़के मंगलदास या अन्य किसी को धर्म तथा धर्म-रूढ़ियों के मार्ग से विचलित होते नहीं सह सकते हैं और वे उनसे घृणा करते हैं । वे पूजा जप तप और पाठ में अपना बहुत समय बिताते हैं ।

पंडित नवल बिहारी का बाँदा में अपना मन्दिर है । सम्मिलित रामायण पाठ के समय वे अपना स्वर §यद्यपि बेसुरा और भोंडा§ सबसे ऊँचा रखते हैं । रामायण सभाओं के सक्रिय कार्यकर्ता हैं । इन रामायण सभाओं में हँसी आदि के ध्दारा थोड़ा भी व्यवधान डालने वाला पंडित नवल बिहारी की दृष्टि में 'आरिया समाज' से प्रभावित है, 'कपूत' है और हिन्दू समाज को 'गड्ढे' में ले जाने वाला है ।

पं0 रामसहाय वैद्य, ब्राह्मणों में एक अगुआ समझे जाते हैं । अंग्रेजी पढ़े लिखे हैं । अधिकारियों और धनाढ्यों में उनकी बैठ है । उनका अपना कोई सिध्दान्त नहीं है, न ही उन्होंने कभी किसी को हानि पहुँचाने की चेष्टा की ।

बाँदा में कई दर्जन रामायण सभायें हैं जिसके अन्तर्गत बस्ती के लोग मिलकर गा बजा कर प्रति मंगल और शनिवार को रामायण पाठ किया

करते हैं ।

परम्परावादी ब्राह्मणों के घर में पुरुष पहले भोजन कर लेते हैं, स्त्रियाँ बाद में खाती हैं । स्त्रियाँ मनोकामना पूर्ति के लिए 'व्रत-उपवास रखतीं — पं० टीकाराम की पत्नी पौत्र प्राप्ति के लिए अनेकों व्रत रखती है । परिवार में स्त्रियाँ घूंघट रखती थीं । टीकाराम की पत्नी सदा 'हाथ भर का घूंघट' डाले रहती है तो बहू को भी 'सवा हाथ' का घूंघट डाले रहना पड़ता । परिवार का वयस्क निकम्मा लड़का 'कपूत' गिना जाता है । अन्य लोगों की दृष्टि में वह कपूत है और अपनी पत्नी के लिए लज्जा का विषय क्योंकि अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ उससे पूछतीं कि उसका पति क्या करता है । पं० टीकाराम का पुत्र मंगलदास पं० नवल बिहारी की दृष्टि में कपूत है, पिता भी इसका समर्थन करता है ।

बाँदा में जातिवाद की प्रधानता है । हर जाति की अपनी अलग अलग पार्टी है । हेतसिंह क्षत्रिय ठाकुर ब्राह्मणों की पार्टी में हैं — क्षत्रिय ठाकुरों और ब्राह्मणों की एक पार्टी है । पीतराम अहीर अपने को क्षत्रिय कहता है । एक जाति दूसरी जाति पर व्यंग्य-कटाक्ष करती रहती है । हेतसिंह इसे नई तालीम का प्रभाव बताते और कलिकाल को दोष देते हैं । हेत सिंह कहते, "सब क्षत्रिय बनते चले जा रहे हैं । कायस्थ, कुरमी, लोधी, काछी, कोली, चमार अग्रवाल, बनिए सब क्षत्रिय बन कर ही दम लेंगे । हिन्दुओं के राज्यकाल में ऐसा होना असम्भव था ।"[67]

यहाँ 'धनुषयज्ञ' नाम से नाटक खेला जाता है । पंडित नवल बिहारी के संयोजन में 'धनुषयज्ञ' के कार्यक्रम सम्पन्न होते । चूँकि ठाकुर हेतसिंह पं० नवल बिहारी की पार्टी में थे अतः पीतराम ने अपनी जाति वालों को एकत्रित करके अपनी अलग 'कीर्तन मंडली' बना डाली हैं और अपना अलग धनुष यज्ञ करना तय किया है ।

धार्मिक मंडलियों के अतिरिक्त बाँदा में 'खिलाफत कमेटियों' का भी बड़ा जोर है । मंगलदास तथा अन्य नवयुवक इन खिलाफत आन्दोलनों

‖67‖- प्रत्यागत : वृन्दावन लाल वर्मा ‖ पृष्ठ 60 ‖

में सक्रिय भाग लेते हैं । खिलाफ आन्दोलनों का उद्देश्य इन लोगों में स्पष्ट नहीं है । 'जिन-जिन बातों से अंग्रेज परेशान हों, उन उन बातों से देश को लाभ होगा' ऐसा सोचकर अंग्रेजों को परेशान करने के लिए खिलाफत आन्दोलन चलाए जाते हैं — ऐसा मंगलदास अपने पिता से कहता है । तथा, इससे हिन्दू मुसलमानों में मेल पैदा हो रहा है — जो स्पष्ट ही एक 'कल्याणकारी परिणाम' है ।

जाति और धर्म की बात बूढ़ों से लेकर नवयुवकों तक के मन के, अन्तरतम में बैठी है । घर से भागे हुए मंगलदास को मालाबार में अपरिहार्य विचित्र परिस्थितियों के बीच मुसलमान बना लिया जाता है — अर्थात चोटी और यज्ञोपवीत से विहीन कर दिया जाता है । और पेश-इमाम उसे 'कलमा' पढ़ा देते हैं, जिसे उसने न समझा है न उच्चरित ही किया है — नाम दिया गया 'मंगल खाँ' उर्फ 'पीर मुहम्मद' । मंगल दास का संस्कारी वैष्णव मन अपने को घ्रणित अनुभव करके धिक्कार रहा है । स्वयं को मुसलमान बना दिये जाने पर और मुसलमानों के बीच रहकर भी वह उनके हाथ का खाना-पीना स्वीकार नहीं करता । बाँदा आकर वह अपने पिता के सामने स्वीकार कर लेता है कि अब वह अपने पिता, परिवार तथा हिन्दू समाज के काम का नहीं रहा क्योंकि वह मुसलमान हो गया है । वह अपने वैष्णव पिता को धोखे में डालकर उन्हें धर्मभ्रष्ट नहीं करना चाहता है ।

ब्राह्मण समाज में धर्मच्युत पुत्र से तो पुत्र का मर जाना अधिक श्रेयस्कर समझा जाता है । पं० टीकाराम अपने धर्मच्युत पुत्र को पड़ोस में मकान लेकर ठहराते हैं और कहते हैं, "यदि शास्त्र में प्रायश्चित्त की विधि होगी, और जाति वाले मान जायँगे तो शुद्ध करके इसे फिर मिला लेंगे । वर्तमान अवस्था में इसे घर में दाखिल नहीं कर सकते ।"[68] पत्नी के लिए भी विधर्मी पति ग्राह्य नहीं, वह कहती है "आपकी स्त्री नहीं आपकी धर्मपत्नी ।"[69] समाज के कुछ ब्राह्मण तो टीकाराम से भी परहेज करते हैं,

§68§- प्रत्यागत : वृन्दावन लाल वर्मा § पृष्ठ 119 §
§69§- प्रत्यागत : वृन्दावन लाल वर्मा § पृष्ठ 129 §

उन्हें घर पर अपने बर्तन में पानी न देकर कुल्हड़ में पानी पीने को देते हैं । उन्हें समाज का डर है --'पाँत - पंगतों में लोग प्रबन्ध के लिए बुलाया करते हैं, धनुषयज्ञ करना है, रिश्तेदारियों को तो तोड़ नहीं सकता, बेटी-बेटों के ब्याह करने हैं, सेठ-महाजनों का संसर्ग अलग नहीं कर सकते । टीकाराम का साथ देते हैं तो ऐसी विपत्ति में पड़ने की सम्भावना है जिसका अनुमान कठिनता से किया जा सकता है'[70]

स्वजातीय और परजातीय लोगों की 'बैठक' में सर्वसम्मति से प्रायश्चित का विधान होता है --'उपवास, गंगा-स्नान, गोदान, हवन, पंचगव्य, सत्य नारायण की कथा, ब्राह्मण भोज, जाति भोज आदि यथा-विधि करने से कलंक मुक्त हो सकते हैं ।'[71] परन्तु असवर्ण जाति के सेवक हरीराम की बिरादरी में पंचों को दो दो रुपये की शराब पिला देने से सब काम बन जाता है ।

बाँदा शहर में कोई आयोजन हो और अच्छा वक्ता न मिले तो आस-पास के कस्बे से §पेशेवर§ वक्ता बुला लिया जाता है जो किसी भी विषय पर धारा-प्रवाह बोल सकता है । पंडित नवल बिहारी ने 'उच्च विचारों वाली द्विजातियों के दल की' सभा के लिए ऐसे ही एक वक्ता का प्रबन्ध किया है जिसकी फीस सामान्यतया पचास रु0 प्रति दिन है परन्तु अत्यावश्यक विशेष अवसरों पर फीस पचहत्तर रु0 प्रतिदिन है । विशेष सभा में तय होता है कि मंगल और उसके परिवार का जो साथ देंगे उनसे किसी तरह का सम्बन्ध न रखा जायगा --'बायकाट' कर दिया जायगा ।

बाँदा शहर धर्म रक्षा और जाति रक्षा की आड़ में जातिगत राजनीति में व्यस्त है पर नई रोशनी के लड़कों में इसका न कोई अर्थ है और न मूल्य ही । समाज और बिरादरी के शीर्षस्थ लोगों के लड़के समाज बहिष्कृत पं0 टीकाराम के घर प्रायश्चित भोज में सम्मिलित होने के लिए आ जाते हैं और मंगल से ही भोजन परोसवा कर खाते हैं । मंगल

---

§70§- प्रत्यागत : वृन्दावन लाल वर्मा § पृष्ठ 159 §
§71§- प्रत्यागत : वृन्दावन लाल वर्मा § पृष्ठ 140 §

स्वयं अनुभव करता है — 'इस जात-पाँत में बने रहने का बहुत मूल्य देना पड़ता है - - - - - - - और चाहे जिस तरह की मुसीबतें व्यक्तियों या समाज पर आवें परन्तु इन जात-पाँत वालों के कान पर जूं न रेंगेगा। किसी के ढकोसले में रत्ती भर का अन्तर पड़ जाय, तो फिर देखो, कैसी ले दे मच जाती है।'[72]

नई पीढ़ी इन कर्मकाण्डों को ढकोसला कहती है और उसकी नई दृष्टि मंगल के प्रति हुए अन्याय के लिए सहानुभूति का ही अनुभव नहीं करती बल्कि न्याय और अधिकार दिलाने के लिए अपने ढंग से सहयोग भी करती है।

धर्म की राजनीति अब दूसरा रूप लेती है। मंदिर अपवित्र हो गया है, ठाकुर जी ने आरती के समय आँख मींच ली थी — मंदिर की शुध्दि होगी। मंदिर की प्रधान मूर्ति का पैर ऊपर और सिर नीचे हो गया है—— स्पष्ट ही देवता ने कोप किया है। उलटे देव विग्रह ने जनता को दो वर्गों में विभाजित कर दिया है। नवल बिहारी और उनके समर्थकों का वर्ग मानता है कि देवता ने कोप किया है। अन्य कहते हैं कि यह नवल बिहारी की करतूत है। फिर मूर्ति के मामले की छान बीन करने के लिए भी मन्दिर में पंचायत का आयोजन होता है।

इस प्रकार बाँदा जैसे छोटे शहर या कस्बे का व्यक्ति समाज से अनुशासित होकर जीवन जीता है और आधुनिक दृष्टि नये सामाजिक मूल्यों को लेकर रूढ़िवादी और भीरु पुरानी पीढ़ी से टक्कर लेती भविष्य के लिए अपना रास्ता स्वयं बनाने के लिए प्रयत्नशील है।

विदा § 1928 ई0 §

इलाहाबाद की पृष्ठभूमि पर 'विदा' की कथावस्तु का विस्तार किया गया है। कथावस्तु उच्च मध्यवर्ग या उच्च वर्ग — जमींदार, प्रोफेसर ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट आदि के जीवन-चित्रों को प्रस्तुत करती है।

कथानायक, इलाहाबाद के समीप 'रामनगर' नामक गाँव के जमींदार काशीनाथ जो दीवान जी के नाम से पुकारे जाते थे, के पुत्र निर्मलचन्द्र हैं जो

§72§- प्रत्यागत : वृन्दावन लाल वर्मा § पृष्ठ 194 §

इलाहाबाद में फिलासफी के प्रोफेसर हैं । दीवान जी की जमींदारी कुछ तो 'रामनगर' के आस पास थी और कुछ 'लखीमपुर' के पास ; जिसकी देख-रेख के लिए कई गुमाश्ते नौकर थे । दीवान जी की गणना इलाहाबाद के प्रसिध्द और प्रतिष्ठित जमींदारों में थी ।

इलाहाबाद के जार्जटाउन में एक रायबहादुर, माधवचन्द्र ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट की बड़ी आलीशान कोठी है जिसके चारों ओर लगभग पाँच-छः बीघे का बाग है । बाग में 'सुर्खी' की सड़के बनी हैं । बीच में हरी घास का लान है । बाग दो भागों में विभक्त है -- एक तो पुरुषों के लिए और दूसरा स्त्रियों के लिए । तीन चार बड़े बड़े हौज हैं जिनमें रंग बिरंगी मछलियाँ पाली हुई हैं ।

पाश्चात्य सभ्यता के हिमायती इन सरकारी अफसरों के घर की लड़कियाँ सुशिक्षिता हैं और इन्हें हिन्दू समाज में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता मिली हुई है । रायबहादुर माधव चन्द्र की पुत्री कुमुदिनी 'गर्ल्स क्रास्थवेट' से एफ०ए० पास है । जिसका विवाह हो जाने के कारण आगे पढ़ना सम्भव नहीं हो सका । पिता के प्रशस्त घर में कुमुदिनी का अपना एक कमरा अलग है पूर्णतया सुसज्जित । कमरे के बीच में एक मेज पड़ी हुई है उसके चारों ओर मखमल से मढ़ी हुई कुर्सियाँ पड़ी हैं । एक ओर 'पियानो' रखा है और उसी के पास एक मेज पर हारमोनियम भी । चार-पाँच तैलचित्र दीवारों पर टँगे हैं । कमरे के दूसरी ओर शैय्या पड़ी है ।

हिन्दू परिवार चाहे उच्च वर्ग हो या मध्य वर्ग का -- सास-बहू का सनातन द्वेष सामान्यतया सब कहीं है । कुमुदिनी की ससुराल का रहन-सहन पारम्परिक हिन्दू परिवार का रहन सहन है और पति निर्मल चन्द की, माँ पर बड़ी भक्ति है जो पत्नी कुमुदिनी के असन्तोष का कारण है । उसका वह असंतोष सास के प्रति अविश्वास और रोष बन कर प्रगट होता रहता है । फिर वह ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट की बेटी है, यों ही दिमाग गरम है । वैसे उसे प्यार करना आता है, अपने विलायती कुत्ते 'हीरा' को जी-जान से बढ़ कर प्यार करती है, सेवा जतन करती है ।

परम्परागत हिन्दू परिवार की स्त्रियों के मत में 'स्त्रियाँ

का पति ही सब कुछ होता है ।' पर आधुनिका कुमुदिनी कहती है, "उनको गरज होगी तो सौ बार आकर मेरे पैर पड़ेंगे ।"[73] यह अभिमान और दर्प उसे अपने पिता से मिला है जिसे वह स्वाभिमान कहती है ।

रायबहादुर माधवचन्द्र पाश्चात्य शैली की स्वतंत्रता के हिमायती हैं । वह अपनी विवाहिता पुत्री कुमुदिनी का मिस्टर डी० वर्मा आई०सी०एस० से मेल-जोल बढ़ाना चाहते हैं ताकि ससुराल और पति से असंतुष्ट कुमुदिनी का उसके पति से विच्छेद कराके मिस्टर वर्मा से पुर्नविवाह करा दिया जाय । रायबहादुर साहब की लड़की और बहू सभी टेनिस खेलती हैं । पर इस स्वतंत्र विचार वाले परिवार में भी लड़की और बहू के सहन-सहन में अन्तर दीख पड़ता है । बहू घर में और केवल पति के साथ टेनिस खेलती है और पति के साथ ही सिनेमा जाती है । जबकि पुत्री कुमुदिनी को मिस्टर वर्मा या अन्य किसी के साथ खेलने-घूमने की पूरी की पूरी स्वतंत्रता है । बैरिस्टर माथुर की पुत्री 'चपला' भी पुरुषों के साथ टेनिस खेलती है ।

सरकारी अफ़सरों का अपना दबदबा तो है ही, उनके अर्दली नौकरों का कम रोब-दाब नहीं । रायबहादुर माधवचन्द्र के घर नौकर अधिक टिक नहीं पाते-साहब की थोड़ी भी नाराजी उनकी सेवामुक्ति का कारण बन जाती थी । फिर भी 'ललतू' नामका एक अर्दली काफी दिनों से सेवारत है । ललतू ने भी बड़ी रोब और ताड़ना झेली थी पर वह अभी तक नौकरी पर डटा हुआ था । क्योंकि खास अर्दली होने के कारण उसकी आमदनी बहुत थी और 'रोआब' भी काफी था । ज्वाइंट-मैजिस्ट्रेट का अर्दली होने के कारण वह सब सामान का दाम भी आधा दिया करता था । अन्य सब लोग उसका आदर करते थे और डरते भी थे ।

शहर का यह विशिष्ट वर्ग जहाँ पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण कर रहा है वहाँ हिन्दू समाज की रूढ़ि और कुरीतियों की उपेक्षा करता हुआ हिन्दू समाज को कुछ स्वस्थ दिशा भी दे रहा है । रायबहादुर साहब ने अपने पुत्र मुरारी का विवाह लाट साहब के दफ्तर के साधारण

---

§73§- बिदा : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 82 §

क्लर्क बाबू मोहन लाल की सुन्दरी पुत्री 'लज्जा से करके समाज के आगे एक आदर्श प्रस्तुत किया है ।

इन सरकारी अफसरों का जहाँ रहन-सहन, आचार-विचार सामान्य हिन्दू परिवार से भिन्न है वहीं इनका अपना एक अलग सामाजिक दायरा भी है । रायबहादुर माधवचन्द्र ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट को सरकार की ओर से 'सर' § Knight § की उपाधि मिली है । अतः वे इस खुशी में 'जलसा' कर रहे हैं । कोठी लाल-हरे बल्बों से सजाई गई है । मित्रों की राय थी कि जानकी बाई' भी बुलाई जाँय । पर सामाजिक आदर्श के नाम पर माधव बाबू ने इसे स्वीकार नहीं किया । भारी भोज का प्रबन्ध है साथ में विलायती नाच 'फैन्सी ड्रेस बाल § Fancy Dress Ball §' का भी । बैण्ड बज रहा है, चहल-पहल है पर शोर नहीं । माधव बाबू अभ्यागतों से हँस हँस कर बातें कर रहे हैं । यह उत्सव गोरे साहबतों के लिए आयोजित किया गया है । 'देशी लोगों' के लिए अन्य दिन 'मुजरे' का भी प्रबंध किया गया है ।"[74]

साहब लोग अपनी पत्नियों के साथ आए हैं और देशी साहब अकेले §सम्भवत: स्त्रियाँ मन से इस स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं पाई हैं§ । ये देशी लोग 'परिस्तान की परियों' को — गोरे साहब की पत्नियों को घूर घूर कर देख रहे हैं । 'कांसर्ट' बजने पर लोग अपने अपने जोड़े चुनकर नाच-घर की ओर चल देते हैं, बाकी लोग देखते हैं । नाच के बाद रात को लगभग डेढ़ बजे भोजन प्रारम्भ होता है । सभी लोग माधव बाबू के 'हेल्थ' के लिए गिलास पर गिलास खाली किये दे रहे हैं । भोजन के बाद धन्यवाद देते हुए अतिथि विदा हो जाते हैं ।

इलाहाबाद में 'मिस्टर डाल्टन' अंग्रेजी फैशन के 'टेलर' हैं । यद्यपि वहाँ सिलाई के दाम बहुत अधिक हैं — 'शैमीज' की सिलाई चार रुपया और ब्लाउज की छः रुपया । यहाँ — वस्त्रों की सिलाई में सफाई होती है और निश्चित समय पर कपड़े तैयार मिलते हैं । 'अप-टू-डेट पेरिस

§74§- विदा : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 120 §

फैशन' की सिलाई यहाँ की विशेषता है। इलाहाबाद के उच्च वर्ग की फैशनेबिल स्त्रियाँ यहीं कपड़े सिलाती है। बैरिस्टर माथुर की लड़की 'चपला' के कपड़े यहीं सिले जाते हैं।

बुध्दिजीवी एवं अन्तर्मुखी लोगों का इस समाज में विशेष स्थान नहीं है, न-ही कोई महत्व है। रायबहादुर साहब के दामाद प्रोफेसर निर्मल चन्द सिन्हा इस सर्किल में मिसफिट हैं। हाँ, उनकी लिखी फिलासफी की पुस्तक जो इलाहाबाद की 'व्हीलर §Wheeler§' नामक पुस्तक विक्रेता की दुकान पर उपलब्ध है, उसकी चर्चा अवश्य चलती है।

इस वर्ग की शिक्षित लड़कियों को अपने ढंग का जीवन जीने की स्वतंत्रता है--वे विवाह करें या न करें। बैरिस्टर माथुर की लड़की 'चपला' अविवाहित रहक देश-सेवा, समाज-सेवा करते हुए स्वतंत्र रुप मे जीवन बिताना चाहती है। मिस्टर माथुर कहते हैं, "आजकल सभी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ स्त्री-स्वाधीनता पर बातें करती हैं।"[75] हिन्दू समाज कितना भी स्वतंत्र क्यों न हो जाय उसके संस्कार नहीं जाते। चपला के विवाह न करने के निश्चय पर उसके पिता मिस्टर माथुर कहते हैं, "चपला, अगर तुम कुमारी जीवन व्यतीत करोगी तो पुरुष तुम्हारे नाम पर कलंक लगावेंगे। जहाँ से तुम निकल जाओगी वहीं के लोग तुम्हारी ओर उँगलियाँ उठावेंगे और अकथ्य बातें कहेंगे। चपला, हिन्दू समाज में जन्म लेने के अभिशाप की मुक्ति है विवाह।"[76]

आई० सी० एस० अफसरों के दरवाजे पर साधारण सरकारी कर्मचारी कभी काम से, कभी यों ही साहब को सलाम करने आ जाया करते हैं और साहब की प्रतीक्षा करते रहते हैं। चूँकि मिस्टर डी० वर्मा० आई० सी० एस० 'कोतवाल साहब के बाप के नौकर' नहीं हैं अतः वे जब चाहेंगे तब उनसे मिलने के लिए बाहर निकलेंगे। और, कोतवाल साहब हैं कि बैठे हैं क्योंकि अपने भतीजे के लिए ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट की संस्तुति लेकर बड़े साहब के पास जाना है।

---

§75§- विदा : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 178 §
§76§- विदा : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 214 §

इधर बैरिस्टर माथुर का बैठका भी मुवक्किलों से भरा है। तीन तीन मुंशी हैं पर एक को भी दम मारने की फुरसत नहीं हैं।

गर्मी की ऋतु में मिलों के साहब, उच्च पदस्थ अंग्रेज कर्मचारी, ऐसे ही अन्य लोग पहाड़ी स्थानों पर चले जाते हैं। धनियों के लिए मंसूरी, नैनीताल, शिमला, दार्जिलिंग आदि पहाड़ी स्थान स्वर्ग हैं। भारत का 'फैशनेबिल मण्डल' गर्मियों में इन स्थानों पर दो तीन महीनों के लिये चला जाता है फिर ये पहाड़ी नगर चहल-पहल से भर उठते हैं। मिस्टर माथुर अपने परिवार के साथ मंसूरी गए हैं। वहीं 'डिक' नामक लंदन का डाकू "जीन तालिमाँ (Jean Talmont)" के छद्म नाम से मंसूरी के एक फैशनेबिल होटल में ठहरा है। पार्टियाँ और डांस उसका शौक है जिसके माध्यम से वह बड़े बड़े लोगों से परिचय प्राप्त कर रहा है। वह पेरिस के नये से नये फैशनों से सुसज्जित होकर पार्टियाँ करता और उपहार बाँटता है। अंग्रेज रमणियों के वह 'नटवर गोपाल' हैं और भुक्खड़ अंग्रेजों के आसफुद्दौला"। समाचार-पत्रों में "जीन तालिमाँ" के चर्चे हैं।[77]

जो धनिक या अफसर पहाड़ों पर नहीं जा सके हैं वे खस की टट्टियों और बिजली के पंखों की सहायता से इलाहाबाद की भीषण गर्मी को विजित करके अपने शीतल कक्षों में आराम करते हैं।

इस प्रकार कुछ विशिष्ट लोगों को लेकर लेखक ने जिस इलाहाबाद को कथा की पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया है उसमें सामान्य जन-जीवन का प्रवेश उपेक्षित है। एक आध--कोतवाल साहब या ललतू अर्दली का अति संक्षिप्त प्रसंग अपवाद सा है। स्वाभाविक है, "धनिकों के स्वर्ग"--मंसूरी के संदर्भ में भी लेखक उसी वर्ग के जीवन को लेकर चला है। सम्भवतः लेखक का परिचित क्षेत्र यही है।

---

(77)- विदा : प्रताप नारायण श्रीवास्तव (पृष्ठ 366)

दिल्ली का व्यभिचार §§ 1929 ई0 §§

'दिल्ली का व्यभिचार' नामक पुस्तक में लेखक ने आरम्भ में कहा है, एक 'साहित्यिक युवक' कभी 'दिल्ली के बाजारों में दुराचार और व्यभिचार की कुछ गन्दी घटनाएं देखता है'। मित्रों से चर्चा होने पर वह सुनता है कि 'यह रोज की बातें हैं।' तदुपरान्त, अपने अनेक मित्रों द्वारा प्राप्त दिल्ली के अनुभवों को, लिपिबध्द करता है जो दिल्ली की तड़क-भड़क के नीचे पनप रहे व्यभिचार के चित्र हैं और वे तत्कालीन दिल्ली के §प्रदूषित§ समाज को अनावृत्त से करते हैं।

दिल्ली जैसी महानगरी में पीर-फकीर के नाम पर भी अनेक अनैतिक क्रिया-कलाप पनप रहे हैं। कुतुब की लाट के पास झोपड़े में कोई बड़े पहुँचे हुए'पीर साहब' रहते हैं। जिनके प्रताप से 'बाँझ औरतों के भी बच्चा हो गया है।' बाल किशन के मित्र की पत्नी कलावती उनसे पुत्र - वरदान पाने के लिए गई। वहाँ उसे 'खुदा' को पवार्ग के लिए निर्वस्त्र होना पड़ा और बेबस होकर §फकीर में अवतरित§ 'फरिश्ते' की भोग्या बनना पड़ा। 'जीवानन्द' जैसे बाल ब्रह्मचारी सन्यासी जिन्होंने प्रगट रूप से पापियों को दण्ड देने के लिए जन्म लिया है और अनेक 'अंग्रेजी दाँ लीडरों पीडरों की खबर ले चुके हैं, 'पाखण्डी गांधी' को भी गालियाँ सुना आए हैं, वह अँधेरी गली में अपने छोटे से मकान में अनैतिक कर्म में रत हैं।

ऐसी घटनाएं साधु-फकीर के वेश में रहने वाले पाखंडियों की ही नहीं है। दिल्ली के प्रतिष्ठित स्कूल के स्कूल-मास्टर भी घोर व्यभिचारी हैं। समलैंगिक संभोग की बीमारी स्कूल मास्टरों में जैसे घर करती जा रही है। ये अनुशासित §9§ स्कूल मास्टर सार्वजनिक रूप से बात देश सेवा की करते हैं, अनुशासन और चरित्र निर्माण उनका उद्देश्य है, स्काउट जैसी संस्था के अध्यक्ष हैं। स्काउट में प्रवेश लेने वाले प्रत्येक बालक से अलग शर्त करवाते हैं कि 'मेरी तुम्हारी या तुम्हारी और अन्य किसी की कुछ बात चीत हो, तुम प्राण रहते भी उन्हें किसी के आगे प्रकाशित न करना।'[78]

§78§- दिल्ली का व्यभिचार : ऋषभचरण जैन § पृष्ठ 28 §

वे सुन्दर लड़कों से गन्दी-गन्दी बातें करते, छेड़खानी करते और 'कपोल मसल देते' हैं । दिल्ली के एक स्काउट मास्टर बालकों को लेकर आगरे जाते हैं और एक कमरे में ठहरते हं । लड़कों की मास्टर साहब के साथ सोने की 'ड्यूटी' लगी हुई है । इस अनाचार से असहयोग करने वाले की आवाज को सुनने वाला कोई नहीं है यह उसी स्कूल में पढ़ने वाले लड़के 'बसन्त' का स्वयं का अनुभव है ।

इस बीमारी के शिकार स्कूल के लड़के भी हैं । स्कूल-प्रांगण के बाहर, सिनेमाघरों से लेकर एडवर्ड पार्क के कुंजों के अन्दर दिल्ली के सम्पन्न परिवार के लड़कों की आपस में यह पाप-लीला चलती रहती है । एक सुन्दर लड़का है 'चाँद नारायण उसी के साथ चार पाँच लड़कों का अनैतिक सम्बन्ध चलता है । जब किसी की शिकायत पर पुलिस आ जाती है तो कह-समझ कर मामला रफा-दफा हो जाता है । हाँ, सिपाहियों का हेड अलबत्ते चाँद नारायण को लेकर कुंज में चला जाता है । कोई जागरूक, कर्तव्य-परायण नागरिक यदि उन्हें अपने कर्तव्य के प्रति सावधान करता है तो दो तीन दिन बाद खबर मिलती है कि उसकी लाश कुएं में मिली है और उसके शरीर पर लाठियों के निशान हैं । 'बस 'दिल्ली के गन्दे पहलू के इस सीन पर पर्दा गिर गया ।'[79]

दिल्ली में पढ़ रहा बैजनाथ अक्सर सोचता था कि अमीरों के लड़के घर पर चार चार मास्टर रखकर भी क्यों फेल हो जाते हैं । इसका कारण उसे तब समझ में आया जब उसने देखा कि स्कूल में अपने शिष्ट और विशिष्ट आचरण की धाक जमाए रखने वाला 'नारायण' अपने ट्यूटर के साथ अनुचित सम्बन्ध बनाए था । इतना ही नहीं उसने अपनी सगी बहन को भी अपनी भोग-लिप्सा का शिकार बनाने की चेष्टा की । सभी मित्र विचार करते हैं बालकों का दोष कम है । स्कूल का वातावरण तो अस्वस्थ है ही, बालकों के माता पिता की उनके प्रति उपेक्षा या उदासीनता और सतर्क दृष्टि का अभाव उन्हें व्यभिचार के मार्ग पर ले जाता है । और, संरक्षक व्यस्त हैं दफ्तर या दुकान को लेकर — पैसे के पीछे ।

{79}- दिल्ली का व्यभिचार : ऋषभ चरण जैन { पृष्ठ 106 }

स्कूल में गुंडे टाइप के लड़के सामान्य लोगों के लिए आतंक बने हुए हैं। भले घर के लड़के लड़कियों की इज्जत और जान के साथ खेल करना इनका शौक है। 'मियाँ मुबारक' एक ऐसे ही उस्ताद हैं। इनके पास बद-माशों और गुंडों का गिरोह है जिनके बल पर वह स्कूल के अबोध लड़कों को दिन दहाड़े उड़ा देता था, किसी को पिटवा देता था। अनुचित आचरण के कारण स्कूल से निकाल दिये जाने पर उसने हेड मास्टर और एक अन्य बूढ़े मास्टर को पिटवा दिया। अपने सहपाठी समीउद्दीन और उसके मित्र को रस्सी से बाँध कर उनके सामने उसकी प्रेमिका की इज्जत लूटी। ऐसे असामा-जिक तत्वों की दिल्ली में कमी नहीं है।

कई गाँवों के मालिक जमींदार भी दिल्ली में रहते हैं। जो 'बरदी पोश नौकरों सहित' गाँव में जाकर आसामियों पर कोड़े बरसा कर और उनकी औरतों के गहने बिकवा कर उगाही करते हैं और दिल्ली में आकर प्रसिध्द फिल्म ऐक्ट्रेस के साथ आनन्द मनाने के लिए हजारों रुपये खर्च कर देते हैं। उनके लिए 'हुमायू के मकबरे' के पास के कुंजों में भी 'गददा, चादर, तकिया, लैम्प' — पूरे अनन्द-बिहार का प्रबंध संभव है। प्रबुध्द श्याम बिहारी सोचने को मजबूर होता है कि 'जो आदमी दस-पन्द्रह रुपयों के लिए ईमानदार गरीबों की औरतों के लँहगे बिकवाने में नहीं हिचकता, वही एक क्षणिक लालसा के लिए हजारों रुपये व्यय करके धन का कैसा दुरुपयोग कर रहा है।'[80] ये लोग 'भिखारी भीख माँगता है तो कहते हैं "कमा के खाओ" और रंडी नचाते हैं तो उदारता की मूर्ति बन जाते हैं।'[81]

व्यभिचार के केन्द्र सार्वजनिक स्थान ही नहीं हैं, घरों के भीतर भी व्यभिचार की नालियाँ दिल्ली में बह रही हैं। गृहपति शराबी और 'रंडियों पर सर्वस्व फूँक उड़ाने वाला', पत्नी पर-पुरुष सम्बन्ध रता, पुत्रियाँ नौकरों से मुँह काला करने वाली हैं। यहाँ अनेक घरानों में इसी प्रकार 'अमृत में हलाहल' घुला है। एक सम्पन्न सज्जन हैं 'रामनाथ' 'जिनकी महीने में अट्ठाइस रातें' वेश्या के घर गुजरतीं। और पत्नी हफ्ते में एक रात जाती दिल्ली के एक मुसलमानी मुहल्ले के बड़े मकान में। जहाँ उपर

{80}- दिल्ली का व्यभिचार : ऋषभ चरण जैन {पृष्ठ 46}
{81}- दिल्ली का व्यभिचार : ऋषभ चरण जैन {पृष्ठ 47}

बड़े कमरे में 'आधे दर्जन मुसलमान' बैठे होते, जो वहाँ आई स्त्री को अपना साहचर्य देकर तृप्त करते थे।

दिल्ली में ऐसे औलियों की कमी नहीं है जो मनो-कामना पूर्ति के लिए ताबीजे बाँटते हों। जिनके पास पति को वश में करने के लिए ताबीज लेने जाकर कोई स्त्री अपना सर्वस्व नष्ट कर आती है। घर में काम करने वाली नौकरानियाँ भी कम 'बदमाश' नहीं होती, गली मोहल्ले की 'बूढ़ी भगतिनें' भी ऐसी होती हैं जिनकी 'प्राइवेट लाइफ' बड़ी घृणित होती है। ये सब भले घर की औरतों को गुमराह करने में सहायक होती हैं।

दिल्ली के लगभग हर बाजार में 'विधवा आश्रम' और अनाथालय देखे जा सकते हैं। निराश्रित और आपद ग्रस्त विधवाओं तथा अनाथ बालकों के नाम पर रोजगार चलता है। विधवाओं की शादी के नाम पर उन्हें बेचा जाता है। राजेश्वर के गाँव - भाई श्री कृपा राम दिल्ली में 'अबलाश्रम' चलाते हैं। §जाहिरा तौर पर§ विधवाओं को उनके आश्रम में तीन चार वर्ष तक बिना किसी खर्चे के रखा जाता है और पढ़ा लिखा कर किसी स्कूल में अध्यापिका बना दिया जाता है। खर्च चलता है शहर के धनिक सज्जनों के दान के सहारे। वस्तुतः वह 'अबलाश्रम' व्यभिचार का अड्डा है। रात के बारह बजे से आश्रम की हर कोठरी गुलजार हो जाती थी। 'बिना पाखण्ड रचे इस संसार में §दिल्ली में§ ठिकाना नहीं है।' पंडित कृपाराम स्वयं कहते हैं कि "मेरे ये सब ठाठ सिर्फ पाखण्ड की नींव पर स्थित हैं।"[82]

'चावड़ी बाजार' में दलाल घरेलू स्त्रियों के लिए भी अपने ढंग से गाहक पटाते देखे जा सकते हैं। एक 'मिस्सर जी' अपनी मालकिन विधवा सेठानी की 'जवानी को फिजूल' होने से बचाने के लिए उपाय रूप में 'नारद' को पटाता है। वस्तुतः वह 'मिस्सर जी' नामक व्यक्ति उस सेठानी का नपुंसक पति था और स्वयं ही सेठानी के लिए युवकों को फँसाकर लाया करता था जिससे उसकी नपुंसकता पर पर्दा पड़ा रहे।

---

§82§- दिल्ली का व्यभिचार : §ऋषभ चरण जैन§ पृष्ठ 121 §

"दिल्ली का व्यभिचार" जैसा कि नाम से स्पष्ट है दिल्ली के उन्हीं चित्रों की दिग्दर्शिका है जो असमाजिक और पापपूर्ण हैं । पीर-फकीर साधु सन्यासी, स्कूल-मास्टर, छात्र, आश्रम, घर, सार्वजनिक या व्यक्तिगत संस्थायें और व्यक्ति के जीवन की घटनाएं सामान्यतया यही संकेत देने का प्रयास करती हैं कि दिल्ली के रंगमंच पर प्रत्यक्ष रूप से जो आदर्श और आकर्षक दृश्य दिखते हैं, पर्दे के पीछे यथार्थ में वे उससे बिलकुल भिन्न हैं – वीभत्स और विकर्षक ।

मा § 1929 ई0 §

लेखक ने लखनऊ शहर को अपनी कथाकृति की पृष्ठभूमि के रूप में लिया है । लखनऊ के एक खत्री परिवार को लेकर लेखक ने एक पारम्परिक नगरीय जीवन के चित्रण के साथ लखनऊ के 'चौक' के 'रंडी' और 'खानगी' के जीवन की झाँकियाँ भी प्रस्तुत की हैं — जो प्रासंगिक ही हैं ।

बाबू ब्रजमोहन लाल कपूर मध्यम श्रेणी के सम्पन्न आदमी हैं । लखनऊ के खत्री समाज में उनका आदर है, कपड़े का व्यवसाय करते हैं और कुछ जायदाद भी है । आमदनी चार-पाँच सौ रुपये मासिक के लगभग है । हिन्दी उर्दू में चिट्ठी लिख लेते हैं ।

सम्मिलित परिवार की परम्परा चल रही है । बाबू साहब § ब्रजमोहन लाल कपूर § के परिवार में उनका छोटा भाई, उसकी पत्नी, विधवा भातृवधू और विधवा बहन है । परन्तु परिवार में व्यक्तिगत हानि-लाभ की दृष्टि घर करने लगी है — विशेष रूप से स्त्रियों में । ब्रजमोहन लाल के भाई बनवारी लाल की पत्नी चन्द्रमोहिनी अपने पति को हक और हिस्से के लिए उकसाती रहती है, जिसका अन्त होता है बँटवारा होकर । बनवारी लाल अपने भाई से अलग हो जाते हैं और अपनी अलग दुकान भी खोल लेते हैं ।

परिवार में स्त्रियाँ कम पढ़ी लिखी हैं, बल्कि जाहिल ही अधिक हैं । परिवार में पुत्र का होना आवश्यक माना जाता है । स्त्री-

§83§- मा : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक § पृष्ठ 99 §

पुरुष दोनों ही पुत्र को आवश्यक मानते हैं पर कारण भिन्न-भिन्न हैं । स्त्री के लिए पुत्र आवश्यक है क्योंकि उसके बिना मोक्ष नहीं मिलता । पुरुष की दृष्टि में पुत्र, माता, पिता का सहायक और 'बुढ़ापे की लाठी' है - अतः आवश्यक है । समाज में विधवा की स्थिति दयनीय है । पति की जायदाद में उसका कोई हक नहीं — केवल रोटी कपड़े की हकदार है । धन-सम्पत्ति सब देवरों और जेठों की है । 'घस्सू की चाची' प्रमाण हैं ।

पुत्र न होने पर 'लड़का गोद लेना' समाज में मान्य है पर परिवार के सदस्यों को सहज मान्य नहीं हो पाता है । जायदाद के वारिस के रूप में दत्तक पुत्र उनके हिस्से में आ रही धन-सम्पत्ति का हकदार हो जायगा अतः इस सम्बन्ध में उनका मूक विरोध है । बाबू साहब अपने पुत्र न होने पर लड़का गोद लेना चाहते हैं पर उनके भाई इससे सहमत नहीं हैं ।

कुल पुरोहित गोद के लिए लड़के का प्रबंध करते हैं ; विवाह तय करवाते हैं — लड़की वालों को लड़के का पता देते हैं और लड़के वालों को लड़की बताते हैं । चार घरों में उनका आना जाना होता है, स्त्रियों से बात चीत होती है । अतः उनके लिए यह सब काम आसान हैं । ऐसे ही पुरोहित लालता प्रसाद हैं । उन्हें ऊधो से ऊधो जैसी और माधो से माधो जैसी बात करनी आती है । वे बृजमोहन लाल की पत्नी से कहते हैं जब से अंग्रेजी चली सारा धर्म कर्म उठ गया - - - - - -[84] और बाबू साहब से कहते हैं, "- - - - और बाबू जी मैं तो फिर भी अंग्रेजी की प्रशंसा करूंगा । इसके पढ़ने से चार आँखे हो जाती हैं । क्यों न हो, राज-विद्या §भाषा§ है कि दिल्लगी ।[85]

लखनऊ की तंग गलियों वाले मुहल्ले में निम्न-मध्य-वर्गीय परिवार रहते हैं । कपड़े की दुकान पर पच्चीस रुपया मासिक पर काम करने वाले बाबू घासीराम अपने परिवार के साथ ऐसे ही एक मुहल्ले के एक मकान में रहते हैं, जो दोमंजिले पर है । जिसमें दो बड़ी कोठरियाँ हैं और कोठरियों के आगे दालान । दालान को टट्टर से घेर कर रसोई-घर का प्रावधान है ।"[86] इन घरों में गृहिणी खाना बनाने से लेकर झाडू - बुहारी और बर्तन मलना आदि सभी काम स्वयं करती है । घासीराम की पत्नी सुलोचना घर के सारे काम स्वयं करती है।

§84 से 86§- माँ : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक §§पृष्ठ 31,33,35§§

बड़े घर की औरतें घर से बाहर कहीं जाती हैं तो बढ़िया कपड़े और आभूषणों से भली भाँति सुसज्जित होकर । सावित्री अच्छे से सज-सँवर कर और एक दासी के साथ 'पालकी-गाड़ी' में बैठ कर सुलोचना के घर जाती है । वह साथ मिठाई और खिलौने भी ले जाती है । उधर निम्न मध्य वर्ग के परिवार में खाने-पीने के बाद इतना नहीं बचता कि बच्चों की पढ़ाई पर भी खर्च किया जा सके । अतः घासीराम का लड़का शंभु-शंभुनाथ आठ वर्ष की उम्र तक पढ़ने नहीं भेजा जा सका ।

शहर में वकील के पेशे को लेकर एक बहुत छोटी परन्तु यथार्थपरक झलकी मिलती है । बाबू रघुनाथ प्रसाद अपने मुवक्किलों से बात करते हुए कहते हैं कि मौके वारदात पर कोई आदमी न होने पर भी उक्त केस के सिलसिले में उन्हें ऐसे आदमी मिल जायें जो अदालत में गवाही दे सकें और वकील उन्हें जो सिखाये वे उसे कह सकें —— इतना काफी है । बिना 'मेहनताना' लिए वकील मुवक्किल को मुँह नहीं देते । किसी मुकदमें की पैरवी से पहले वे आधा 'मेहनताना' ले लेते हैं । और बाकी मेहनताने में 'शुकराना' भी मिलाना पड़ता है ।

बड़े घरों के अधिक लाड़ प्यार से बिगड़े लड़कों से स्कूल का अनुशासन नहीं चल पाता । वे स्कूल छोड़ कर भाग आते हैं । अतः उनकी शिक्षा की व्यवस्था घर पर मास्टर रख कर की जाती है । बाबू साहब के दत्तक पुत्र श्यामू बाबू के लिए घर पर पढ़ाने के लिए मास्टर का प्रबंध किया जाता है । उसी स्थान पर घासी राम के पुत्र शंभु के मैट्रिक पास हो जाने पर उसे कालेज में पढ़ने के लिए अर्थ समस्या सामने आ जाती है । बड़े घर का लड़का अशिक्षित या अल्पशिक्षित होने पर भी 'योग्य वर' की श्रेणी में आ जाता है । तत्कालीन समाज में पिता की हैसियत से वर की पात्रता आँकी जाती थी अतः गुण, योग्यता से हीन होने पर भी बाबू ब्रजमोहन लाल का पुत्र, पिता की हैसियत और प्रतिष्ठा के कारण 'योग्य वर' माना जाता है और उसके विवाह-शादी की बातें होती हैं ।

लखनऊ के 'चौक' की अपनी ही रंग-रौनक है । जिससे आकर्षित

होकर रईस नवयुवकों का शौक पहले चौक में घूमने और पान खाने से प्रारम्भ होकर 'कोठे' तक पहुँचता है । ये सफेद पोश, सम्बन्धियों और परिचितों की आँख बचा कर अपना शौक पूरा करते हैं । आखिर को 'आबरुदार' लोग हैं । अन्य लोगों के देख लेने पर प्रतिष्ठा पर आँच आ सकती है । रईस नौजवान श्याम बाबू को उनके ही पैसे से मौज करने वाले मुसाहिब मित्र उनकी चौक की 'परियों' तक पहुँच करवा देते हैं ।

'कोठे' पर 'कमरे में सफेद फर्श बिछा हुआ था । फर्श पर तीन चार छोटे-बड़े सफेद तकिए रक्खे हुए थे । दीवारों पर बहुत से छोटे बड़े चित्र लगे हुए थे । छत में एक छोटा सा झाड़ और उसके चारों ओर चार रंग-बिरंगी शीशे की हाँडियाँ लटकी हुई थीं ।'

'फर्श पर एक प्रौढ़ा ई सफेद मलमल की साड़ी पहने बैठी थी । सामने एक बड़ा पानदान और एक ओर पीकदान रखा था । उसके पास ही एक व्यक्ति कुरता-पाजामा पहने और सिर पर एक दो अंगुल की दो-पल्ली टोपी आलपीन से बालों में अटकाए हुए बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था ।'

लखनऊ की खास अदा – पतंग बाजी की भी एक झलकी आई है । नवाब साहब असगर अली खाँ से पतंग के पेंच लड़ रहे हैं । छत पर खड़ी होकर देख रही है 'बन्दो'—'अल्लहबन्दी' एक षोडशी वेश्या । वो जूड़े में बेले का गजरा लगाए है । अल्लहबन्दी — लखनऊ की एक 'तमीजदार रंडी' है, कोई 'ठकिहाई' नहीं ।

महफिल – मुजरे के समय वही 'तमीजदार रंडी' ऐसा कौशल और भाव-भंगी का प्रदर्शन करती है, ऐसे 'तीक्ष्ण कटाक्ष बाण' फेंकती है कि श्यामबाबू ऐसे लोग तो उन बाणों से बिध्द होकर उसके प्रेम-पाश में बुरीतया जकड़ जाते हैं' और फिर पैसा फेंक और फूँक कर तमाशा देखते हैं श्याम बाबू ; मुफ्त का मजा लूटते हैं विश्वनाथ और गोकुल जैसे मुसाहिब मित्र ।

अपने कद्रदानों के लिए रंडी के पास एक ही बात है----

'आसामी अच्छा है मालदार और भोला - - - - - मैं उन्हें आसानी से थोड़ा ही छोड़ दूँगी —— अगर कहीं आख लड़ी भी होगी तो भी जहाँ तक होगा, पंजे से निकलने न दूँगी ।' रंडी भली भाँति जानती है ——'ऐ इन निगोड़े रंडीबाजों का क्या भरोसा -- हर देगी घमधे । ये कभी एक के होके रहे हैं । [87] रंडीबाजों पर एतबार करना रंडीपन के सरासर खिलाफ है ।'[88]

लखनऊ 'चौक' की अपनी संस्कृति है । वहाँ तंबोली हैं, फूल-गजरे वाले हैं, इत्र - फरोश गंधी हैं, तबायफें हैं, हुस्न की महफिल है, बात चीत, तमीजो - तहजीब के खास अन्दाज हैं । एक 'छुट्टन मियाँ' हैं — रंडियों, खानगियों के दलाल । बात-चीत में खास नव्वाबी लखनऊ का लहजा —'वह आपके वालिद हैं, क्या शीरी गुफ्तार {मधुर-भाषी} आदमी हैं, जी खुश हो गया । शरीफ व रजील कभी छिप ही नहीं सकता ।'[89] छुट्टन है तो दलाल पर बेगम का नमक खाता है और नमक हलाली उसका धर्म है । अतः उसके विपरीत वह जा ही नहीं सकता विशेष अवसरों पर छुट्टन मियाँ की वेशभूषा है 'श्वेत पायजामा, श्वेत अचकन, पैरों में छोटे पंजे का गुरगाबी जूता ।' सिर के पट्टे तेल से काफी चिकने होते हैं और ऊपर दुपल्ली टोपी ।

यहीं चौक के पास एक बेगम रहती हैं जो निश्चय ही शरीफ जादी हैं परन्तु दरिद्रता के कारण अपनी सुन्दरी कन्याओं द्वारा धन कमाना चाहती हैं । बेगम साहिबा बिगड़े नवाब की बेगम का पूरा प्रतिनिधित्व करती हैं । वे कहती हैं, 'सत्य बात तो यह है कि छुट्टन ही हमारी खबरगीरी करता है । हमारा हमदर्द है, हमराज़ है वर्ना हमारी जैसी हालत है, वह खुदा ही जानता है । इसी लखनऊ में हमारी शाही थी । इसी में फकीर हो गए ।' उन्हें पन्द्रह रुपये प्रति व्यक्ति के हिसाब से वसीका मिलता है । उनकी लड़कियाँ 'नामहरम {परपुरुष}

{87}- माँ : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक {} पृष्ठ 303 {
{88}- मा : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक {} पृष्ठ 306 {
{89}- मा : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक {} पृष्ठ 213 {

के सामने निकलती नहीं। 'बेहिजाब §बेपर्दा§' 'माहताबी' पर घूमना नवाबजादियों की प्रतिष्ठा के विरूद्ध है। बेगम की लड़कियों को 'धोती परशादों' §हिन्दुओं§ से नफरत है। पर बेगम व्यावहारिक हैं। वे कहती हैं, "ये लोग मालदार हैं, इनसे चार पैसे का फायदा होने की उम्मीद है। इसलिए ज़री देर उठने बैठने में अपना कुछ बनता बिगड़ता नहीं। हमें उनसे कोई रिश्ता थोड़ा ही जोड़ना है।"[90] हिन्दू अतिथि का सत्कार वे इलो इलायची से करती हैं क्योंकि हिन्दू उनके घर का पान नहीं खा सकते। ऐसे ही पेशेवर तमीज़दार तवायफें भी अपने कद्रदानों की खातिर के लिए डोरे में बँधवाकर पान के बीड़े मँगाती हैं।

सामान्य रूप से समाज में अविवाहित सयानी लड़की लोगों की चर्चा का विषय बनती है और माँ बाप के लिए चिन्ता का विषय। घासीराम की लड़की 'चुन्नी'----'श्यामा' 16 वर्ष की हो गई ह । और अभी तक उसका विवाह नहीं हो पाया है। अतः चार लोग बात करने लगे हैं। प्रतिष्ठित एवं मर्यादावादी घरों में विवाह के लिए लड़की को पुरूष वर्ग तो देखता ही नहीं था। वर पक्ष की स्त्रियाँ भी कम ही देखती थीं। अधिकांशतः पुरोहित या नाई की बात पर विश्वास करके सम्बन्ध स्थिर कर लिया जाता था। पर लड़का स्वयं लड़की देखे 'हिन्दुओं में तो ऐसा होता नहीं - - - - ।' पर अब दृष्टि बदल रही है — 'अब वह समय नहीं रहा कि जैसी भी पल्ले बँध गई, निबाह ले गए' — गोकुल प्रसाद कहते हैं। अतः गोकुल प्रसाद अपने विवाह के लिए लड़की स्वयं देखने का विचार रखते हैं।

उधर बिगड़े हुए लड़के को लेकर माँ सोचती है जब ब्याह हो जायगा तब सब बातें छूट जाँयगी। जब घर में जी बहलाने का सामान नहीं होता तब लोग बाहर जी बहलाते हैं।' लड़के का ब्याह उचित वय में हो ही जाना चाहिए अन्यथा अपने पराये सब ताने देते हैं 'इज्जत-आबरू वाले की सब तरह से मुश्किल है।'[91]

---

§90§- मा : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक § पृष्ठ 332 §
§91§- मा : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक § पृष्ठ 233 §

लखनऊ के रईसों, नवाबों के यहाँ शादी की खुशी में महफिल होती है। जिसमें तवायफें, भाँड़ सभी का प्रबंध किया जाता है। नवाब उस्मानअली के लड़के की शादी की महफिल में लखनऊ चौक की 'अल्लाहबन्दी' नामक तवायफ का बुलावा आया है। विवाह का घर जानकर रईसों के घर आतिशबाज तथा तवायफों के दलाल उनके दरवाजे पर पहुँचने लगते हैं कि शादी के लिए अतिशबाजी का काम उन्हें मिल जाय और महफिल के लिए अपनी परिचित तवायफों को 'बयाना' मिल जाय।"92

वैसे गाँधीमत के प्रचार के कारण हिन्दुओं के घर शादी में नाच होना बन्द हो गया है। 'बन्दो' के नौकर 'मुहम्मदअली' का विचार है इससे समाज का सुधार होने के बजाय 'ऐयाशी' और बढ़ गई है। बन्दो की अम्मा कहती है, "नाच बन्द कर दिए मगर रंडीबाजी बन्द न हुई -- वह दिन ब दिन बढ़ती ही जाती है। हाँ, रंडियाँ बेचारी अलबत्ता ज़लील हो गई। पहले सैकड़ों रंडियाँ सिर्फ नाच गाने का ही पेशा करती थीं, कसब करने के पास न फटकती थीं। ------ अब जिसे देखो वह कसब ही करती है। आखिर करें क्या, किसी तरह गुजर तो चले।"-- -----"पहले लोग समझा करते थे कि रंडियां शरीफों की इज्जत आबरू बचाने का जरिया है"---- अब लोग पराई बहू बेटियों को खराब करते फिरते हैं"-----"93

समाज में गाँधी मत के प्रचार से जहाँ हिन्दुओं के घरों में शादी में 'महफिल' 'नाच' बन्द हो गए वहीं नवयुवकों में स्त्री-उध्दार और समाज सुधार की चेतना का प्रादुर्भाव हुआ है। शंभूनाथ के सुझाव के फलस्वरूप बाबू राधाकृष्ण बेगम की दोनो लड़कियों का विवाह करा देते हैं, श्याम नाथ और गोकुल प्रसाद को सन्मार्ग पर लगाते हैं।

समाज में प्रतिष्ठित लोगों की पहुँच सरकार तक होती थी। बाबू ब्रजमोहन लाल की संस्तुति पर कलक्टर ने शंभूनाथ को डिप्टी कलक्टर के पद पर नियुक्त कर दिया। परिवार में 'कमाऊ पूत' की अतिरिक्त

||92||- मां : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक || पृष्ठ 31।||
||93||- मां : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक || पृष्ठ 17-18||

आकस्मात और पूछ होती है । शंभूनाथ डिप्टी कलक्टर हो गए हैं अतः 'किसी में इतना साहस नहीं कि उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ कर सके ।'[94]

इस प्रकार प्रस्तुत कथाकृति में लखनऊ के सामान्य उच्चवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय दो परिवारों को लेकर जिस कथा का ताना बाना बुना गया है उसमें गौण होने पर भी लखनऊ के चौक के चित्र अधिक जीवन्त और विशेष रूप से उभरकर सामने आए हैं । लखनऊ के सामान्य खत्री परिवार का चित्रण समानान्तर चलता रहा है ।

भिखारिणी § 1929 ई0 §

'भिखारिणी' का कथा क्षेत्र है कानपुर और कथानायक हैं बाबू रामनाथ । बाबू रामनाथ के जीवन के प्रेम-प्रसंग को लेकर कथा का विस्तार हुआ है । कथा ने प्रासंगिक रूप से इलाहाबाद और कानपुर को भी स्पर्श किया है । परन्तु मुख्य है कानपुर शहर और उसके समानान्तर इलाहाबाद जनपद का गाँव चन्द्रपुर ।

कानपुर शहर मिलों और फैक्ट्रियों का शहर है जहाँ की 'गगन चुम्बी चिमनियाँ' दूर-दूर से दिखाई देती हैं । और आस-पास के वायुमण्डल में इसका धुँआ तैरता दिखाई पड़ता है । कानपुर शहर के सम्पन्न बड़े आदमियों के घर में अन्तःपुर की अलग व्यवस्था होती है जहाँ पर घर की स्त्रियाँ- माँ, बहन, पत्नी आदि रहती हैं । रसोई आदि का भी प्राविधान अन्तःपुर में ही होता है । बाहरी हिस्सा पुरुषों के लिए है । जिसमें बैठक भी है और एक ओर नौकरों की कोठरियाँ भी । बाबू रामनाथ के पिता बाबू श्याम नाथ वकील शहर के सम्पन्न लोगों में हैं उनके घर ऐसी ही व्यवस्था है । अन्तःपुर में स्त्री दासी की प्रथा है । अतः भिखारी के साथ आई लड़की 'जस्सो' रामनाथ की माँ और बहन की सेवा में रहने लगती है । बाबू रामनाथ जो बी0ए0 में पढ़ते हैं, उनके कमरे में विभिन्न समाचार-पत्र, पुस्तकें, उनके अपने पहनने के कपड़े आदि रहते हैं ।

§94§- माँ : विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' § पृष्ठ 448 §

प्रतिष्ठित व्यक्ति की संस्तुति या कोशिश पर बी०ए० पास व्यक्ति को 'नामजद' कर उसे डिप्टी कलक्टरी मिल सकती थी । व्रजकिशोर के पिता लखनऊ में डिप्टी कलक्टर थे और वे अपने पुत्र को डिप्टी कलक्टरी के लिए नामजद कराने की चेष्टा करते हैं और व्रजकिशोर डिप्टी कलक्टर हो जाता है ।

शहरों में भी हिन्दू समाज में विवाह योग्य उम्र हो जाने पर "अपना पराया" जो भी मिलता है, माता-पिता से पूछता है कि अभी तक बेटे की शादी क्यों नहीं हुई ? अतः उसका विवाह करना समाज तथा माता पिता सभी की दृष्टि में आवश्यक हो उठता है । लड़के या लड़की के विवाह का दायित्व माता-पिता का है । पिता अपने पुत्र का विवाह तय करते हैं जिसमें न तो पुत्र की राय की आवश्यकता है और न उसकी इच्छा का महत्व । पढ़ते हुए नवयुवक की दृष्टि में यह 'अंधी शादी' है अर्थात् "न पति को यह पता कि पत्नी कैसी है और न पत्नी को यह खबर कि पति कैसा है ।"[95] फिर भी वह माता पिता की इच्छा को स्वीकार करने के लिए मजबूर है । अनिच्छा पूर्वक ही सही रामनाथ माता-पिता द्वारा तय किये गए विवाह सम्बन्ध में बँधता है।

हाँ, शहरी दृष्टि थोड़ी उदार हुई है कि अभिभावक लड़के के रुप गुण के अनुसार कन्या का चुनाव करने लगे हैं । बाबू श्यामनाथ अपने पुत्र के मित्र व्रजकिशोर को लड़की का फोटो देकर कहते हैं, "तुम भी देख लो, रामनाथ भी देख लें । पीछे कोई शिकायत न हो । आजकल के शिक्षित लड़के बड़े तुक्ताचीन होते हैं । इन्हें संतुष्ट करना बड़ा कठिन हो जाता है ।"[96]

गाँव में भी विवाह सम्बन्ध बराबरी वालों में होता है और वह भी माता-पिता तय करते हैं । इस परम्परा का अतिक्रमण करने वालों का समाज साथ नहीं देता है । वे समाज छोड़कर ही रह सकते हैं । चन्दपुर गाँव के जमींदार अर्जुन सिंह के पुत्र नन्दराम सिंह ने अपनी ही बिरादरी की परन्तु गरीब घर की लड़की "सोना" से विवाह करना चाहा तो उन्हें घर, गाँव छोड़ देना पड़ा ।

---

[95]- भिखारिणी : विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक [पृष्ठ 35]

[96]- भिखारिणी : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक [पृष्ठ 187]

प्रेम तथा प्रेम-विवाह के लिए शहर और गाँव में एक ही प्रकार की मानसिकता है । नन्दराम को गाँव छोड़ना पड़ा था और शहर में राम नाथ तो इस बात को पिता से कहने का साहस तक नहीं जुटा पाते । माता-पिता के लिए पुत्र का यह आचरण उच्छृंखल स्वेच्छाचारिता के अन्तर्गत आता है ।

शहर में लोगों को समय के हिसाब से काम करना होता है । वकील साहब को समय पर कोर्ट जाना है । पढ़ने वालों को अपने समय की पड़ी होती है । पर, गाँव की दिनचर्या किसी समय की मोहताज नहीं । शाम के सात बजे हैं और चन्द्रपुर गाँव के ज़मींदार अपनी चौपाल पर बैठे हुए हैं । दीन-दुनिया की बातें होती रहती हैं ।

गाँव के ज़मींदार की जीवन-पध्दति विशिष्ट है । वे अपनी 'बहेली' पर यात्रा करते हैं, साथ चलती है एक महाराजिन, दो सेवक जिसमे एक जाति का नाई और दूसरा बारी । नाई जमींदार साहब के पीछे-पीछे बन्दूक और कारतूस की पेटी लेकर चलता है । चन्द्रपुर के जमींदार अर्जुनसिंह इसी सज्जा के साथ चन्द्रपुर से कानपुर के लिए प्रस्थान करते हैं । विशेष अवसरों पर ज़मींदार साहब की वेशभूषा होती है — श्वेत पायजामा, रेशमी कोट जिसकी ऊपरी जेब से घड़ी की सोने की चेन लटकती रहती है । गले में रेशमी दुपट्टा, सिर पर रेशमी साफा, पैरों में 'पेटेन्ट लेदर का शू §जूता§' होता है । साथ में चलने वाला नाई भी सफेद धोती, सफेद कुर्ता, सिर पर गुलाबी साफा धारण किये होता है । उसके गले में होता है 'सुबे-दारी सुनहला कंठा' और पैरों में देहात का बना हुआ 'चर्र-मर्र' बोलने वाला जूता ।

गाँव के लोग बहुत दिनों बाद मिलने पर बेटा, बेटी को प्रेमातिरेक वश गले लगा लेते हैं पर शहर में इसे 'देहाती गँवारपन' माना जाता है । ज़मींदार अर्जुन सिंह के अपनी पौत्री को सीने से लगा लेने पर रामनाथ मन में कहता है 'जवान लड़की को छाती से लगाता है, बदतमीज कहीं का ।'[97]

---

§97§- भिखारिणी : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक § पृष्ठ 80 §

शहर में सम्पन्न घरों में आने-जाने के लिए पालकी-गाड़ी और फिटन हुआ करती थीं और गाँव में ज़मींदारों के घर 'बहेली' । शहरों में भी सम्भ्रान्त घर की स्त्रियाँ पर्दा करती हैं । स्त्रियाँ पालकी गाड़ी में बैठ कर बाहर जाती हैं और पुरुष 'फिटन' पर । सम्बन्धी स्त्री - पुरुष भी एक ही सवारी पर साथ-साथ बैठकर नहीं जाते । ठाकुर अर्जुन सिंह की पत्नी और पौत्री कानपुर में पालकी गाड़ी पर बैठकर स्टेशन तक जाती हैं और रामनाथ, ठाकुर साहब और उनके नौकर फिटन पर बैठकर । स्टेशन पर भी पुरुष और महिलाएं §एक ही परिवार के§ अलग अलग बेंचों पर बैठते हैं ।

शहर के लोगों की दृष्टि में देहात घूमने के लिए अच्छी जगह है क्योंकि 'देहात ही से प्रकृति की पूर्ण छटा देखने को मिलती है ।' इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के विद्यार्थी के लिए घूमने के अतिरिक्त शिकार खेलने के लिए भी गाँव-देहात अच्छी जगह है । रामनाथ अपने मित्रों के साथ 'चन्द्रपुर' घूमने और शिकार खेलने के लिए जाता है । गाँव में अतिथि की विशेष आवभगत होती है । उनके आने जाने के लिए पछाहीं बैलों से युक्त बहेलियों का प्रबंध किया जाता है । स्टेशन से घर तक आने के लिए सुरक्षा की दृष्टि से बन्दूकों और सुविधा के लिए लालटेनों का भी प्रबंध गृहपति की ओर से है ।

एक बड़ा कमरा गाँव के ज़मींदार का अतिथि-गृह है । जिसकी 'भूमि पर एक बड़ी दरी बिछाई हुई थी । एक ओर तीन निवाड़ के पलंग बराबर-बराबर पड़े हुए थे । दूसरी ओर कोने में एक मध्याकार मेज रखी थी और उस पर लैम्प रखा हुआ था । मेज के पास चार कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं ।' अतिथि की पूरी सुख-सुविधा का ध्यान रखा गया है ।

शिकार खेलने के लिए सबेरे 'मुँह अँधेरे' निकलना होता है । तभी झील में सवन, बत्तख, सुर्खाब आदि पाये जा सकते हैं गाँव की नीची जाति §पासी आदि§ के लोग सुअर के शिकार पर जान देते हैं । वे जानते हैं कि सुअर मारा जायगा तो उन्हीं को मिलेगा - सवर्ण उसे खाते नहीं ।

गाँव में, ज़मींदार के घर भी, दालान में आसन बिछाकर भोजन के लिए व्यवस्था की जाती है । कलई दार मुरादाबादी थाल में पूरी, कचौरी, तीन तरह का साग, पापड़, मलाई, रबड़ी, अचार और रायता का भोजन दिया जाता है । घी-दूध की शुध्दता और स्वाद/गाँव में ही है, शहर में नहीं । रामनाथ कहता है, "ऐसी मलाई शहर में कहाँ वहाँ तो आरा-रोट चलता है ।"[98]

सवर्ण और असवर्ण का भेद तथा छूत-विचार गाँव का विशेष चरित्र है । अर्जुन सिंह कहते हैं, "हमसे यह कभी नहीं हो सकता कि चमार का छुआ हुवा खा लें - वह चाहे कैसा ही शुध्द व साफ हो ।- - - -अब खाली हम ऐसा करें तो जाति बाहर कर दिये जायँ--भाई-बिरादरी में हुक्का पानी बन्द हो जाय ।"[99] गाँव के लोग पम्प के पानी §पम्प में चमड़ा लगा होता है§ और चमार के छुए पानी में 'फरक' नहीं मानते । ठाकुर अर्जुनसिंह मानते हैं कि अंग्रेजी के प्रचार से धर्म-कर्म उठ गया है ।

ज़मीदारों के घर सेवकों से काम में थोड़ी भी असावधानी होने पर ज़मीदार उन्हें कथ्य-अकथ्य तो कहते ही हैं, कोड़े से पीटते भी हैं । शिकार खेलने गए रामनाथ, जमीदार के अतिथि, टीले से गिर पड़ते हैं तो साथ के पासियों को दोषी मानकर ठाकुर उन्हें कोड़े से पीटने के लिए तैयार हो जाते हैं ।

गाँव में ऐसे भी लोग हैं जो उखड़े तथा टूटे अंग जोड़ने के लिए आस-पास के दस-पन्द्रह कोस तक विख्यात हैं । 'बुधुआ' अहीर रामनाथ के उखड़े घुटनों को इस सफाई से बिठाता है कि रामचन्द्र कह उठता है कि "यह तो डाक्टरों के भी कान काटता है ।"[100]

गाँव में आत्मीयता है, अप्रतिम आतिथ्य है, अपने ही गुणों से अनजान और लोगों के व्दारा न पहचानी गयी योग्यता है पर इन सबसे बढ़कर रूढ़िवादिता है जहाँ तर्क की कोई गुंजाइश नहीं है । चन्द्रपुर में

---

§98§- भिखारिणी : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक § पृष्ठ 124 §
§99§- भिखारिणी : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक § पृष्ठ 127 §
§100§- भिखारिणी : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक § पृष्ठ 140 §

जस्सो के विवाह की बात 'सीतलपुर' की 'ठकुराइन' के लड़के से चल रही है । पर ठकुराइन ने अपने लड़के से जस्सो का रिश्ता नामंजूर कर दिया है क्योंकि वह भगाई हुई लड़की §सोना§ की बेटी है और फिर पहले भीख माँगती रही है । अन्ततः जस्सो का विवाह कहीं नहीं हो पाता । 'जस्सो के पास दो-एक टहलनियों के अतिरिक्त गाँव की कोई स्त्री नहीं आती। कैसे आवे ? सोना से नन्दराम का विवाह विधिपूर्वक हुआ था या नहीं ? यदि बिना विवाह हुए ही जस्सो का जन्म हुआ है तो ? जस्सो से कोई भलामानस अपने लड़के का विवाह करने को तैयार क्यों नहीं होता ?'[10] इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर न पाने के कारण जस्सो के पास गाँव की कुल-ललनाएं कैसे आतीं ?

शहर में जिस प्रकार हर काम का एक निश्चित समय है, निश्चित दिनचर्या है तदनुसार मनोरंजन का भी उनकी दिनचर्या में स्थान है । शहर में लोग अखबार और नावेल तो पढ़ते ही हैं थियेटर भी देखने जाते हैं । बाबू ब्रजकिशोर § डिप्टी कलक्टर § के साथ रामनाथ थियेटर देखने जाता है — थियेटर कम्पनी वाले डिप्टी कलक्टर साहब को 'काम्प्लीमेन्टरी' टिकट' भेजते रहते हैं ।

शहर में विशेषरूप से तीर्थ-स्थलों में भिखारी - भिखारिणियाँ यत्र तत्र मिलेंगी । कहीं से उनको भरपेट भोजन मिल जाता है तो कहीं से 'गाली' और 'दुत्कार'। किसी पेड़ के नीचे ये रात बिता लेते हैं और प्रातः फिर भिक्षावृत्ति । पहले तो नन्दराम और उसकी पुत्री जस्सो कानपुर में भीख माँगते रहे । अब जस्सो हरद्वार के रेलवे प्लेटफार्म पर भीख माँगती है ।

वस्तुतः 'भिखारिणी' की कथावस्तु रामनाथ और जस्सो के चारों ओर घूमती है, वातावरण - सृष्टि गौण रही है । और, नगर की अपेक्षा गाँव के चित्र अधिक मुखर एवं स्पष्ट है ।

---

§10§- भिखारिणी : विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक § पृष्ठ 228 §

कंकाल § 1930 ई0 §

'कंकाल' की कथावस्तु प्रयाग, काशी, हरिद्वार, वृन्दावन, मथुरा आदि तीर्थ स्थानों में फैली हुई है। ये तीर्थ स्थान वास्तव में पाखण्ड केन्द्र हैं जहाँ कंकालावस्था में समाज के चित्र मिलते हैं।

गंगा के तट पर और 'प्रतिष्ठान पुर के खण्डहर में' अनेक शिविर और फूस के झोपड़े खड़े हैं। माघ की अमावस्या की गोधूलि में प्रयाग में बाँध पर 'जनरव और कोलाहल तथा धर्म लूटने की धूम कम हो गई है; परन्तु बहुत से घायल और कुचले हुए अर्ध मृतकों की आर्त ध्वनि' उस पावन प्रदेश में व्याप्त है। स्वयं सेवक उन्हें सहायता पहुँचाने में लगे हैं।

दूर-दूर से अनेक गृहस्थ लोग आ आकर इन मेलों में साधुओं का दर्शन करते, प्रवचन सुनते और फल मिठाई भेंट चढ़ाते हैं। अमृतसर के रहने वाले श्रीचन्द्र और उनकी धर्म पत्नी किशोरी भी आए हैं। वे साधुओं का दर्शन करते और दान पुण्य करते हैं। यही नहीं स्त्रियों में यह बलवती आस्था थी कि साधु सन्यासियों के आशीर्वाद से सन्तान की प्राप्ति हो सकती है। श्रीचन्द्र की पत्नी किशोरी बीस वर्ष के युवा, दिव्य से साधु से सन्तान प्राप्ति के लिए प्रार्थना करती हैं। और जब वह साधु हरद्वार चला जाता है तो उसके पीछे-पीछे हरद्वार तक चली जाती है।

हरद्वार के समीप गंगा के तट पर तपोवन है जिसमें छोटे-छोटे कुटीरों की श्रेणी बहुत दूर तक चली गई है। तपस्वी अपनी तपस्या और योगसाधना के लिए उन कुटीरों में रहते हैं। उनके भोजन के लिए अन्नादि का प्रबन्ध बड़े बड़े मठ करते हैं साधु भिक्षावृत्ति से भी पेट भर लेते हैं। खास हरद्वार से यह स्थान थोड़ा हट कर है फिर भी इस स्थान पर भी साधुओं से अपनी आकांक्षा पूर्ण होने का आशीर्वाद लेने भक्त गण-विशेष कर स्त्रियाँ आ पहुँचती हैं। किशोरी देव निरंजन नामक साधु से पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद लेने वहाँ भी पहुँच जाती हैं।

अनेकानेक लांछिता, परित्यक्ताओं की शरणस्थली भी हरद्वार

है । बरेली की 'रामा' नामक विधवा ब्राह्मण वधू को उसके देवर ने दुराचार का लांछन लगाकर उसे हरद्वार में लाकर छोड़ दिया ताकि उसके पति के नाम की भूमि सम्पत्ति पर वह अधिकार पा सके । हरद्वार जैसे तीर्थ में विधवा विशेषकर ब्राह्मण विधवा को आश्रय और स्थान की कमी नहीं है — आसानी से मिल जाते हैं । अतः किशोरी के चले आने पर भी रामा हरद्वार में रह जाती है । इसी प्रकार मंगल के द्वारा लखनऊ के वेश्यालय से निकाली गई 'तारा' अपने पिता द्वारा न स्वीकार किये जाने पर मंगलदेव के संरक्षण में रहने लगती है ।

उस समय समाज सुधार के आन्दोलन को लेकर आर्यसमाज हरद्वार में बड़ा सक्रिय था । अतः आवश्यकता से विवश होकर मंगलदेव और तारा ने आर्य समाज का साथ दिया और संरक्षण प्राप्त किया । यद्यपि तारा के घर 'कुल्लू की माँ' जैसी कुछ स्त्रियाँ कसीदा सीखने आतीं और कभी बल्लो किताब लेकर पढ़ने । पर सामान्यतया युवक और युवती का स्वच्छन्दतापूर्वक साथ रहना समाज अच्छी आँखों नहीं देखता था । अतः तारा और मंगलदेव का साथ-साथ रहना उचित नहीं — सुभद्रा कहती है ।

इधर उधर के सम्बन्धी रिश्तेदार विशेष कर स्त्रियाँ सहानुभूति के बहाने छिद्रान्वेषण के लिए आती हैं । बात बात में घर के गोपनीय भेद लेती देती रहती हैं । तारा की चाची तारा की हमदर्द बनकर आती हैं और तारा तथा मंगल के विवाह का प्रबंध करवाती है । साथ ही साथ मंगलदेव को बात बात में यह बता जाती है कि 'तारा की माँ ही कौन भण्डारी जी की ब्याही धर्म पत्नी थीं ।'

चाची में बड़ी योग्यता है । दो महीने के गर्भ को इसप्रकार समाप्त करवा सकती हैं कि 'किसी को कानों-कान खबर भी नहीं होती'। यही नहीं, 'मोहनदास' तारा के 'पैरों पर नाक रगड़ता'— इसका भी प्रबन्ध वह कर दे सकती हैं । हाँ, इन सब कामों के लिए बीच में उन्हें भी बहुत कुछ मिल जाता है ।

हरद्वार जैसे तीर्थ केवल व्यभिचार, मिथ्याचार के ही केन्द्र नहीं हैं, परोपकारी, निस्वार्थ सेवापरायण व्यक्तियों की भी कमी नहीं है । आत्महत्या के लिए गंगा में उतरती तारा को एक सन्यासी पकड़ कर निकाल लेता है और प्रसव के लिए अस्पताल में भर्ती करवा देता है ।

प्रत्येक नगरों के अस्पताल से हरद्वार का अस्पताल अलग नहीं है । अस्पताल में तारा को दूध कभी कभी मिलता क्योंकि 'अस्पताल दिन दीनों के लिए बने हैं, वहाँ उनकी पूछ नहीं । उसका लाभ भी सम्पन्न ही उठाते हैं । जिस रोगी के अभिभावकों से कुछ मिलता उसी की सेवा अच्छी तरह होती, दूसरे के कष्टों की कोई गिनती नहीं ।'[102]

लखनऊ यद्यपि कोई तीर्थ स्थल नहीं है । फिर भी 'युक्त प्रान्त का एक निराला नगर है' जो अपनी तड़क-भड़क और अपनी विशेष-संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है । लखनऊ की संध्या 'शाम-ए-अवध' है — शाम को बिजली की रोशनी में चौक बाजार में नीचे वस्तुओं का क्रय-विक्रय चलता रहता है और ऊपर से 'सुन्दरियों के कटाक्ष'। 'चमकीली वस्तुओं का झलमला, फूलों के हार का सौरभ और रसिकों के वसन में लगे हुए गंध' से युक्त वातावरण मादक सा हो उठता है । यहीं मंगल ने देखा कि हरद्वार में खोई हुई 'तारा' यहाँ रूप के बाजार में 'गुलेनार' बन बैठी हुई है । यहाँ उसका 'आहार - व्यवहार' तो नष्ट हो चुका है, केवल 'सर्वनाश' बाकी है क्योंकि 'अम्मा जितना रुपया चाहती है, नहीं मिलता' इसीलिए बची जा रही है ।'[103]

लखनऊ में 'जनमीना की समाधि' पर सावन के महीने में मेला सा लगता है । समाधि पर गायकों की भीड़ होती है, वेश्याओं का भी 'आकर्षक समारोह' है । अचानक बूंदाबाँदी से रसिकों के समाज में हलचल मच जाती है। इस भीड़ और हलचल का लाभ बहुतों को अपने ढंग से मिल जाता है — मंगल-देव' नामक स्वयं सेवक 'गुलेनार' को लेकर निकल भागता है ताकि उसे वेश्याओं

(102)— कंकाल : जयशंकर प्रसाद । पृष्ठ 44 ।

(103)— कंकाल : जयशंकर प्रसाद । पृष्ठ 31 ।

के चंगुल से मुक्ति मिल सके । गाड़ी पर बैठने के बाद 'गुलेनार'— अब फिर 'तारा' 'वेश्यापन के आभूषणों' को उतारकर 'साधारण गृहस्थ बालिका' बनकर बैठ जाती है ।

एक बार भी स्वेच्छा या मजबूरी वश घर-समाज की मर्यादा रेखा से बाहर निकली हुई बालिका फिर समाज तो क्या स्वयं अपने पिता व्दारा भी स्वीकार्य नहीं होती । तारा का पिता उसे स्वीकार नहीं करता, कहता है — "ऐसी स्वैरिणी को कौन गृहस्थ अपनी कन्या कहकर सिर नीचा करेगा ।"[104]

काशी में चन्द्रग्रहण के अवसर पर गंगा-स्नान का बड़ा महात्म्य है । गंगा के तट के घाटों पर बड़ी भीड़ है । चन्द्रग्रहण लगते ही धार्मिक जनता गंगा में नहाने के लिए घाटों पर गिरने लगी — कितनों को चोटें आईं और कितने ही अपने सम्बन्धियों से अलग छुट गए । रामा की कन्या 'तारा' उससे तथा अन्य सम्बन्धियों से अलग जा पड़ी थी ।

मेलों की भीड़ में अन्य असामाजिक तत्वों के साथ स्त्रियों का व्यापार करने वाले गिरोह की स्त्रियाँ भी सक्रिय रहती हैं और उधर स्वयं सेवकों का समाज भी । पर स्त्री होने के कारण ये दुराचारिणी स्त्रियाँ ही भूली-भटकी स्त्रियों का विश्वास जीतकर अपने उद्देश्य में अधिक सफल होतीं । माँ से बिछुड़ी तारा भी ऐसी एक स्त्री के जाल में फँसकर उसका शिकार बन जाती है ।

काशी में स्थायी निवास करने वालों के अतिरिक्त अन्य सम्पन्न लोग भी आकर बस जाते हैं — धर्म-कर्म की नगरी जो ठहरी । फिर, धर्म-कर्म, अनाचार के लिए आवरण भी तो है । स्वामी देव निरंजन की कृपापात्री किशोरी अपने पुत्र के साथ काशी में रहने लगती है और पति श्रीचन्द्र के भेजे रुपये से 'स्थावर सम्पत्ति' खरीदती जाती है । उसका पुत्र विजय घोड़े पर चढ़ कर स्कूल जाता है । स्कूल में उसकी बड़ी धाक है । अक्सर वह अपने मित्रों को निमंत्रण देकर खाने पर बुलाता । इधर किशोरी के घर प्राय

---

§104§- कंकाल : जयशंकर प्रसाद § पृष्ठ 38 §

भण्डारे होते रहते । ठाकुर जी की सेवा भी धूम धाम से होती । 'ठाकुर जी के कमरे के आगे दालान में संगमरमर की चौकी पर स्वामी देव निरंजन बैठते । चिकें लगा दी जाती । भक्त महिलाओं का भी समारोह होता । कीर्तन,उपासना और संगीत की धूम मच जाती ।'[105]

कभी 'ठाकुर जी' का शरद पूर्णिमा का श्रृंगार होता — रत्नाभूषण तथा चमेली के पुष्प से । भजन कीर्तन और मंगलगान होता, भंडारा तो होता ही । भोजन के बाद दासियाँ छत से पूरी और मिठाइयों के टुकड़ों से लदी झूठी पत्तलें उछाल कर बाहर फेंक रही थीं । नीचे अछूत डोम और डोमनियाँ डंडों से कुत्तों को हटाकर 'आपस में मार-पीट, गाली गलौज करते हुए' उस उच्छिष्ट को लूट लूट कर अपनी टोकरियों में डाल रहे थे ।

इन 'अछूत, अन्त्यज, अपवित्र' लोगों का देव-गृह में जाना निषिद्ध है । अज्ञात-कुलशीला यमुना देवगृह में जाने से रोक दी जाती है । पर नवयुवकों के मन में इस अनुशासन के लिए विरोध है । देव विग्रह उनके लिए 'खिलौना' है । धर्माधिकारियों के लिए वह कहता है, "धर्म के सेनापति विभीषिका उत्पन्न करके साधारण जनता से अपनी वृत्ति कमाते हैं और उन्हीं को गालियाँ भी सुनाते हैं । यह गुरुडम कब तक चलेगा ?"[106]

बड़े बड़े धर्माधिकारी एवं वैभव सम्पन्न लोगों की ही आश्रय स्थली, काशी नहीं है । दशाश्वमेध घाट वाली चुंगी चौकी के पास के पीपल के वृक्ष के नीचे भी अनेक मनुष्य आश्रय लेते हैं । जिनका भरण-पोषण पुण्य स्नान करने वाली वृध्दाओं के व्दारा दान दिये गए 'चार चार चावल कणों' से होता रहता है । §यद्यपि काशी में बड़े बड़े अनाथालय और बड़े बड़े अन्नसत्रों की कमी नहीं है§ । उसी वृक्ष के पास दिन के समय नाई अपने टाट बिछाकर बाल काटने में लगे रहते हैं । ये पीपल की जड़ से टिके देवता के परम भक्त हैं, स्नान करके अपनी कमाई के फल-फूल वे इन्हीं पर चढ़ाते हैं ।

इस वृक्ष के नीचे हर भिखमंगे का अपना निश्चित स्थान है । एक

---

§105§- कंकाल : जयशंकर प्रसाद § पृष्ठ 68 §
§106§- कंकाल : जयशंकर प्रसाद § पृष्ठ 85 §

भिखारी के स्थान पर यदि कोई अन्य भिखारी आ जाता है तो वह भिखारी झगड़ा करके अपनी जगह को पुनः लेकर ही निश्चिंत होता है। दीन-हीन विजय को अपने स्थान पर सोता देखकर भिखारी उसे डंडे से मारने की धमकी देकर अपनी जगह खाली करा लेता है।

इसी दशाश्वमेघ घाट पर 'भारत-संघ' का प्रचार करने के लिए 'प्रदर्शन' निकलता है — आगे स्त्रियों का दल 'करुण संगीत' गाता चलता है पीछे 'स्वयंसेवकों की श्रेणी'। पीपल वृक्ष के पास खड़ी महिला-'घंटी' कह रही थी — संसार को इतनी आवश्यकता किसी अन्य वस्तु की नहीं, जितनी सेवा की। देखो — कितने अनाथ यहाँ अन्न-वस्त्र विहीन, बिना किसी औषधि उपचार के मर रहे हैं - - - -।' और थोड़ी दूर पर ही एक अनाथ शव पड़ा है — विजय का।

श्रावण मास में वृन्दावन विशेष महिमा और सौन्दर्य से मण्डित हो उठता है। अनेकानेक तीर्थ यात्री आ-आकर टिकने लगते हैं और मन्दिर मन्दिर दर्शन करते हैं। किशोरी और देव निरंजन की पूरी पार्टी भी वृन्दावन आई हुई है। सड़क पर छोटे-छोटे ब्रह्मचारी दण्ड, कमण्डल और पीत वसन धारण किये हुए गा-गाकर भिक्षा माँग रहे हैं और गृही लोग इन ब्रह्मचारियों की झोली में कुछ डाल देते हैं। अनाथ तरुण बाल विधवा घंटी आने जाने वाले तीर्थ यात्रियों के साथ लग लेती है। वह स्वाभाविक, निःसंकोच परिहास करती रहती। वह कहती है, "यह ब्रज है है बाबू जी। यहाँ पत्ते पत्ते में प्रेम भरा है। बंसी वाले की बंसी अब भी "सेवा कुंज" में आधी रात को बजती है।"[107]

वृन्दावन मधुर प्रेम-भूमि ही नहीं है, कर्म भूमि भी है। यहीं मंगल देव ने ऋषि - कुल भी खोल रखा है सेवा-भावना और समाज सुधार की दृष्टि से। जो किसी गृहस्थ द्वारा दिये गये उजड़े उपवन में स्थापित है।

{107}- कंकाल : जयशंकर प्रसाद { पृष्ठ 108 }

वृन्दावन से थोड़ी दूर हरे भरे टीले पर एक छोटा श्रीकृष्ण का मन्दिर है, उसके चारों ओर कोठरियाँ और दलाने हैं । मन्दिर के अध्यक्ष श्रीकृष्ण शरण मन्दिर के सामने दालान में बैठ कर प्रवचन करते हैं । कोठरियों में वृध्द साधु और उम्रदार स्त्रियाँ रहती हैं जो भगवान का प्रसाद पाकर संतुष्ट और प्रसन्न हैं ।

पारम्परिक, रूढ़ि ग्रस्त हिन्दू धर्म अनाचार-दुराचार से नष्ट नहीं होता, नष्ट होता है ईसाई और मुसलमान के घर रहने-सहने से, खान-पान से । 'नन्दो' ईसाई धर्म में दीक्षित या ईसाइयों के घर खाना खाने के कारण, अपनी खोई हुई लड़की को पुनः स्वीकार करने में हिचकती है-- 'बहुत दिनों पर मेरी बेटी मिली भी तो बेधरम होकर ।'[108]

मथुरा में मन्दिर तो हैं ही, चर्च भी हैं । चर्च के पादरी 'जॉन साहब' अपने शिष्ट आवरण के अन्दर लोगों को ईसाई मत में दीक्षित करने के लिए प्रयत्नशील हैं । सम्पन्न ईसाई परिवारों का पादरी साहब पर काफी प्रभाव है । चर्च के पास एक बंगले में रहने वाले मिस्टर बाथम का पादरी जॉन लिहाज़ करते हैं । मिस्टर बाथम का व्यवसाय है प्राचीन कला-चित्रों की प्रतिकृति को मौलिक चित्रों के नाम पर बेचना । इसके लिए वे उचित पारिश्रमिक देकर कलाकारों से प्रतिकृति तैयार करवाते हैं । तीर्थस्थलों पर यह व्यवसाय अच्छा चलता है क्योंकि अनेक स्थानों के यात्री आते रहते हैं और मुँहमाँगे दाम पर प्राचीन कलाकृति §9§ बिक जाती है ।

तीर्थ स्थलों पर गुण्डे भी खूब सक्रिय हैं - स्त्रीधन के विशेष लोभी । मुसलमान गुंडे पर्यटक विजय के साथ आई घण्टी का अपहरण करना चाहते हैं । इन गुंडों और पुलिस इन्सपेक्टर की मिली भगत रहती है । नवाब तांगे वाला सब इन्सपेक्टर को 'मामले' देता है, बदले में उसे भी कुछ चाहिए कभी रुपया कभी सुसती । कहीं दुर्घटना हो जाने पर सब-इन्सपेक्टर के साथ-साथ काफी भीड़ इकट्ठी हो जाती है । भीड़ की वृत्ति केवल तमाशबीन की वृत्ति है । उनका 'थोड़े समय के लिए मन-बहलाव' हो जाता है ।

---

§108§- कंकाल : जयशंकर प्रसाद § पृष्ठ 263 §

मनबहलाव के तरीके भिन्न भिन्न व्यक्ति के लिए भिन्न भिन्न हैं। अमृतसर के श्री चन्द्र को 'लाखों का हेर-फेर करने में उसे उता ही सुख मिलता जितना किसी विलासी को विलास में।' हाँ, काम से छुट्टी पाने पर 'थकावट मिटाने के लिए बोतल, प्याला और व्यक्ति निर्विशेष के साथ थोड़े समय तक आमोद-प्रमोद कर लेना' उनका मनोरंजन था। श्रीचन्द्र का पक्का व्यवसायी। अपने मनोरंजन के क्षणों की सहचारिणी 'चन्दा' नाम की धनी महिला से वह स्वयं विवाह न करके उसकी पुत्री से अपने पुत्र का विवाह करने को प्रस्ताव करता है, जिससे उसकी सम्पत्ति भी मिल जाय और 'समाज के विद्रोही' होने से भी बच जायँ। वह रात्रि चन्दा के साथ व्यतीत करता है पर प्रातः ही उसे उसके अपने घर जाने को कहता है क्योंकि वह जानता है 'संसार में पाप से उतना डर नहीं जितना जनरव से'। अनाचारी व्यक्ति भी चाहता है कि 'हम लोग चाहे जैसे हों पर सन्तानें हम लोगों की बुराइयों से अनभिज्ञ रहें।'[109]

अमृतसर जैसे नगरों की व्यवहार कुशलता और तीर्थस्थलों के आडम्बर युक्त जीवन से दूर और अलग सीधी सच्ची जिन्दगी जीने वालों की बस्ती है फतेहपुर सीकरी से अछनेरा के मार्ग की ऊँची टेकरियों पर। बड़े बड़े वृक्षों के नीचे पशुओं के झुंड बंधे हैं — गाय, भैंस और घोड़े भी। तीन चार भयंकर कुत्ते भी हैं। वहाँ रहता है 'बदन' गूजर और उसकी पुत्री 'गाला'। बदन गूजर डाकुओं का सरदार रहा है। गाला पशु पक्षियों को पकड़ कर पालती है और पिता उन्हें 'बटेसर के मेले' में बेच आता है। गूजर के साथी जीवित बकरी भूनकर खाते हैं। इनका अपना जीवन-दर्शन है। बदन गूजर कहता है, "हम लोग डाकू हैं, हम लोगों में माया-ममता नहीं। परन्तु हमारी निर्दयता अपना निर्दिष्ट पथ रखती है, वह है केवल धन लेने के लिए। भेद यही है कि धन लेने का दूसरा उपाय हम लोग काम में नहीं लाते, दूसरे उपायों को हम लोग अधम समझते हैं — धोखा देना, चोरी करना, विश्वासघात करना, यह सब जो तुम्हारे नगरों के सभ्य मनुष्यों की जीविका के सुगम उपाय हैं हम लोग उनसे घृणा

[109]- कंकाल : जयशंकर प्रसाद § पृष्ठ 180 §

करते हैं । — — — — — — — — हम लोग जिसे शरण में लेते हैं उससे विश्वास-घात नहीं करते ।"110

वहीं बर्बर मानवों के — जाट, गूजरों के 'अत्यन्त कठोर और तीव्र स्वभाव वाले' लड़कों को संस्कृत करने का काम कर रही है मंगलदेव की पाठशाला जो 'सिकरी' में स्थित है ।

कुछ तीर्थस्थलों के — गंगासागर, अयोध्या आदि के अतिसंक्षिप्त चित्र हैं । संक्षेप में यदि कहा जाय तो 'कंकाल' में लेखक ने अनेकानेक पात्रों के माध्यम से तत्कालीन तीर्थ नगरों का निदर्शन किया है, और वहाँ प्रचलित पाखंड पर तीखी टिप्पणी की है ।

रहस्यमयी § 1931 ई0 §

लेखक ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि 'रहस्यमयी' का कथानक काल्पनिक न होकर 'जीवन में बीती हुई एक सच्ची सम्भव और अद्भुत घटना है ।' केवल पात्र के नाम और घटनाओं की रंगभूमि—दिल्ली फर्जी 'फर्जी' ही सही पर जब इसे दिल्ली की घटना कह कर प्रस्तुत किया गया है तो इसे दिल्ली के चित्र के रूप में ही देखना भी होगा ।

कथा नायक रमेश चन्द्र त्रिपाठी के माध्यम से दिल्ली रेलवे स्टेशन का दृश्य प्रस्तुत है — रेलवे स्टेशन पर आने-जाने वाले यात्रियों के अतिरिक्त कुलियों की भीड़ है । इन सबके बीच 'होटल का आदमी §एजेन्ट§ सफेद वर्दी और विशिष्ट होटल के बिल्ले की टोपी लगाए' होटल का परि-चय-पत्र, होटल के विज्ञापन के लिए, यात्रियों को बाँट रहा है । रमेश चन्द्र त्रिपाठी को वह पक्का मनोवैज्ञानिक लगा क्योंकि उसने वह कार्ड त्रिपाठी जी को नहीं दिया उसने अनुमान कर लिया था कि उस होटल के योग्य इस यात्री की सामर्थ्य नहीं है । सचमुच ही वह 'मुफ्त की धर्मशाला' की खोज में था ।

---

§110§- कंकाल : जयशंकर प्रसाद § पृष्ठ 209 §

बाहर से धर्मशाला की इमारत तो भव्य दिखती थी — ऊँचा चौड़ा फाटक था । भीतर थी व्यस्तता की चहल-पहल—कोई लोटा लिए जाता दिखता था, कोई कुल्ला कर रहा था और कोई धोती सुखा रहा था । 'नलके, पर तो स्त्री पुरुष बच्चे सभी जूझे पड़ रहे थे । 'कोई जनेऊ कान में लपेटे अधमंजा लोटा हाथ में लिए ठेलमठेल कर रहा था, कोई शहज़ोर नलके मुँह में लोटे का मुंह या लोटे के मुँह में नलके का मुंह घुसेड़ कर ज़बरदस्ती अपनी ताकत का परिचय दे रहा था, कोई बदमाश किसी बेचारी अधनहाई स्त्री को घूरने में ही प्रसन्न हो रहा था - - - - - -'।।। यह सब देखकर त्रिपाठी के मन में एक 'वाहियात सी उपमा' आ गई 'मानो विष्ठे के ढेर पर बहुत सी मक्खियाँ जमा हैं ।' धर्मशाले का ज़मादार अमीर मारवाड़ी की 'मिजाजपुर्सी' में लगा था और साधारण लोगों से सीधे मुंह बात नहीं करता था ।

दिल्ली में मकान पा लेना आसान नहीं है और यदि मिलता भी है तो अविवाहित जवान व्यक्ति को कोई किरायेदार बनाना नहीं चाहता-—'न स्त्री, न बच्चे, न जाब, न पहिचान, न लेन, न देन - - - - ।' ऐसे लोगों के लिए सम्भवतः मकान मालिक सोचते हैं कि वह किसी डाकू के गिरोह का हो सकता है अथवा स्वयं ही चोर हो सकता है । 'क्योंकि अविवाहित और बेफिक्रे को गुस्सा बहुत तेज और बहुत जल्दी आ जाता है' अतः वह गुस्से में कुछ भी कर सकता है । अथवा कुँवारे जवान आदमी से दूसरे की बहू बेटियों के 'सतीत्व नाश' की आशंका हो सकती है—ये हैं भिन्न भिन्न मकान मालिकों की आपत्तियाँ को उदाहरण जो उन लोगों ने नम्र भाव से और डर सहम कर प्रत्याशी किरायेदार त्रिपाठी जी से प्रगट की थी ।

ये आशंकाएँ अकारण या निर्मूल नहीं थीं । दिल्ली में ही रहने वाले विभिन्न लोग दिल्ली वासियों के पक्ष में अच्छी धारणा नहीं रखते हैं । 'लाइट प्रेस' का मालिक सुन्दरलाल कहता है, "मैं यहाँ के आदमियों से नफरत करता हूँ । ऐसे सोता चम, स्वै और ओछे आदमी आपको धरती

पर ढूंढे नहीं मिलेंगे। - - - - यहाँ निभ उसी की सकती है जिसके मुँह में राम बगल में छुरी हो।"[112] 'देवी जी' का नौकर जयमल त्रिपाठी जी को सावधान करता हुआ कहता है कि दिल्ली में चलता आदमी लुट जाता है और 'सात तालों' में भी बन्द चीज गायब हो जाती है। अतः दिल्ली में किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

रमेश चन्द्र त्रिपाठी को पहले की दिल्ली और अब की दिल्ली में बड़ा अन्तर नजर आता है 'ऐसी इमारतें, ऐसी रौनक, ऐसी चहल-पहल तब कहाँ थी ?' हकीम साहब की निगाह में 'दिल्ली वह माशूका है जो कभी बूढ़ी नहीं होती।'[113] और इसी दिल्ली के अन्दर ऐसे 'खुदगर्ज, वहमी और बेरहम' आदमी रहते हैं जिनके लिए रुपया ही सब कुछ है। 'रुपये के लिए मेल-मुलाहिजा, मुहब्बत, रिश्तेदारी—सबको पल भर में तोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं।' इस पर विडम्बना यह कि दिल्ली और दिल्लीवालों पर लानत भेजने वाले स्वयं भी उसी चरित्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। सुन्दरलाल 'लाइटप्रेस' के तथाकथित संचालक, देवी जी का नौकर जयमल, हकीम साहब सब के सब बेइमान और व्यभिचारी हैं उसी की खाते हैं, 'देवी जी'—सुखदेवी जी के सहयोगी हैं। 'देवी जी' सदैव बढ़िया रेशमी साड़ी और मेल खाता जम्पर पहनती हैं। पैर में मोजे के ऊपर बढ़िया लेडी शू, हाथ में चमड़े का बटुआ, गले में मोतियों की माला, कलाई में घड़ी—साड़ी के अलावा सभी विलायती चीजों से सुसज्जित रहती हैं। 'पाश्चात्य भारतीयता में डूबी' देवी जी लाइट प्रेस की वास्तविक संचालिका और 'महिला' मासिक पत्रिका की सम्पादिका हैं। उनके विदुषी होने और समाज सेविका होने का बड़ा प्रचार है। कुछ ही लोग जानते हैं कि वे अपने 'स्वामी' को मार कर 'अपने यार' के साथ दस हजार का ज़ेवर लेकर भागी थीं। बाद में उसका भी 'काम तमाम' करके निकल भागीं। अब सुन्दर लाल के सहयोग से प्रेस और पत्रिका चला रही हैं। अभी भी दिल्ली के कई रईसों के यहाँ इनकी बारी बँधी हुई है और मासिक वेतन भी। इन्हीं रईसों के बल पर यह प्रेस चलता है। व्यक्तिगत जीवन में अनेक सुन्दर

§112§- रहस्यमयी : ऋषभ चरण जैन § पृष्ठ 22 §
§113§- रहस्यमयी : ऋषभ चरण जैन § पृष्ठ 52 §

नवयुवकों को फँसाकर भ्रष्ट करना इनका मनोरंजन है। समाज-सुधार और धार्मिकता के खोल में छिपे पंडित जी [सुन्दर लाल] और देवी जी दोनों महाधूर्त हैं। दिल्ली में ये अकेले ऐसे नहीं हैं।

दिल्ली और दिल्ली वालों को तो सौ लानतें भेजने वाले हकीम साहब स्वयं भी उसी चरित्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रेस का मैनेजर प्रेमशंकर कहता है, "डाकू है डाकू, साला गुण्डा। इनका गर्भ गिरा दिया, उनको जहर दे दिया -- यह इसकी हिकमत है।"[114] देवी जी का दो बार गर्भ गिरा चुका है। सेठ नारायण चन्द जो आज करोड़पती" बने बैठे हैं उनके बाप को जहर देकर इसी हकीम ने मारा था। हाँ, 'फातिमा रंडी ने इसे खूब चूना लगाया, मुसलमान बना कर मजहब तक बदल दिया था।' अब फिर ये अख्तर हुसैन से अक्षय प्रसाद हो गए हैं।

आकर्षक रूप सज्जा के नीचे दिल्ली का वास्तविक रूप चित्रण ही प्रस्तुत कथाकृति का कथ्य है। यद्यपि दो-एक सामान्य झलकी भी प्रसंगतः आ गई है। जैसे कि दिल्ली में 'डाकों' की कमी नहीं है 'एक से एक फैन्सी, एक से एक बढ़िया'।[115] मिठाई और भोजन दिल्ली में इतने स्वादिष्ट मिलते हैं कि 'भरे पेट पर भी लार टपक पड़े।'- - -'अब भी यहाँ ऐसे पाकपटु रसोइये मौजूद हैं जो पानी की खीर में रबड़ी का स्वाद पैदा कर दें और पापड़ की सी रोटी को मलाई सा फुला दें।"[116]

'रहस्यमयी' में 'देवी जी' को केन्द्र में रखकर जिस दिल्ली का चित्रण लेखक ने किया है वह आकर्षक और सम्मोहक दिल्ली को बेनकाब करके उसके वास्तविक रूप के दर्शन कराती है -- 'देवी जी' मानो मानवीकृत [personified] दिल्ली ही हों।

<u>गबन [1931 ई०]</u>

प्रेमचन्द रचित 'गबन' की कथावस्तु प्रयाग के निकटवर्ती एक छोटे

---

[114]- रहस्यमयी : ऋषभ चरण जैन [पृष्ठ 88]
[115]- रहस्यमयी : ऋषभ चरण जैन [पृष्ठ 76]
[116]- रहस्यमयी : ऋषभ चरण जैन [पृष्ठ 76]

गाँव से प्रारम्भ होकर प्रयाग को अपना कथास्थल बनाती है और प्रासंगिक रूप से कलकत्ता महानगरी को भी स्पर्श करती है ।

प्रयाग के पास एक छोटा सा गाँव है । जमींदारी का जमाना है, जमींदार के मुख्तार की बड़ी धाक हुआ करती है गाँव में । वे किसान जमींदार, थानेदार — गाँव के सब कुछ समझे जाते हैं । महाशय दीनदयाल इस गाँव के मुख्तार है । उनके पास खपरैली, एक घोड़ा और कई गायें-भैंसें हैं, वेतन है केवल पाँच रुपये जो केवल तम्बाकू भर का खर्च है, बाकी आमदनी के स्रोत से वे "कुछ मजे"में हैं । वे जब कभी शहर |प्रयाग| जाते, पत्नी और पुत्री के लिए आभूषण लाते रहते हैं ।

गाँव में शादी-विवाह में बारात के प्रदर्शन का विशेष महत्व है । दीनदयाल की पुत्री जालपा के विवाह में शहर से आई बारात की आतिशबाजी, नाच बाजे-गाजे गाँव में 'अव्वल दर्जे' की मानी जाती है । |"जबकि शहर में तीसरे दर्जे पर आता"| गाँव की "बारात में हर रस्म डंके की चोट अदा होती है।[117] दस बजे बाजा बजने लगा मालूम हुआ कि चढ़ाव आ रहा है, दूल्हा कलेवा करने आ रहा है बाजे बजने लगे; समधी मिलने आ रहे हैं, बाजे बजने लगे ।"[118]

घर में चढ़ाव आते ही स्त्री पुरुष, बूढ़े-जवान, लड़की की माँ-पिता सभी अतिरिक्त चैतन्य होकर चढ़ाव- देखने-दिखाने लगते हैं, खरा-खोटा अन्दाजने लगते हैं, तौल-भाव ठहराने लगते हैं । जालपा का चढ़ाव घर आते ही स्त्री-पुरुषों में हलचल मच जाती है । 'मर्दों ने गहने बनवाये थे, औरतों ने पहने थे सभी आलोचना करने लगते हैं' ।"[119]

गाँव हो या शहर विवाह में प्रदर्शनीयता की उपेक्षा नहीं की जा सकती । प्रयाग के मुंशी दयानाथ अपने बेटे रमानाथ के विवाह में ऐसा चढ़ाव ले जाना चाहते हैं कि "मडुवे वाले देखकर फड़क उठें ।" और रमानाथ स्वयं पालकी के विचार को अस्वीकृत करके मित्रों की सहायता से मोटर का प्रबंध करता है ।

117	- गबन : प्रेमचन्द	पृष्ठ 15
118	- गबन : प्रेमचन्द	पृष्ठ 15
119	- गबन : प्रेमचन्द	पृष्ठ 16

सामान्यतया शहर के मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति खींचातानी की है। इलाहाबाद की कचहरी में मुलाज़िम महाशय दयानाथ को पचास रूपया मासिक वेतन मिलता है, रिश्वत को वे हराम समझते हैं। उनका पाँच आदमियों का परिवार है, गृहस्थी मुश्किल से चलती है। परन्तु शहर का नवयुवक अपनी शौकीनी नहीं छोड़ पाता – वह शतरंज खेलता, सैर-सपाटे करता और छोटे भाइयों पर रोब जमाता है। दोस्तों की बदौलत उसका शौक पूरा होता रहता है –– कभी किसी का चेस्टर, कभी किसी का पम्प-शू, किसी की कलाई घड़ी। वह कभी बनारसी' फैशन में निकलता कभी 'लखनवी'। वही रमानाथ विवाह के बाद नौकरी की तलाश में फिरने लगता है।

रमेश बाबू, जो इलाहाबाद के म्यूनिसिपलबोर्ड में हेड-क्लर्क थे, के कहने से रमानाथ को म्यूनिसिपैलिटी में 30 रु0 मासिक की नौकरी मिल गई है। नयी पीढ़ी के रमानाथ को पिता की बात 'पराये पैसों को हराम समझना' पसन्द नहीं। वह पत्नी को भी समझा देता है 'यह जगह ऐसी नहीं कि गरीबों का गला काटना पड़े। बड़े बड़े महाजनों से रकमें मिलेंगी और वह खुशी से गले लगायेंगे।'[120] रमेश बाबू स्वयं तो रिश्वत को हराम समझते हैं पर मानते हैं 'कि बाल बच्चों के आदमी क्या करें ?– – – – जब तक छोटे छोटे आदमियों का वेतन इतना न हो जायगा कि वह भलमनसी के साथ निर्वाह कर सके, तब तक रिश्वत बन्द न होगी।'[121]

रमा जब म्यूनिसिपैलिटी में अपने काम का चार्ज लेने आता है तो देखता है 'एक बरामदे में फटी हुई मैली दरी पर एक मियाँ साहब संदूक पर रजिस्टर फैलाये बैठे हैं और व्यापारी लोग उन्हें चारों तरफ से घेरे खड़े हैं। सामने गाड़ियों, ठेलों और इक्कों का बाजार लगा हुआ है। सभी अपने अपने काम की जल्दी मचा रहे हैं। कहीं लोगों में गाली-गलौज हो रही है, कहीं, चपरासियों में हँसी दिल्लगी।'[122] यहाँ हर एक बिल्टी पर एक आना बँधा हुआ है जिसमें आधा चपरासियों का हक है। पहले वाले बड़े बाबू पच्चीस रूपया महीना लेते थे। पर अब यह बाबू कुछ नहीं लेते।

¦120 से 121¦- गबन : प्रेमचन्द ¦ पृष्ठ 41, 37-38, 44 ¦

प्रयाग के गली-मोहल्लों में तीज त्यौहार का अपना रंग है । नाग पंचमी के दिन मुहल्ले की युवतियाँ जालपा के साथ कजली खेलने आती हैं । जन्माष्टमी का उत्सव पड़ोस के एक सेठ के यहाँ बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है । जन्माष्टमी की झाँकी में सेठ जी 'वेश्याओं' के नाच तथा कत्थक का भी प्रबंध करते हैं । वास्तव में 'झाँकी' में 'वेश्या' की उपस्थिति दर्शकों को अधिक आकर्षित करती है । स्त्रियाँ भी झाँकी देखने जाती हैं । पर वहाँ जाने के लिए उन्हें अच्छे कपड़े, गहने की आवश्यकता होती है । जालपा बिना अच्छा कपड़े, गहने के वहाँ जाने में अपनी हीनता समझती हैं और उसे 'शर्म' आती है ।

साधारण मध्यम वर्ग के परिवार की स्त्रियाँ घर से बाहर निकलती तो घूंघट निकाल कर जातीं । सिनेमाघरों में भी स्त्रियों की सीटें अलग हैं। जालपा जैसी पर्देदार स्त्रियाँ वहीं बैठतीं । पर समाज के उच्चवर्गीय लोगों के घर की 'फैशनेबुल औरतें' मुँह खोले निःसंकोच सबसे हँसती बोलती और सिनेमाघरों में अपने पति के साथ बैठ कर सिनेमा देखती हैं । जिसका अनुकरण करके के लिए सामान्य मध्यवर्गीय स्त्रियों में बड़ी ललक है । जालपा पति के साथ मुंह खोलकर सिनेमा तथा पार्क आदि में जाना चाहती है ।

इलाहाबाद के सराफे में 'गंगू' सर्राफ की दुकान प्रसिद्ध है -- ग्राहकों को फँसाना और खुश करना दोनों उसे आता है । वह उधर से निकलते हुए रमानाथ से कहता है, "सरकार आपकी दुकान है ----- दाम आगे पीछे मिलते रहेंगे । हम लोग आदमी पहचानते हैं बाबू साहब ------।"[123] जिस दिन रमानाथ ने गंगू की दुकान से आभूषण खरीदे, दूसरे सर्राफों को भी उसके आभूषण प्रेम की गंध मिल जाती है । रमानाथ जब उधर से निकलता है दोनों तरफ के दुकानों से उठ-उठ कर सर्राफ उसे सलाम करते और कहते, आइए बाबू जी, पान तो खाते जाइए ।"[124] एक-आध दलाल तो घर पर भी पहुँचने लगते हैं ।

---

§123§- गबन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 56 §

§124§- गबन :: प्रेमचन्द § पृष्ठ 60 §

इलाहाबाद का जार्ज टाउन मोहल्ला वकील, बैरिस्टर जमींदार आदि उच्च वर्गीय लोगों का मोहल्ला है । इन्दुभूषण एडवोकेट, हाई कोर्ट की कोठी उसी मोहल्ले में है । साधारण मध्यवर्गीय परिवारों से उन लोगों का रहन-सहन भिन्न है । एडवोकेट साहब की पत्नी रतन दुबली होने के लिए गरम पानी से टब- स्नान करती है, पैदल घूमने जाती हैं, घी-दूध कम खाती हैं । उनका काफी बड़ा बंगला है, लॉन में झूला पड़ा है जिस पर रतन अन्य लड़कियों के साथ बैठकर झूला झूलती हैं और गाती हैं —

'कदम की डरिया झूला पड़ गयो री
राधा रानी झूलन आयीं ।'[125]

आने जाने के लिए उनके पास मोटर है । नित्य ही वहाँ कोई न कोई उत्सव दावत, पार्टी' होती रहती है ।' साधारण भी चाय के साथ मेवे, फल, मिठाई बर्फ की कुलफी उनके नाश्ते में रहती है ।

उधर रमानाथ के पिता दयानाथ चाय पीते हैं — कटोरा, कटोरी, गिलास-किसी में, चीनी के कप उनके घर में नहीं चले हैं ।

वकील साहब के आचार-विचार में नयी और पुरानी प्रथाओं का विचित्र मेल है । वकील साहब भोजन ब्राह्मण के हाथ का भी न खाते थे - पत्नी ही भोजन बनाती है । पर स्त्री शिक्षा के वे हिमायती हैं । वे कहते हैं, "जब तक स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार न होगा हमारा कभी उद्धार न होगा ।"[126] उन्होंने अनाथों, विधवाओं और गरीबों के महीने बाँध रखे हैं ।

नगर के प्रतिष्ठित और सम्पन्न लोगों के समाज में जहाँ प्रतिष्ठा थी वहाँ तकल्लुफ था, दिखावा था, ईर्ष्या थी, निन्दा थी । क्लब में 'विनोद अवश्य था, क्रीड़ा अवश्य थी किन्तु पुरुषों के आतुर नेत्र भी थे, विकल हृदय भी, उन्मत्त शब्द भी ।'[127] यह रतन का स्वयं का अनुभव है । जबकि

§125§- गबन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 96 §
§126§- गबन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 94 §
§127§- गबन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 261 §

जालपा जैसे के साधारण घर में वह शान और धन तो न था पर दिखावा और ईर्ष्या भी न थी — है एक सहज अपना पन । शहर में, डाक्टरों में भी सामान्य मानवीयता के दर्शन नहीं होते हैं । हर कहीं पैसा प्रमुख है— व्यावसायिक दृष्टि । मुंशी दयानाथ ने बीमारी में छुट्टी के लिए दरख्वा-स्त ' तो भेज दी थी पर साथ में डाक्टरी सार्टीफिकेट नहीं भेज पाये क्योंकि जिस सिविल सर्जन के इलाज में वो हैं वह सार्टीफिकेट लिखाई के सोलह रुपया फीस लेता है ।

ग्रामीण परिवेश से आये हुए आदमी में चाहे वह तीस चालीस वर्ष से महानगर में क्यों न रह रहा हो एक सहज आत्मीयता और हमदर्दी होती है — संवेगों और संवेदनाओं के संदर्भ में वह तार्किक नहीं हो पाता । बेटिकट रेलगाड़ी पर यात्रा करते हुए रमानाथ को साठ-सत्तर साल का सहयात्री टिकट लेने के लिए दस रुपये देकर सहायता करता है । यद्यपि वह चालीस साल से कलकत्ते में रह रहा है पर मूलतः वह बिहार के किसी गाँव का है । कलकत्ते में वही सहयात्री —'देवीदीन उसे अपने घर में शरण भी देता है ।

कलकत्ते में देवीदीन के घर में दो कोठरियाँ हैं और सामने एक बरामदा । इसी बरामदे में शाक भाजी की दुकान है, एक कोठरी में खाना बनता है, दूसरी में बरतन - भाँडे रखे हुए हैं । ऊपर एक कोठरी है और छोटी सी खुली छत । रात को दुकान बढ़ाने के बाद वही बरामदा देवीदीन और उसकी बुढ़िया के सोने के काम आता है । दुकान का सारा काम बुढ़िया करती है — मंडी जाकर माल लाना, स्टेशन से माल लेना या भेजना, सब । देवीदीम चिलम पीता और गप्पें मारता रहता दिन भर । कभी रामायण, तोता-मैना, रास-लीला या माता मरियम की कहानी पढ़ता ।

देवीदीन के स्तर के लोग उस हजार के गहने पहन सकते हैं, शादी ब्याह में दस हजार खर्च कर सकते हैं पर बिछावन उनकी गुदड़ी ही रहेगी । देवीदीन को रमा को बिछाने के लिए एक पुरानी दरी देता है क्योंकि इससे अच्छा बिछावन उसके घर है ही नहीं ।

कलकत्ते में रोजगार करने वाला चाहिए — चल निकलने में कोई शंका नहीं है। बुढ़िया की शाक भाजी की दुकान रात होते होते बन्द हो जाती, तरकारी के टोकरे कोठरी में रख दिये जाते और वहीं रामनाथ अपनी चाय की दुकान लगा लेता है। उसी दालान में एक ओर मेज लग जाती, जिस पर ताश के सेट तथा दैनिक पत्र पड़े होते। तीन-चार घंटे में आसानी से छ-सात रुपये आ जाते।

कलकत्ता में रोज़ी - रोज़गार वाले, सेठ-महाजन, कंगले सभी, की शरण स्थली है। रमा देखता है कि एक सेठ के द्वार पर कंगलों की भीड़ लगी है, सेठ जी की ओर से कम्बल बँट रहा है। सेठ जी के मुनीम की दृष्टि में भिक्षुकों में ब्राह्मण भिक्षुक श्रेष्ठ हैं। अतः वह रमानाथ को§जिसने अपने को कलकत्ते में ब्राह्मण घोषित कर रखा है§ 'अच्छा सा दबीज' कम्बल भेंट करके पाँच रुपया दक्षिणा भी देना चाहता है। सेठ जी ब्राह्मणों के परम भक्त तो हैं ही, उनकी दिनचर्या भी धार्मिक कर्मकाण्डों से आपूरित है —'त्रिकाल संध्या वंदन करते हैं महाराज, तीन बजे रात को गंगा तट पर पहुँच जाते हैं और वहाँ से आकर पूजा पर बैठ जाते हैं। दस बजे भागवत का पारायण करते हैं। मध्यान्ह को भोजन पाते हैं, तब कोठी में आते हैं। तीन चार बजे फिर संध्या करने चले जाते हैं। आठ बजे थोड़ी देर के लिए फिर आते हैं, नौ बजे ठाकुर द्वारे में कीर्तन सुनते हैं और फिर संध्या करके भोजन पाते हैं।'[128] यह तो उनका वाह्य रूप है। व्यापारी के रूप में वह पक्का व्यावहारिक §व्यावसायिक§ है — दया, माया, ममता, सहानुभूति से शून्य। अपनी जूट के मिल में मजदूरों के साथ पूरी निर्दयता के साथ पेश आता है — उन्हें हंटर से पिटवाता है। घी में चरबी मिला कर उसने लाखों कमाया है। किसी नौकर को थोड़ी देर हो जाय तो उसकी तलब काट लेता है। रामदीन कहता है '- - - - अगर साल में दो चार हजार दान न कर दे तो पाप का धन पचे कैसे ! - - - - इसके तीन तो बड़े बड़े धर्मशाले हैं, मुदा है पाखंडी।'[129]

---

§128§- गबन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 142 §

§129§- गबन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 143 §

यह महानगरी अनेको अपराधियों, खूनियों की भी शरण स्थली है । ये अपराधी पुलिस अफसरों के साथ दावतें खाते हैं । पुलिस उन्हें खूब अच्छी तरह जानती है, पर इनका कुछ बिगाड़ नहीं सकती । क्योंकि 'रुपये में बड़ा बल है ।'[130]

कलकत्ते में चालीस वर्ष से रह रहा रामदीन कलकत्ते वालों की वास्तविकता से अच्छी तरह वाकिफ हो गया है -- नस-नस पहचानता है सबकी । स्वदेशी आन्दोलन में अपने दो जवान बेटों की आहुति चढ़ जाने के बाद से वह स्वयं विलायती कपड़े नहीं पहनता । वह इन तथाकथित 'देश भगतों' को जानता है कि जिनको 'बिलायती शराब' के बिना चैन नहीं मिलता हाँ, दिखाने को कुछ कपड़े गाढ़े के बनवा लिये हैं इन लोगों ने । इनके घर का और सब सामान विलायती है -- विलायती शराब, विलायती मोटरें, विलायती अचार-मुरब्बे, विलायती बरतन, विलायती दवायें पर देश के नाम पर रोना भी साथ-साथ ।

यहाँ पुलिस स्टेशन में मेज के चारों ओर दारोगा, नायब दारोगा, इन्सपेक्टर और डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट बैठे होते हैं । झूठे मुकदमें बनाने, मुकदमें में झूठी शहादतें दिलाने में ये माहिर हैं बल्कि यही इनका काम हो गया है । घूस और नजराना तो उनका हक है -- रमानाथ को छोड़ने के लिए दारोगा साहब पचास गिन्नियाँ चाहते हैं । देवीदीन भली-भाँति उन्हें पहचानता है कि इनकी उदारता में भी कोई चाल छिपी होती है । रमा के यह कहने पर कि "मैं बिना कुछ लिए दिये ही छूट जाऊँगा, ऊपर से नौकरी भी मिल जायगी - साहब ने पक्का वादा किया है ।' देवीदीन कहता है, "क्या पुलिस वालों के चकमे में आ गए ? इसमें कोई न कोई चाल जरूर छिपी होगी ।"[131]

कलकत्ता के इन पुलिस स्टेशनों पर सरकारी गवाह की खूब खातिर होती है -- रहने को बंगला, सेवा टहल के लिए चौकीदारों का दल, सवारी के लिए मोटर, भोजन पकाने के लिए काश्मीरी बावर्ची है । वह अधिकारियों

§130§- गबन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 148 §
§131§- गबन : प्रेमचन्द § पृष्ठ 197 §

के साथ सिनेमा जाता है । मनोरंजन के लिए शराब के साथ जोहरा बाई भी हैं । रमानाथ सरकारी गवाह के रूप में इन सब सुविधाओं का भोग कर रहा है ।

'बंगाला §कलकत्ता§ के ओझे सयाने मशहूर हैं' — रतन का नौकर टीमल कहता है, जो झाड़-फूँक द्वारा रोगी को स्वस्थ करने में समर्थ हैं ।

महानगर में पत्रकार, पत्रकारिता-धर्म का निष्ठा पूर्वक निर्वाह कर रहे हैं । 'प्रजामित्र' अखबार का सम्पादक एक रंगीला सा युवक ही है पर है 'हिम्मत का धनी' । दो बार 'जेहल' हो आया है ।

प्रयाग में भी दैनिक पत्र साधारण जनता के बीच अत्याधिक लोक प्रिय हो रहे हैं । लोग दैनिक पत्रों के माध्यम से सार्वजनिक सूचना प्रसारित करते हैं । रमानाथ के लौटने के लिए भी समाचार-पत्रों में विज्ञप्ति निकलती है । और पता बताने वाले के लिए पाँच सौ रुपये पुरस्कार की घोषणा भी साथ में है ।

रमानाथ और जालपा को केन्द्र में रखकर लेखक ने कथावस्तु की पृष्ठभूमि §मुख्य रूप से§ प्रयाग रखी है । प्रसंगवश वस्तु ने गाँव और कलकत्ता महानगरी को भी स्पर्श किया है । प्रयाग के चित्र मध्यवर्गीय जीवन-समाज के चित्र है पर कलकत्ता के चित्र अपनी प्रासंगिक सीमा के अन्दर भी अधिक प्रखर और जीवन्त हैं ।

अमर अभिलाषा § 1933 ई0 §

प्रकाशकीय वक्तव्य में प्रकाशक ने उपन्यास को 'दुनिया का चित्र' मानते हुए कहा है कि 'दुनिया में भिन्न भिन्न तरह के रंग बिरंगे प्राणियों का समूह एकत्रित है.' और उसने 'अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर' गाँव और शहर से कुछ 'भाग्यहीना बालिकाओं के चित्र' तत्कालीन सामाजिक परिवेश में प्रस्तुत किये हैं ।

लेखक ने किसी विशेष गाँव का नाम नहीं दिया है, केवल इतना

ही संकेत दिया है — 'छोटा सा गाँव' और उसी गाँव का चित्र प्रस्तुत किया है। सुख हो या दुःख गाँव में कुछ निजी करके सीमित नहीं है, सब कुछ सामाजिक है। किसी के घर में मृत्यु हो तो पास पड़ोस के लोग एकत्र हो जाते हैं। कोई हमदर्दी ज़ाहिर करता है तो कोई भाग्य को कोसता है'[132] विधवा हो जाने पर नवोढ़ा बालिका की चूड़ी बड़े अशोभन ढंग से तोड़ दी जाती है और उसे 'राँड, अभागिनी, हत्यारी, मायाविनी' आदि 'उपाधियाँ' दी जाती हैं। गाँव में जो विचार और तर्क से काम लेते हैं कि लग्न-कुंडली का मिलान आदि 'धोखा है, फरेब है' उन्हें गाँव के पुरोहित नास्तिक समझते हैं और उनकी पुत्री का विधवा होना इसी कुतर्क का परिणाम माना जाता है। पंडित जय नारायण अपनी पुत्री के विधवा होने पर जन्मपत्री-मिलान पर अपना अविश्वास प्रगट करते हैं तो पुरोहित जी कहते हैं —'तुम्हारे ऐसे नास्तिक विचारांश हैं — जो है, तभी तो भगवान का तुम पर कोप है।'[133]

अंधविश्वास गाँव की स्त्रियों का विशेष चरित्र है। रमाकान्त के पुत्र के मर जाने पर गाँव की स्त्रियाँ रमाकान्त के मकान को अशुभ करार देती है'- - - तीस बर्ष से देखती आ रही हूँ इस निपूते घर में कोई नहीं फला फूला।' क्योंकि पहले 'छज्जू मिसिर' के घर के लोग पन्द्रह दिन में प्लेग में साफ हो गए। उसके बाद माधोराम जब इस घर में रहने लगा तो उसका जवान बेटा उठ गया। उसके बाद आए आगरे के बाबू तो दूसरे महीने उनकी घरवाली मर गई। और दो साल भी रहते नहीं हुआ कि रमाकान्त का जवान लड़का 'ब्याहा-ठाया समा गया'। बात पर बात बढ़ती गई; किसी ने मकान पर 'धम धम' की आवाज सुनी तो किसी ने 'आग की लपट' रात को खुद देखी।'[134]

वहाँ बिमारी प्रेत बाधा है। अतः डाक्टरी/वैद्यकी इलाज से रोगी - प्रेत बाधित व्यक्ति मर जाता है। झाड़ फूँक ही इसका उचित

{132}- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री {पृष्ठ17-18}
{133}- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री {पृष्ठ-20}
{134}- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री {पृष्ठ-23}

इलाज है जिसमें 'भोला काछी' का नाम विशेष है। पैर के चपटे तलुए और भारी कमर स्त्री के क्षीण सुहाग का संकेत होती है। स्त्री के माथे पर साँप का चिन्ह 'डायन के अवतार' का सूचक होता है।[135]

विधवाओं का श्वसुर कुल में तो अपमान होता ही हैं, मातृकुल में भी अनादर होता है। ससुराल में वे 4 बजे प्रातः उठती और रात को बारह बजे सोतीं। घर भर का काम करतीं और बचा खुचा भोजन करतीं। सास नन्द की बातें सुनना और सहना - उनका धर्म था। मायके में वक्त-बेवक्त माँ-बाप भी कोस देते और भावजों के लिए तो गल-ग्रह थीं। पं0 जयनारायण की लड़की जो केवल सात वर्ष की आयु में विधवा हो गई है, ऐसा ही जीवन जीने के लिए मजबूर है। विधवाओं की बीमारी में इलाज पथ्य आदि की आवश्यकता नहीं समझी जाती। क्योंकि यदि वे मर भी जायँ तो उनकी सुगति हो जायगी-ऐसा समझा जाता है।

कभी कोई गैरतमन्द विधवा सिलाई आदि करके स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका का प्रबंध करने का साहस करती है तो उसका जीवन और संकटमय हो उठता है। तत्कालीन ग्राम-समाज में निरवलम्ब युवती विधवा पर अनेक लम्पट कुदृष्टि डाले रहते। कुटनी स्त्रियाँ उन्हें बहला फुसला कर, प्रलुभित करके या धोखा देकर व्यभिचारी पुरुषों तक पहुँचा देतीं अथवा अनाचार के अड्डे पर पहुँचा देतीं। अठारह वर्ष की विधवा 'सुशीला' को, जो सिलाई, कढ़ाई करके जीवन बिताती है, रास्ते में अकारण दयार्द्र होकर कोई औरत 'बड़े धनी, बड़े सुन्दर, बड़े सज्जन और बड़े प्रेमी' की कृपा-पात्री बना देने के लिए अपनी सेवाएँ देने को तैयार है।[136] वस्तुतः उस सज्जन के मन में करुणा के स्थान पर विनोद का भाव प्रबल था। कहीं जयनारायण की विधवा पुत्री 'भगवती' को 'छजिया नाइन' फुसला कर किसी अन्य पुरुष से सम्पर्क बनाने के लिए उकसाती है। गाँव के रईस, जमींदारों के तो मनोरंजन का साधन यही है। उनके पास पाले गुंडे हैं जो ऐसी स्त्रियों को फुसला कर या अपहरण करके उनके पास पहुँचाते रहते हैं।[137]

§135§- अमर अभिलाषा : आ0 चतुरसेन शास्त्री § पृष्ठ 25 §
§136§- अमर अभिलाषा : आ0 चतुरसेन शास्त्री § पृष्ठ 30 §
§137§- अमर अभिलाषा : आ0 चतुरसेन शास्त्री § पृष्ठ104 §

गाँव की स्त्रियाँ विधवा को 'कुलच्छिनी' तो मानती ही हैं पर विधवा का पुनर्विवाह तो उनकी दृष्टि में एकदम अधर्म है । पुरुषों की दृष्टि आधुनिक सुधारवादी चेतना से प्रभावित होने लगी है । यह बात अलग है कि वे समाज से टक्कर लेकर इस विचार धारा को क्रियात्मक रूप दे सकें, ऐसा साहस इनमें नहीं है । पं० जयनारायण अपनी सात वर्ष की विधवा पुत्री 'नारायणी' का पुनर्विवाह करने की सोचते हैं पर उनकी पत्नी ही उनकी बात से सहमत नहीं होती ।

गाँवो में सुधारवादी चेतना फैल रही है । प्रबुध्द लोग यह अनुभव करते हैं कि बिना किसी दोष के बाल-विधवाएं श्रृंगार वंचिता होकर 'नित्य रोना, तिरस्कार, धमकी, अपमान सहना साथ ही कामदेव के कठिन बाणों को सहकर ------ सारा जीवन व्यतीत करती हैं'.[138] और इससे मुक्ति के लिए वे पुनः विवाह को उचित मानते हैं । पर 'सर्वनाशी जातिविरुध्दों' के भय से बाल विधवाओं के संरक्षक इसे उचित समझते हुए भी हिम्मत नहीं कर पाते । यद्यपि वे जानते हैं कि इनमें से अधिकांश पथ भ्रष्ट हो जाती हैं —'कहार, धींवर, कसाई के साथ मुँह काला करके कुलांगा की नाक कटा रहीं है'.[139] फिर भी 'पवित्र हिन्दू' का दम्भ समाज को है ।

शहर की तुलना में गाँव की स्त्रियों में शादी विवाह के उत्सव में अतिरिक्त हौसले के दर्शन होते हैं । मानसिंह की बहू देखने के लिए उनके घर आस-पड़ोस, नाते रिश्ते की स्त्रियों की भीड़ एकत्र हो जाती हैं । सभी स्त्रियाँ बालिकायें गहने कपड़े से लदी हैं पर किसी विधवा को कीमती कपड़े और गहने से सुसज्जित देखकर स्त्रियों का समुदाय नई बहू को छोड़कर उसी के आस-पास एकत्र हो जाती हैं और व्यंग्य बाणों से बींधने लगती हैं । पंडित जयनारायण की विधवा बेटी 'भगवी'—भगवती को मानसिंह के बेटे के विवाह में अच्छा पहने ओढ़े और गहने-कपड़े देखकर सारी स्त्रियों का आकर्षण केन्द्र नई बहू से हटकर उसी की ओर हो गया । विवाह आदि

---

§138§- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री § पृष्ठ 65 §
§139§- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री § पृष्ठ 68 §

शुभ-काम में अभागिन विधवा की उपस्थिति अशुभ मानी जाती है ग्रामीण समाज में । इसी को लेकर वे उसे अपमानित - लांछित करने लगती हैं — 'राँड का यहाँ क्या काम ?- - - -ऐसी कुमाई की तो परछाई भी बुरी होती है ।'[140] यहाँ तक इस विश्वास से पुरुष भी बँधे हैं । गृहस्वामी मानसिंह भी कहते हैं, "जय-नारायण ने भाँग खा ली है या पागल हो गया है ? निकालो इसे यहाँ से ।"[141]

गाँव के प्रतिष्ठित परिवार में स्त्रियाँ पुरुषों से पर्दा करती हैं । स्त्री समाज में पुरुषों का प्रवेश वर्जित है । अतः जब मानसिंह अपने घर में प्रवेश करते हैं तो बहू देखने आई सारी स्त्रियाँ इधर उधर हट जाती हैं ।

उस समय भी गाँव और नगर की संस्कृति में काफी अन्तर था । नगर में पति पत्नी का साथ साथ बाहर निकलना घूमना ऐसा कुछ असाधारण नहीं माना जाता है । अपने बंगले की हरी लॉन पर बाबू दीपनारायण सिंह डिप्टी कलक्टर और उनकी पत्नी कुमुद 'हाथ से हाथ मिलाए' घूमते देखे जा सकते हैं और साथ साथ रेलगाड़ी के 'सैकिण्ड-क्लास' के डब्बे में यात्रा करते भी । नगर में भी समाज के उच्च श्रेणी के परिवार के साथ एक नौकर ले चलने की परम्परा है जो प्रतिष्ठा सूचक है । यात्रा में दीपनारायण सिंह और उनकी पत्नी के साथ एक नौकर भी है । उस समय भी अस्पताल में साधारण जनता के साथ साधारण अथवा उपेक्षा का व्यवहार होता था । जबकि पैसा और पद वालों को विशेष सुविधा मिलती थी । दीपनारायण सिंह डिप्टी कलक्टर को प्लेग हो जाने पर 'अस्पताल के एक पृथक और प्रशस्त कमरे में' उनका प्रबंध किया गया है ।'[142]

शहर में और अपेक्षाकृत पढ़े लिखे परिवार में भी विधवाओं की स्थिति अच्छी नहीं है । डिप्टी कलक्टर की पत्नी कुमुद की ससुराल में ससुर, सास, जिठानी, दौरानी, जेठ, देवर, ननदें सभी हैं । कमाऊ पति की पत्नी होने के कारण कुमुद का ससुराल में बड़ा मान था । परन्तु पति

{140}- अमर अभिलाषा : आ0 चतुरसेन शास्त्री { पृष्ठ 86 }
{141}- अमर अभिलाषा : आ0 चतुरसेन शास्त्री { पृष्ठ 86 }
{142}- अमर अभिलाषा : आ0 चतुरसेन शास्त्री { पृष्ठ 119 }

के मरने के बाद परिवार में सभी की दृष्टि कुमुद की ओर से बदल गई । वह उपेक्षा और प्रतारणा की पात्र हो गई ।'[143]

गाँव की स्त्रियाँ या तो पढ़ी लिखी होती ही नहीं थीं और यदि थोड़ा बहुत पढ़ना लिखना आता था तो रामायण आदि धार्मिक ग्रंथ पढ़ती थीं । सु-रसिक युवतियाँ छिप-छिप कर 'किस्सा तोता मैना, हरदेव सहाय का बारहमासा, दिल्लगन नावेल, सच्चा आशिक, बहारे बुलबुल' पढ़ा करती थीं । वस्तुतः सभ्य समाज में उक्त पुस्तकें स्तरहीन अतः निषिद्ध समझी जाती थीं ।'[144]

गाँव में भूत-प्रेत उतारने, जादू-टोना, मंत्र-इलाज करने, प्रेम की चुटकी, मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि के लिए विशेष व्यक्ति होते हैं । गाँव के स्त्री-समाज में इनका बड़ा मान होता है । 'गोपाल पाँड़े' उक्त गाँव के ऐसे ही व्यक्ति हैं जो लोगों में हिले मिले होने पर भी प्रतिष्ठित नहीं माने जाते बल्कि ओछे ही माने जाते हैं । पर गाँव समाज को आड़े समय उनसे सहायता मिलती है । इसीलिए सभी लोग उपेक्षा बरतते हुए भी उसका अपमान नहीं करते । भले घरों की पथभ्रष्ट युवती विधवाओं के आपत्ति में फँस जाने पर इनकी दया से वे मुक्त हो सकती हैं — ऐसा इनके विषय में प्रसिद्ध हैं । अतः बहुतों की पगड़ी इनके हाथ में है । पंडित जयनारायण की विधवा पुत्री भगवती की लाज बचाने के लिए पंडित जी को भी इनसे सहायता की याचना करनी पड़ती है ।'[145]

पुलिस थानेदार में 'रिसबत' तब भी खूब चलती थी । 'घर की लाज' को कानून की गिरफ्त से मुक्त कराने के लिए पंडित जयनारायण को थानेदार की पूजा में दो सौ रुपये चढ़ाने पड़ते हैं । यहीं नहीं शरीफों को अपनी इज्जत बरकरार रखने के लिए इनका पूरा ध्यान रखना होता है तो मुजरिमों को सजा में रियायत के लिए । मुजरिम गोपाल पाँड़े को भी दरोगा जी को सौ रुपये भेंट चढ़ाने पड़ते हैं ।'[146]

।143।- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री । पृष्ठ ।122-124।
।144।- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री । पृष्ठ 130 ।
।145।- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री । पृष्ठ 153 ।
।146।- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री । पृष्ठ 187 ।

अरक्षित निरवलम्ब स्त्रियों की स्थिति और इज्जत शहर में भी सुरक्षित नहीं है । नगर में रहने वाले रईस व्यभिचारी के आदमी इन्हें फुसला कर अथवा अपहरण करके इनके पास ले आते हैं । शहर में पढ़ने वाले नवयुवकों में ऐसी स्त्रियों के लिए हमदर्दी है और वे भरसक सहायता करते हैं । उस समय भी नवयुवक यह महसूस करते थे कि अपराधियों को दण्ड देने में 'कानून सम्पूर्ण नहीं है' । अतः प्रकाश चन्द्र नाम एक 'लॉ' का छात्र एक व्यभिचारी रईस की हत्या कर देता है -- उसके कुकृत्य की सजा देने के लिए ।'[147]

शहर में 'सेशन जज की कचहरी में जब कोई बहु चर्चित मुकद्दमा आता है तो वादी, प्रतिवादी, वकील तथा कर्मचारी के अतिरिक्त जनता की अच्छी भीड़ हो जाती है । ऐसे मुकदमों की रिपोर्ट, कार्यवाहियाँ और समाचार अखबारों के माध्यम से लोगों तक पहुँच जाया करते थे । प्रकाशचन्द द्वारा राजासाहब की हत्या की खबर भी अखबारों द्वारा जनसाधारण तक पहुँच गई थी । अतः उस मुकद्दमें की सुनवाई के दिन इजलास में बड़ी भीड़ हो जाया करती थी ।

अल्प शिक्षित स्त्रियों में भी जागरण फैल रहा था । यद्यपि इनकी संख्या उंगलियों पर थी । स्त्रियाँ किसी महत् उद्देश्य / उचित कार्य के लिए आन्दोलन करती हैं । सुशीला मुहल्ले मुहल्ले घूमकर सुशिक्षित स्त्रियों का संगठन करती है । अखबारों के माध्यम से प्रचार करती है कि 'स्त्री जाति की मर्यादा रक्षा के लिए' प्रकाश चन्द राजासाहब की हत्या करने को मजबूर हुए । अतः वे निर्दोष हैं । प्रकाशचन्द की रिहाई के लिए गवर्नर साहब के सामने तीन हजार स्त्रियों का डेपुटेशन लेकर स-तर्क अपनी माँग पेश करती हैं ।

उधर गाँव में बधुकट विधवाओं को घर में रखने से उस परिवार को बिरादरी और समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था । अतः परिवार मजबूर होकर अपनी बहन-बेटी को काशीवास के लिए भेज देता था । काशी

§147§- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री § पृष्ठ 169 §

में उसके भरण पोषण के लिए भेजा गया पैसा इतना कम होता था कि उसमें उनकी गुजर-बसर न हो सकती थी । जीवन यापन के लिए मजबूर होकर ये स्त्रियाँ 'कोठे के दलालों' के चंगुल में फँस जाती थीं और अन्ततः वेश्यावृत्ति अपना लेती थी । काशी वास के लिए भेजी गई चौधरी की लड़की 'चमेली' बनारस की 'दाल मंडी' में वेश्या है । पं0 जयनारायण की विधवा लड़की 'भगवती' के लिए भी काशीवास की व्यवस्था होती है ।

रूढ़िवादिता ग्रामीण समाज का विशेष गुण है और समाज व्यक्ति पर हावी है अतः समाज से अलग व्यक्ति जा ही नहीं सकता । जबकि शहर में सामान्यतः किसी को किसी अन्य के निजी जीवन से उतना ही सरोकार है जितना आवश्यक है । अतः वहाँ समाज के समानान्तर व्यक्ति का भी अस्तित्व है । अतः जब भगवती के लिए परिवार से बहिष्कार और काशी-वास का विधान होता है तो उसका भाई हरनारायण अपनी बहन से कहता है, "हम लोग गाँव में न जायेंगे । चलो शहर में चलकर रहेंगे ।"[148]

शहरों में 'विधवा आश्रम' आदि जैसी परोपकारी संस्थाओं की व्यवस्था है पर वे अन्दर ही अन्दर व्यभिचार का केन्द्र है । बनारस में विधवा आश्रम के नाम पर स्त्रियों को फुसला कर और अपहरण करके यहाँ लाया जाता है और फिर उन्हें बेचा जाता है या अनुचित कार्य करवाया जाता है । वकील यशोदानन्दन की पुत्री मालती को इसी विधवा आश्रम में रखा जाता है इस आश्वासन पर कि इसे इसके पिता से मिलवाने का यत्न किया जायेगा । वैसे ही 'पूर्व में रहने वाली बनैनी' 'बरेली की अपराधिनी नाइन' और 'कुंजर की भटकती लड़की' को यहाँ लाकर रखा गया था । कुछ पतिता स्त्रियाँ वहाँ के वातावरण में पूरी तरह रंगी हुई थी जो 'अनेक बार बहुतों को उल्लू बना चुकी थीं ।'[149] यों अपने बाहरी रूप में 'विधवा आश्रम' सारी औप-चारिकता का निर्वाह करता था । उसके 'अधिष्ठाता जी' तथा 'महिला सुपरिन्टेन्डेन्ट' आश्रम के कार्यालय का संचालन करते थे ।

---

§148§- अमर अभिलाषा : आ0 चतुरसेन शास्त्री § पृष्ठ 265 §

§149§- अमर अभिलाषा : आ0 चतुरसेन शास्त्री § पृष्ठ 212 §

दिल्ली आदि बड़े शहरों की तरह बनारस में भी 'कुर्म,' जिनका 'पेशा भलेघर की बहू बेटियों को इधर-उधर अड्डों पर ले जाना और वहाँ सुच्चों लफंगों को पहुँचाना है', खूब पाये जाते हैं । [150] 'गोपी' ऐसा ही एक 'कुर्म' है जो बाद में 'बसन्ती' नामक वेश्या का 'एजेन्ट' बन कर दलाली करता है ।

शहर केवल अनाचार का ही केन्द्र नहीं है । परम्परागत रूढ़ियों से टक्कर लेकर समाज में सुधार-कार्यों का श्रीगणेश करने का साहस और श्रेय भी शहर को ही है । स्त्री-स्वातंत्र्य, स्त्री शिक्षा, विधवा-विवाह आदि शुभ-कार्यों का आरम्भ शहर से ही हुआ है । इसी प्रकार एक शहर में राय बहादुर मोती लाल साहब की पुत्री का विधवा विवाह सम्पन्न होने को है । निमंत्रित अतिथियों के अतिरिक्त अन्य उत्सुक जनसमाज की भी भीड़ है । विवाह वेदी की दक्षिण दिशा में स्त्रियों के बैठने का प्रबंध है । कन्या पक्ष के घर-दरवाज़े की साज-सज्जा पारम्परिक परन्तु शहरी ढंग से है । बंगला बिजली की रोशनी और असंख्य रंगबिरंगी झंडियों से लकदक हो रहा है ।' 'फौजी बाजे' का प्रबंध है । सवारियों में हाथी, घोड़ा, मियाना के साथ साथ बग्घी, टमटम का भी प्रबंध है । अन्तःपुर में कन्या के हाथों में मेंहदी लगायी जा रही है, आभूषणों से सजाया जा रहा है । युवतियाँ 'ताने तिरने, हँसी मज़ाक से उसे तंग कर रहीं हैं ।' [151]

सुधारवादी एवं नवीन दृष्टि से स्वामी सर्वदानन्द जी [illegible] और कर्मवीर महात्मा देशराज की अध्यक्षता में ब्रह्मचारियों और सन्यासियों को भी इस विवाह में आमंत्रित किया है । स्त्री की सामाजिक अवस्था में सुधार का अनुभव जन-मानस में घर करने लगा है । शहर में इसका क्रियान्वयन भी होने लगा है । पर गाँव में रहने वाले मुक्त भोगी इसे उचित मानते हुए भी रूढ़ि का अतिक्रमण करके आगे कदम बढ़ाने की हिम्मत नहीं कर पा रहे हैं । गाँव का स्त्री समाज और पुरुष समाज अलग अलग ढंग से सोचता है । ~~पुरुष~~ विधवा विवाह को उचित मानते हैं पर स्त्रियाँ तो किसी तरह इसे स्वीकार ही

{150}- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री {पृष्ठ 196}
{151}- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री {पृष्ठ 251}

नहीं कर पातीं । अतः पं० जयनारायण ने जब अपनी दूसरी विधवा कन्या 'नारायणी' का पुनः विवाह करना निश्चित किया तो उनकी पत्नी ने अपने सिर पर पत्थर मार लिया जिससे उनकी मृत्यु हो गई ।

शहर में 'श्यामा बाबू' और 'सुशीला' के विवाह पर लोगों को प्रसन्नता हुई थी और लोग रायबहादुर साहब को साधुवाद दे रहे थे । परन्तु गाँव में नारायणी के पुनः विवाह को लेकर अपने गाँव के ही नहीं आस-पास के गाँव के लोग 'दिल खोल कर मनमानी' कह रहे थे । गाँव के पुराने बुड्ढे लोग गालियाँ दे रहे थे । स्त्रियाँ 'ठोडी पर उँगली रखकर अपना कौतूहल प्रगट कर रहीं थी ।'[152] ऐसे लोग गिनती के थे जो इस विवाह को अच्छा कह रहे थे ।

गाँव के 'पढ़-पत्थर', भोजनभट्ट ब्राह्मणों की एक झाँकी है ; जिसे लेखक शपथ पूर्वक 'बिना नमक मिर्च' का सत्य कह कर प्रस्तुत कर रहा है — गाँव में विधवा विवाह के आयोजन में ये ब्राह्मण जीमने जायँ या न जायँ, आपस में तर्क वितर्क करते समय उन्हें नाइन द्वारा पता मिलता है कि 'लड्डू, कचौरी, सुमा, हलुआ' के अलावा रुपया दक्षिणा भी है तो सबके सब उस विवाह में सम्मिलित होने के लिए चल पड़ते हैं — न बिरादरी का झगड़ा न 'धराशा' की शर्त । जिसके लिए लेखक का कथन है —'टुकड़ों के लिए भिखारी से भी निर्लज्ज बने, बिना बुलाए उसी द्वार पर जा रहे हैं जिसे ये हृदय से पतित, अधर्मी, पातकी और अस्पृश्य समझते थे ।'[153]

प्रेमचन्द पूर्व तथा प्रेमचन्द के समकालीन उपन्यास साहित्य में सोद्देश्यता ही उसका प्रमुख गुण रहा है । प्रस्तुत कथाकृति के आधार पर कहा जा सकता है कि लेखक ने गाँव के जो चित्र दिये हैं वे अशिक्षा, रूढ़िवादिता [illegible] कुरीतियों से आक्रान्त हैं । वहाँ के दो एक भुक्तभोगी [illegible] बुद्धि लोग गाँव के समाज को इन सबसे मुक्त करने के लिए उदार बुद्धि देने का प्रयत्न करते हैं, जिसका कोई विशेष प्रभाव उन पर नहीं पड़ता । गाँव में विधवा के विवाह में 'छोटी और बे धूम धाम की बारात' आती

---

§152§- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री § पृष्ठ 259 §
§153§- अमर अभिलाषा : आ० चतुरसेन शास्त्री § पृष्ठ 262 §

है क्योंकि समाज का सहयोग प्राप्त नहीं है । जबकि शहर में रंगबिरंगी रोशनी और फौजी बाजे के साथ विधवा-विवाह सम्पन्न होता है । शहर में इस उदार दृष्टि का स्वागत होता है । साथ ही साथ नगरों में पतन के भी असंख्य रास्ते हैं जिसका प्रमाण काशी का चित्र है । परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि नगर की तुलना में गाँव में अशिक्षा, पर्दा, रूढ़िवादिता का अधिक प्रसार है । और इस ग्रामीण समाज में भी स्त्रियों में अशिक्षा और रूढ़िवादिता की जड़ें इतनी गहरी है कि खुद चोट खाकर या औरों से प्रबोधित किये जाने पर भी वे अपनी मानसिकता से मुक्त नहीं हो सकतीं । 'अमर अभिलाषा' के माध्यम से लेखक ने यही कुछ चित्रित करने का प्रयत्न किया है ।

गोद § 1933 ई0 §

कथाकार सियारामशरण गुप्त ने 'गोद' नामक उपन्यास में एक गाँव को कथाक्षेत्र बनाकर ग्रामीण जन-जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें दयाराम और शोभाराम दो भाइयों के परिवार को केन्द्र में रखकर कथावस्तु का विस्तार किया गया है । प्रयाग का संक्षिप्त चित्र प्रासंगिक है ।

प्रयाग के कुंभ के मेले में इतनी भीड़ थी कि अनेकानेक श्रध्दालु तीर्थ-यात्रियों की भी हिम्मत जवाब दे गई । शोभाराम की भौजी प्रयाग के अतिरिक्त और भी तीर्थों का दर्शन करने के विचार से घर से निकली थीं, पर प्रयाग की भीड़ देखकर उन्हें और कहीं जाने की हिम्मत नहीं पड़ी । प्रयाग के इस मेले में लड़कियों को उड़ा ले जाने वाला बदमाशों का दल किसी लड़की को फुसला कर उड़ा ले गया था ; जिसका स्वयं-सेवकों की सहायता से बड़ी कठिनाई से उध्दार किया जा सका था । भीड़ की ठेलम-ठेल में कितनी ही माँ-बेटियों, संगी-साथियों का साथ छूट गया । कौशल्या की लड़की किशोरी की भी माँ से 'संगछूट' हो गई थी फिर वह दूसरे दिन प्रातः ही अपनी माँ से मिल सकी ।

गाँव में 'छूत-विचार' सवर्णों के धर्म का अंग है । प्रयाग से तीर्थ करके लौटी हुई शोभाराम की भौजी बासंती 'कपड़े से मुँह बँधा हुआ मिट्टी

का एक भाण्ड' स्वयं उठाती है — खाद्य वस्तु असवर्ण नौकर चाकर छू न लें । 'तीर्थ से लौट कर सीधे घर जाने की विधि है' इसीलिए पार्वती के भाई उसे द्वार तक छोड़कर अपने घर चले गए हैं । गाँव की सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित परिवार की गृहस्वामिनी पार्वती के तीर्थ से लौटने की बात सुनकर मुहल्ले की स्त्रियाँ और लड़के बच्चे सभी आ गए हैं — गाँव की रीति है । यहाँ सबके सामने पति-चर्चा लज्जा और संकोच का विषय है । पार्वती अपने पति दयाराम के लिए घर में इधर उधर दृष्टि दौड़ाती है, तो देवर शोभाराम कहता है कि "दादा गाँव पर गए हैं, तुम पहले ही से सम्मन भेज देतीं तो ठीक रहता ।" इस पर सारी एकत्रित मंडली हँस पड़ती है और प्रौढ़ा पार्वती के चेहरे पर लाज की लालिमा आ जाती है ।

निःसन्तान पार्वती पुत्र कामना से तीर्थ-व्रत, जप-तप, पूजा-पाठ करती रहती है । शहरी सभ्यता से दूर गाँव में छोटा देवर भाभी के लिए पुत्रवत् है । किशोर देवर का भाभी की गोद में लेट जाना सहज वात्सल्य है । शोभाराम अपने को §निस्सन्तान§ भाभी का लड़का कहता हुआ उसकी गोद में लेट जाता है ।

इस गाँव के ब्राह्मण 'गंगादीन तिवारी' 'सिर पर बड़े बड़े बाल, भरी हुई भूरी दाढ़ी, गले में मोटे दानों की कंठी, माथे पर लम्बा चौड़ा टीका और पीले रंग का घुटनों तक फैला हुआ ढीला ढाला कुरता' से युक्त किसी के उन्हें प्रणाम करने पर भी 'आशीर्वाद भैया' कहकर अपना कर्तव्य पूरा कर लेते हैं ।

गाँव के सामाजिक अनुशासन बड़े कठोर हैं । कौसा-कौशल्या की लड़की किशोरी कुंभ मेले की भीड़ में माँ से बिछुड़ गई थी फिर रात भर बाद मिली अतः दयाराम अपने भाई शोभाराम की किशोरी से की गई सगाई तोड़ देते हैं और दूसरी जगह बात पक्की करने की सोचते हैं ।

गाँव में ब्याह की बात पक्की करने के लिए लड़की वालों की ओर से नाई भेजा जाता है । हरीराम, किशोरी का मामा, किशोरी का

ब्याह 'बेहरा' वालों से पक्की करने के लिए नाई भेजता है । इधर शोभाराम की सगाई पक्की करने के लिए 'पिरथीपुर का नाई' आया है । ब्याह-सगाई आदि के लिए जो नाई आता है उसे 'निमकीन' नहीं खिलाया जाता-मीठा खिलाया जाता है । अतः शोभाराम की भौजी उसे खिलाने के लिए 'हलुआ-पूड़ी' तैयार करती हैं ।

यहाँ की परम्परा है -- सम्बन्धियों को विवाहका निमंत्रण हल्दी की गाँठों के साथ दिया जाता है । अपने भाई दयाराम के आदेशानुसार शोभाराम बैलगाड़ी में बैठ कर निकट के सम्बन्धियों के घर हल्दी की गाँठों के साथ अपने विवाह का निमंत्रण देने जाता है । इधर उसके अपने घर में 'बिरादरी भोज' की तैयारी में हलवाई लगे हुए हैं, मजदूर 'ईंधन-लकड़ी और खाद्य-सामग्री' इधर से उधर उठा कर रख रहे हैं -- चहरों ओर चहल-पहल मची हुई है ।

गाँव में प्रवाद, प्रवाद न होकर वास्तविकता होती है--मेले की भूल-भटक की शिकार किशोरी की सगाई टूट जाती है ; वह स्वयं अपनी बान्धवी सोना से कहती है, "- - - तुमने भी सुन लिया होगा कि अब भले घर की बहू बेटियों से बात करने योग्य मैं नहीं हूँ ।"[154]

'राष्ट्रों के पारस्परिक युद्ध-विग्रह आदि में जो काम अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध राजनीतिज्ञ करते हैं, वही काम साधारण ग्रामवासियों द्वारा उनके निजी क्षेत्रों में प्रतिदिन अनायास ही होता रहता है ।"[155] शोभाराम तक यह समाचार 'तार-समाचार' की गति से पहुँच गया कि विवाह सम्बन्ध विच्छेद को लेकर कौशल्या कुएं में गिरने जा रही थीं पर किशोरी ने अपनी माँ को बीच से पकड़ ले जाकर घर में बन्द कर दिया ।

यहाँ अपने विवाह के विषय में निर्णय लेने का अधिकार लड़की को नहीं है और लड़कियों में यह सहजता से मान्य भी है । किशोरी कहती है, "मैं तो इतना जानती हूँ, माँ जिनके हाथ में सौंप देंगी उनके गुण-दोष का

---

§154§- मोह : सियाराम शरण गुप्त § पृष्ठ 65 §
§155§- मोह : सियाराम शरण गुप्त § पृष्ठ 41 §

विचार करने वाली मैं नहीं हूँ ।"[156] लड़की की माँ दामाद के घर का पानी भी नहीं पी सकती यह उसका संस्कारगत धर्म है । अतः कौशल्या दयाराम के घर की दवा भी खाना नहीं चाहती क्योंकि भले ही टूट गया हो पर लड़की की सगाई वहाँ हो तो गई थी ।

गाँव के नाते-रिश्ते रक्त-सम्बन्ध के समान ही अर्थवान हैं । अपनी ससुराल के गाँव में रह रहा हरीराम कौशल्या के मायके के गाँव का है---इस नाते वह कौशल्या का भाई है । हरीराम इस सम्बन्ध का निष्ठापूर्वक निर्वाह भी करता है ।

अपनी मनोकामना पूरी होने के लिए या संकट काटने के लिए ग्राम-समाज की स्त्रियाँ संकट मोचन महाबीर के आगे साँझ को दिया जला कर धरती हैं । माँ की बीमारी काटने के लिए किशोरी सोना के साथ वहाँ दिया धरने जाती है । स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक धर्मभीरु और आस्था-वान हैं । शोभाराम की भौजी पार्वती मानसिक अशान्ति के क्षणों में 'तुलसी घरे' के नीचे चटाई पर बैठ कर रामचरित मानस के सुन्दरकाण्ड का पाठ करती हैं ।

गाँव का बेपढ़ा, अल्हड़ और भोला-भाला 'बंसा' भी जानता है कि बड़े आदमियों की प्रतिष्ठा झूठ के आवरण से ढकी मुँदी और सुरक्षित रहती है । वह कहता है, "जितने बड़े आदमी होते हैं उन सबको झूठ से काम लेना पड़ता है । इन पिरथीपुर वालों को ही लो । अदालत में इनके इतने मामले मुकद्दमें चलते हैं, अगर कागज पर सच ही सच लिखें तो सिर की पगड़ी कभी की न उड़ जाय ।"[157]

निजी करके यहाँ कोई बात नहीं है । सब कुछ सार्वजनिक है । अतः शोभाराम का विवाह जब पिरथीपुर वालों की इकलौती कन्या से तय होता है तो बाजार में चर्चा सुनाई देती है—'पिरथीपुर वालों का लड़का उनकी लड़की ही है ।' अतः शोभाराम वहाँ 'ससुराल में बहू बन कर रहेंगे ।'

§156§- मोह : सियाराम शरण गुप्त § पृष्ठ 67 §
§157§- मोह : सियाराम शरण गुप्त § पृष्ठ 22 §

घर-जमाई होने का अनुमान ही यहाँ उपहास-परिहास का विषय बन जाता है ।

गाँव में परम्परा से चली आ रही मान्यता है कि हिन्दू माता के लिए अपनी कन्या "गौरी और दुर्गा" है । अतः लड़की की माँ के पैर पड़ने की बात ही माँ को अव्यवस्थित कर देती है । कौशल्या किशोरी से कहती है, "पैर पड़ कर बिन्नी, मुझे नरक की ओर क्यों ठेलती है ?"[158] साधारण हिन्दू घरों में नहा-धोकर 'ठाकुर-पूजा' करके, भोग लगाकर तब गृहिणी स्वयं भोजन करती है । किशोरी अपनी माँ से कहती है, "माँ अब उठकर नहा लो, ठाकुर जी के भोग के लिए रसोई तैयार हो गई है ।"[159]

इन सबके अतिरिक्त गाँव में ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं है जो भेद नीति का सहारा लेकर भाई-भाई में झगड़ा करवा कर मजा लेते हैं । रामचन्द्र, शोभाराम को अपने प्रभाव में लेकर उसे अपने भाई दयाराम से अलग करवाने का षड्यन्त्र रचता है । बंसा का कहना कि 'यहाँ के आदमी आदमी नहीं हैं, चमार हैं । किसी का भला नहीं देख सकते' अर्थ रखता है ।

दयाराम, शोभाराम का परिवार गाँव के सम्पन्न लोगों का प्रतिनिधित्व करता है और कौशल्या और किशोरी का परिवार असहाय, सीमित साधन सम्पन्न परिवार का । इन दोनों परिवार के बीच ग्राम-समाज है । संस्कार, परम्पराओं और रूढ़ियों के बीच जी रहे ग्राम जीवन में अर्न्तव्याप्त सहजता की रेखायें अधिक प्रखर हैं जो अकृत्रिम आत्मीय वातावरण की सृष्टि करती हैं ।

अन्तिम आकांक्षा § 1934 ई० §

'अन्तिम आकांक्षा' में कथाकार ने एक व्यक्ति विशेष के चरित्र को केन्द्र में रखकर ग्राम-जीवन को चित्रित किया है, पृष्ठभूमि है एक गाँव की ।

§158§- गोद : सियाराम शरण गुप्त § पृष्ठ 35 §

§159§- गोद : सियाराम शरण गुप्त § पृष्ठ 28 §

कथानायक 'हरी'—हरिनाथ गाँव के एक सम्पन्न परिवार का किशोर बालक है। घर में कई नौकर - चाकर के अतिरिक्त 'मुनीम कक्का' हैं, घर में गायें भी हैं। गृहिणी-हरी की माँ का वात्सल्य अपने पुत्रों तक ही सीमित नहीं है, नौकर-चाकरों को भी देर तक भूखा नहीं देख सकतीं। गाँव में नौकर चाकर तथा अन्य व्यक्ति सभी परिवार के सदस्य जैसे ही मान लिए जाते हैं। घर में 'परमादी' को 'दादा' का नौकर मानकर हरी 'रमला'—रामलाल को अपना नौकर बना लेता है जो उसके कमरे की सफाई-सुथराई तो करता ही है, काँच पीसकर पतंग की डोर पर माँजा चढ़ाता है, कटी पतंग भी लूट देता है। गाँव में जहाँ आत्मीयता और स्नेह-बंधन जितने सहज हैं, जाति मर्यादा और जाति बन्धन उतने ही कठोर हैं। नीच जाति के रामलाल के साथ हरी की घनिष्टता मुनीम कक्का को अच्छी नहीं लगती है। 'फराटे की अँग्रेजी' बोलना अभिजात्य का लक्षण है अतः गर्व का विषय है। मुनीम कक्का के कहने पर हरी अँग्रेजी नहीं बोल सका था जिसका एक मात्र कारण उनकी दृष्टि में उसका नीची जाति के लड़कों §रामलाल§ के साथ खेलना है।

गाँव के सम्पन्न लोगों के घर अक्सर डाके पड़ जाया करते थे। डाकुओं के आने की सूचना पाकर घर के स्त्री बच्चों को मुहल्ले के गरीब लोगों की झोपड़ियों में ले जाकर छिपा दिया जाता था। तिजोरी की मूल्यवान वस्तुएं तथा काम के कागज-पत्र भी हटा दिये जाते थे तथा नकली सोने चाँदी का सामान उसमें रख दिया जाता था जो कि गाँव के सम्पन्न गृहस्थों के घर पहले से ही तैयार करके 'संकटकालीन परिस्थिति' का सामना करने के लिए रख दिये जाते थे। सुरक्षा के लिए दुनाली बन्दूक भी रहती थी। हरी की बहन 'मुन्नी' के विवाह की तैयारियों के बीच डाका पड़ने की खबर सुनाई पड़ती है — और फिर उक्त आपात्कालीन व्यवस्था की जाती है।

इस आघात काल में गाँव के मालिक के घर की स्त्रियों के शरण लेने के कारण उस कोरी का घर अनायास ही गौरवमण्डित हो गया है और वह कोरी गाँव के अन्य कितने लोगों का ईर्ष्या पात्र बन गया है। और वह घर,

जिसमें छोटी-छोटी कोठरियाँ और बहुत छोटा आँगन है, एक कोने पानी भरे मिट्टी के दो तीन घड़े रखे हैं जैसे जमींदार के घर गोबर थापने के लिए मैली कुचैली हालत में एक ओर पड़े रहते हैं, और घड़ों के नीचे फैला हुआ पानी-कीचड़ नाबदान तक चला गया है, दुर्गन्ध से भरा है ।

डाका पड़ा है तो पुलिस भी आई है --'डाकू किस तरफ से आए, किस तरफ गए, किस किस ने देखा और भी ऐसी बीसियों बातें, जिनकी जाँच करते करते पुलिस ने सबेरा कर दिया ।'[160] गाँव वालों के लिए पुलिस से छुटकारा पाना 'डाकुओं से त्राण' पाने के बराबर ही है ।

डाकू की हत्या कर डालने पर हत्या तो लगेगी ही--आखिर नर-हत्या पाप तो है ही । अतः 'प्रासचित्त' में गंगास्नान, 'सत्त नारायण की कथा' ब्रह्मभोज आदि करके शुध्द होकर बिरादरी में मिल जा सकता है । रामलाल ने एक डाकू को मार डाला है अतः गाँव की रीति के अनुसार उसे प्रायश्चित तो करना ही होगा भले इस प्रायश्चित का पूरा खर्चा मालिक दें, पर मालिक भी इस गाँव की रीति के बाहर नहीं जा सकते हैं । उसी मालिक के तरुण छोटे भाई की तर्क दृष्टि इसे अन्याय और अनुचित मानती है और व्यंग करती है, 'सियार की जाति होकर सिंह का काम कर बैठा, यह पाप नहीं तो और क्या है ?'[161]

विवाह यहाँ पूरे पारम्परिक ढंग से सम्पन्न होते हैं । द्वार पर बारात आने के समय स्त्रियाँ मंगल गान गाती हैं, शहनाई बज रही होती है । वह धूम-धाम के साथ पालकी पर बैठ कर कन्या के दरवाजे पर जाता है । हरी की बहन मुन्नी का विवाह है । पिता समान बड़े भाई वर के माथे पर रोली और अक्षत का टीका करके उसे कुछ भेंट देता है और वर के पैर छूता है । उधर बाराती तिलक में दी गई भेंट का मूल्य-अनुमान करते हैं ।

गाँव के हिन्दू घर के विवाह 'बिना बखेड़े' के पूरे हो जाँय, यह असम्भव है । मुन्नी के ब्याह में बाराती एक दम उठ खड़े हुए - वे यहाँ पानी

{160}- अन्तिम आकांक्षा : सियाराम शरण गुप्त {पृष्ठ 57}
{161}- अन्तिम आकांक्षा : सियाराम शरण गुप्त {पृष्ठ 60}

सुनने के लिए नहीं लड़का ब्याहने के लिए आए हैं ।' वस्तुतः बात यह थी कि कन्या के घर के नौकर रामलाल ने बारात के 'खवास' को कह दिया था कि 'भंगी हो या चमार, बारात में जो कोई भी आता है, दुल्हा का बाप ही बनकर आता है ।' इसी पर झंझट प्रारम्भ हुआ । फिर कन्या पक्ष के बड़े बूढ़े 'बरातियों की जूती के चाकर' आदि बनकर इस कलह को शान्त कर पाये । फिर दूसरी बात उठ खड़ी हुई, लड़की का भाई हरीनाथ बुजुर्ग बरातियों को अपने हाथ से पाँव धोते देखता रहा पर स्वयं आकर उसका पैर न धोकर अपने बरातियों का अपमान किया है ---- आदि आदि ऐसी अनेक बातें बरातियों को उत्तेजित करती रहीं ।

गाँव के साधारण नौकर चाकर जैसे लोगों का विवाह सचमुच एक आनन्द का कार्य है -- दान-दहेज, मान-अपमान से मुक्त । रामलाल के विवाह में उसका पिता सब तरफ से ऋण लेकर बड़ी धूम-धाम से अपने लड़के का विवाह करता है । रामलाल स्वयं भी 'दुलहिन की चर्चा' से पुलकित हो उठता है । हरीनाथ की माँ रामलाल की दुलहिन को अपने घर बुलवाती है और यथोचित सत्कार करती और भेंट देती है -- यह मालिकों के घर की रीति है ।

गाँव के गरीब किसानों के भोजन का कोई निश्चित समय नहीं है । यहाँ तो जब किसान को काम से फुरसत मिल जाय और जब घर से कोई रोटी दे जाय वही रोटी खाने का समय है । यों किसान खलिहान में पड़े गेहूँ-चने जब तब मुँह में डालते रहते हैं--कच्चा ही । वे कहते हैं, "भैया, यह अन्न देवता हैं, कच्चा भी किस किस को मिलता है ?"[162]

इन किसानों में बड़ी गरीबी है, अक्सर घर पर रोटी नहीं बनती । इसी पेट के लिए मजबूर होकर ये चोरी करते हैं । 'हलका' के घर रोटी नहीं बनी तो 'हलका' खलिहान पर से 'दिशा जाने' के बहाने लोटे में गेहूँ चुरा कर ले जा रहा था । उसकी इस गरीबी को सुनकर सम्पन्न जमींदार-पुत्र तो दुखी होता है पर 'नौकर चाकरों' के घर का हाल तो ऐसा होता ही है'--अतः उनके लिए यह घटना कोई विशेष नहीं है । कुछ

---

§162§- अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त § पृष्ठ 27 §

धर्म-भीरु किसान भूखे रहकर भी चोरी आदि अपकर्म नहीं करते —'धर्म कर्म भी तो कुछ होता है । — — — धीरज धरने से सब ठीक हो जाता है'[163] ऐसा उनका विश्वास है । परन्तु सामान्यतया किसान लोग 'आँख बचा कर बोरे के बोरे उड़ा देते हैं ।

खलिहान पर किसान लोग श्रम को हँस बोल कर नकल-ठिठोल कर के हल्काया करते हैं । रामलाल 'ताजा विलायत-लौट साहब' की नकल करता हुआ कहता है – "तुम काला आदमी, हमारे लिए तमाखू का चिलम भर लाओ।" "पाकड़ो सुअर काला आदमी को, हमारी बात नहीं सुनता ।"[164] और खलिहान पर काम में लगे मजदूर किसान हँसने लगते हैं ।

गर्मियों में आम के बाग में गाँव के बालक, किशोर, रखवालों को चिढ़ा-खिझा कर आम तोड़ते रहते हैं । रमला भी रखवाली पर की 'बूढ़ी डोकरी' को चिढ़ा कर अमियाँ तोड़ लाता है पर उससे कोई कुछ नहीं बोलता क्योंकि वह 'बड़े आदमी का नौकर' है ।

गाँव में रिश्ते रक्त से नहीं, भावना से निर्धारित होते हैं —— मालिक की बहन तो नौकर की भी बहन । रामलाल हरीनाथ की बहन मुन्नी के विवाह के समय दो रुपये रखकर उसके पैर छूता है और उधर आते जाते समय मुन्नी की ससुराल जाकर उसका हाल-चाल लेना अपना धर्म समझता है ।

सहृदयता और सरलता के साथ-साथ गाँव में भयंकर स्वार्थ साधने वालों की कमी नहीं है । पास के किसी एक गाँव का मुखिया टेक सिंह तहसीलदार, पुलिस और डाकू सबसे मिला हुआ है । गाँव में जितनी भी बातें लोगों को सताने और डराने के लिए हो सकती हैं, सब कुछ न कुछ उससे सम्बन्ध अवश्य रखती हैं ।

पैसे की प्रतिष्ठा और महिमा यहाँ भी सर्वोपरि है । रामलाल की स्त्री 'रानी' उसे छोड़कर मायके के गाँव के 'गुलाबसिंह माते' के घर रहने लगी है —'लुक छिप कर नहीं, उजागर ।' 'गुलाबसिंह माते' किसी की §राम

§163§- अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त § पृष्ठ 33 §
§164§- अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त § पृष्ठ 32 §

लाल की§ ब्याहता स्त्री को को अपने घर में रखे हुए हैं पर उसे गाँव के सब कामों में पहले बुलाया जाता है और ऊँचा आसन मिलता है, 'गाँव की पंचायत का सरपंच' है, लोगों के मुकदमें सुनता है, उन पर जुरमाना करता है पर गरीब रामलाल ने एक हत्यारे डाकू को मार डाला तो उसे हत्यारा कहा गया और विवाह शादी तथा अन्य कामों में उसे सम्मिलित नहीं किया जाता है ।

छोटी जाति के लोगों में चरस की चिलम के साथ उनका सबका आपस में गाली-गलौज और गन्दी-भद्दी बातें बकना उनके 'आनन्द-कौतुक' का अंग है । हताश, कुंठित रामलाल भी उन्हीं लोगों में सम्मिलित हो गया है । साथ ही साथ इन लोगों की आस्था गाँव के 'महाबीर जी की प्रत्यक्ष कला' वाले संकट मोचन पर कम नहीं है । रामलाल वहाँ प्रार्थना करता है, "महाबीर स्वामी, मुझे उबारो- - - ।"

गाँव में छोटी जाति वालों के अपने अलग सामाजिक अनुशासन हैं----पत्नी के राह-कुराह चले जाने के बाद पति यदि उसे फिर अपनाना चाहे तो बिरादरी को जुरमाना तथा भोज देना पड़ता है । 'रनिया' गुलाब सिंह के घर से वापस आकर अपने पति के साथ रहना चाहती है । वह कहती है "मेरे गहने बेचकर तुम बिरादरी को जरीबाने की पंगत दे देना ।"[165]

यहाँ, सवर्णों के अपने रीति रिवाज हैं । छूत-विचार, नियम-संयम सम्पन्न सवर्णों की आचार संहिता का विशेष अंग है । हरी की माँ को बीमारी में भी वैद्य के अतिरिक्त किसी डॉक्टर की औषधि ग्राह्य नहीं है । उनके मरणोपरान्त श्राध्द में अपने गाँव के ही नहीं, आस-पास के चार छः गाँवों के व्यक्तियों को पंगत-भोज में बुलाया जाता है ।

इस प्रकार गाँव में सम्पन्न सवर्ण की अपनी अलग प्रतिष्ठा है और नौकर-चाकर, मजदूर-किसानों के अपने अलग रीति-रिवाज तथा सामाजिक अनुशासन हैं । पर दोनों वर्गों में ग्राम जीवन समानान्तर चलता जाता है, कोई किसी को काटता नहीं । परिस्थिति की सहज स्वीकृति के साथ

---

§165§- अन्तिम आकांक्षा : सियारामशरण गुप्त § पृष्ठ 173 §

सम्बन्ध निर्वाह यहाँ की विशिष्टता है, जो नगर संस्कृति से गाँव को स्पष्ट ही अलग करती है ।

'तितली' § 1934 ई0 §

जयशंकर प्रसाद की 'तितली' की कथावस्तु चौदह गाँव वाले 'धामपुर' नामक एक ताल्लुके की पृष्ठभूमि पर फैली है, जो एक गाँव है । धामपुर के जमींदार परिवार के सदस्य अधिकतर बनारस में रहते हैं । धामपुर गाँव का पड़ोसी है बनारस शहर । अतः बनारस शहर का भी संक्षिप्त सा अंकन 'तितली' में है । गाँव के शोषित-पीड़ित, हारे-थके किसानों को शरण देती है कलकत्ता महानगरी । इस कलकत्ता के यथार्थपरक § यद्यपि संक्षिप्त ही § चित्रों का चित्रण प्रस्तुत कथाकृति में साकार रूप से उभरा है ।

धामपुर में रहने वालों के दो वर्ग हैं -- एक तो हैं जमींदार एवं उनका परिवार । दूसरा है किसान और मज़दूर वर्ग । इन दोनों वर्गों के बीच है एक बाप बेटी का परिवार जो भारतीय सांस्कृतिक परम्परा और आधुनिक चेतना का समन्वित रूप है ।

ज़मींदार घरों में धन वैभव की प्रचुरता है । उनके घरों के नवयुवक विलायत पढ़ने भेजे जाते हैं । पढ़ने-पढ़ाने की रुचि के कारण वे विलायत पढ़ने नहीं भेजे जाते अपितु घर के लड़के विलायत पढ़ने गए हैं - यह प्रतिष्ठा का प्रतीक है । अतः उन्हें 'वहाँ पढ़ने-लिखने की उतनी आवश्यकता न थी जितनी लन्दन का सामाजिक बनने की ।'[166] यह तो पिता की दृष्टि थी पर नवयुवक की दृष्टि अनजाने ही वहाँ के जीवन का मूल्यांकन करने लगती है । धामपुर के जमींदार का पुत्र इन्द्रदेव विलायत बैरिस्टरी पढ़ने गए हैं । लन्दन में भी आर्थिक विषमता के दृश्य उन्हें आश्चर्य में डाल देते हैं ।

विलायत में पूर्वी और पश्चिमी लन्दन में अन्तर दीखता है । लन्दन के पश्चिमी क्षेत्र में पार्कों और सार्वजनिक स्थानों पर सुगंधित जल के फौवारे चलते हैं । कमरे विद्युतीय ताप से नियंत्रित हैं और पूर्वी हिस्से में

§166§- तितली : जयशंकर प्रसाद § पृष्ठ 24 §

'बरफ और पाले में दुकानों के चबूतरे के नीचे अर्धनग्न दरिद्रों का रात्रि-निवास है । कुछ तो 'पुल की कमानी के नीचे' [167] निवास बनाए हुए थे, जहाँ भोजन-स्थान को लेकर 'धौल-धप्पड़, गाली-गलौज' के स्वर सुनाई पड़ते वहीं 'बीच-बीच में फूहड़ हँसी भी सुनाई पड़ जाती है ।' [168] लंदन के भी भद्र-समाज में अज्ञात कुल शील स्त्री को केवल मनोरंजन के सामान से अधिक नहीं समझा जाता । इन्द्रदेव जब शैला को अपने मेस में लाते हैं और परिचारिका के रूप में रखना चाहते हैं तो उनकी भारतीय मित्र मण्डली के मुख पर एक व्यंग्य भरी मुस्कान खेलने लगती है ।

धामपुर के ज़मींदार परिवार का स्थायी निवास तो शहर बनारस है, पर ज़मींदारी पर उनकी कोठी है । धामपुर के उस स्थान को गाँव वाले छावनी कहते हैं । 'चारों ओर ऊँचे ऊँचे खंभों पर लम्बे चौड़े दालान, जिनसे सटे हुए कमरों में सुखासन, उजली सेज, सुन्दर लम्प, बड़े बड़े शीशे, टेबिल पर फूलदान, अल्मारियों में सुनहली जिल्दों से मढ़ी हुई पुस्तकें — सभी कुछ इस छावनी में पर्याप्त है ।' [169] आस-पास दफ्तर, नौकरों के लिए तथा और भी कितने आवश्यक कामों के लिए छोटे-मोटे घर बने हैं ।

ज़मींदार के स्वर्गवासी होने पर गृहस्वामिनी ही अपनी ज़मींदारी में 'सरकार' हैं । उनके मुखमण्डल पर 'गर्व की दीप्ति, आज्ञा देने की तत्परता और छिपी हुई सरल दया भी अंकित' है । इन्द्रदेव की माता जी 'श्याम दुलारी' इसका उदाहरण हैं । उनके आस-पास अनावश्यक गृहस्थी के नाम पर जुटाई गई, अगणित सामग्री का बिखरा रहना आवश्यक है । आठ से कम दासियों से उनका काम नहीं चल सकता । दो पुजारी और ठाकुर जी का सम्भार अलग । इन सबके आज्ञा-पालन के लिए कहारों का पूरा दल भी है । बँहगी पर गंगाजल और भोजन का सामान ढोते हुए कहारों का आना जाना— श्यामदुलारी की आँखें सदैव देखना चाहती थीं । जीवन में छुआ-छूत और शुद्धता का विचार इतना कि विलायत से लौटे हुए पुत्र के चरण-स्पर्श कर लेने पर उनका स्नान करना आवश्यक हो जाता था । श्यामदुलारी कोठी के बाह

---

[167]- तितली : जयशंकर प्रसाद [पृष्ठ 25]
[168]- तितली : जयशंकर प्रसाद [पृष्ठ 25]
[169]- तितली : जयशंकर प्रसाद [पृष्ठ 34]

के कमरे में सबसे मिलती जुलती थीं। उनका स्वयं का कक्ष 'देव मंदिर के समान अस्पृश्य और दुर्गम्य' था। बिना स्नान किये, कपड़े बदले, वहाँ कोई नहीं जा सकता था। वे अंग्रेजी दवा भी नहीं खाती थी। हाँ, लगाने वाली दवा से उन्हें परहेज नहीं था।

धामपुर गाँव में जमींदारी का कारोबार देखने के लिए जमींदार का दरबार लगता है। जमींदार साहब के बैठने के लिए आरामकुर्सी है। जमीन पर एक बड़ी दरी बिछी हुई होती है जिस पर किसान बैठते हैं। असल में शासन-प्रशासन में तहसीलदार ही प्रमुख है - जिसे चाहा बेदखल किया, किसी पर जुर्माना लगाया, किसी से मालगुजारी वसूली। जमींदार उसकी आंखों देखते हैं।

जमींदार घर के दामाद को अपनी पत्नी के प्रति दायित्व से भी मुक्ति है क्योंकि पत्नी इसी घर की लाड़ली बेटी है। श्यामदुलारी की पुत्री माधुरी के प्रति श्यामलाल कलकत्ते में रहते हैं। जो रेस की टीप, बगीचों के जुए, स्टीमरों की पार्टियों' में व्यस्त रहते हैं। इन पार्टियों में ताश-पार्टी में कौन कौन होगा, संगीत के लिए किसको बुलाना है, ठंडाई और भोजन के पकवान बनाने वाले की व्यवस्था करना, कौन व्यंग विनोद से जुए में हारे हुए लोगों को हँसा सकेगा — कलकत्ते में रहकर यह सब प्रबंध श्यामलाल करते हैं।

धामपुर में एक घिरा हुआ मैदान था। कई बीघा समतल भूमि-जिसके चारों ओर दस लटठे की चौड़ी झाड़ियों की दीवार थी। जिसमें कितने ही सिरिस, महुआ, नीम और जामुन के वृक्ष थे — जिनपर घुमची, सतावर और करन्च इत्यादि की लतरें झूल रहीं थीं। नीचे की भूमि में भटेरन के चौड़े चौड़े पत्तों की हरियाली थी। बीच बीच में बनबेर भी उगे थे। गाँव के लोग उसे 'बंजरिया' कहते थे। यहाँ रहते हैं बाबा रामनाथ और उनकी पोषिता पुत्री 'बन्नो' —'तितली'। गाँव के एक मात्र प्रबुध्द चेता व्यक्ति हैं बाबा रामनाथ, जो ज्ञान और कर्म के अद्भुत संगम हैं। तितली की कर्तव्य बुध्दि का विकास उसकी शिक्षा-दीक्षा में हुआ है। धामपुर के पुराने मालिक

के केवल गत वैभव की गौरव-गाथा का ही उत्तराधिकारी मधुबन उनका शिष्य है । पर धामपुर के तहसीलदार की दृष्टि में '- - - -समाजी है, लड़कों को न जाने क्या क्या सिखाता है — ऊँची जाति के लड़के हल चलाने लगे हैं । नीचों को बराबर कलकत्ता - बम्बई कमाने जाने के लिए उकसाया करता है । इसके कारण लोगों को हलवाहों और मजूरों का मिलना असम्भव हो गया है ।'170

धामपुर गाँव में खण्डहर सा शेरकोट है — जिसमें पहले धामपुर के 'असली जमींदार' रहा करते थे । किसी समय शेरकोट के नाम से लोग सम्मान से सिर झुकाते थे । वे मुकद्दमें में सब कुछ हार कर दिवंगत हुए और छोड़ गए तीन बीघे का खेत और उत्तराधिकारी मधुबन ।

शेरकोट के समीप ही हैं 'मल्लाही टोला' । 'मल्लाही टोले' में तो अब आठ-दस घरों की बस्ती है । परन्तु जब शेरकोट के अच्छे दिन थे तो उसकी प्रजा—काम करने वालों से यह गाँव भरा रहता था । शेरकोट के विभव के साथ वहाँ की प्रजा धीरे धीरे जीविका की खोज में इधर-उधर खिसकने लगी । केवल मल्लाह और कहार गंगा-तट से बँध कर वहीं रह गए । जो भी लोग हैं वे शेरकोट की मालकिन - मधुबन की विधवा बड़ी बहन 'राजकुमारी' का सम्मान करते हं । वे अभी भी अपने को उनकी प्रजा मानते हैं, क्योंकि कभी उनका नमक खाया है ।

सामान्यतया गाँव का जीवन शान्त उद्वेगहीन और सहज है । प्रातः काल कृषक बालिकाएं गंगा तट पर बरतन माँज रही होती हं । मल्लाहों के लड़के अपनी डोंगी पर बैठे हुए मछली फँसाने की कटिया तोल रहे होते हैं । माल से लदी कुछ बड़ी बड़ी नावें गंगा के जल में धीरे धीरे संतरण कर रहीं होती हैं । गाँव के लोग सरल-हृदय हैं । वे आपस में निर्दोष, निष्कपट हँसी मज़ाक कर लेते हैं । 'छावनी' के नौकर 'रामदीन' और 'मलिया' छुट्टी पाते ही गंगा में नहाने आ जाते हैं और हँस बोल कर अपने को हल्का कर लेते हैं । विदेशिनी 'शैला' को इन देहाती लोगों से बात-चीत करने में सुख ही नहीं

§170§- तितली : जयशंकर प्रसाद § पृष्ठ 79 §

जीवन का सच्चा स्वरूप मिलता है, जिसमें ठोस मेहनत, अटूट विश्वास और संतोष से भरी शान्ति हँसती खेलती है ।'[171] परिचित-अपरिचित सभी की सहज-भाव से सहायता करना उनका स्वभाव है और आतिथ्य है उनका धर्म । शिकार खेलने आई इन्द्रदेव, शैला और चौबे जी की पार्टी का बाबा रामनाथ के घर पर 'बन्जो' आतिथ्य भी करती है और चोट खाए हुए चौबे की सेवा-शुश्रूषा की व्यवस्था भी करती है ।

ये ग्रामवासी शेर, चीते, चोर, डाकू से नहीं डरते ; डरते हैं ज़मींदार के तहसीलदार-कारिन्दा से । डरते तो ज़मींदार भी हैं – श्याम दुलारी को डर बना रहता है कि कहीं 'साहब' §प्रशासनिक सेवा में लगे हुए अंग्रेज§ नाराज न हो जायँ ।

गाँव में कुलीन और उच्चवंश के लोग हल नहीं चलाते थे । पर बाबा जी की शिक्षा और प्रेरणा से मधुबन ने स्वयं हल चलाया । पर उसकी बहन को लाज आती है कि शेरकोट का उत्तराधिकारी हल चलाहें अथवा गाँव से बोझ ले जाकर शहर में बेचने जाँय । गाँव का नवयुवक जाग रहा है । मधुबन कहता है "काम करके खाने में लाज कैसी ।"[172]

गाँव में उधार पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है । रुपया न भर पाने पर महाजन के घर बिना मजूरी के काम करते रहना पड़ता है । किसी ब्याह में 'रमुआ' ने दस रुपया कर्ज लिया था । वह हल चलाता मर गया । उस दस रुपये से जिसका ब्याहह हुआ था वह भी उन्हीं रुपयों के बदले हल चलाने लगा । फर उसके लड़के उन्हीं रुपयों के बदले हल चलाने लगा । पर उसके लड़के उन्हीं रुपयों के बदले हल चलाने के डर से कलकत्ता भाग गए —— मजदूरी-जीविका की खोज में ।

गाँव के समर्थ लोगों में मुकदमें लड़ने-लड़वाने का 'चसका' है । छावनी के तहसीलदार ने मधुबन के पिता को नील-गुदाम वाले साहब से मुकदमा लड़वा-लड़वा कर तबाह कर दिया ।

---

§171§- तितली : जयशंकर प्रसाद §पृष्ठ 48§
§172 §- तितली : जयशंकर प्रसाद §पृष्ठ 73§

यहाँ प्रवाद अफवाह के रूप में फैलती है — शैला इन्द्रदेव को बिगाड़ रही है । इन्द्रदेव और शैला को लेकर 'ओछा अपवाद' भी गाँव के वातावरण में व्याप्त है । अतः इन्द्रदेव का विवाह स्व-जातीय कुलीन परिवार में होना असम्भव सा हो गया है ।

गाँव का जाड़ा अलाव के पास कटता है । किसान गाढ़े के कुरते पहने अलाव के पास बैठ कर जाड़ा काट देते हैं । गाढ़े की दोहर और कम्बल उनमें से एक ही दो के पास होती है । गाँव के अच्छे किसान के दरवाजे पर अलाव लगता है । तम्बाकू का प्रबंध भी वही करता है । 'मँहगू' इस गाँव का पुराना और अच्छा किसान है अतः अलाव उसी के दरवाजे पर जलता है और चिलम भी ठंडी नहीं होती है ।

गाँव में भूतप्रेत का भय भी बहुत है । गाँव में बार्टली साहब की नील कोठी में शैला के साथ कोई आने को आसानी से तैयार नहीं होता क्योंकि गाँव में वह भुतही कोठी मानी जाती है ।

उधर जमींदार श्याम दुलारी के घर में जायदाद के हक को लेकर तनाव का वातावरण बनता जा रहा है । अतः 'बड़ी कोठी में जैसे सब कुछ संदिग्ध हो उठा है' । सुधार की महत्वाकांक्षा और बड़ी बड़ी अभिलाषा लेकर विदेश से आए हुए इन्द्रदेव स्वयं इस वातावरण (घरेलू राजनीति) में अपने को बेबस सा महसूस करते हैं ।

इन सब बातों से बेखबर गाँव युग-धर्म को अपनाता आगे बढ़ा जा रहा है । विदेशिनी शैला हिन्दू धर्म में दीक्षित हो गई है । मधुबन और तितली का विवाह हो रहा है । तोरण और कदली के खंभों से सजा हुआ छोटा सा मंडप है । जिसमें प्रज्ज्वलित अग्नि के चारों ओर बाबा रामनाथ तितली शैला और मधुबन बैठे हुए हवन विधि पूरी कर रहे हैं । यह एक आदर्श विवाह है ।

साधारणतया गाँव में पारम्परिक रीति से ही विवाह सम्पन्न होते हैं । धामपुर में पंडित दीनानाथ के लड़की का विवाह है । स्त्रियाँ

बारात की अगवानी का गीत गा रही हैं । द्वार-पूजा के बाद बारात के जनवासे लौटने पर वहाँ 'मैना' §मेयना§ का नाच होता है । गाँव वालों के मन में शहर वालों के लिए एक ही बात है--वे झूठ-मूठ के प्रदर्शन नाज-नखरे वाले होते हैं । अतः पं0 दीनानाथ अपनी लड़की का विवाह शहर में नहीं करना चाहते थे । बारात शहर से आई है अतः लड़की वालों के घर माँग पर माँग आ रही है । जाड़े में भी अनार का शरबत माँग रहे हैं ।

देहात में बिना चादर के कुलीन घर की स्त्रियों का घर से बाहर निकलना जितना गाँव की मर्यादा के विरुध्द समझा जाता है उतना ही आश्चर्य का विषय भी । तितली छपे किनारे की सादी धोती, हाथों में दो-दो चूड़ियाँ और तलहले कड़े, माथे में सिन्दूर की बिन्दी के साथ बिना चादर के पं0 दीनानाथ की लड़की के ब्याह में जाती है तो पंडित जी की शहर में ब्याही 'जमुना' चकित हो उठी -- देहात में यह रंग । यहाँ आँचल का कोना दोनों हाथों में पकड़ कर पूज्यों का चरण स्पर्श किया जाता है । तितली अपनी नन्द राजकुमारी का इसी रीति से चरण-स्पर्श करती है । यहाँ के सामान्य लोगों का विशेष भोजन है - हरे-हरे दोनो में दही बड़ा, आलू-मटर की तरकारी, केले के पत्ते में चावल रोटी दाल, छौंके हुए हरे चने और लौकी। धुंबरिया की तितली अपनी अतिथि शैला को यही भोजन परोसती है ।

कुछ लोगों को छोड़कर गाँव में सामान्यतया निर्धनता और विपन्नता का साम्राज्य है । वस्त्र के अभाव में जाड़ों में ठिठुरते लोग, फटे वस्त्रों से झाँकती छाती की हड्डियाँ और नसें उनकी दीन-हीन दशा की कहानी कहती हैं । बीमार को देने के लिए साबूदाना खरीदने के लिए पैसा नहीं है । हरी मटर भून कर घर भर खायगा और बीमार भी खायगा ।

जीवन-जीविका के प्रश्न को लेकर गाँव के लोग बहुत परेशान नहीं होते । पर्व-त्योहार को पूरे उमंग से मनाते हैं - सारी समस्याओं को भूल कर । बसन्त पंचमी के दिन किसी की पुरानी चादर पीले रंग में रंगी गई है तो किसी की पगड़ी बचे हुए फीके रंग में रंग ली गई है — सबके पास कोई

न कोई पीला कपड़ा है अवश्य । जौ की कच्ची बालों को भून कर गुड़ मिला कर लोग 'नवान' कर रहे हैं । एक लड़का सुरीले कंठ से वसन्त गा रहा है—

मदमाती कोयलिया डारडार[173]

ढोल और मजीरा भी ठमक उठता है । सब लोग अपने को भूल कर सरल विनोद में डूब जाते हैं । उनके लिए 'आज' ही महत्वपूर्ण है, 'कल' की चिन्ता से मुक्त ।

वसन्त पंचमी का उत्सव 'छावनी' में भी हो रहा है । वहाँ दंगल का प्रदर्शन है, अखाड़ा बना हुआ है । चारों ओर जनसमूह बैठा और खड़ा है । कुरसी पर छावनी के अतिथि इमाद बाबू श्याम लाल और उनके इष्ट-मित्र बैठे हैं । एक शहरी पहलवान लुंगी बाँधे अपनी चौड़ी छाती खोले खड़ा है । पास के गाँव की कुछ देहाती वेश्यायें आम की बौर हाथ में लिए, गुलाब का टीका लगाये वहाँ बैठी हैं । दंगल में जीते व्यक्ति को वे आम का बौर देकर उनका अभिनन्दन करती है । यह सब छावनी के वसन्तोत्सव का 'पुराना व्यवहार' है ।

धामपुर में चूने से पुता और पक्की दीवारों वाला एक मन्दिर है- बिहारी जी का । इसी के पास कच्ची सड़क के दोनों ओर कपड़े, बरतन, बिसात खाना और मिठाइयों की छोटी-बड़ी दुकानें हैं - यही धामपुर का बाजार है ।

गाँव में मन्दिर के महंथ का बड़ा दबदबा है - गरीब किसानों को खेत बंधक रखकर अपनी आवश्यकता पर रुपये इन्हीं महंथ से मिलते हैं उन्हें । महंथ जी 'भक्तों की भेंट' और किसानों को सूद समभाव से ग्रहण करते हैं । चूँकि सारा धंधा बिहारी जी के नाम पर चलता है अतः धर्मभीरु किसान को कुछ रियायत भी नहीं मिल पाती — भला बिहारी जी का अंश लेकर वह क्यों पाप में पड़े । वैसे महंथ जी ठाकुर रामपाल सिंह पुलिस इन्सपेक्टर से डरते हैं।

गाँव और शहर एक दूसरे को सहारा दिये हैं । जमींदार शहर में रहते हैं, उनकी आमदनी का स्रोत गाँव-उनकी जमींदारी है । गाँव का किसान

{173}- तितली : जयशंकर प्रसाद {पृष्ठ 192}

मजदूर मजबूर होकर पेट भरने के लिए गाँव से शहर की ओर जाता है। इसके अतिरिक्त शहर में सरकारी उच्च कर्मचारी तथा बैरिस्टर, वकील, डाक्टर जैसे स्वतंत्र व्यवसायी स्थायी रूप से रहते हैं। बनारस में 'बरना' के उत्तरी तट पर ऐसे बहुत से बँगले और कोठियाँ हैं जिसमें ये लोग अपने 'सुखी परिवार' को लेकर रहते हैं।

महानगरों में व्यक्ति की पहिचान मुश्किल है—है तो केवल भीड़ हावड़ा के पुल से रामदीन कलकत्ता का प्रथम दर्शन करता है तो उसे यह 'एक नया संसार' लगता है—'जनता का जंगल। सब मनुष्य जैसे समय और अवकाश का अतिक्रमण करके, बहुत शीघ्र अपना काम कर डालने में व्यस्त हैं'। [174]

इस भीड़ में 'धंधे' भी चल रहे हैं। महुआ बाजार से आगे पटरी पर एक जगह भीड़ लग रही थी। एक लड़का अपनी भद्दी संगीत कला से लोगों का मनोरंजन कर रहा था। इसी प्रकार कहीं भी किसी दल का लड़का खड़े होकर नाच-गाकर भीड़ इकट्ठी कर लेता उसी समय उसके अन्य साथी गिरहकट लड़के जेब कतरते रहते। उन सबों की रक्षा के लिए दो एक लोग रहते जो दो चार हाथ इधर उधर चलाकर लड़कों के भागने में सहायता करते। दिखाने के लिए कभी कभी दो चार खोपड़ियों का रक्त भी निकाल दिया जाता। कलकत्ते में यह व्यापार खुली सड़क पर चला करता है। 'यह है कलकत्ता- - - -भाई यहाँ तो छीना - झपटी चल ही रही है' बीरू बाबू कहते हैं।' [175]

कलकत्ते की गलियों दर गलियों के भीतर एक छोटे से घर में बीरू बाबू भी एक धंधा चला रहे हैं। बीरू बाबू के संयोजन और निर्देशन में भीख माँगने वाले दल के छ-सात युवक और बालक मधुर स्वर में भीख माँगने वाला गाना गा-गाकर हारमोनियम बजाकर भीख माँगने जाते हैं। अड्डे पर आने पर प्राप्त अनाज और पैसा बीरू बाबू को सौंप दिया जाता है। गाँव से भागा मधुबन भी इसी दल का सदस्य है। इस दल में सभी

[174]- तितली : जयशंकर प्रसाद [पृष्ठ 317]
[175]- तितली : जयशंकर प्रसाद [पृष्ठ 320]

लोग 'ठलुए बेकार' हैं । मधुबन भीख नहीं माँगता । कलकत्ते में रात को रिक्शा खींचता है । बीरू बाबू ने उसे रिक्शा खरीद दिया है । बीरू बाबू की इस आय का सदुपयोग होता है 'मालती दासी' के 'सन्दूक' में जाकर ।

जमींदार, तहसीलदार, महंथ आदि विशिष्ट लोगों के जीवन से अप्रभावित धामपुर गाँव अपनी दिशा में आगे बढ़ा जा रहा है । बंजरिया में तितली के आत्मबल और कर्मठता से पाठशाला चल रही है, अनाथ शिशुओं का पालन हो रहा है । ईंटें भी बनाई जा रही हैं तो 'जोन्हरी का ठेठा' भी काटा जा रहा है । 'रामजस और मलिया, राजो और तितली तथा और भी कई अनाथ स्वेच्छा से एक नया कुटुम्ब बनाकर सुखी हो रहे हैं ।'[176]

शैला की तत्परता से धामपुर 'एक कृषि प्रधान छोटा नगर' बन गया है । 'सड़कें साफ सुथरी, नालों पर पुल, करघों की बहुतायत, फूलों के खेत, तरकारियों की क्यारियाँ, अच्छे फलों के बाग' तथा प्रत्येक किसान के पास कम से कम एक हल की खेती — गाँव, आदर्श गाँव का उदाहरण बन गया है ।'[177]

पाठशाला, बैंक, चिकित्सालय के साथ रात्रि पाठशालाओं का भी प्रबंध हो गया है । इन सबके समानान्तर ग्राम-संस्कृति भी जीवित है – अखाड़े और संगीत मंडलियों के रूप में ।

इस प्रकार कुछ विशिष्ट एवं सामान्य चरित्रों के माध्यम से धामपुर गाँव, बनारस नगर और कलकत्ता महानगरी का चित्रण प्रस्तुत करती है कथाकृति 'तितली' ।

<u>विराम । 1937 ई0 ।</u>

प्रस्तुत कथाकृति लखनऊ विशेष को कथाक्षेत्र बनाकर लखनऊ समाज

।176।- तितली : जयशंकर प्रसाद । पृष्ठ 346 ।
।177।- तितली : जयशंकर प्रसाद । पृष्ठ 377 ।

के विशेष वर्ग--बैरिस्टर, जज, ताल्लुकेदार और ज़मींदार के जीवन चित्र प्रस्तुत करती है । कथावस्तु का केन्द्र मुख्यतः तीन परिवार हैं--एक परिवार है बैरिस्टर राधारमण, उनकी पत्नी राजेश्वरी और उनकी पुत्री मनोरमा का, दूसरा परिवार है सर राम प्रसाद जज और उनकी पुत्री कुसुमलता का, तीसरा परिवार है ताल्लुकेदार राजा प्रकाशेन्द्र सिंह और उनकी पत्नी मायावती का । इन तीनों परिवार के बीच हैं मिस ट्रेविलियन । ये सभी लखनऊ में रह रहे हैं । लखनऊ के जन साधारण का जीवन यहाँ प्रवेश नहीं पा सका है ।

बाबू राधारमण के पितामह लखनऊ के पुराने निवासी थे और लखनऊ के नवाबों के यहाँ 'अस्तबल के मुंशी' थे । उनकी ऊपरी आमदनी बहुत थी । अतः खुले हाथ खर्च करना उनकी आदत बन गई थी । काफी पैसा तो 'शराब-कबाब' में ही उड़ता रहता था । उनके पुत्र राममोहन को 'शेरो शायरी' का शौक था । वे अशआर कहते और मुशायरों में जाते रहते थे । इस समय तक लखनऊ, नवाबों के पतन का संकेत देने लगी थी । 'नवाब वाजिद अली शाह की विलास प्रियता सीमा का उल्लंघन कर गई थी । बारहदरी और कैसरबाग हूर-ओ-गिल्मा के क्रीड़ा स्थल हो रहे थे । - - - - - - - क्या राजा, क्या साधारण व्यक्ति सभी विलास में डूबे हुए थे ।'[178] अन्त में 1854 में लखनऊ की नवाबी समाप्त हो गई और नवाब वाजिद अलीशाह कलकत्ते को 'मटियाबुर्ज' में रहने के लिए भेज दिये गए ।

जिस दिन नवाब वाजिद अलीशाह लखनऊ से विदा हुए उस दिन लखनऊ वासियों के घर चूल्हा नहीं जला । मुंशी राम मोहन के घर में भी चूल्हा नहीं जलाया गया । मुंशी राममोहन के पिता ने समझाया कि 'शायरी वायरी' तथा 'गुलछर्रे' उड़ाने का वक्त गया । अतः 'फ़िरंगियों की ज़बान पढ़ो और अगर इस वक्त कुछ भी पढ़ जाओगे तो तुम्हें ये लोग बड़े आदर से सरकारी नौकरी देंगे ।'[179]

{178}- विषाद : प्रताप नारायण श्रीवास्तव { पृष्ठ 29 }
{179}- विषाद : प्रताप नारायण श्रीवास्तव { पृष्ठ 29 }

अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद लखनऊ में जो भी थोड़े पढ़े लिखे व्यक्ति मिले वे सरकारी नौकरी पर बहाल कर दिये गए। मुंशी राममोहन भी कानूनगो नियुक्त हुए। उस समय भी बिना खुशामद के नौकरी में 'तरक्की' पाना असम्भव था। मुंशी जी काम तो अपना सुचारु रूप से करते थे पर किसी की परवाह नहीं करते थे अतः वह शीघ्र पदोन्नति न पा सके।

मुंशी राममोहन के पुत्र राधारमण के समय तक यद्यपि लखनऊ बहुत बदल चुका था तो भी सामाजिक मान्यताओं में विशेष अन्तर नहीं आया था। राधारमण ने जब बी०ए० पास करके वकालत पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड जाना चाहा तो 'माता-पिता की अनिच्छा और जाति-पाँति का डर' बाधा बन कर सामने आ खड़ा हुआ। माता-पिता ने इस शर्त पर इंग्लैण्ड जाने की अनुमति दे दी कि वह विवाह करने के पश्चात ही इंग्लैण्ड जा सकेंगे। माता-पिता का यह विचार था कि सम्भव है नव वधू का आकर्षण उसे विलायत जाने से रोक ले और यदि वे इंग्लैण्ड जाते भी हैं तो विवाह आदि में विघ्न बाधा आने का प्रश्न नहीं रहेगा।

लखनऊ में तब साधारण घरों में विदेशी-वेश प्रचलित नहीं हुआ था। अतः जब राधारमण इंग्लैण्ड से दो वर्ष बाद वापस आते हैं तो उनकी विदेशी वेश-भूषा को देखकर उन्हें 'साहब' समझ कर मुहल्ले के लड़के उनकी गाड़ी को चारों ओर घेर कर खड़े हो जाते हैं।

उस समय लखनऊ में वकीलों की बहुतायत नहीं थी। साधारणतया थोड़ी अंग्रेजी पढ़ कर अंग्रेजी की 'प्रवेशिका परीक्षा' पास कर अनेक लोग वकालत कर रहे थे। उनके बीच 'बैरिस्टर' और 'पासशुदा वकील' 'वे गुठली के मेवे' हो रहे थे। बाबू राधारमण इस समय लखनऊ के 'सबसे बड़े सुविख्यात' बैरिस्टर हैं। उनकी मासिक आय बीस-पच्चीस हजार रुपये हैं।

उच्च वर्ग की स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार है। बैरिस्टर राधारमण की पुत्री 'आइसाबेला थावर्न कालेज' में बी०ए० में पढ़ती है। रहन-सहन उसका आधा भारतीय आधा विलायती है — पिता को 'पापा'

कहती है और माँ को 'अम्मा' । ये बड़े घरों की लड़कियाँ क्लब में टेनिस खेलती हैं — बैरिस्टर राधारमण की लड़की मनोरमा और जस्टिस राम प्रसाद की लड़की कुसुमलता ऐसे ही और सब । क्लब में खेलने जाते समय इनका परिधान होता है साड़ी के साथ पैर में टेनिस के जूते और हाथ में रैकेट ।

नवयुवकों में विवाह और पत्नी को लेकर नई अवधारणा स्थान पा रही है । इस युग का पढ़ा लिखा नवयुवक हिन्दू रमणी का पति-प्रेम नहीं चाहता ।- - - - - क्योंकि उसमें दास्य भाव मिला होता है है ।"[180] मनोरमा का पति राजेन्द्र जो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी से एम० ए० फर्स्ट क्लास पास करके स्कालरशिप पर उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड जा रहा है, कहता है, "हिन्दू रमणी अपने पति से बाध्य होकर प्रेम करती है, क्योंकि वह जानती है कि इस संसार में यदि वह जीवित रहना चाहती है, तो उसे एक ही व्यक्ति से प्रेम करना पड़ेगा । उसके इच्छानुसार चलना पड़ेगा क्योंकि वह हर तरह से उसी व्यक्ति पर आश्रित है ।"[181] वह चाहता है 'वह प्रेम, जो अपने आप उत्पन्न हो जिसमें दास्य या आश्रित भाव न हो, बिल्कुल स्वतंत्र हो । जिसमें पुरुषापन न हो बल्कि जीवन हो । जिसमें परवशता न हो, मित्रत्व हो ।'[182]

उच्च वर्ग के समाज में काफी कुछ पाश्चात्य ढंग पर स्वतंत्रता है । लड़कियाँ सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में भाग लेती हैं । जस्टिस सर रामप्रसाद की पुत्री कुसुमलता सौन्दर्य प्रतियोगिता में प्रथम आई है । इतनी स्वतंत्रता और पाश्चात्य प्रभाव के बावजूद घर - आँगन में पारम्परिक भारतीय जीवन पद्धति चल रही है । जस्टिस रामप्रसाद को अपनी कन्या कुसुमलता का विवाह सात वर्ष की अवस्था में करना पड़ा था क्योंकि मृत्यु शैय्या पर पड़ी पत्नी की अन्तिम आकांक्षा यही थी । जिसका उनका दुष्परिणाम भी भुगतना पड़ा था — जल्दी ही कुसुम विधवा हो गई थी ।

(180)- विदा : प्रताप नारायण श्रीवास्तव (पृष्ठ 66)
(181)- विदा : प्रताप नारायण श्रीवास्तव (पृष्ठ 66)
(182)- विदा : प्रताप नारायण श्रीवास्तव (पृष्ठ 66)

विधवा के जीवन को लेकर स्त्री-पुरुषों में मत वैभिन्न्य है । स्त्रियाँ कहती हैं 'हिन्दू विधवा हिन्दू धर्म का विराट तप है ।' पुरुष कहते हैं 'तपस्या कोई रुचिकर पदार्थ नहीं । पापों का भार बढ़ाने के अतिरिक्त और क्या समाज का कल्याण हमारी विधवाएं करती हैं ।'[183]

विधवा विवाह को लेकर समाज में भी दो प्रतिक्रियायें थीं । सर रामप्रसाद ने अपनी बाल विधवा पुत्री कुसुमलता का पुनर्विवाह करना निश्चित किया है । 'इस विवाह को लेकर समाज में एक आन्दोलन शुरू हो गया । विरोधियों के दल के दल सर रामप्रसाद के पास आते । पर कुछ लोगों ने इसे समयानुकूल समझ कर इसकी सराहना भी की । इस विवाह में सम्बन्धी तो कम सम्मिलित हुए पर मित्रों का पूरा सहयोग मिला । हाँ, शादी का वृहद् आयोजन देखकर सामान्य जन दाँतो तले उंगली दबाते और कहते, "बड़े घर की बड़ी बातें हैं ।"[184]

रूपगढ़ के ताल्लुकेदार राजा प्रकाशेन्द्र सिंह का 'रूपगढ़ हाउस' लखनऊ में अपने तरह की अकेली कोठी है । जो गोमती नदी के किनारे दस एकड़ जमीन पर बनी हुई है । जिसमें राजा प्रकाशेन्द्र अपनी पत्नी मायावती के साथ निवास करते हैं । मायावती को अपने पिता के जमींदार सूर्येन्द्र किशोर से 'पश्चिमीय आचार की शिक्षा भली-भाँति मिली हुई है। पर उनकी माता ने हिन्दू धर्म के पवित्र रूप को जीवित रखने के लिए मायावती का विवाह तेरह वर्ष की आयु में कर दिया था । सारे उच्चवर्गीय समाज में दोहरी जीवन पद्धति चल रही है । स्त्रियाँ परम्परा पोषक हैं और पुरुष आधुनिका । राधारमण की पत्नी राजेश्वरी विलायत यात्रा को बहुत अच्छा नहीं समझतीं । उनका विचार है कि यदि यात्रा ही करनी है तो तीर्थ यात्रा की जाय, जिसमें परलोक सुधरे । विलायत में 'परलोक सुधरने की कौन कहे बिगड़ भले ही जाय ।' पर राधारमण के विचार में 'विलायत से मनुष्य के दिमाग का विकास बहुत होता है और दृष्टिकोण बहुत ऊँचा हो जाता है । - - - - - हाँ यह सच है कि परलोक नहीं

---

§183§- विजय : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 104 §
§184§- विजय : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 314 §

सुधरता परन्तु यह लोक तो अवश्य सुधर जाता है ।'[185]

माल रोड के दाहिनी मोड़ पर मिस ट्रैवी लियन का बंगला है जिनकी गणना लखनऊ के ऐंग्लो इंडियन समाज के प्रमुख व्यक्तियों में है । सामाजिक कार्यकर्त्री हैं । लखनऊ के 'इंडियन योरोपियन वीमेन्स असोसियेशन' की जन्मदात्री हैं । इसके अतिरिक्त उन्होंने स्त्रियों का एक क्लब भी स्थापित कर रखा है । इस क्लब की सदस्या अंग्रेज और भारतीय स्त्रियाँ दोनो हैं — ध्येय है दोनों समाज की स्त्रियाँ एक स्थान पर एकत्र होकर परस्पर विचारों का विनिमय तथा भारतीय स्त्रियों के कुसंस्कार को मिटाना । केवल धनी और शिक्षित स्त्रियाँ ही इस क्लब की सदस्या हो सकती हैं । मिस ट्रैवी लियन अविवाहित हैं । वे कहती हैं, "When enough milk can be had in Bazar, where is the necessity to keep a cow§ जब दूध बाजार में काफी मिल सकता है तो गाय बाँधने की क्या जरूरत § ?" उनके विचार में 'विवाह, यह गुलामी की मुहर स्वतंत्रता की तिलांजलि है और स्वाधीनता की हत्या ।'[186]

मिस ट्रैवी लियन का एक और रूप है और जो उनकी वास्तविकता है । इस रूप में वह सभी को बेवकूफ बनाए हैं । वह राजा प्रकाशेन्द्र, जो उसका प्रेमी भी है, और उसकी पत्नी जो क्लब की प्रेसीडेन्ट हैं, दोनों को 'काठ का उल्लू' कहती है । वह कहती है, "दोनों मेरे कौशल के जाल में फँसे हैं । दोनो मेरे ट्रेजरर §खजांची§ हैं । एक अपनी स्त्री के ज़ेवर चुराकर भेंट चढ़ाता है तो दूसरी अपनी माँ बाप की सम्पत्ति की आय मुझे अर्पण करती है ।"[187] ट्रैवी लियन का एक 'गुप्त दल' भी है जिसमें अनेक ताल्लुकेदार 'पुष्प का मधुपान करने के लिए' हजारों रुपये देते रहते हैं । इन 'पुष्पों' का प्रबंध वह अपने कौशल से करती है । उधर उसके सक्रिय सम्मोहक प्रयास सुगमता से पुरुषों को फँसा लेते हैं । मिस ट्रैवी लियम का

---

§185§- विषय : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 174 §
§186§- विषय : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 109 §
§187§- विषय : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 155 §

शयनकक्ष 'रति रानी का क्रीड़ाभवन' है । उसकी सजावट और उसका शृंगार बड़े बड़े ऐयाश राजाओं के केलि भवन को लज्जित करता था । उसका वायु मण्डल ही कामोद्दीपक था ।'[188] जहाँ उनके गुप्त दल के उद्देश्य का क्रियान्वन होता है । यह लखनऊ की उच्च वर्गीय सभ्यता के आवरण के नीचे का सत्य है

सारी आधुनिकता के बावजूद भी इस समाज में विवाह में दहेज की प्रथा है । मनोरमा की शादी में बैरिस्टर साहब ने राजेन्द्र प्रसाद §दामाद§ को पंद्रह हजार नकद दिया था । बंगाल के ताल्लुकेदार की पुत्री मायावती को माँ की तरफ से 'सोनपुर' नामक एक गाँव कन्यादान में दिया गया था और साथ में दी गई थी एक दासी 'रेणुका' । आधुनिकता, रहन-सहन और शिष्टाचार तक ही ह विचार में वही परम्परा सेवन । §असफल, असन्तुष्ट§ विवाहितों के लिए तलाक या मुक्ति की व्यवस्था व्यवहृत नहीं है विशेष रूप से स्त्रियों के सन्दर्भ में । समाज कहता है 'सब्र करो, पति को सन्मार्ग पर लाओ, पति की निन्दा न करा, वह कलुषित है ।'[189]

जब तब भोज देना इन बड़े आदमियों का मनोरंजन है--कभी कभी अकारण और कभी सकारण §अप्रत्यक्ष§ सर रामप्रसाद ने लखनऊ के गण्य-मान्य व्यक्तियों को रात्रि भोज पर आमंत्रित किया है । बटलर रोड पर उनकी कोठी रंग बिरंगे 'विद्युद्दीपकों' से जगमगा रही है । बंगले के बाहर बाग में भोजन का प्रबंध है । पुलिस बैंड की मधुर ध्वनि वातावरण में गूंज रही है । जगह-जगह कुर्सियाँ और मेजें लगी हुई हैं । द्वार पर सर राम प्रसाद एक मंद मुस्कान के साथ उनका स्वागत कर रहे हैं ।

लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्यार्थी समुदाय के लिए परीक्षाफल एक सनसनी पूर्ण उत्तेजना है । परीक्षाफल देखने के लिए विद्यार्थी बादशाह बाग की ओर भागे चले जा रहे हैं । क्योंकि शाम के पहले स्थानीय समाचार

---

§188§- विषय : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 195 §
§189§- विषय : प्रताप नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 228 §

पत्र में कोई सूचना मिलने की आशा नहीं है । परीक्षाफल रजिस्ट्रार आफिस में लगा है । जो उत्तीर्ण हो गए हैं वे उत्साह के साथ वापस लौट लेते हैं । जिनका नाम नहीं है वे बार बार अपना नाम ढूढ़ते रहते हैं जब तक कि पीछे से ढकेलता हुआ कोई उत्सुक विद्यार्थी उन्हें एक ओर न हटा देता ।

लखनऊ के ये धनाढ्य लोग भोज, उपहार आदि का अवसर ढूढ़ते रहते हं । सर रामप्रसाद, बी०ए० की परीक्षा में क्रमशः प्रथम,प्रथम तथा प्रथम, द्वितीय आने पर राधारमण की पुत्री मनोरमा तथा अपनी पुत्री कुसुमलता को मोतियों की माला उपहार में देते हं और दोनों दामादों--राजेन्द्र प्रसाद और डा० आनन्दी प्रसाद को हीरे की अँगूठियाँ किसी शाम को अपने तथा मित्र-परिवार के साथ सिनेमा देखने जाते हैं । गर्मी की दोपहर में ये लोग बिजली के पंखे और खस की टट्टियों से शीतल किये गए कमरों में विश्राम करते हं । घर में खाना बनाने को रसोइये हैं, अन्य काम करने के लिए नौकर और चपरासी हैं । आने जाने के लिए मोटरें हं । बैरिस्टर साहब के पास 'न्यू माडेल ब्यूक' मोटर है । एक बात विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि समाज का पुरुष वर्ग तथा उनके पुत्र-पुत्रियाँ पाश्चात्य सभ्यता को अपनाए हुए हैं पर घर की स्त्रियाँ चाहे बैरिस्टर राधारमण की पत्नी राजेश्वरी हों या रानी मायावती की माँ किशोर केसरी, वे रूढ़िवादी न होकर भी भारतीय हिन्दू परम्परा की पोषक हैं ।

इसी लखनऊ में रह रहे डा० आनन्दी प्रसाद का अपने माता पिता का परिवार परम्परा सेवी तो था ही किसी सीमा तक रूढ़िवादी भी था । उनके पिता की उन्नाव जिले में थोड़ी सी जमींदारी थी । उनकी अपने तथा आस-पास के गाँव में अच्छी धाक थी । उनकी चौपाल में सदैव किसानों का जमघट लगा रहता । आनन्दी प्रसाद अपने पिता के इकलौते पुत्र थे । उन्हें पहले संस्कृत - साहित्य, व्याकरण तथा वेदान्त का अध्ययन कराया गया था । तदुपरान्त अंग्रेजी शिक्षा

प्रारम्भ की गई। उच्च अध्ययन उन्होंने इलाहाबाद से किया, वहीं फिलासफी में एम०ए० किया और छात्रवृत्ति पर इंग्लैण्ड गए - पिता माता की इच्छा के विरुध्द। चूँकि आनन्दी प्रसाद का नवयौवन गाँव में बीता था अतः नई रोशनी के होते हुए भी वह अपना स्वभाव न बदल सके थे। वह किसी बड़े-बूढ़े के सामने अपनी पत्नी से बात करने में संकोच करते हैं। अतः जब सर रामप्रसाद ने कुसुमलता को बुलवाया तो डा० आनन्दी प्रसाद उठकर चले जाते हैं।

दार्जलिंग बंगाल के धनी समुदाय का गर्मी के दिनों का तीर्थ है। अन्य तीर्थ स्थलों में भिखारियों का जमघट देखने में आता है। परन्तु यहाँ फैशनेबुल भिखारी हैं जो अनेकानेक कौशल से कर्ज लेने का प्रबंध रचते रहते हैं। यहाँ गवर्नमेन्ट हाउस के पास राजा प्रकाशेन्द्र सिंह के श्वसुर भूपेन्द्र किशोर की 'आलीशान अट्टालिका' है, नाम है 'हूरपिया महल' जिसका वैभव गवर्नमेन्ट हाउस से किसी प्रकार कम नहीं है। महल का तालाब एक पहाड़ी सोते से जुड़ा है अतः उसमें सदैव पानी भरा रहता है, जिसमें नीले, लाल रंग के कमल खिले रहते हैं।

ताल्लुकेदार और राजाओं के लिए विलायत जाना एक आम बात है। भूपेन्द्र किशोर सपरिवार इंग्लैण्ड जाने को सोचते हैं पर रानी किशोर केसरी को थोड़ी आपत्ति होती है। वे कहती हैं, "चलने में तो कोई आपत्ति नहीं, केवल वापस आकर प्रायश्चित करना पड़ेगा।" क्योंकि वह 'संसार को लेकर बैठी' हैं अतः समाज के अनुशासन मानने होंगे।

इन्हीं राजघरानों के नवयुवकों के विचार एकदम भिन्न हैं। राजा प्रकाशेन्द्र अपनी पत्नी मायावती को छोड़कर मिस ट्रैवीलियन के साथ विवाह करना चाह रहा है। उसे दुनिया या समाज का भय नहीं है। वह कहता है, "दुनिया रुपये का नाम है। जहाँ दो चार लम्बी लम्बी दावतें कीं और दस बीस हजार रुपया पानी में डाला कि लोग हमारे तुम्हारे विवाह को आदर्श कहेंगे। जहाँ थोड़े हजार सम्पादकों

को दिये नहीं कि हमारे आदर्श विवाह के चित्रों से समाचार पत्र भर जायेंगे ।"[190]

इस कथन का क्रियान्वयन भी होता है । राजा प्रकाशेन्द्र के आदर्श विवाह के उपलक्ष में 'स्वगढ़ हाउस' के कर्मचारियों में शराब का दौर चल रहा है । खुशामदी अहलकार 'आसफुद्दौला का तो सानी भी था, मगर हुजूर लासानी हैं' जैसी बातें कह कह कर इनाम लूट रहे हैं । कोई कर्मचारी 'बादशाही ढंग से मुजरा 'करता है-उसे हीरे की अंगूठी अता कर दी जाती है । इतना ही नहीं, राजा साहब कहते हैं, "जाओ, खजांची से कहो कि हर एक कर्मचारी को सौ सौ रुपया बाँट दे । कल गाँवों में यह भी मुनादी करा दो कि खूब जश्न करो जिसका सारा खर्च राजा देगा। गाँव-गाँव में तवायफ नचाई जाय और सरकारी कोठार से सबको खाने-पीने के लिए रसद गाँव-गाँव भेज दी जाय ।"[191]

लखनऊ के ईसाई समाज के अतिरिक्त सरकारी अफसरों में भी क्रिसमस का उत्सव प्रचलित है — पाश्चात्य रहन-सहन, उच्च स्तरीय रहन-सहन का पर्याय बन गया है । लखनऊ के डिप्टी कमिश्नर ने क्रिसमस के उपलक्ष में 'ऐट होम' दिया है जिसमें लखनऊ के गण्यमान्य व्यक्ति राजे महराजे आमंत्रित हैं ।

लखनऊ के इन उच्च वर्गीय लोगों में परिवार के अन्दर शुद्ध परम्परा वादी जीवन देखने को मिलता है और बाहर पाश्चात्य शैली का आधुनिक रहन-सहन । विवाह, स्त्री-धर्म आदि के संदर्भ में अपेक्षाकृत इनका दृष्टि उदार है । मध्य, निम्न मध्य वर्ग के लोग इनके जीवन पद्धति को 'बड़े लोगों की बड़ी बातें' मान कर §अपवाद स्वरूप§ देखते हैं । 'विजय' में चित्रित लखनऊ इन्हीं 'बड़े लोगों' का लखनऊ है । जनसाधारण उपेक्षित हैं यहाँ, अतः नगर के समग्र रूप का चित्र भी प्रच्छन्न है ।

---

§190§- विजय : प्रकाश नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 57। §

§191§- विजय : प्रकाश नारायण श्रीवास्तव § पृष्ठ 614 §

तीन वर्ष { 1936 ई0 }

'तीन वर्ष' में कृतिकार ने इलाहाबाद और कानपुर की पृष्ठभूमि पर कथा का विस्तार किया है ।

इलाहाबाद का यूनीवर्सिटी एरिया - मुहल्ला कटरा, कर्नल गंज आदि के दो महीने मई, जून में बिल्कुल उजाड़ रहता है । जुलाई के प्रथम सप्ताह में फिर से उस स्थान पर कुछ कुछ जीवन का प्रवेश होने लगता है । दुकानदारों के चेहरे पर उत्साह और रौनक दिखाई पड़ने लगती है, सड़कों पर हँसी के ठहाके उठने लगते हैं । जुलाई के दूसरे हफ्ते में विद्यार्थियों की जेबें रुपयों से भरी रहती हैं, वे मुक्त-हस्त खर्च कर रहे होते हैं । इन विद्यार्थियों की भीड़ में से कुछ विद्यार्थी पढ़ाई की बातें कर रहे होते हैं, कुछ फुटबाल मैच की और कुछ रात में होने वाली म्यूजिक पार्टी के प्रबंध की बातें करते होते हैं । यूनीवर्सिटी रोड की दुकान पर बैठ कर वे चाय या शरबत पीते हैं ।

यूनीवर्सिटी की बी0ए0 कक्षा में सामान्य छात्रों के अतिरिक्त दो अन्य भिन्न वर्गों के छात्र पढ़ते हैं । एक तो, ग्रामीण या कस्बाई परिवेश से आने वाले सीधे सादे मेधावी लड़के और दूसरे, जमींदार, ताल्लुकेदार या सरकारी अफसरों के लड़के, लड़कियाँ । रमेश झाँसी से इन्टरमीडिएट फर्स्ट पोजीशन में पास करके इलाहाबाद विश्वविद्यालय की बी0ए0 कक्षा का छात्र है । वह यूनीवर्सिटी में अपनी कक्षा में बन्द गले का गबरून का काफी पुराना कोट और घुटनों से थोड़ी नीची धोती पहन कर आता है । उसकी टोपी के नीचे से एक लम्बी सी चुटिया बाहर निकली रहती है । वह झाँसी के एक साधारण मास्टर का पुत्र है । दूसरे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं कुँवर अजित कुमार सिंह जो धारीदार सिल्क का सूट, कलाई में सोने की रिस्टवाच और उँगलियों में हीरे की अँगूठी पहन कर यूनीवर्सिटी आते हैं ।

रमेश चन्द्र श्रीवास्तव 'हिन्दू बोर्डिंग' में रहता है । उसके कमरे में उसकी चारपाई के नीचे एक टूटा हुआ ट्रंक रखा है, मेज पर किताब,

पेन्सिल, कलम तथा एक टाइम पीस रखी है । ट्रंक के पास एक 'खड़ाउनुमा चप्पल या चप्पलनुमा खड़ाऊ' § तल्ला लकड़ी का, बन्द किरमिच के § रखी है । कमरे में स्टोव, कटोरदान तथा घी की हँडिया आदि अन्य सामान भी है । आलमारी पर चन्दनयुती रामचन्द्र जी की तस्वीर, रामचरित-मानस का गुटका, संकट मोचन और हनुमान चालीसा और पूजा का सामान है ।

अजित कुमार सिंह 'जार्ज टाउन' में एक बंगला लेकर रहते हैं । उनके कमरे में कमरे की नाप की दरी बिछी है । कमरे के चारो कोनों पर लकड़ी की ऊँची तिपाइयाँ पड़ी हैं जिन पर लखनऊ के बने मिटटी के फल, बनारस के लकड़ी के काम के खिलौने और जयपुर के हाथी दाँत के खिलौने सजे हैं । दरवाजों पर 'जापानी करटेन्स' पड़े हैं । दरवाजों के ऊपर हिरन के सींग, और दीवारों पर बहुमूल्य तैलचित्र सजे हैं । कमरे के बीच में गद्देदार कुर्सियाँ और बीच में संगमरमर की मेंज पर चाँदी का सिगरेट का डब्बा, दियासलाई और चीनी का ऐश ट्रे रखा है । उनका खानसामा गोआनीज़ ईसाई है । वह शाम को घर पर ग्रामोफोन सुनते हैं या पैलेस में 'बाइस्कोप' देखते हैं । अजित कुमार जैसे लोगों के परिचय क्षेत्र में ताल्लुकेदार, जागीरदार, राजा और राजकुमार आदि आते हैं ।

शहर के इसी तबके में ही आती है प्रभा अध्यक्ष उसे स्वतंत्र सामाजिक परिवेश मिला है, सहपाठियों से खुल कर मिलती है । प्रभा टेनिस खेलती है, पुरुष मित्रों के साथ ब्रिज खेलती है ।

रमेश चन्द्र और अजित, प्रभा आदि के वाह्य परिवेश तथा जीवन स्तर में जितना अन्तर है, मानसिकता में उससे कहीं अधिक अन्तर है । रमेश और प्रभा एक दूसरे को प्रेम करते हैं । रमेश के व्दारा विवाह प्रस्ताव पर प्रभा कहती है, "- - - - - - तुम जानते ही हो कि मैं आलीशान बंगले में रह रही हूँ, तुम जानते ही हो पापा के करीब बारह-तेरह नौकर हैं, पाँच-छः कारें हैं । मेरी आवश्यकतायें बन चुकी हैं, मुझे एक छोटा सा बंगला चाहिए, चार-छः नौकर चाहिए, एक कार चाहिए । इतना रुपया और चाहिए जिससे मैं अपने मित्रों को यदि हफ्ते में एक दिन नहीं तो महीने

में एक दिन अच्छी सी दावत दे सकूँ। इन आवश्यकताओं को पूरी करने में एक हजार रुपये का खर्च है। समझे रमेश- - -।"[192] शहर का यह वर्ग बड़ा व्यावहारिक और यथार्थवादी है, भावुकता उसके लिए व्यर्थ की वस्तु है।

कानपुर के संदर्भ में चित्रण एक भिन्न परिस्थिति को लेकर चलता है। कानपुर रेलवे स्टेशन के 'रिफ्रेशमेन्ट रूम' में शराब-'व्हिस्की' हर समय मिलती है। यात्री अथवा शहर का कोई भी व्यक्ति वहाँ जाकर पी सकता है। रमेश शहर से वहाँ प्रातःकाल ही पीने के लिए पहुँच जाता है। यहाँ पुरुष वर्ग में गम गलत करने के लिए और दिलबहलाव के लिए दो साधन हैं - सुरा और सुन्दरी। यह सुन्दरी वेश्या भी हो सकती है या बहला फुसला कर लाई गई कोई भी औरत। रेलगाड़ी का एक 'टिकट एक्जामिनर' एक औरत को उसके पति का मित्र बन कर ट्रेन से उतार लेता है और फिर जोर-जबरदस्ती करना चाहता है। उधर रमेश का सहयात्री 'विनोद' कानपुर की 'परमा' नामक वेश्या को प्रेम करने का दम भरता है। वह रेशमी कुर्ता और जरी किनारे की धोती पहन कर, पैर में 'ग्रीशियन पम्प शू' और हाथ में चाँदी की मूठ की बेंत लेकर 'परमा' के यहाँ आया करता है।

अनेक रईस §?§ भी वेश्याओं के यहाँ जाते हैं-उनका शौक है। ठाकुर शेरसिंह §जमींदार§ के पिता एक लाख रुपया नकद छोड़कर मरे थे। ठाकुर साहब लगभग सत्तर हजार रुपया इस शौक के हवाले कर चुके हैं---वे भी परमा के कद्रदान हैं, मुंशी उल्फतराम और लाला नौरतनदास §पहले के अच्छे व्यापारी अब दीवालिया§ उनके इस शौक के साथी हैं।

परमा को प्रेम करने का दम भरने वाले कई हैं, विनोद भी एक है पर परमा कहती है, "मैं विनोद की नहीं हूँ इसके धन की हूँ।"[193] इस वेश्या बाजार में जहाँ परमा' जैसी धन चाहने वाली वेश्यायें हैं वहीं कुछ ऐसी भी हैं जो 'वेश्या होते हुए भी' सहृदय हैं और 'स्त्री होते हुए भी' बुद्धि रखती हैं---'सरोज' ऐसी ही वेश्या है।

इस प्रकार कानपुर के एक विशेष क्षेत्र को लेकर लेखक ने कानपुर का संक्षिप्त सा चित्र प्रस्तुत किया है। इलाहाबाद के चित्रण में लेखक ने

---

§193§- तीन वर्ष : भगवती चरण वर्मा §पृष्ठ 23§

विश्वविद्यालय, विद्यार्थी और विश्वविद्यालय के आस-पास के क्षेत्र को लिया है। इलाहाबाद और कानपुर नगर के समग्र चित्र की अपेक्षा करना प्रस्तुत कथावस्तु के संदर्भ में अप्रासंगिक है।
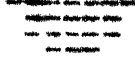
§ग§- प्रेमचन्दोत्तर युग

मुक्ति-पथ § 1950 ई0 §

इलाचन्द्र जोशी की 'मुक्तिपथ' का कथाक्षेत्र 'लखनऊ' है । कथानायक राजीव अपने पूर्व जीवन में क्रान्तिकारी रहा है और अब निरवलम्ब होकर अपने एक दूर के रिश्तेदार उमा प्रसाद के घर लखनऊ में रह कर देखता और विचारता चलता है ।

लखनऊ में रह रहे उमा प्रसाद सक्सेना अंग्रेजी शासन काल में एक उच्च अधिकारी रह चुके हैं और अब कांग्रेसी राज्य में भी ऊँचे पद पर हैं । उनके व्यवहार में एक ऐसी व्यावहारिक सहृदयता है जो सामान्यतया अधिकारी वर्ग में नहीं मिल सकती । वे सम्पन्न हैं— घर में नौकर, नौकरानी, महाराज और महाराजिन हैं, आने जाने के लिए मोटर और घोड़ागाड़ी दोनों है ।

उनके घर में पूरी स्वतंत्रता है । पुत्री प्रमीता, पत्नी कृष्णा जी को अपने अपने ढंग से जीवन जीने की पूरी स्वतंत्रता है । फिर भी, घर में आश्रिता रूप में रह रही विधवा सुनन्दा की, अतिथि राजीव से अधिक बातचीत कृष्णा जी को खटकती है क्योंकि 'सुनन्दा विधवा है और किसी भी भारतीय विधवा के लिए यह अत्यन्त अनुचित है कि वह किसी भी पर पुरुष के साथ एकान्त में बातें करे ।'[1] घर की नौकरानी किसिया दोनों तरफ बातें लगा कर अपना उल्लू सीधा करती रहती है ।

इसी लखनऊ में पहले के स्वतंत्रता सेनानी, अब डेपुटी सेक्रेटरी होकर विजय नामक एक सफल व्यावहारिक व्यक्ति रहते हैं । उनके अपने बंगले के ड्राइंग रूम में नये डिजाइनों का बढ़िया सोफा सेट, शीशे की चादर वाली मेजें, बढ़िया बेंत की शानदार कुर्सियाँ, कलापूर्ण राखदानियों सहित सुन्दर तिपाइयाँ, फर्श पर बहुमूल्य कालीन, आलों पर मिश्र देश के और

---

§1§- मुक्तिपथ : इलाचन्द्र जोशी §पृष्ठ 55§

चीन के फूलदान, हाथी दाँत की बनी छोटी छोटी मूर्तियाँ आदि से सुसज्जित है । इस बंगले के अतिरिक्त उनका मंसूरी में एक बंगला है और पहाड़ पर सेब के बाग भी हैं ।

राजीव अमीनाबाद पार्क में एक बेंच पर बैठा देखता जा रहा है --- दिन के दो बजे भी अखबार बेचने वालों का शोर है । इक्के, ताँगों की खड़खड़ाहट और मोटरों के गर्जन से कान फटे जा रहे हैं । पार्क के अगल बगल के रास्तों में लोग व्यस्त भाव से आ-जा रहे हैं । दुकानों में भीड़ लगी हुई है । कोई बेंच पर सोया हुआ है, कोई आलस्य के साथ अधलेटी मुद्रा में बैठे हुए सामने वाले फुटपाथ पर यों ही देख रहे हैं । कहीं कोई 'लैया करारी' तो कोई 'मजे बादाम के हैं' कहकर लैया और मूंगफली बेच रहे हैं । इसी बीच एक फिटन पर दो सुन्दरी युवतियाँ उधर से गुजरती हैं जो मुस्कुराती हुई निःसंकोच राजीव को देखती जा रही हैं । जिन्हें देखकर राजीव का सर्वांग 'एक उत्कट घृणा और अपरिमित वितृष्णा के भाव से कंटकित' हो उठता है ।

नगर और नगर निवासियों के लिए आजीविका की समस्या राजीव के समय में भी है । अखबारों के वांटेड कालम के अनुसार प्रार्थना पत्र भेजकर, स्वयं मिलकर भी राजीव को कोई काम नहीं मिल सका है । इसके अतिरिक्त नौकरी मिल जाने पर भी अनेक शर्तें हैं जैसे विज्ञापित देय वेतन पर हस्ताक्षर करके आधा ही पैसा स्वीकार करना, कुछ अवधि तक 'अप्रेन्टिस' के रूप में काम करना आदि । अखबार के 'वान्टेड' कालम के अनुसार आवेदन-पत्र भेजने के बाद साबुन के एक बड़े कारखाने के मालिक से मिलने पर, राजीव का यह स्वयं का अनुभव है । अन्त में कहीं नौकरी पा सकने में सफल न होकर राजीव एक फर्नीचर मार्ट में दो रुपया रोज के हिसाब से बढ़ई गीरी करने लगता है § उसने अंडमान में बढ़ई का काम सीखा था §

सड़क पर सवारियों और ठेलों की भीड़ के कारण राजीव फुटपाथ पर चलने लगता है । थोड़ी दूर पर एक भीड़ के पास से आवाज

सुनाई पड़ती है 'पकड़ो साले को। मारो साले को।'[2] पास जाने पर देखता है 'एक सफेद पोश महाशय फटे कपड़े पहने एक लड़के को जेब-कतरा समझ कर पीट रहे थे जबकि जेब किसी की नहीं कटी है।

अन्त में, {कई वर्ष बाद} राजीव दिल्ली से कुछ दूर गाँव में, शरणार्थियों की शरण स्थली पर जाकर रहने को मजबूर होता है, जहाँ पर काफी जमीन बेकार पड़ी है। उस जमीन के विषय में गाँव वालों का यह विश्वास है कि जो व्यक्ति इस जमीन को खोदेगा या हल चलायेगा उसकी मृत्यु हो जायेगी और उसके सारे वंश को विपत्ति उठानी पड़ेगी। सुनन्दा दिन भर शरणार्थियों के बीच रहती है। वह देखती है कि बड़ी मुश्किल से वे लोग 'दो जून' का भोजन जुटा पाते हैं पर हैं वे लोग बड़े साहसी और परिश्रमी। सुनन्दा महिला शरणार्थियों की 'देवी जी' है और उनके बच्चों की 'बुआ जी'। वह वहाँ उनके झगड़े सुलझाती हैं, उन्हें पढ़ना-लिखना, सिलाई-बुनाई आदि सिखाने लगती है।

धीरे धीरे करके उस बेकार भूमि पर 'मुक्ति निकेत' नामक एक संस्था की इमारत खड़ी हो जाती है — संचालिका है सुनन्दा। 'मुक्ति निकेत' के एक कमरे में कुछ लड़कियाँ देशी करघे पर कपड़े बुनती हैं, दूसरे कमरे में कुछ लड़कियाँ चरखा कातती हैं। इसी प्रकार अलग अलग कमरों में अलग-अलग काम होता है — कहीं देशी कागज तैयार होता है, कहीं दस्त-कारी और बिनावट। किसी कमरे में साबुन बनने का काम, किसी में चित्रकारी, किसी में संगीत का अभ्यास होता है। एक अन्य कमरे में अनेकानेक व्यंजन, अचार मुरब्बे बनाने की विधि बताई जाती है, एक स्थान पर बेंत और बांस की कुर्सियाँ डलियाँ और टोकरियाँ तैयार की जाती हैं। एक स्थान पर लड़कियाँ खेल-कूद और व्यायाम का अभ्यास करती हैं। एक अन्य इमारत में छोटे बच्चों से लेकर उच्च कक्षाओं तक स्कूली शिक्षा की व्यवस्था है। पुरुषों की ओर कृषि-कार्य की प्रमुखता है। इधर के संचालक हैं राजीव।

{2}- मुक्ति-पथ : इलाचन्द्र जोशी, : पृष्ठ 155 :

इस स्वायत्त सेवी संस्था की ख्याति समाचार-पत्रों के माध्यम से दिल्ली तक पहुँचती है । दिल्ली के 'वीम्यन्स लिबर्टी लीग' की तरफ से पैन्ट पहने और धूपी चश्मा लगाए एक महिला सुनन्दा जी को आमन्त्रित करने आती हैं । 'लीग' के उद्देश्य बताती हुई उक्त महिला 'रमला गिडवानी' कहती हैं, "हमारी जो बहनें गुलामी की जंजीरों मे जकड़ी हुई हैं उन्हें मुक्ति का पाठ पढ़ाना ही हमारी संस्था का उद्देश्य है । ------ हमारी संस्था प्रतिवर्ष प्रस्ताव पास करती रहती है। सामाजिक या राजनीतिक क्षेत्र में जो अन्याय हमारे स्त्री समाज पर होते रहते हैं उन्हीं के विरोध में भाषण देना, विरोध सूचक या खेद प्रकाशक प्रस्ताव पास करना और उन प्रस्तावों की सूचना अधिक से अधिक पत्रों में छपवाना हमारा काम है ।"[3] दिल्ली में समाज सेवा एक फैशन है और सम्पन्न महिलाओं का 'पास्टाइम §Pastime§ है ।

प्रस्तुत कथाकृति लखनऊ के संक्षिप्त चित्र प्रस्तुत करती है जिसमें भीड़ है, व्यस्तता है, बेरोजगारी से त्रस्त युवक हैं, फिटन पर घूमने वाली निर्लज्ज प्रदर्शन करती सुन्दरी युवतियाँ हैं, जेब कतरे हैं और सफल व्यावहारिक राजकर्मचारी हैं ; परम्परा और आधुनिकता दोनों का यथा समय उपयोग करने वाले उमा प्रसाद जैसे लोगों के परिवार हैं और इन सबका तटस्थ प्रेक्षक है राजीव ।

धरती की साँस §1955 ई0§

भगवती प्रसाद बाजपेयी कृत 'धरती की साँस' का कथानक नायक निरंजन है और कथा क्षेत्र है कानपुर ।

कानपुर, जो एक बड़ा औद्योगिक नगर है, में अनेकों शिक्षित जीविकाहीन व्यक्ति देखे जा सकते हैं । निरंजन प्रकाश एक मध्य-वर्गीय परिवार का जीविका हीन व्यक्ति हैं । उसने अपने इस दुर्दिन में देख लिया है कि यहाँ किसी के प्रति किया गया उपकार भी अर्थहीन हैं

§3§- मुक्ति पथ : इलाचन्द्र जोशी . §पृष्ठ 326§

क्योंकि उसके जिस जिस पर पैसे बनते थे उन्होंने उसे पैसे वापस करना तो दूर उसे पहचानने से भी इनकार कर दिया है । उसकी पत्नी सुमित्रा रद्दी बेंचकर खाने-पीने की व्यवस्था करती है ।

काम की खोज में घूमता हुआ निरंजन देखता है कि इस कानपुर की सड़क पर देहातियों का झुंड चला आ रहा है । कोई अधमैली धोती कमीज पहने सिर पर गांधी टोपी लगाये हाथ में झोला लिए अपनी पत्नी के साथ जा रहा है । औरत सम्भवतः पहली बार शहर आयी है । वह कार का हार्न सुनकर पहले तो ठिठकती है फिर चौंक कर चिल्ला पड़ती है 'अरे बप्पा' और सड़क की दूसरी ओर इतनी जोर से भागती है कि किसी अन्य राहगीर से टकरा जाती है ।

यों यहाँ की सड़कों पर हर समय भीड़ देखी जा सकती है— सड़क पर ठेले, रिक्शे जाते रहते हैं । कभी कभार टक्कर से छोटी-बड़ी दुर्घटनाएं भी होती रहती हैं । रिक्शा ठेला की भिड़न्त होने पर दोनों चालकों में हाथा-पाई तककी नौबत आ जाती है । सड़क पर ही भीड़ इकट्ठी हो जाती है और बीच-बचाव होते ही फिर आने जाने वाले सामान्य रूप से आने जाने लगते हैं । सड़क पर कोई भैंस लिए चला आ रहा है । कभी अचानक बस खड़ी हो जाती है तो पीछे रिक्शों की लम्बी लाइन लग जाती है । कहीं से आरा मशीन चलने की आवाज आती है, कहीं कहीं आटा चक्की की और कहीं ढलाई मशीन की ।

कुलियों और मजदूरों के मुहल्ले में आये दिन कोई न कोई शोर-गुल उठता रहता है । अभी उस दिन मुहल्ले की कोई औरत भाग गई थी । पीछे से उसके आदमी ने 'थप्पड़ घूंसो से उसका खूब सत्कार' किया । ऐसे अवसर पर फुटपाथों पर सोये हुये लोग बीच-बचाव करने के लिए दौड़ पड़ते हैं । 'बड़े बाबू' अपनी कोठी से ऐसी आवाजें आये दिन सुनते रहते हैं ।

कानपुर में अनेकों उद्योगपति रहते हैं । बड़े बाबू पंडित सुखकुमार का कलकत्ता में कार-बार चलता है और यहाँ भी 'साझेदारी में'

एक मिल है, बिरहाना रोड पर उनकी 'कलकत्ता ज्वैलरी' नाम की एक दुकान है । बड़े बाबू के बैठक कमरे में खस की टट्टियाँ लगी हुई हैं । कमरे में एक तख्त पड़ा हुआ है जिस पर गद्दा और सफेद 'चदरा' बिछा हुआ है । उपर मसनद और दो गाव तकिये भी पड़े हुए हैं । एक ओर एक 'टेबिल' पर टाइपराइटर रखा हुआ है । भीतरी द्वार के ठीक उपर विष्णु भगवान का एक चित्र टंगा है और गद्दी के ठीक उपर सेंदुर से लिखा स्वस्तिक चिन्ह' ।

बड़े बाबू अपने कारबार तथा पारिवारिक व्यवस्था को लेकर व्यस्त रहते हैं और उनकी पत्नी धार्मिक और पारिवारिक अनुष्ठानों को लेकर । कभी उनके घर आयोध्या या काशी से कथावाचक आते हैं तो उनके ठहरने, सेवा की व्यवस्था करनी होती है । कभी कोई ज्योतिषी महाराज या ब्रह्मचारी साधु सन्यासी आ जाते हैं । पुत्र जन्म, मुंडन-छेदन या विवाह होता तब तो अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन की रास-मंडलियाँ आ जातीं । हर एकादशी को साधु वैरागियों को फल-मिठाइयाँ बाँटी जातीं और शिवरात्रि को कम्बल वितरित होता । रामनवमी, जन्माष्टमी को हलुआ-पूड़ी अथवा लड्डू बाँटे जाते । ये सारे आयोजन इतने विधि-विधान से होते कि घर में रात-दिन उसकी चर्चा होती रहती । हाँ, इन मांगलिक कार्यों में घर की लड़की जिसकी एक आँख 'शीतला के प्रकोप से' जाती रही थी, सामने नहीं आती — अपशकुन होता है ।

पैसे की प्रतिष्ठा सब कहीं है गाँव हो या शहर । फिर औद्योगिक नगर में तो लक्ष्मी की ही प्रमुख भूमिका है । स्कूल-कालेज में भी सम्पन्न लोगों की स्थिति की विशेष मान्यता है । उद्योगपति के घर की अविवाहित लड़की शोभना स्थानीय गर्ल्स स्कूल में अध्यापिका है । वह अपने कालेज में सर्वप्रिय है, प्रिन्सिपल भी उसे विशेष रूप से मानती हैं । शोभना स्वयं जानती है कि यदि वह इतना समय §अविवाहित होने के कारण§ कालेज को न दे पाती और पैसे से खाली होती तो उसका यह मान न होता, न ही इतनी प्रशंसा मिलती । उसकी सम्पत्त 'श्री समृद्धि' उसकी प्रतिष्ठा का कारण है । उसके पास अपनी कार है जबकि प्रिंसिपल के पास नहीं है।

यहाँ की अनेकानेक मिलों की तरह 'जयहिन्द मिल्स' का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है । मिल के चारों ओर ऊँची ऊँची दीवार है, जिस पर काँच के टुकड़े गड़े हुये हैं । मिल में दो लोहे के फाटक हैं - एक तो विशिष्ट व्यक्तियों के लिए या ट्रक आदि के लिए खुलता है, दूसरा सार्वजनिक उपयोग का फाटक है । यह मिल रात दिन चालू रहती है, इसमें तीन शिफ्टों में काम होता है ।

मिल के मालिक 'सेठ जी' वेश-भूषा में प्राचीन होते हुए भी 'धनोपार्जन के सम्बन्ध में नवीन से नवीन नुस्खों का प्रयोग करने में सर्वथा आधुनिक'[4] हैं । वे नये आदमियों को रखना पसन्द करते हैं कि एक तो उनको वेतन कम देना पड़ता है दूसरे उन्हें डाँट में रखकर और अलग कर देने का भय दिखाकर उनसे अधिक काम लेते जाने की सुविधा रहती है ।

मिल के अन्दरूनी मामले अत्यन्त गोपनीय रखे जाते हैं । सेठ रामनाथ कहते हैं, "हमारे यहाँ की छोटी से छोटी बात का बड़ा मूल्य है । हम अपने सगे साले को भी यह नहीं बतलाते कि सारे कर्मचारियों को हमें महीने में कितनी तनख्वाह देनी पड़ती है ।- - - - - - - हम अपने यहाँ गुप्तचर भी रखते हैं जो सभी उच्च कार्यकर्ताओं का भेद लेते रहते हैं ।- - - व्यवसाय के लिए इन सब बातों की बड़ी जरूरत हुआ करती है ।"[5]

मिल में सेठ का अपना एक आफिस कमरा है, साथ एक अत्याधुनिक ड्राइंग रूम है । जो नये सोफा सेट तथा संगमरमर की रौमन मूर्तियों और कलात्मक चित्रों से सुसज्जित है ।

प्रत्येक प्रतिष्ठानों की भाँति मिल में भी कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो मालिक और मैनेजर की चापलूसी करके अपना उल्लू सीधा किया करते हैं । 'जयहिन्द मिल्स' के किशोरी लाल, मिल मालिक और मैनेजर को कान किला कर प्रसन्न किये रहते हैं । मालिक या मैनेजर जिस कर्मचारी

{4}- धरती की साँस : भगवती प्रसाद वाजपेयी {पृष्ठ 191}
{5}- धरती की साँस : भगवती प्रसाद वाजपेयी {पृष्ठ 193}

को पसन्द नहीं करते उसके पीछे गुंडे लगाकर, उसे डरा-धमका कर उसे नौकरी छोड़ने को बाध्य कर देते हैं और कभी कभी हत्या तक करा देते हैं। जयहिन्द मिल के मालिक के पुत्र प्रभात जो उसी मिल के मैनेजर हैं; निरंजन प्रकाश जो नया नया असिस्टेंट मैनेजर नियुक्त हुआ है, इसी प्रकार डराना धमकाना चाहते हैं क्योंकि उसे वह पसन्द नहीं करते।

मिल के अल्पवैतनिक कर्मचारियों में 'नज़राने' लेने की परम्परा है। प्रत्येक विभाग का मिस्त्री अपने विभाग की नयी नियुक्ति के अवसर पर उक्त व्यक्ति का आधे महीने का वेतन नज़राने में ले लेता है और यदि कोई मज़दूर नज़राना देने को तैयार न हो तो उसके काम में दोष निकाल कर उसे काम देने से इनकार कर उसे अकुशल साबित कर देता है।

मिल में शिफ्ट छूटने के समय शिफ्ट से छूटे मज़दूरों की भीड़ सड़क पर, अपनी कोठरियों और क्वार्टरों की ओर, जाती दिखती है। मिलों के आगे उन लोगों की भी भीड़ कम नहीं है जिनकी ड्यूटी आरम्भ होने जा रही है। इन मज़दूरों में कुछ के परिवार तो यहीं कानपुर शहर में रहते हैं पर अधिकांश के पत्नी बच्चे गाँव में हैं, वे यहाँ शहर में रहकर रोजी कमाते हैं।

अक्सर मिल के निकटवर्ती मुहल्लों में निम्न वर्ग के श्रमजीवी और निम्नमध्यवर्ग के नागरिक मिले-जुले बसे हुए हैं। इनमें से अधिकांश अशिक्षित हैं। कुछ अधकचरे लोग भी हैं जो रामायण का पाठ तो कर लेते हैं पर चौपाई का अर्थ सही नहीं कर सकते हैं। इनमें से बहुतकम के बच्चे 'हाई स्कूल' में पढ़ते हैं।

'कानपुर का मालरोड सवारी से चलने वालों के लिये जितना मनोहूंचक है, पैदल चलने वालों के लिए उतना ही श्रमसाध्य और सतर्कता से भरा हुआ भी है।'[6]

---

§6§- धरती की सांसें : भगवती प्रसाद वाजपेयी § पृष्ठ 127 §

इस प्रकार निरंजन प्रकाश जैसे मध्यवर्गीय, 'बड़े बाबू' जैसे उच्चवर्गीय और श्रमजीवी मजदूरों आदि से युक्त यह कानपुर शहर सम्पन्नता और विपन्नता के दोनों अति बिन्दुओं के चित्र प्रस्तुत करता है, जहाँ एक ओर जीवन-जीविका का संघर्ष है और दूसरी ओर पीढ़ी दर पीढ़ी निश्चिन्त होकर सुख-सुविधा से रहने, खाने, उड़ाने की पूरी सुविधा है ।

अपने खिलौने § 1957 ई0 §

'अपने खिलौने' में लेखक ने दिल्ली की पृष्ठभूमि पर कथावस्तु का विस्तार किया है प्रासंगिक रूप में लखनऊ भी कथाभूमि बनी है ।

जयदेव भारती आई0ए0एस0 भारत सरकार के सेक्रेटरी हैं, दिल्ली में रहते हैं । छोटी सी जिन्दगी मौज मजे में कटती जाय, लड़के-बच्चे ऊँची शिक्षा प्राप्त करके ऊँची नौकरियाँ प्राप्त कर लें, इतना ही वह चाहते हैं और कुछ देखने, जानने की उन्हें चिन्ता नहीं है । पत्नी ज्ञानेश्वरी भारती धर्म-कर्म में रुचि रखने वाली पूर्ण गृहिणी है । पुत्री मीना भारती एम0 ए0 पास कर चुकी है — बढ़िया रेशम पहनती है, उसकी अपनी अलग निजी कार है § यद्यपि सेकेण्ड हैण्ड और पुराने मॉडल की § जिसे वह स्वयं चलाती है।

दिल्ली में इस तबके के लोगों की अपनी बिरादरी है — युवराज वीरेश्वर प्रताप सिंह § यशनगर के § फ्रांस के एम्बेसडर के फर्स्ट सेक्रेटरी हैं जय देव भारती के मित्र के पुत्र हैं । मीना भारती उन्हें ड्राइंगरूम से लेने जाती है । कीमती खादी वस्त्रों में सुसज्जित अशोक गुप्ता, जिसकी कई मिलें हैं, मीना भारती का मित्र है । अशोक गुप्ता कविता भी करता है—

नारी निसर्ग, उत्सर्ग
उल्लास, उच्छ्वास
तम में प्रकाश, पीत कली गुल मेंहदी की ।[7]

वह अपने को किसी कदर कलाकार और साहित्यकार मानता और प्रदर्शित करता है — बड़े आदमी का शौक । अशोक का एक नाटक "सरल-तरल"

---

§7§- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 15 §

स्कूलों में पढ़ाया जाता है । मीना के अनुसार तीन हजार की रिश्वत देकर अशोक गुप्ता ने उसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित करवाया है, जिसे वह स्वयं सहायता के रूप में दान कहता है । अशोक पोलिश कवि और कलाकारों को 'वोल्गा' में चाय पर आमंत्रित करता है ।

अशोक के पिता लाला प्रेमचन्द लाल पूरे बनिया हैं, बेटा भी कम नहीं है -- वह 'कला भारती' संस्था को पन्द्रह हजार का चन्दा देता है क्योंकि कला भारती' को सरकार से पाँच लाख की ग्रान्ट मिलने को है जिसमें से अशोक के हिस्से डेढ़ लाख का मुनाफा आता है । 'कला भारती' के चार लाख के वाद्य यंत्र अशोक की बम्बई में स्थित 'स्वरारोह' नामक वाद्य यन्त्र विक्रेता फर्म से खरीदे जायँगे । पैसे वाले दिल्ली के सामाजिक, सांस्कृतिक और किसी सीमा तक राजनीतिक जीवन पर छाये हुये हैं ।

अशोक गुप्ता की बुआ अन्नपूर्णा बंसल अठारह वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई थीं । वह ससुराल से पचास लाख रुपया नकद लाई थीं जिससे उनके पिता ने एक मिल उनके नाम खरीद दी थी । वह उस मिल की मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं । वह भाई के साथ देश-विदेश घूम आई है ।

युवराज वीरेश्वर प्रताप सिंह भी चित्रकार हैं । वे जानते हैं कि आज की दुनिया में 'कला तो प्रचार की है, प्रचार माने पैसा ।' यों उनके चित्रों की प्रदर्शनी कला भारती अपनी ओर से करने को उत्सुक हैं और युवराज में अत्याधिक रुचि रखने वाली अन्नपूर्णा, व्यक्तिगत अपनी ओर से ।

दिल्ली में कला प्रदर्शनियाँ फैशन बनती जा रही हैं विशेष कर सम्पन्न वर्गों के बीच । युवराज की चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन गृहमन्त्री के हाथों होता है । विशिष्ट अतिथियों में दूतावासों के कलाप्रेमी प्रतिनिधि हैं । नगर के प्रमुख कला प्रेमी - बड़े बड़े व्यापारी और ठेकेदार तथा उनकी पत्नियाँ, बड़े-बड़े सरकारी अफसर और उनके घर की स्त्रियाँ इधर-उधर बातें करते दीख पड़ते हैं । कलाकारों और प्रदर्शनी संयोजकों के लिए

गृहमंत्री 'साक्षात भगवान' हैं और गृहमंत्री पर विदेश § फ्रांस § में रह रहे आये देशी आये विदेशी युवराज वीरेश्वर प्रताप का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है । कला आलोचक भी युवराज से एक बात कर लेने के लिए आतुर हैं । दिल्ली में आयातित वस्तु एवं विदेश में रह कर आये भारतीय का विशेष स्थान है लोगों की दृष्टि में ।

दिल्ली में चित्रकला सिखाने की कई संस्थायें या स्कूल चलते हैं । 'कोमल कला कुंज' नामक चित्रकला सिखाने वाली संस्था की प्रधान अध्यापिका श्रीमती कैरा कोमल हैं । उनके अपने फ्लैट के एक कमरे में चित्रकला की कक्षायें चलती हैं । उसका पति पीतम कमल कोमल — वायलिन वादक, कुछ विचित्र सा व्यक्ति है, वह केवल कैरा के पीछे चलता है, वह जो भी करती है उसी में वह खुश है, यहाँ तक कि कैरा यदि युवराज के पीछे पीछे चलती है तो भी वह कैरा के पीछे है । वह कहता है, "अगर कैरा को युवराज के साथ रहने में सुख है तो मैं उसमें ज़रा भी बाधा नहीं डालना चाहता । मुझे तो उसी में सुख है जिसमें मेरी कैरा को सुख हो ।"[8]

यहाँ हर सम्बन्धों के बीच या तो खेल-खिलौने का सम्बन्ध है या व्यावसायिक दृष्टि । भारती जी के साले का लड़का राम प्रकाश अपने से काफी बड़ी अन्नपूर्णा जी से विवाह करना चाहता है क्योंकि 'डेढ़ दो करोड़ की मिल है उनकी, फिर वह ऐसी असुन्दर और बूढ़ी भी नहीं है।'[9] विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि अन्नपूर्णा रानी से ब्याह करने की बात राम प्रकाश को उसके फूफा जी ने सुझाई है । पर मीना भली भाँति जानती है कि लाला प्रेम लाल किसी से अन्नपूर्णा का विवाह होने देकर उसकी मिल अपने हाथ से नहीं निकलने देंगे । वह राम प्रकाश को सावधान करती है, "अगर लाला प्रेम लाल को आन्टी के प्रति तुम्हारे प्रेम की खबर लग गई तो वह तुम्हें दिल्ली से निकलवा कर छोड़ेंगे ।"[10] भारतीय परम्परा और दिल्ली का जीवन दो अलग अलग चीज़े हो गई हैं आजकल । रामप्रकाश

§8§- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 120 §
§9§- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 74 §
§10§- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 74 §

कहता है, "मैं तो अभी तक भारतीय परम्परा में पला हूँ। दिल्ली के जीवन में तो मैं आप लोगों की कृपा से प्रवेश कर रहा हूँ।"[11]

दिल्ली में, बड़े आदमियों के बीच पार्टियाँ देने का फैशन है - वीरेश्वर प्रताप अपने पुराने दोस्तों, परिचितों को खिलाना-पिलाना चाहते हैं और इधर 'दिल्ली में ऐसे मुफ्तखोरों की कमी नहीं है जो किसी न किसी किसम से जबरदस्ती निमंत्रण पत्र प्राप्त करने के फिराक में रहते हैं।"[12] यह मुफ्तखोरी खाने पीने तक ही सीमित नहीं है, हीरे-पन्ने आ जायँ तो वह भी हजम किये जा सकते हैं। वह चाहे मीना भारती हों या रामप्रकाश या कि अशोक गुप्ता - दिल्ली का सम्पन्न से सम्पन्न व्यक्ति इस मुफ्तखोरी का कायल है। मीनाभारती के लिए रामप्रकाश 'ज्ञानमल ध्यानमल ज्वैलर्स' की दुकान से पन्ने का सेट ले आया है इस वचन पर कि पसन्द आने पर मूल्य दे दिया जायगा अन्यथा सेट वापस कर दिया जायगा। मीना सेट वापस नहीं करना चाहती, रामप्रकाश पैसा दे नहीं सकता। अन्त में, मीना से प्रेम करने का दम भरने वाला अशोक गुप्ता दाम चुकता करने का वादा करता है पर वादे पर या जमानत पर श्री कृष्ण {ज्वैलर} विश्वास नहीं करता है। वह अशोक गुप्ता को बेइमान कहता है, "जी नम्बरी और खानदानी बेइमान। बिना बेइमानी किये कहीं कोई करोड़पति बना है।"[13]

दिल्ली की इस जिन्दगी से अलग भी किसी-किसी की जिन्दगी है—सम्भवतः वे प्रवासी हैं। 'दिलवर किशन जख्मी' शायर है, लखनऊ का रहने वाला है, आजकल दिल्ली में रह रहा है — विचित्र, बेचारा सा पर स्वयं के प्रति ईमानदार। ऐसे ही हैं युवराज वीरेश्वर प्रताप जिन्होंने इस शायर की परवरिश का जिम्मा ले लिया है। मीना के शब्दों में —'यह जख्मी खुद अपने ही ढंग में डूबा हुआ, खुद अपने में खोया। यह वीरेश्वर प्रताप मुक्त निर्द्वन्द्व और न कोई चिन्ता, न कहीं दुराव छिपाव।"[14]

{11}- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 69}
{12}- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 77}
{13}- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 141}
{14}- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 88}

'जिस समाज {दिल्ली के} में मीना पल रही है, अशोक पल रहा है, आज की दुनिया पल रही है, उसमें कितनी घुटन है, कितने प्रतिबन्ध हैं । उसमें जकमी ऐसे आदमी नहीं मिलते जो अपने को पूरी तरह खो दें ।'[15] और - - - - 'दिलवर किशन है कि लखनऊ का नाम आते ही तड़प उठता है । वह कहता है, "अहा हा ! लखनऊ, बड़ा प्यारा शहर है लखनऊ !- - - - - - वहाँ की हवा में एक अजीब मफ़लत है, एक अजीब मस्ती है, जी हाँ हुजूर एक अजीब दीवानगी है ।'[16] यह पुराने लखनऊ की बात है । आज का लखनऊ आधुनिक हो चला है ।

इस लखनऊ के कार्लटन होटल के एक कमरे में फिल्म में काम करने के लिए हीरो-हीरोइन का इन्टरव्यू होने को है — होटल के कम्पाउन्ड में 'अच्छे से अच्छा सूट पहने, एक से एक भड़कीली टाइयाँ लगाए हुए नवयुवकों का झुंड तथा 'साड़ियों, शलवारों और गरारों में हँसी-खुशी पुतलियाँ'[17] घूम रही हैं ।

यहाँ संगीत का सरकारी कालेज और सरकारी आर्ट स्कूल हैं । जकमी के शब्दों में 'गोया लखनऊ में कलाकारों की परवरिश सरकार कर रही है, और लखनऊ में हुजूर एक रेडियो स्टेशन भी है वहाँ भी कलाकारों की परवरिश होती है । - - - - - - संगीत, नाटक सभी कुछ है वहाँ पर ।'[18]

सरकारी संगीत विद्यालय अपने नृत्य-उत्सव और लोकगीत उत्सव तो करता ही है, विदेशी शिष्ट मंडल तथा कान्फ्रेन्सों का सांस्कृतिक पक्ष सँभालना इसी विद्यालय का दायित्व है ।

वास्तविकता तो यह है कि इन सरकारी संस्था, संस्थानों एवं प्रतिष्ठानों में कार्यरत कलाकार और लेखक 'बहुरूपिये' हैं क्योंकि कोई 'इन्टरनेशनल कान्फ्रेन्स आफ राइटर्स' का डेलीगेट बनकर बम्बई जाने के लिए

{15}- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 88}
{16}- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 155}
{17}- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 159}
{18}- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 161}

प्रयत्नरत हैं तो कोई अन्य जुगाड़ में ।

विदेशी पर्यटक लखनऊ की नवाबी संस्कृति की झलकी देखने लखनऊ आते हैं । सुधाकर के बैठकखाने में अमेरिकन दम्पति - श्री एवं श्रीमती बटलर बटेरों की लड़ाई देखते हैं और नवाब वाजिद अलीशाह के समय की प्रतिभाओं का परिचय प्राप्त करते हैं ।

मेहमान-नवाज़ी लखनऊ की संस्कृति की एक अन्यतम विशेषता है। दिलवर किशन के बड़े भाई गुलशन किशन अपने भाई के आने की खुशी में बिरयानी, आलू दम और पुलाव बनवाना चाहते हैं यद्यपि हाथ में एक भी पैसा नहीं है । परन्तु यह वहाँ के पुराने बाशिन्दों का चरित्र है । लखनऊ में आधुनिकता प्रवेश तो कर रही है । फिल्म वालों के द्वंद-फंद, कलाकारों §?§. संस्था-संस्थानों में राजनीति की घुसपैठ प्रारम्भ हो गई है पर उसकी पुरानी संस्कृति नष्ट नहीं हो पायी है ।

इधर दिल्ली के जीवन में सब अपने अपने खिलाड़ी हैं, सबके अपने अपने खिलौने हैं — युवराज वीरेश्वर प्रताप पर मीना आसक्त है, युवराज पर ही रानी अन्नपूर्णा आसक्त हैं, इधर अशोक मीना पर तो जान से निछावर है और रामप्रकाश रानी अन्नपूर्णा को साध रहा है यह दिलबहलाव या व्यावसायिक दृष्टि आज की दिल्ली का प्रमुख चरित्र बन गया है ।

गोमती के तट पर § 1959 ई0 §

'गोमती के तट पर' का कथाक्षेत्र लखनऊ है, जिसमें दो भाइयों— बसन्त और राकेश के जीवन को केन्द्र में रखकर वस्तु का विस्तार किया गया है ।

लखनऊ के पुराने मुहल्लों में अधिकांश लोगों के मकान ऐसे मार्ग पर हैं जिन पर कपड़े वाले, बर्तन वाले, लकड़ी और मसाले वाले, साग-भाजी, इंगार-प्रसाधन, चाट पुंगफली, खिलौने वाले, छोटी पूंजी के व्यापारी नित्य निकलते रहते हैं । अतः बसन्त और राकेश की माँ 'एकादशी' जैसी

औरतें आवश्यकता की सारी वस्तुयें वहीं खरीद लिया करती हैं । परम्परा-वादी पुराने परिवारों की शील-मर्यादावश एकादशी की पुत्रवधू विवाह के सात वर्ष बाद भी आँखों तक घूंघट निकाले रहती है । लखनऊ के इन मुहल्लों में परम्परायें ही नहीं पाली जातीं, जहालत भी अपनी चरम सीमा पर है । बसन्त की निःसन्तान पत्नी तुलसी की पूजा करती है जिसके प्रसाद के लोभ में अड़ोस-पड़ोस के बच्चे भी आ जाते हैं । इस पर पड़ोस की 'सुकुलाइन' कहती हैं, "निपूती राँड बताशों के बहाने पहले बच्चों को पास बुलाती है फिर उन पर टोटका करती है - - - - - - - ।"[19] सुकुलाइन को शंका है कि उसके मुन्ना के बाल किसी ने §निःसन्तान मौलश्री ने§ टोटका करने के लिए काट लिये हैं । क्योंकि 'बिना सन्तान वाली स्त्री किसी बच्चे के दो बाल काट कर पानी के साथ निगल ले तो उसके बच्चे होने लगे । लेकिन ऐसा करने पर — कहते हैं — दूसरे का बच्चा मर जाता है ।' [20] एकादशी अपनी बहू को स्पष्ट करती है । एकादशी को अपनी पुत्रवधू को पुत्रवती होने के लिए कुल पुरोहित बताते हैं, 'सन्तान के लिए तो सन्तान सप्तमी, आसा दुइज के व्रतों का विधान है ।- - - - - मेरी समझ में सन्तान सप्तमी का व्रत बहू करने लगे और आसा दुइज का तुम करने लगो, तो ठीक रहेगा । या फिर पुजारी §ंकित - - - - - - ।'[21]

इधर अमीनुद्दौला पार्क में रूसी सांस्कृतिक प्रदर्शनी चल रही होती है । जिसे देखते हैं लखनऊ के उच्च वर्ग के अफसर और सम्पन्न लोग । इन घरों की सयानी लड़कियाँ भी प्रदर्शनी में जहाँ-तहाँ देखी जा सकती हैं । श्री कैलाश चन्द्र आई०ए०एस० अनुसचिव शिक्षा विभाग की पुत्री कला को चित्रकला में विशेष रुचि है । वह किसी-किसी चित्र के सामने रुक कर उसकी प्रतिकृति बनाती चलती है । युवक समाज सोत्साह व्यवस्था में लगा है । एकादशी के ज्येष्ठ पुत्र बसन्त को इन सांस्कृतिक क्रियाकलापों में बड़ी रुचि है । वह अपना अधिकांश समय इनमें लगाता है ।

---

§19§- गोमती के तट पर : भगवती प्रसाद बाजपेयी § पृष्ठ 16 §
§20§- गोमती के तट पर : भगवती प्रसाद बाजपेयी § पृष्ठ 18 §
§21§- गोमती के तट पर : भगवती प्रसाद बाजपेयी § पृष्ठ 38 §

लखनऊ विस्तार पा रहा है -- लखनऊ से कानपुर जाने वाले राजपथ के दोनों ओर मैदानों में अनेक महत्वपूर्ण प्रतिष्ठानों का निर्माण हो गया है । यहीं बसा है सरोजिनी नगर । यहाँ सड़कों और गलियों की दुकानों में खास लखनऊ शहर वाली 'स्वच्छता और जगमगाहट' का अभाव है । दुकानों पर गाहकों की भीड़ भी कम है और सड़कों पर कार, ताँगा और रिक्शों की पंक्तियाँ विरल हैं । सड़क पर बाबुओं, बोझ से लदे कुलियों, विद्यार्थियों आदि की संख्या यहाँ कम है । संध्या होते होते यहाँ सन्नाटा छा जाता है । कहीं किसी वृक्ष के नीचे अमरूद का ठेला या छोटा 'खोमचा वाला' बैठा दिखाई पड़ जाता है या कोई भारी ट्रक सन्नाटे को चीरती शहर की ओर जा रही होती है । इक्का-दुक्का दूध और सब्जी वाले पैदल या साइकिल पर उधर से निकल जाते हैं । बिजली के खम्भे के पास एक ज्योतिषी जी आसन लगाये बैठे हैं जो एक हाथ देखने के पाँच आने पैसे ले लेते हैं । वसन्त को अपना एक हाथ दिखाने पर पाँच आने देने पड़ते हैं ।

रिवर बैंक कालोनी अपेक्षाकृत आधुनिक है । सरकारी अफसर और नये नये पैसे वाले लोगों का निवास है यहाँ । कैलाश चन्द्र आई०ए० एस० अनुसचिव, शिक्षा विभाग यहाँ रहते हैं । उनके घर आधुनिक उच्च वर्ग वालों का सा ही रख-रखाव एवं शिष्टाचार है । बाहर लान में ही उनके लिए टीकोजी लगी केतली में चाय और नाश्ता आ जाता है । उनकी पुत्री कला को पूरी स्वतंत्रता है - वह घर-बाहर सभी जगह निःसंकोच आती जाती है । चित्रकला में कला को विशेष रुचि है, घर में उसकी अपनी चित्रशाला है । घर में कैलाश बाबू का अपना निजी पुस्तकालय है ।

आज के नवयुवकों के दो रूप यहाँ दिखे हैं । एक तो पक्का व्यावहारिक और दूसरा मानवतावादी दृष्टि का कर्मशील युवक । वसन्त हर क्षेत्र में व्यावहारिक दृष्टि को प्रमुखता देता है । वह अपने कालेज के प्रिंसिपल मि० माथुर को सुझाव देता है "आप शिक्षा विभाग के अनुसचिव श्री कैलाश चन्द्र आई०ए०एस० को इसके लिए § कालेज के वार्षिकोत्सव के

उद्घाटन के लिए § आमंत्रित करें और अपने कार्यक्रम से उनको इतना प्रभावित करें कि अवसर आने पर वे कालेज के लिए कोई ऐसा अनुदान स्वीकृत करवा देने में हमारे सहायक बन जाँय कि प्रदेश भर में आपकी कीर्ति पताका फहराने लगे।"[22] वह और आगे सोचता है कि अपने भाई राकेश, जो सदैव प्रथम श्रेणी का छात्र रहा है, का परिचय कैलाश बाबू से करवा दें ताकि राकेश का भविष्य सुरक्षित हो जाय। इधर कैलाश बाबू भी कम व्यावहारिक नहीं है। उन्हें राकेश अपनी पुत्री कमला के लिए सुयोग्य वर के रूप में ठीक लग रहा है। अतः कैलाश बाबू चाहते हैं कि राकेश उनके घर जब तब आया जाया करे।

राकेश इस संक्रान्ति काल की दूसरी मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। वह गरीब, असहाय लोगों की सेवा-सहायता करता रहता है। कभी दुर्घटना में घायल रिक्शेवाले को अस्पताल पहुँचाता ह और चन्दे से पैसे का प्रबंध करता है।

उसने 'भिक्षुक संघ' की स्थापना कर रखी है। सरकार से मान्यता और अनुदान भी संघ को मिला हुआ है। जिससे कढ़ाई के काम की मशीनें, बुनाई की मशीनें, अम्बर चर्खा, सिलाई की मशीनें, दरी बुनाई का सामान, रंगाई के मसाले, गेंद-गुब्बारे, प्लास्टिक के खिलौने बनाने का सामान आ गया है।

लखनऊ के प्रमुख बाजार अमीनाबाद, हजरतगंज में भिक्षुक संघ के उत्पादनों के विज्ञापन 'प्राडक्ट ऑफ बेगर्स यूनियन', 'भिक्षुक संघ का उत्पादन' देखा जा सकता है। विज्ञापन के अतिरिक्त कुर्सी, मेजें, नोटबुक, राइटिंग पैड, रंगीन चटाइयाँ, हाथ के पंखे, टोकरियाँ आदि वस्तुएं भी बाजार में पर्याप्त हैं जो भिक्षुक संघ द्वारा बनायी गई है।

भिक्षुक संघ में कुछ भिक्षुक तो संघ की नीतियों और क्रिया कलापों से सहमत थे कुछ असहमत और किसी सीमा तक विरोधी भी। कुछ तो नैतिक दृष्टि से कोर पतित थे। यह संस्था चलाई जा रही है पूरी निष्ठा के ?

---

§22§- गोमती के तट पर : भगवती प्रसाद बाजपेयी § पृष्ठ 23 §

साथ ।

जहाँ भिक्षुकों को लेकर लखनऊ इतनी सुधार चेतना का केन्द्र बन गया है वहीं भिक्षा-वृत्ति का व्यापार चलाने वाले भिक्षुकों का सरदार इस संस्था को मिटाने में लगा हुआ है, यहाँ तक कि वह संघ संचालक राकेश के अपहरण का भी प्रयास करता है । शहर में दोनों के विकास का पर्याप्त वातावरण है — अपराध वृत्ति का और सुधार दृष्टि का भी । यहाँ किराये पर हत्यारे तक मिल जाते हैं जो पैसा लेकर किसी भी व्यक्ति की हत्या कर सकते हैं । सुजान सिंह, गुमान सिंह पेशेवर हत्यारे हैं । बसन्त ने उन्हें राकेश की हत्या करने के लिए किराये पर तय किया था ।

गलियों में पति अपनी पत्नी को डंडे से पीटते दिख सकते हैं । सड़कों पर विज्ञापन वाले, ताँगे पर सवार होकर हारमोनियम और ढोलक के स्वरों में जन साधारण का ध्यान आकृष्ट करते दिखाई पड़ते हैं । पुराने मुहल्ले की गलियों में प्रातः स्त्रियाँ गोमती स्नान करके आती दिखती हैं । आधुनिक प्रौढ़ायें वायुसेवन करके लौटती दिख सकती हैं ।

सभी स्थानों की तरह यहाँ का भी वणिक वर्ग अपने जातिगत गुण से युक्त हैं, वह गुण है ग्राहक को पटाना । लखनऊ में गोपी लाला की कपड़े की दुकान है । वे स्वयं सूट-कोट आदि के ऊनी कपड़े लेकर कैलाश बाबू के घर आते हैं । उनसे कैलाश बाबू कला के लिए दो गज ट्वीड, राकेश और बसन्त के लिए गैबरडीन तथा ऐसे ही कुछ और खरीद लेते हैं । गोपी लाला कैलाश बाबू से कहते हैं, "मैं अपने घर में भी लल्लू की अम्मा से अक्सर कहता हूँ कि जो सुख मुझे सेक्रेटरी साहब के यहाँ बैठक में मिलता है, उसके आगे- - - हैं- - - -हैं- - - - -स्वर्ग भी मात है ।"[23] कला भली भाँति समझती है कि लाला जी में 'यह' गुण न होता 'तो गरम कपड़ों की इस खरीद में बहुत अन्तर पड़ जाता ।"[24]

लखनऊ में परम्परा वादी साधारण मध्य वर्ग के परिवार और

{23}- गोमती के तट पर : भगवती प्रसाद वाजपेयी { पृष्ठ 106 }

{24}- गोमती के तट पर : भगवती प्रसाद वाजपेयी { पृष्ठ 106 }

आधुनिक उच्च मध्य वर्ग दोनों तरह के परिवार रह रहे हैं । रहन-सहन में जितना अन्तर है, मानसिकता में उससे कहीं अधिक अन्तर है । फिर भी कहीं कुछ ऐसा है जो दोनों स्तर के समाज में मान्य है जैसे विवाहादि के पारम्परिक रीति-रिवाज । कैलाश बाबू अपनी पुत्री कला के लिए राकेश की माँ तथा ताऊ से बात-चीत करना चाहते हैं । विवाह भी पारम्परिक ढंग से सम्पन्न होता है, यहाँ तक कि कलेवा खाने के लिए राकेश पालकी पर चढ़कर श्वसुर के घर जाता है । राकेश के ताऊ बाबू ब्रजनन्दन जी -- बिरजू बाबू को 'समधौरे' में एक शाल एक गिन्नी मिलती है और भेंट में एक गरम कोट बनवाइन, कमीज, धोती और टोपी भी मिलती है । दहेज में कैलाश बाबू ने अन्न-धन के अतिरिक्त आधुनिक साजसज्जा की अनेकानेक सामग्री, सभी कुछ दिया है ।

ये सामाजिक रीति रिवाज विवाह-काज में ही नहीं अन्य अवसरों पर भी निबाहे जाते हैं । राकेश के ताऊ ब्रजनन्दन बाबू अपनी लड़की के विवाह का निमंत्रण एक हल्दी की गाँठ कैलाश बाबू को देने जाते हैं तो उनका पैर पीतल के तसले में धोया जाता है, आतिथ्य में चौधरी की दुकान की नमकीन और मिठाइयाँ पेश की जाती हैं और विदाई में एक सौ एक रुपया दिया जाता है ।

लखनऊ वैविध्यपूर्ण है -- पुरानी मान्यताओं को लेकर चलता हुआ एकादशी का परिवार है जहाँ पर्दे का चलन है, टोना-टोटके की बातें हैं । दूसरी ओर कैलाश बाबू का आधुनिक रहन-सहन है, पुत्री को पूरी सामाजिक स्वतंत्रता मिली हुई है । इसके अतिरिक्त ग्राहक पटाने में चतुर व्यापारी हैं, सरकारी अफसरों को प्रसन्न करके अनुदान पाने में लगे हुये स्कूल कालेज के प्रिंसिपल हैं । गुन्डे-हत्यारे भी हैं यहाँ तो राकेश जैसे मसीहा भी हैं । स्वार्थ केन्द्रित व्यावहारिकता है तो समाज सुधार की भावना से प्रेरित मानवतावादी दृष्टि भी है । कथावस्तु लखनऊ के सीमित क्षेत्र को लेकर चली है अतः लखनऊ का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई चित्र विशेष प्रतिष्ठापित नहीं हो पाया है ।

भूले बिसरे चित्र § 1959 ई० §

फतहपुर, कानपुर, जौनपुर, इलाहाबाद, दिल्ली और कलकत्ता शहर तथा राजपुरा, घाटमपुर सोराँव आदि गाँवों की पृष्ठभूमि पर फैला हुआ 'भूले बिसरे चित्र' चार पीढ़ियों के बदलते हुए सामाजिक पर्यावरण का चित्र प्रस्तुत करता है। कथाकृति पाँच खण्डों में विभक्त है।

मुंशी शिवलाल फतहपुर की कलक्टरी अदालत में अर्जीनवीस हैं, वहीं कचहरी के हाते में बरगद के पेड़ के नीचे मिटटी के घड़े रखकर 'घसीटे' कचहरी आने जाने वालों को पानी पिलाता है। घसीटे की जोरू 'छिनकी' मुंशी शिवलाल के घर टहल करती है।

छोटे शहर में छोटी भी खबर शहर भर में फैल जाती है। मुंशी शिवलाल के पुत्र ज्वाला प्रसाद को नायब तहसीलदारी के लिए नामजद कर दिया जाता है तो यह खबर बिजली की तरह शहर में फैल जाती है। और मुंशी शिवलाल के अकर्मण्य भाई राधेलाल को मोहल्ले में घूम-घूम कर 'बहबूदी' हाँकने का पूरा मौका मिल जाता है।

साठ साल के घसीटे की तीस साल की दूसरी बीबी 'छिनकी' विधुर शिवलाल की कृपा-पात्री हैं, वह ज्वाला के नायब तहसीलदार होने के उपलक्ष में मुंशी जी से हँसली माँगती है। मुंशी जी के घर में छोटे भाई राधेलाल की पत्नी मालकिन है। मुंशी शिवलाल की 'लाड़ली' होने पर भी छिनकी को उनके घर के मामले में बोलने का अधिकार नहीं है — वह अपनी सीमा अच्छी तरह जानती है।

उस समय गाँव-देहात में यातायात का साधन बहली, बैलगाड़ी और ऊँटगाड़ी हुआ करते थे। जमींदार तथा सम्पन्न लोगों के पास अपनी सवारी करके यही बहली और ऊँटगाड़ी आदि थे। ज्वाला अपने मामा रामसहाय के घर राजपुर §जिला हमीरपुर§ से बहली और फिर ऊँटगाड़ी द्वारा कानपुर के लिए प्रस्थान करता है। ज्वाला की नियुक्ति बतौर नायब तहसीलदार घाटमपुर § जिला कानपुर § में हुई है। ज्वाला प्रसाद

के साथ उसकी पत्नी के अतिरिक्त घसीटे का लड़का 'भीखू' भी जाने को है। उन दिनों किसी भी कहार {घसीटे आदि जैसे} को अपने पुत्र से जो बड़ी से बड़ी आशा हो सकती थी वह यह कि वह या तो स्वतंत्र रूप से बँहगी लगाए या पालकी ढोये या फिर किसी राजा-महाराजा का खिदमतगार हो जाय। अतः घसीटे भी मुंशी जी से कम प्रसन्न नहीं है क्योंकि तहसीलदार का रुतबा किसी राजा-महाराजा से कम नहीं है।

तहसील में तहसीलदार की स्थिति किसी कलक्टर से कम नहीं है। वहाँ तथा आस-पास के प्रतिष्ठित और पैसे वाले लोग तहसीलदार से राह-रस्म बनाए रखना चाहते हैं। अतः घाटमपुर में नायब तहसीलदार ज्वाला प्रसाद के घर शिवपुरा के नम्बरदार लाला परभूदयाल एक झाबे में पिस्ता, बादाम, काजू, अखरोट के साथ एक थान मलमल का, एक थान कीमखाब का और एक चाँदी की भारी सी तश्तरी पर रेशमी रुमाल में बँधे सौ रुपये तहसीलदारिन को बतौर सौगात भेजते हैं। इसी तरह उन्होंने थानेदार को भी पटा रखा है। लाला परभूदयाल का लड़का लक्ष्मीचन्द कहता है, "थानेदार अमजद अली तो बप्पा के आदमी हैं, सैकड़ों रुपये बप्पा ने उन्हें दिये हैं।"[25]

लाला परभूदयाल की हवेली के फाटक पर राधाकृष्ण का मन्दिर है। बाहर सीढ़ियों से लगा हुआ सहन और उससे लगा बड़ा सा बरामदा है। बरामदे में एक तख्त पर लाला परभूदयाल तकिये के सहारे आधे लेटे आधे बैठे होते हैं। तख्त के नीचे फर्श पर एक दरी पर बैठे उनके मुनीम लच्छीराम अन्य पटवारी-कारिन्दों से काम की बात में लगे होते हैं। कभी कभी थानेदार भी वहाँ आ जाते हैं, वो तख्त से कुछ हट कर एक आराम कुर्सी पर बैठकर सामने रखी शराब की बोतल से चाँदी के गिलास मे शराब उड़ेल-उड़ेल कर पीते रहते हैं।

गाँवों में रहने वाले जमींदारों के यहाँ रहन-सहन में, शादी-ब्याह में परम्परा पालन और प्रतिष्ठा की रक्षा विशेष रूप से की जाती है, फिर पैसे

{25}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 55}

का मुँह नहीं देखा जाता । घाटमपुर §जि0 कानपुर§ के जमींदार ठाकुर गजराज सिंह की लड़की का विवाह अवध के ताल्लुकेदार के लड़के से हो रहा है । बारात में करीब बारह सौ बराती, ग्यारह हाथी, इक्यावन ऊँट, एक सौ एक घोड़, तीन सौ बहलियों में जुते छः सौ बैल और जानवरों की देखभाल के लिए करीब आठ सौ नौकर आये हैं । इतनी बड़ी बारात को ठहराने का प्रबंध ठाकुर गजराज सिंह ने अपने पचास बीघे के आम के बाग में तम्बू और कनातें लगवा कर किया है । लड़के वालों की अपनी शान और अकड़ है । वे खाने-पीने का अपना प्रबंध करके चले हैं ।

यों भी जब कभी ठाकुर गजराज सिंह के समधी §विवाह के बाद§ उनके यहाँ आते हैं तो उनके सत्कार के लिए कानपुर से 'तवाइफ' बुलाई जाती है और पीने पिलाने का अच्छा प्रबंध किया जाता है ।

कस्बों में होली के कई ढंग हैं । जमींदार ठाकुर गजराज सिंह अपनी लड़की को ससुराल से लिवा लाये हैं — विवाह के बाद पहली होली मायके में होती है । होली के दिन ठाकुर साहब के दीवान खाने में नाच-गाना होता है, शराब के दौर चलते हैं । तहसीलदार ज्वाला प्रसाद के घर उनकी पत्नी यमुना और कहारिन छिनकी होली का पकवान बनाने में व्यस्त हैं । बाहर तहसीलदार साहब से मिलने और उनके साथ होली खेलने घाटमपुर के प्रायः सभी प्रतिष्ठित लोग आते हैं । आने वालों के स्वागत सत्कार में यहाँ भी सबेरे से ही शराब के दौर चलते रहते हैं । भीखू कहार होली का स्वांग रचाने और गाना गाने के लिए कहारों की मण्डली की ओर चल पड़ता है । इन सबसे अलग, गाँव की पगडंडियाँ होली मनाने वालों की भीड़ से भर उठती हैं, यह भीड़ फाग गाती है, गालियाँ बकती है और गन्दे-गन्दे स्वांग के साथ आगे बढ़ती है ।

दूसरा खंड

दूसरा खंड इलाहाबाद शहर और सौरहिया गाँव को लेकर चलता है। इलाहाबाद में माघ मेला और माघ के महीने में पुण्य लाभ करने

के लिये गंगा तट पर महीने भर का कल्पवास करने की परम्परा है । मुंशी शिवलाल संगम के तट पर मड़ैया डाल कर कल्पवास करते हैं । यह माघ मेला तीर्थ यात्रियों के लिए ही आकर्षण स्थल नहीं है, यह अनेकानेक असमाजिक तत्व-चोर, बदमाशों को भी आकर्षित करता है । साधुवेश में स्त्रियों को छेड़ते हुए, मुंशी शिवलाल का भतीजा 'किशनू' इसी माघ मेला में पकड़ा गया है तो शहर में करीमन रण्डी के यहाँ ठहरा हुआ है ।

गाँव और कस्बों से लोग बड़े शहर की ओर भाग रहे हैं । करीमन वेश्या फतेहपुर की रहने वाली थी, वह छः महीने से इलाहाबाद आ गई है । शिवपुरा §जि० कानपुर§ की नम्बरदारिन जैदेई का पुत्र लक्ष्मीचन्द इलाहाबाद में फर्नीचर का कारखाना खोलना चाहता है क्योंकि '- - - इलाहाबाद बड़ा शहर है, हमारे सूबे की राजधानी । - - - - - रुपया तो यहाँ है, और रुपया व्यापार में है, कारबार में है ।'[26] लक्ष्मीचन्द इलाहाबाद की सिविल लाइन्स में एक बंगला भी खरीद लेता है जिसमें उसकी माँ जैदेई रहती है । वह कारबार के सिलसिले में भागता दौड़ता रहता है । ज्वाला 'नौकरी, तरक्की और तबादले' में व्यस्त होने के कारण अपने लड़के गंगा को जैदेई के बंगले पर उन्हीं की संरक्षता में इलाहाबाद में पढ़ाने का इरादा करता है ।

शहर में गति ही प्रधान है -- समय भाग रहा है, लोग उसके पीछे भाग रहे हैं । गाँवों में समय की गति अपेक्षाकृत धीमी है । सौरगाँव में मंगल के दिन बाजार लगता था, लगता आ रहा है । जिसमें आस-पास के गाँवों से, बल्कि दूर-दूर से भी लोग 'खरीद-फरोख्त' करने के लिए आते हैं । लावारिस अमराई के टूटे-फूटे हनुमान मन्दिर के सामने तहसीलदार साहब के चचेरे भाई बिशन लाल का 'बिसनू गुरु' के नाम से अखाड़ा चलने लगा है । हनुमान मन्दिर पुनर्जीवित हो उठा है । तहसीलदार बेचू मिसिर के भाई कुबेर मिसिर उसके पुजारी बन बैठे हैं । सौरगाँव ने अनायास ही इसे स्वीकार कर लिया है । हाँ, कभी कोई 'मुंडी स्वामी' जैसे

§26§- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 139 §

पाखंडी किसी अमराई में धूनी रमा लेते हैं तो बदलू बनिया का लड़का पुत्र-प्राप्ति के लिए उनकी सेवा - सत्कार में भी तत्पर हो जाता है, किन्तु वशीकरण मंत्र लेने के लिए सेवा करने लगता है । पर गाँव में भी कुछ ऐसे हैं जो इनकी वास्तविकता से परिचित हैं । छुमरू पंडित ऐसे हैं, "- - - - एक से एक शोहदे इकट्ठा होने लगे हैं इनके यहाँ- - - - दिन रात चरस के दम लगाते हैं और अब तो औरतों का भी आना-जाना शुरू हो गया है है- - - - - -।"27 इन आकस्मिक तत्वों से गाँव के जीवन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता । अखाड़े में दंगल बदे जाते हं -- होते हैं, लोग पूरे उत्साह से देखने आते हं और जन-जीवन चलता रहता है ।

गाँव के लोग अपनी परम्परा से अलग नहीं हो पाते । अब बेचू मिसिर को ही लीजिए - तहसीलदारी करते हं, पंचायती करती है और पुरोहिती भी करते हं । यहाँ धर्म का अपने पारम्परिक प्रचलित अर्थ में विशेष स्थान है । ठाकुर बीरभान सिंह नये बने शिवाले में मूर्ति स्थापना के अवसर पर ब्रह्मभोज के साथ-साथ अपने सम्बन्धियों और परिचितों को शानदार प्रीति भोज देते हैं ।

तीसरा खण्डः-

तीसरे खण्ड में बरेली, दिल्ली और कलकत्ता कथा क्षेत्र बना है ।

अफसरों की दुनिया सामान्य जनता के रहन-सहन से कुछ भिन्न है । बरेली में पंडित सोमेश्वर दत्त डिप्टी कलेक्टर, मीरजाफर अली डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस, जोनाथन डेविड सब जज और नये नये डिप्टी कलेक्टर गंगा प्रसाद आदि इन सबकी अपनी बिरादरी {circle} है । सरकारी काम के बाद क्लब, टेनिस, ब्रिज यही इनकी दिनचर्या है । यों मीर साहब के पिता लम्बी दाढ़ी रखते थे, हमेशा अबा पहनते थे और उनके हाथ में हर समय तस्बीह रहा करती थी पर मीर साहब की दाढ़ी चिकनी और मूँछें ऐंठी हुई हैं, वे 'कोट और ब्रीचिस' पहनते हैं तथा चुरुट पीते हैं । डेविड

{27}- सीधी सच्ची बातें : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 202}

साहब के 'फोर फादर्स' 'सेवेन जेनेरेशन' पहले हिन्दुस्तान में 'साउथ' में आये थे। वे स्वयं काले से, नाटे से, दुबले-पतले आदमी हैं ; उनकी मेम साहब 'प्योर युरोपियन' हैं — वे युरोपियन क्लब में टेनिस खेलती हैं, डान्स करती हैं पर डेविड साहब वहाँ घुसने नहीं पाते।

अब हिन्दुस्तान की राजधानी कलकत्ते से बदल कर दिल्ली होने जा रही है अतः दिल्ली दरबार का इन्तजाम करने वाली कमेटी में अपना-अपना नाम रखवाने के लिए ये हिन्दुस्तानी अफसर अंग्रेज साहबों की गालियाँ तक बरदाश्त करते हैं। मिस्टर क्लीमेन्ट मीरसाहब से कहते हैं, "हो न तुम छँटे हुए बदमाश और नम्बरी हरामजादे।" मीर साहब मानते हैं, "- - - -यह पुलिस का महकमा ही नम्बरी हरामजादों का होता है। - - - - हुजूर मेरे जैसे आदमी अगर आप लोगों की खिदमत में न हों तो सल्तनत एक दिन के लिए भी न टिकने पाये।"[28] मीर साहब के भीतर और बाहर में जमीन आसमान का अन्तर है। वास्तविकता तो यह है "यह दुनिया निहायत दुरंगी है, आदमी दुरंगा होकर ही पनप सकता है।"[29] मीर साहब रामगढ़ से एक पहाड़िन एक हजार रुपये में खरीद लाये हैं, उसे मुसलमान बना कर उससे निकाह पढ़ाना चाहते हैं पर वह मुसलमान बनने को राजी नहीं होती वह औरत पहाड़ की 'नायक' जाति की है जो लड़कियाँ तो बेचते हैं पर धर्म नहीं बदलते। बरेली में 'नायक' रंडियाँ भी काफी हैं।

बरेली के स्वामी जटिलानन्द प्रत्यक्ष रूप से आर्य समाजी उपदेशक हैं — वे बुलन्द शहर के जाट हैं। उनके लिए तीन साल पहले वारंट निकला था शायद कोई कत्ल किया था। अल्लामा वहशी का निज का मदरसा चलता है साथ में अखाड़ा भी। पर है वो 'बरेली के छटे हुए गुण्डे।'[30]

गंगा प्रसाद अपनी पत्नी को दिल्ली दरबार दिखाने ले जाना चाहता है —'वह बड़ा पुराना शहर है — लाल किला, कुतुब मीनार

§28§- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 266 §
§29§- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 262 §
§30§- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 347 §

और इन सबके साथ दिल्ली दरबार ।' पर इलाहाबाद में रहने वाली उसकी पत्नी को पति के साथ बाहर घूमने में लज्जा लगती है । फिर, घूंघट काढ़ कर पति के साथ घूमने में लोग हँसेंगे भी । गंगा प्रसाद घूंघट काढ़ने के पक्ष में नहीं है । वह कहता है, "यह सब दकियानूसीपन छोड़ो ।" भीखू का कथन आज के संदर्भ में सच है, 'नई दुनिया आय न, सौन नये नये गुन सीखै का पड़िहै ।"[3] आखिर दिल्ली है ।

नये सिरे से नये ढंग से दिल्ली में दिल्ली दरबार के लिए नगर बस रहा है —— दिल्ली के उत्तर में पहाड़ी के नीचे जहाँ आज कल विश्व-विद्यालय है वहाँ से दिल्ली के किंग्स वे कैम्प तक हर जगह काम हो रहा है, हजारों मजदूर लगे हुए हैं, सड़कें बन रही हैं, खेमें डाले जा रहे हैं । बीस-पच्चीस वर्ग मील में कनातों और खेमों का वृहद नगर बस रहा है ।

पंजाब के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर चार घोड़ों की फिटन पर प्रबंध देखने निकलते हैं । अंग्रेज सैनिक जगह जगह घूम रहे हैं । शाम को नगर का निर्माण करने वाले मजदूर थके हुए बीस-पचीस का गोल बना कर लौटते हैं—— यमुना के किनारे तीमारपुर तक इनकी मड़इयाँ पड़ी हुई हैं । थोड़े से सम्भ्रांत हिन्दुस्तानी अफसर और ठेकेदार भी इधर उधर दिख जाते हैं ।

युक्त प्रान्त के लिए निर्दिष्ट क्षेत्र में प्रबंधकर्ताओं और अतिथियों के खेमें लगे हैं । पूरे भारतवर्ष के देशी नरेशों के लिए भी निर्धारित स्थान पर खेमें लगाये जा रहे हैं । देश भर की सामग्री उमड़ी पड़ रही है———हीरे, जवाहरात, सोना, चाँदी से लेकर आटा, दाल, सब्जी तक । और, इन सबको देखने के लिए दिल्ली की जनता की भीड़ उमड़ी पड़ रही है ।

दिल्ली और कलकत्ता के जौहरी राधाकिशन की भाभी कीमती साड़ी और जड़ाऊ गहने से सजी गंगा प्रसाद, दिल्ली दरबार प्रबंध समिति के मेम्बर, के साथ अलीपुर में बन रहे तम्बुओं का नगर देखने आती है । वह दिल्ली के दरीबे की हवेली से निकलते ही लम्बा घूंघट, चादर सबसे मुक्ति लेकर 'हंसती, चहकती और इठलाती चलती है । गंगा प्रसाद के

§3§- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा §पृष्ठ 267§

साथ वह § कैलासो बीबी, रानी जी § खेमें में लाल रिपुदमन सिंह, मीर जाफर अली आदि से निःसंकोच मिलती है ।

आधुनिकता में संतो बीबी § जौहरी राधाकिशन की पत्नी§ कैलासो बीबी से आगे हैं । फ्रांसीसी ब्रोकेड की लाल - काली साड़ी, सिर से पैर तक माणिक के गहने पहने, ऊपर काश्मीर का जरीतार वाला लाल दुशाला ओढ़ कर चार घोड़ों की फिटन पर बैठ कर दिल्ली दरबार के लिये बन रहे नगर को देखने जाती हैं । लाल किला पार करते ही वे अपनी चादर उतार देती हैं । सड़क पर चलने वाले लोग सन्तो बीबी को देखते और आपस में काना-फूसी करते है । वस्तुतः सड़क पर खुले मुँह चलने वाली दो ही वर्ग की स्त्रियाँ होती हैं — रानियाँ या वेश्यायें । वेश्यायें इक्के ताँगे पर चलती हैं, रानियाँ दो या चार घोड़ों की फिटन पर ।

गंगा प्रसाद के कैम्प में कुछ अन्य राजा, रानी और राजकुमार तथा गंगा प्रसाद के साथ सतवन्त कुंवरि § सन्तो बीबी § व्हिस्की और शेरी के दौर में साथ दे रही हैं ।

दिल्ली में सब सम्बन्धों के पीछे स्वार्थ या व्यावसायिक दृष्टि काम करती है । रिपुदमन सिंह का कहना सच है, "जिस जगह तुम हो, वहाँ हर चीज़ बिकती है — दीन, ईमान, सत्य, चरित्र ! यह पूंजीवाद का युग है, बनियों की दुनिया है, सब कुछ बिकता है ।"[32] - - - - - - तुम्हारे और सतवन्त के मेल मिलाप से राधाकिशन तुम्हारे ज़रिये कुछ फायदा उठाने की कोशिश भी कर सकता है ।"[33] श्री किशन की पत्नी अपने देवर राधा किशन से अधिक हिलमिल कर उनके हिस्से की दुकान और सम्पत्ति का अधिकतम साम्राज्य । प्राप्त करना चाहती है । गंगा प्रसाद से सतवन्त के मेल-मिलाप द्वारा राधाकिशन रायबहादुरी का खिताब पाने की कोशिश में है । राजा-राजघरानों में ऐसे सम्बन्ध दिलबहलाव के लिये हैं पर सबका मूल्य चुकाना पड़ता है । आज की दुनिया में पाने के लिए देना अनिवार्य

§32§- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 329 §
§33§- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 329 §

शर्त है । मेजर चाटुल, ए०डी०सी० वाइसराय को सानिध्य सुख देकर बदले में सन्तो अपने पति को 'राजा-बहादुर' के खिताब से विभूषित करा पायी है ।

दिल्ली और कलकत्ता अपने चरित्र में समदिशा अनुगामी है — भागना और पाना, फिर और पाने के लिये भागना । बड़े आदमियों के खर्चों का कोई अन्त नहीं, ये खर्च उनकी मजबूरी है । राधाकिशन{कलकत्ते में} कहता है, "यह कार { ओवरलैण्ड } मुझे खिताब मिलने के दूसरे ही दिन लेनी पड़ गई - - - - - - राजा क्या हो गया हूँ, खर्च अनाप - शनाप बढ़ गए हैं ।"[34] राधा किशन के राजा बनने में 'भगवान की क्या, यह सब आदमियों की लीला है, अपनी अपनी पहुँच की बात है ।'[35] 'सोशल स्टेटस' बनाने के लिये 'टैक्ट और कान्टैक्ट' से काम लेने वाली सन्तो अपनी स्थिति को भली भाँति जानती है । वह कहती है, "मुझे कभी कभी ऐसा लगता है कि मैं झूठ और फरेब की दुनिया में आ गई हूँ और ये झूठ और फरेब मेरे व्यक्तित्व के साथ घुल-मिल गए हैं । उस समय मुझे अपने से वितृष्णा होने, लगती है, लेकिन दूसरे ही क्षण सत्य मेरे सामने आ जाता है । यह सफलता, यह सुख, यह वैभव, ये सब झूठ और फरेब की ही उपज तो हैं । जिसे लोग गिरना कहते हैं, वही ऊपर उठना है ।"[36]

कलकत्ता में सन्तो गंगा प्रसाद के सामने स्वीकार करती है कि मेजर चाटुल से उसका घनिष्ट सम्बन्ध था, "मैं सन्तो से रानी सतवन्त कुँवरि बन गई हूँ वह कुछ ऐसे ही ? उन्हें { राधाकिशन } ढाई तीन लाख रुपये का मुनाफा हुआ, राजा-महाराजाओं के जौहरी बन गए ।- - - - - - - मेजर चाटुल चाहता था मेरा रूप, वह चाहता था मेरी जवानी और बदले में दे रहा था पद, मर्यादा, रुपया-पैसा । क्यों क्या बेजा था यह सौदा ।"[37] यह सौदे बाजी कलकत्ते के उच्च वर्ग के लोगों की आदत का

{34}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा { पृष्ठ 374 }
{35}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा { पृष्ठ 375 }
{36}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा { पृष्ठ 379 }
{37}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा { पृष्ठ 390 }

एक अंग हो गई है । रानी साहब धाटबागान गंगा प्रसाद को अपने तक बढ़ने का आमन्त्रण देती हैं अपने ही घर में, इधर राजा साहब सत्यजित प्रसन्न सिंह सन्तो को लेकर अपने शयन कक्ष में हैं — विचित्र है कलकत्ते का जीवन । रात बारह बजे कलकत्ते की सड़क पर जाते हुए गंगा देखता है कि शहर {कलकत्ता} अभी सोया नहीं है । वह सोचता है कि वह कहाँ आ गया है 'यह वैभव, यह भोग-विलास, यह आमोद-प्रमोद, यह सब नरक है और भयानक नरक । - - - - - राजा सत्यजित प्रसन्न सिंह, रानी हेमवती देवी, राय बहादुर राधा किशन, रानी सतवन्त कुँवरि, यह सब क्या था ?'[38] और सन्तो भी क्या करे । वह कहती है, "कौन सा सहारा है मेरे पास, जिसे पकड़कर मैं बचूँ ! जिस सहारे को मैं पकड़ती हूँ वही मुझे नीचे घसीटता है ।'[39] यह कलकत्ता नगरी के वैभव – चकाचौंध के नीचे का सत्य है ।

चौथा खण्ड:-

'भूले बिसरे चित्र' का चौथा खंड जौनपुर और कानपुर को कथा भूमि बनाकर चलता है

जौनपुर छोटी जगह है और पुरानी परम्पराओं में जी रहा है । खुशी के मौके पर दावत और दावत के साथ 'नाच-मुजरा' यहाँ की परम्परा है । गंगा प्रसाद डिप्टी कलक्टर के घर दावत के अवसर पर सिविल सर्जन, सब जज, डी०एस०पी०, कोतवाल, मुंसिफ, जमींदार और बड़े-बड़े वकील आमंत्रित होते हैं । 'मलका' के गज़ल गायन से अतिथियों का मनोरंजन किया जाता है ।

हिन्दुस्तान के छोटे शहरो में 'लेडी डाक्टर और नर्से बच्चा जनवाने' के लिए नहीं आतीं —— साधारण दाई से काम चल जाता है । गंगा प्रसाद की पत्नी रुक्मिणी को बच्चा जनवाने के लिए दाई बुलाई जाती है । परम्परागत हिन्दू रस्म के अनुसार घर में लड़के के जन्म पर बुजुर्ग ज्वाला प्रसाद,

{38} भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 401}
{39} भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 404}

गंगा प्रसाद के पिता, माँ-बच्चे पर पैसे निछावर करके बँटवाते हैं, गायन-हारिन और रोशन चौकी का प्रबंध होता है, पंडित जी बुलाये जाते हैं ।

यहाँ बड़े आदमियों में कोई कोई 'रखैल' रखे हैं । सामान्यतया वे वेश्यायें ही हैं । गंगा प्रसाद की रखैल 'मलका' नामक वेश्या है जिसे मीखू के शब्दों में कहा जाय तो 'गंगा एक रंडी बैठाय लीन्हिस है' ।'[40] पर रखैल रखने पर समाज में काना-फूसी तो होती ही है । मलका गंगा प्रसाद से विवाह करना चाहती है पर व्यावहारिक गंगा जानता है कि 'उसे उठाने की कोशिश में खुद मेरे गिर जाने का खतरा है ।'[41]

जौनपुर में अब एक नई दुनिया करवट ले रही है । व्यक्ति के विरोध में भी जुलूस निकलता है 'खिलाफत ज़िन्दाबाद, शेख बब्बन जिन्दाबाद- - - - - -गंगा प्रसाद मुर्दाबाद ।'[42] {जो बाद में हिन्दू-मुस्लिम के झगड़े का रूप ले लेता है ।} और ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ भी —— हड़तालें होती हैं, चरखा चलाया जाता है, खादी और स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार तथा विदेशी माल का बहिष्कार किया जाता है, जुलूस निकलते हैं ।

यह राष्ट्रीय आन्दोलन कानपुर में भी चल रहा है । कांग्रेस का जुलूस मेस्टन रोड से होकर मूलगंज के चौराहे पर विदेशी कपड़ों की होली जलाता है । शहर का पूंजीपति वर्ग {विशेषकर उद्योगपति} न देश-प्रेमी है और न अंग्रेज हुकूमत का कायल । वह तो जिसमें उसको लाभ हो उसी की ओर है । लक्ष्मीचन्द जिसकी अनेक मिल तथा फैक्ट्री कानपुर में है, स्वयं को बड़ा भाई मानते हुए गंगा प्रसाद ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट को एक ओवर लैण्ड कार उपहार में देता है । वास्तविकता तो यह है कि एक सरकारी अफसर से उद्योगपति को काफी काम निकालने होते हैं । 'यह पूंजीपति जबरदस्त मुनाफा उठाता है, उस मुनाफे का एक छोटा सा हिस्सा सरकार को देता है ताकि उसे सरकार से हर तरह की सुविधायें मिलें । इस मुनाफे का छोटा सा हिस्सा वह कांग्रेस को देता है ताकि स्वदेशी आन्दोलन जोर पकड़े और उसका माल जोर से बिके ।

{40}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 462}
{41}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 490}
{42}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 451}

इस मुनाफे का छोटा सा हिस्सा देता है गंगा प्रसाद ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट को ताकि लक्ष्मीचन्द जो लूट, खसोट, बेइमानी करता है इसके बारे में सरकारी कर्मचारी आँखे बन्द कर लें रुपया इस युग की सबसे बड़ी मजबूरी है" ।[43]

उद्योग नगर कानपुर के पूंजीवादी सभ्यता के युग में कुछ एक ऐसे भी हैं जो पैसे के पीछे नहीं भागते, मानवता के प्रति समर्पित हैं । जौनपुर की वेश्या मलका से विवाह करके उसे श्रीमती माया शर्मा के नाम से समाज में प्रतिष्ठा दिलाने वाला व्यक्ति माया शर्मा के साथ स्वयं भी कांग्रेस का सक्रिय कार्यकर्ता है और कानपुर उसका कार्य क्षेत्र है ।

पाँचवाँ खंड:-

प्रस्तुत कथाकृति के पाँचवे खंड में इलाहाबाद का चित्रण है ।

युनीवर्सिटी रोड पर लड़कों की भीड़ बढ़ती जा रही है । ज्वाला प्रसाद का पौत्र नवल किशोर, जो अब प्रयाग विश्वविद्यालय का छात्र है, कहता है, "- - - -कितना उत्साह है इन लोगों में । अपना अपना घर छोड़कर, प्रान्त के विभिन्न नगरों से किस उत्साह और किस उमंग को लेकर आये हैं ये लोग ! कितने प्रसन्न हैं ।"[44] पर उसके मित्र प्रेमशंकर का अनुभव कहता है, "लेकिन इस उत्साह और उमंग की तह में है क्या ? परीक्षा पास करना, अच्छा डिवीजन पाना और फिर नौकरी की तलाश में दर-दर घूमना । मुझे तो यह सब देखकर अजीब लगता है, कितनी विडम्बना है इस सब में ।"[45]

प्रेमशंकर जैसे अनेकों लड़के फर्स्ट डिवीजन में एम०ए० पास करते हैं, नौकरी के लिए दरखास्तें भेजते रहते हैं, नौकरी नहीं मिलती । कहीं-कहीं प्राइवेट स्कूलों में नौकरी मिलती भी है तो शर्त होती है कि दस्तखत नब्बे रुपये की तनख्वाह पर करने पड़ेंगे और मिलेंगे पचास रुपये ।

प्रदेश की राजधानी होने के नाते इलाहाबाद एक तरह से उच्च वर्गों -- पुराने रईसों, अफसरों, बड़े-बड़े वकीलों आदि का शहर है । एक हैं

43	- सीधे सच्चे लोग (?) भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा	पृष्ठ 536
44	- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा	पृष्ठ 641
45	- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा	पृष्ठ 641

रायबहादुर कामतानाथ, यहाँ मुट्ठीगंज में रहते हैं । बाहर से उनकी कोठी बड़ी साधारण लगती है -- एक लम्बी सी दीवार और उस दीवार से मिली हुई अनगिनत झोपड़ीनुमा दुकानें । इस दीवार के बीचो बीच एक बड़ा फाटक है और उस फाटक में घुस कर एक बगीचा । भीतर रायबहादुर की दुमंजिली कोठी है जिसका अगला हिस्सा पत्थरों से बना हुआ है । इस मुख्य कोठी में भी एक फाटक है और फाटक के अन्दर बगीचा । बगीचा समाप्त होते ही जनानी ड्योढ़ी शुरु होती है । बाहर वाले हिस्से को मरदानी ड्योढ़ी कहा जाता है ।

ऐसे घरों में, परिवार में काफी स्वतंत्रता है -- ससुर, सास, बहुएं, बेटियाँ सब साथ बैठकर बातें करते हैं, मेज पर साथ-साथ खाते हैं ।जीवन पद्धति बहुत कुछ पाश्चात्य ढंग पर है । पुत्री उषा के जन्म दिन पर मोमबत्तियों से सजा केक काटा जाता है । आमंत्रित अभ्यागतों में स्त्री-पुरुष सभी आपस में हँसी-मजाक करते हुए बातें करते हैं ।

यहाँ के इस वर्ग के पुरुष विचारों में प्रगतिशील हैं पर स्त्रियाँ अभी परम्परावादी हैं । रायसाहब इस बार गर्मी स्विट्जरलैण्ड में बिताना चाहते हैं और पुत्री उषा भी साथ जाना चाहती है । राय साहब को कोई आपत्ति नहीं है पर उनकी पत्नी इसका विरोध करती है, "जाय तो तुम्हारे साथ मैं इसे झोंटा पकड़ कर खींच लाऊँगी । अंधेर हो गया, लड़कियाँ विलायत जाने लगीं ।"[46]

डिप्टीकलक्टर गंगा प्रसाद का बंगला जार्जटाउन में है । पर उनका पुत्र नवल किशोर 'म्योर हास्टेल' में रहकर विश्वविद्यालय में पढ़ता है । उसका विवाह एक प्रकार से रायबहादुर कामतानाथ की पुत्री उषा से तय है -- यह नवल भी जानता है और उषा भी । दोनों का दोनों के घर आना जाना, मिलना-जुलना होता रहता है । बड़े आदमियों के समाज में काफी स्वतंत्रता और प्रगतिशीलता के दर्शन होते हैं । वहाँ समस्या जैसी कोई चीज नहीं है । हर वस्तु का विकल्प है -- व्यक्ति का भी । परिस्थितियों के

---

§46§- टूटे बिखरे चित्र : भगवती चरण वर्मा § पृष्ठ 598 §

कारण नवल उषा के वर योग्य पात्रता अर्जित करपाने में असमर्थ रहता है तो राजेन्द्र किशोर आई०सी०एस० उसका स्थानापन्न हो सकता है ।

समस्या है मध्य वर्ग में -- हर तरह की समस्या । प्रेमशंकर का कथन प्रमाण है --'यह आजकल का जीवन कितना उलझा हुआ है । साफ कपड़े चाहिए, और किसी चीज़ में मन जमाने के लिए सिगरेट चाहिए ।- - - इस चाहिए के पीछे पैसा है ।' वही पैसा आज की समस्या है ।

गंगा प्रसाद के न रहने पर इन तमाम समस्याओं का सामना नवल को भी करना पड़ता है ---- भावना के स्तर से लेकर भौतिक जीवन तक । एक दम से नवल किशोर फूट पड़ता है, "- - - - - - - दिन भर यह उपदेश सुनता रहा हूँ कि आत्मरक्षा ही मनुष्य का एक मात्र धर्म है, कर्तव्य है ।"[47] "- - - - - - - उसके पिता का साथ कौन देगा यदि उस पिता का पुत्र ही उसका साथ देने से इन्कार कर दे ।"[48] और फिर बहन के विवाह के लिए पैसे की समस्या से जूझना पड़ता है । दहेज की परम्परा इन घरों में भी है । नवल का बहन की शादी जिस लड़के से तय हुई है वह पी०सी०एस० में आ गया है अतः चार हज़ार नकद और चार हज़ार का सामान तिलक में चढ़ाना होगा ।

इन बड़े आदमियों के सम्बन्ध भी व्यापार का एक रूप हैं । पैसे की यहाँ प्रमुख भूमिका है । राय बहादुर साहब अपने पैसों से नवल को, भावी जमाता को, खरीदना चाहते हैं । वह कहते हैं, "मैं ठीक करूँगा इसे । शादी अप्रैल में हो जानी चाहिए, - - - - - - और मैं उषा के साथ इसे रवाना कर दूँगा विलायत । उषा के नाम मैंने पचास हज़ार जमा कर दिये हैं ।"[49] सिध्देश्वरी रूपया और बंगला देकर प्रेमशंकर से अपनी लंगड़ी बहन की शादी करना चाहता है । विन्देश्वरी प्रसाद डिस्ट्रिक्ट एंड सेशन जज, अपने लड़के के 'तिलक' को देखकर कहते हैं, "जब औकात नहीं थी तब मेरे यहाँ शादी तय

---

(47)- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा (पृष्ठ 620)
(48)- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा (पृष्ठ 617)
(49)- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा (पृष्ठ 689)

करने की क्या जरूरत थी ? - - - - - - हम लोगों की नाक कटवा दी तुमने ।"[50]

ग्रामीण परिवेश से आये हुए लोगों में मानवीयता और सहृदयता के दर्शन होते हैं भले ही उनकी उम्र शहरों में कटी हो । दहेज के रुपये कम पड़ने पर नवल के घर का पुराना नौकर अपने जीवन भर की जमा जथा एक टीन के बक्से में लाकर देकर कहता है, "भइया विद्या बिटिया के लिये हमार यू कन्यादान आय ।"[51]

शहर की संस्कृति उपभोक्ता संस्कृति है । कामतानाथ का पुत्र सीतानाथ कहता है, "यह जमाना तिजारत का है - - - - यह ठेकेदारी, यह तिजारत - - - - बिना खुशामद और रिश्वत के कहीं चलते हैं ये सब । कौन अफसर है जो रिश्वत नहीं लेता, चाहे अंग्रेज हो चाहे हिन्दुस्तानी ? लेकिन रिश्वत देना और खुशामद करना एक हुनर है हुजूर ।"[52] प्रेमशंकर को वकील बनाकर जज सिध्देश्वरी प्रसाद उनके माध्यम से रिश्वत लेते हैं । प्रेमशंकर वकील न होकर दलाल बन गया है जैसे ।

समय सब कहीं बदल रहा है, इलाहाबाद जैसे शहरों में भी । संक्रान्ति काल के चिन्ह स्पष्ट हो चले हैं । पुराना या तो नष्ट हो रहा है या छूटता जा रहा है । नये मूल्य, नई दृष्टि स्थापित होने के प्रयत्न स्पष्ट दीख रहे हैं । इस चौथी पीढ़ी में आकर लड़की अब वस्तु नहीं रह गई है, वह अपनी अस्मिता के प्रति सजग हो गई है । विद्या अपने भाई से पूछती है, "- - - मेरे विवाह में कितना दहेज दिया जा रहा है ।"[53] अन्त में वह कहती है, "दादा मेरा विवाह तुम यहाँ मत करो, और मैं विवाह करना भी नहीं चाहती ।"[54] वह कहती है, "दादा, मुझे बी०ए० तो पास करवा दोगे ?"[55] जीवन की विसंगति झेलती हुई वह अन्त में 'नारी शिक्षा सदन' में अध्यापिका हो जाती हैं

---

(50)- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा (पृष्ठ 646)
(51)- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा (पृष्ठ 651)
(52)- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा (पृष्ठ 677)
(53)- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा (पृष्ठ 643)
(54)- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा (पृष्ठ 644)
(55)- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा (पृष्ठ 645)

और कहती है, "अपने पैरों पर मैं खुद खड़ी हो रही हूँ, इस पर मुझे गर्व है ।"[56] दूसरे क्या कहेंगे इसकी उसे चिन्ता नहीं है ।

आज के संदर्भ में नवल का कथन सत्य है "और दूसरों के पास इतना अवकाश कहाँ है उषा रानी, जो इस पर टीका टिप्पणी करते घूमें । जो लोग विद्या पर उँगलियाँ उठावेंगे वे पुरानी दुनिया के लोग होंगे — उस पुरानी दुनिया के, जो मिट रही है । जहाँ तक नई दुनिया वालों का सवाल है वे लोग इसे ठीक समझेंगे, वे लोग विद्या का आदर करेंगे । स्त्री का भी अपना एक अस्तित्व है ।"[57]

इलाहाबाद में कांग्रेस द्वारा नमक कानून तोड़ कर स्वदेशी आन्दोलन शुरु हो रहा है — नवल उसमें शामिल हो जाता है । भीखू, जिसने कम से कम तीन पीढ़िया देखी हैं, कहता है "कुछ समझ माँ नाहीं आवत भइया । ई नवल बिटवा अपनी खुशी से जेल जाय रहा है, ई विद्या बिटिया नौकरी करै लागी हैं ।- - - - - - - ई सब का हुइ रहा है ।"[58] ज्वाला प्रसाद के समझ में भी कुछ नहीं आ रहा है ।

इस संक्रान्ति वेला में दो बूढ़े ज्वाला प्रसाद और भीखू 'जिन्होंने युग देखा था, अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे, जिनके पास अनुभवों का भंडार था, विवश थे, निरुत्तर थे । और दूर हजारों, लाखों, करोड़ों आदमी जीवन और गति से प्रेरित नवीन उमंग और उल्लास लिए हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे थे ।"[59]

चतुष्क । 1969 ई0 ।

एक पात्र विशेष - दादा, मिलन कुमार चट्टोपाध्याय के अन्तर्विश्लेषण एवं बाह्य प्रेक्षक दृष्टि द्वारा प्रस्तुत पहाड़ी अंचल का एक चित्र प्रस्तुत

।56।- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा । पृष्ठ 726 ।
।57।- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा । पृष्ठ 727 ।
।58।- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा । पृष्ठ 748 ।
।59।- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा । पृष्ठ 759 ।

करती है यह कथाकृति 'ऋतुचक्र', एक अनाम पर्वत प्रदेश का ।

यहाँ पर एक होटल है 'देवदारु विहार', पहाड़ी बोलचाल की भाषा में 'धुँदार होटल' । जिसके मालिक हैं मैदान में रहने वाले 'धरमदास- एक अनुभवी और घुटे हुए सफल व्यवसायी' । इस होटल के मैनेजर एक पहाड़ी व्यक्ति हैं --- 'राम बाबू' जो सफेद चूड़ीदार पायजामा के ऊपर खुले कालर का गरम कोट और सिर पर किश्तीनुमा टोपी पहनते हैं ।

इस 'अर्धविकसित पहाड़ी क्षेत्र' में बिजली आ चुकी है । यहाँ की छोटी सी बाजार की कुछ दुकानें ट्यूब की रोशनी से झलमला रही है, कुछ 'पंद्रह कैंडल पावर वाली' धुंधली रोशनी से टिमटिमा रही हैं, कुछ ऐसी भी हैं जहाँ ढिबरिया धुँआ उगल रही हैं । कुन्दन सब्जीवाले की दुकान में पुरानी और टूटी हुई लालटेन जल रही है । पहाड़ के परिचितों को ये दुकानदार शिष्टाचार के तौर पर हुक्का पेश करते हैं -- हाँ, पीने वाली नलो की जगह पर मोटे कागज की पाइप बना कर, ताकि शुध्दता की रक्षा होती रहे ।

जीवन संघर्ष को लेकर कुन्दन सब्जी वाले जैसे लोग त्रस्त हैं पर जिन्दादिली भी कम नहीं है पहाड़ी लोगों में । इसी 'कुन्दन' की छत के ऊपर रहने वाले परिवार की औरतें 'ढोलकी', मजीरे और ताल पर ताली बजाती हुई गाती सुनी जा सकती हैं --

सैंया गये बड़ी लम्बी सफर को
सैंया गये - - - - - - - - -
जेठ लाये बुढ़िया, देवर लाये जवनिया
सैंया लाये रे साढ़े बारह बरस की ।
सैंया गए - - - - - - - - - 60

बस्ती के बाहर बाँज और देवदारु के जंगलों में पगडंडी पर किसी चरवाहे का नौजवान छोकरा, मटमैले रंग का कालरदार कोट और उसी रंग का चुस्त पाजामा पहने एक पतली सी बेंतनुमा छड़ी हाथ में लिए गायों

160। - ऋतुचक्र : इलाचन्द्र जोशी । पृष्ठ - 38 ।

और भैंसों को दिन भर चराने के बाद वापस जा रहा होता है और भटकी हुई गायों को बुलाने के लिए वह 'हे-हे-हे । हें-हें-हें--गुलि-गुलि-गुलि । हा-ा-ा-ा-ा' की विचित्र ध्वनि निकालता है और बीच बीच में वह बाँसुरी पर 'लम्बा विलम्बित पहाड़ी राग' बजाने लगता है । कभी कभी वह टीले के ऊपर से गाने लगता है --

'पराण की टेर मेरी कौ भागी सुण लो'
।मेरे व्याकुल प्राणों की पुकार कौन स्नेहशीला सुन्दरी सुनेगी ?।

दूसरे ही क्षण टीले के उस पार से उसी धुन उसी ताल और उसी लय में किसी लड़की का प्रत्युत्तर सुनाई पड़ जाता है --

'जैका जीया लागी होली सुण्नै हुनलो'
।जिसके जी में लग रही होगी वही सुन रहा होगा।[61]

प्रत्युत्तर दे रही है अठारह - बीस साल की एक गोरी नवयुवती, काले लँहगे के ऊपर चादर की तरह सफेद रंग की मैली "पिछौरी" का आधा भाग कमर में लपेटे और आधे भाग को सिर पर बाँधे, सुनाई पड़ने वाली प्रत्येक कड़ी का 'दो टूक स्पष्ट और आशु उत्तर' दे रही है । वह पहाड़ी जंगल से कटीली लकड़ी इकट्ठा करके घर लाया करती हैं ।

पुराने जमाने में इस पहाड़ी अंचल में पचहत्तर साल की उम्र में भी लोग शादी किया करते थे --- 'जितनी लड़कियाँ चाहो मिल जाती थीं ।' अब यहाँ भी जमाना बदल गया है, लड़कियाँ नहीं मिलतीं । इस अंचल में पंद्रह सोलह साल से बड़ी अविवाहित लड़की नहीं मिलती । इन्टर पास तक की शिक्षित लड़कियाँ यहाँ उंगलियों पर हैं । "सोनी" जैसी स्वच्छन्द स्वभाव वाली लड़कियाँ, मस्त और अपने ही धुन में रहने वाली, पहाड़ पर मुश्किल से ही मिलेंगी । ऐसी लड़कियाँ पहाड़ पर "निर्लज्ज और उच्छृंखल" तथा "समाज की शान्ति भंग करने वाली" समझी जाती हैं ।

मैदान से इस पहाड़ पर अनेक प्रकार के लोग भिन्न भिन्न उद्देश्य से आते हैं । इस पहाड़ पर "विभा" जैसी अस्तित्व वादिनी महिला, जीवन की

।61।- मनुष्य : इलाचन्द्र जोशी ।पृष्ठ 22।

विसंगति को परे ठेल कर मन बदलने आई है और चित्रा का पीछा करते करते नकुलेश, अस्तित्ववादी कवि । नीचे धौलाधार में 'जाग्रत देवी' 'यक्षिणी' का मन्दिर है । नकुलेश को धौलाधार 'रोमान्टिक' और रमणीक स्थान लगता है ---- 'ऊपर झरना है, नीचे नदी है, एक ओर मन्दिर है दूसरी ओर एक सन्त बाबा की कुटिया ।'[62] जौहरी गिडवानी पहाड़ पर आता है कुछ व्यवसाय के सिलसिले में कुछ चित्रा जैसी मुक्त युवतियों के सम्पर्क लोभ में । जीवन मूल्यों की भूल भुलैया से आक्रान्त होकर इस पहाड़ी अंचल में सदा के लिए बस जाने के लिए मेरठ कालेज की प्रिंसिपल डा० प्रतिमा खन्ना यहाँ आती है ।

पहाड़ी शिष्टाचार में बाहरी महिलाओं को बीबी जी कहा जाता है । दादा का नौकर देवसिंह प्रतिमा को बीबी जी कहता है ।

यहाँ लोगों में मेला देखने के लिए बड़ा उत्साह है । महीनों पहले से उसकी तैयारी और प्रतीक्षा करते रहते हैं । किसान खेतों की चिन्ता छोड़कर मजदूर मजदूरी का लोभ त्याग कर, परिवार वाले घर का धंधा छोड़कर एक पूरा दिन "निश्चिन्त भाव से जीवन के मुक्त आनन्द के बीच बिताने के लिए" चल पड़ते हैं । पहाड़ी पगडंडियों से होकर दल के दल स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े, जवान सभी सज-धज कर चल देते हैं । अधिकांश युवक सफेद कमीज़ के ऊपर खुले गले का कोट और नीचे 'चुस्त पाजामा' पहने होते हैं । कुछ गले में रंगीन मफलर लपेटे हैं, सिर पर सफेद पगड़ी है या रंगीन रेशमी रूमाल । स्त्रियाँ रंगीन पिछौरी के भीतर चुस्त अँगिया और घेरेदार लहँगा पहने हैं, सभी के नाक से लेकर ऊपर कपाल तक लम्बा लाल टीका लगा हुआ है । अधिकांश युवतियाँ काली अँगिया और गले में झालरदार हँसुली पहने हैं । अनेक स्त्रियाँ सिर पर गठरी लिये चल रही हैं, बच्चे उछलते कूदते चल रहे हैं । सड़क के दोनों ओर से 'व्दां-व्दां टुक्की ! व्दां - व्दां टुक्की' की आवाज़ करते हुए अलग अलग हुड़कें झमाझम बज रहे हैं, अलग अलग बाँसुरियाँ भी बज रही हैं । बीच बीच में मेला यात्रियों के गिरोह हुड़का और बाँसुरी के सहयोग से 'उद्दाम प्रेम का मुक्तगीत' कोरस में गा रहे हैं । बीच बीच में स्त्रियों की 'ओ ललिया गिरैया ।' 'ओ रघुआ, पारबती कहाँ गई' जैसी आवाजें सुनाई पड़ जाती हैं ।

-62।- वही : इलाचन्द्र जोशी । पृष्ठ 45 ।

रास्ते में पड़े 'मटियापाणी' गाँव के लोग कुछ मेले में जाने की तैयारी में हैं, कुछ गायों भैंसों को पानी दे रहे हैं। कहीं कुछ स्त्रियाँ अपनी छोटी अँगनाई में पत्थर की ओखल में धान कूट रही हैं।

नदी के समतलप्राय तट पर एक ओर मिठाइयों, खिलौनों, कपड़ों और बर्तनों की दुकानें सजी हुई हैं। छैल-छबीले युवक और रंगीली सुकुमारी युवतियाँ एक किनारे से आ रहे हैं और दूसरे किनारे से जा रहे हैं। बीच बीच में आने जाने वालों की टोलियाँ नाच गा रही हैं, कहीं स्त्रियाँ घेरा डाल कर झोड़े गा रही हैं।

इन मेलों में कई शादियाँ भी तय हो जाती हैं। जवान लड़कियाँ कतार बाँध कर खड़ी रहती है। गवैये उनके आगे गोल बाँध कर खड़े हो जाते हैं। कोई गवैया किसी सुन्दरी विशेष को लक्ष्य करके उसके रूप गुण से सम्बन्धित आशु पद बनाता, गाता जाता है। इसी तरह कुछ जोड़े परस्पर प्रभावित होकर एक दूसरे के जीवन संगी बन जाते हैं। होटल-मैनेजर रामबाबू का 'मटियापाणी' की 'सोनी' के साथ इसी तरह विवाह तय हुआ है।

मैदान के बड़े शहरों से आये हुए चित्रा, नकुलेश प्रतिमा आदि पिकनिक और मेला दोनों का आनन्द उठाते हैं। होटल के मैनेजर रामबाबू को अपने पूर्वजों का साधारण किसानों का ईमानदार और संतोषी जीवन पसन्द है, पर समय की माँग के अनुसार वे होटल के मैनेजरी का बनावटी और अस्वाभाविक जीवन जीने को बाध्य हैं। वैसे मेले आदि में उनका स्वाभाविक पहाड़ी रूप उभर आता है और [illegible] पहाड़ियों की तरह नाचते भी हैं और गाते भी हैं।

पहाड़ पर कुछ पुराने प्रतिष्ठित सम्पन्न परिवार अपनी परम्परा के साथ अभी भी रहते हैं -- चाचा रामकिशन ऐसे ही हैं। अपने मकान के अतिरिक्त आधुनिक सुविधा से युक्त उनका एक 'गेस्ट हाउस' है, उनके अपने [illegible] के बाग हैं। अठहत्तर वर्ष के होकर भी उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। वे घर का घी और घर के ही तम्बाकू का सेवन करते हैं। अतिथि वत्सलता उनका स्वभाव एवं गुण है। अतिथि के लिए एक अलग हुक्के का प्रबंध भी उनके यहाँ है। वे अपना गेस्ट हाउस दादा को रहने को देते हैं पर किराये की बात [illegible] उनकी "दिमाग

की नसों को चढ़ा देती है।"[63]

यहाँ के साधरण घरों की स्त्रियाँ बड़ी कर्मठ हैं। जानकी के पति की छोटी सी दुकान थी पर अब वह लँगड़ा हो गया है अतः दुकान नहीं कर सकता। जानकी सब्जी, फल, घी दूध बेच कर, घास काट कर जैसे तैसे घर भर का भरण-पोषण करती है। कभी कभी उसे कर्ज भी लेना पड़ जाता है फिर भी वह दीन नहीं है। वह कहती है, "अभी भगवान ने मुझे इतनी सुविधा दे रखी है कि मैं वखत से लोगों का कर्जा चुका सकती हूँ।"[64]

अब इन साधारण पहाड़ियों के घर की लड़कियों में शिक्षा का प्रसार हो रहा है। जानकी की एक लड़की, लड़कियों के एक विद्यालय में पढ़ाती है। छोटी लड़की को भी प्राथमिक विद्यालय में नौकरी मिलने की आशा है।

पहाड़ के इस छोटे से अँचल में समर्पित मधुर दाम्पत्य की अनुपम झाँकी मिलती है जानकी और उसके पति के बीच। दुकान से पति के लौटने पर जानकी उसे गरम गरम दूध का गिलास थमा देती तो बुड्ढा कहता, "खेमा की अम्मा, तुम बहुत थक गई हो, और मैंने कभी तुम्हें दूध पीते नहीं देखा। देखो कहना मान जाओ, यह दूध तुम पी लो, मैं अभी दुकान से चाय पीकर आया हूँ।"[65] घर आते समय बुड्ढा बच्चों से चुरा कर पत्नी के लिए मलाई के लड्डू, खजूर या बालूशाही ले आता। जानकी कहती है, "आज लँगड़ा हो गया है इसी लिए उसकी सेवा टहल पहले से भी ज्यादा जरूरी हो गई है। अब उसे मैं पहले से भी ज्यादा दूध पिलाती हूँ – – – – – बीच-बीच में मिठाई मँगाकर उसे चुपचाप खिला देती हूँ। मलाई और घी में उसी का ज्यादा हिस्सा रखती हूँ।"[66]

यहाँ की बुढ़ियाँ बड़ी 'घाघ' हैं। लछमी दूर से ही एक झलक देखने पर सब कुछ जान जाती है। स्टेशन से उतरती हुई शहर की उस छोकरी को देखते ही उसने बताया कि 'शायद छोकरी को पेट रह गया है।'[67] भैरव

163- बहुरूप : इलाचन्द्र जोशी : पृष्ठ 514 :
164- बहुरूप : इलाचन्द्र जोशी : पृष्ठ 444 :
165- बहुरूप : इलाचन्द्र जोशी : पृष्ठ 443 :
166- बहुरूप : इलाचन्द्र जोशी : पृष्ठ 442 :
167- बहुरूप : इलाचन्द्र जोशी : पृष्ठ 444 :

शहर से पहाड़ आई हुई प्रतिमा कहती है, "बड़े विकट हैं यहाँ के साधारण लोग भी । मैं तो पहाड़ी लोगों को बड़ा सीधा समझती थी ।"[68] दादा स्पष्ट करते हैं, "छोटी सी तो जगह है, यहाँ किसी की कोई बात किसी से छिपी नहीं रह सकती ।"[69]

बदलते समय का प्रभाव इस पहाड़ी क्षेत्र पर भी पड़ रहा है । पहाड़ का एक युवक कहता है, "यहाँ के आदमी बाघ से भी बढ़ कर बाघ हो गए हैं । अभी उसी दिन दयौदार होटल का एक आदमी भरी चाँदनी में ऊपर 'किशकिट' पर गोली से मार डाला गया ।"[70]

ऊपर ऊपर से बदलते समय ने पहाड़ी अंचल पर जो भी प्रभाव डाला हो अन्तर से वह सहज प्रकृति अनुगामी है । बरसते पानी में गायों को गोठ की ओर भागते देखकर बालक सम्मिलित स्वर में गा उठते हैं --

द्यौ लागो दण - दण
बुड़ी भाजी बण - बण ।
ले बुड़ी -- बाजा
त्यारा गोरू भाजा ।"[71]

दण - दण के स्वर में पानी बरसने लगा है, बुढ़िया बन - बन भागी फिर रही है । अरी बुढ़िया चिन्तित मत हो । ले तनिक बाजा ले जा और तेरी जो गायें भाग गई हैं उन्हें खोज । ।

क्वार में पहाड़ों में रामलीला होती है । पर इधर रामलीला कमेटी में दो दल हो गये हैं -- झगड़े चल रहे हैं । इस बार रामलीला हो पाती है या नहीं ?

क्वार के बाद से ही वन जंगली फूलों के गुच्छों से भर उठते हैं । घांगर के फूलों की मतवाली गंध भौरों को आमंत्रित करने लगती है । अखरोट की डालें फलों के भार से झुकने लगती हैं । 'मगसिर' पहाड़ पर शादियों का मौसम है । रामबाबू का विवाह भी मगसिर में होने को है । पूस का महीना पहाड़ पर कड़ा ठण्डा और सूखे मौसम की सृष्टि करता है । माघ में आकाश

।68।- ऋतुचक्र : इलाचन्द्र जोशी । पृष्ठ 465 ।
।69।- वही, ।70।- ऋतुचक्र : इलाचन्द्र जोशी । पृष्ठ 468 ।
।71।- मुक्तिपथ : इलाचन्द्र जोशी । पृष्ठ 525 ।

से 'हिमफूल' झरते हैं। बसन्त में पहाड़ सरसों के पीले फूलों से भर उठता है। फागुन - चैत में फलों के पेड़ फिर हरे - भरे हो उठते हैं और सफेद, गुलाबी फूलों से भर उठते हैं। 'जितने फूल उतने ही फल' -- ठीकेदार फूलों से फलों का अनुमान लगा कर फसल के दाम लगाता है। बैशाख के अन्त तक सारे पेड़ फलों से लद उठते हैं और जेठ लगते लगते टूरिस्टों का आना प्रारम्भ हो जाता है और पहाड़ और होटल आबाद होने लगते हैं। पहाड़ के इस ऋतुचक्र पर प्रकृति का अनुशासन है जिसे आधुनिक बाह्य तत्व प्रभावित या परिवर्तित कर पाने में असमर्थ हैं।

मेरी तेरी उसकी बात (1974 ई0)

यशपाल कृत 'मेरी तेरी उसकी बात' प्रमुख रूप से लखनऊ की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी बृहद् कलेवरा एक सामाजिक एवं राजनैतिक गाथा है जिसमें बनारस, बलिया और बम्बई के प्रासंगिक वर्णन भी आये हैं। लगभग पंद्रह-बीस वर्ष की अवधि (लगभग सन 1929 से 1945 तक) का लखनऊ प्रस्तुत कथाकृति में चित्रित है।

कथानायक अमर का घर राजाबाजार के पश्चिम में, छोटी गली में है। इस छोटी गली के बसने से पहले यहाँ घोसियों धोबियों और पतंग साजों के कच्चे मकान थे, पड़ती जमीन पुराने नवाबी खानदानों के तंगहाल वारिसों की सम्पत्ति थी। नवाबी रक्त का दम भरने वाले ये लोग अब छोटी छोटी दस्तकारियों से निर्वाह करते हैं। राजा-बाजार की इस गली में सेठ रतन लाल, कोहली वकील, खन्ना परिवार आदि पुराने रहने वाले हैं। कुछ लोग अब यहाँ किराये पर मकान लेकर रहने लगे हैं। ठाकुर साहब स्वयं किराये के मकान में रहते हैं पर उन्होंने मास्टर मथुरा प्रसाद को 'शिकमी किरायेदार' के रूप में रख लिया है---मास्टर मथुरा प्रसाद आलमगीर ड्योढ़ी के पुरानी हाई स्कूल में बदली होकर आये हैं।

लखनऊ का यह मुहल्ला पुरानी मान्यताओं और रूढ़ियों को लेकर चलता है। यहाँ के परम्परानुगामी सवर्ण हिन्दू घरों में नल का पानी अपवित्र माना जाता है, ये डाक्टरी दवा से भी परहेज करते हैं -- क्योंकि दवाखानों में दवा नल के पानी से तैयार की जाती है। हिन्दुओं की इस आशंका के समाधान के लिए अमीनाबाद, नैतखाना आदि में केमिस्टों की दुकानों के दरवाजों पर और भीतर कुएँ के पानी से भरे, लाल शीशे के बड़े पीतल के बड़े बड़े मटके और कंडाल रखे

रहते हैं ।

यद्यपि इस गली में सेठ और कोहलियों के घर नल और बिजली लग गई है, अभी तक लखनऊ के हर गली मुहल्लों में पानी के पाइप की फिटिंग नहीं हुई है । अतः गली मुहल्लों में हिन्दू के यहाँ कंधे पर अँगौछा रखे कहार तांबे, लोहे, पीतल के गगरों से और मुसलमान परिवारों में कमर पर हरा नीला अँगौछा बांधे भिश्ती चमड़े की मशकों से पानी पहुँचाते हैं । इसी प्रकार रेलवे स्टेशनों पर भी हिन्दू और मुसलमानों के लिए अलग अलग पानी की व्यवस्था है ।

इन हिन्दू घरों में मुसलमान मेहमानों के लिए अलग कांच के गिलास आदि हुआ करते हैं । सेठ जी के घर मुस्लिम मेहमानों के लिए एक अलग आलमारी में कांच के गिलास आदि रखे रहते हैं । ब्राह्मण, खत्री, बनिया और ठाकुर परिवारों में शीशे, चीनी मिट्टी के बर्तनों को अपवित्र माना जाता है । मुसलमान भी अपने हिन्दू मित्रों के इस धर्म ।9। की रक्षा करते हैं । मुसलमान आत्मीय-परिचित के घर रतन लाल सेठ और उनके पुत्र का आतिथ्य करने के लिये मेजबान हिन्दू लड़के से बाजार से दोने में पान मँगा कर पेश करते हैं ।

इस छुआ-छूत के बावजूद भी हिन्दू-मुसलमानों में न सौहार्द की कमी है और न भाई-चारे में संकोच । सेठ जी के बड़े परिवार में सभी हिन्दू त्योहार तो धूम से मनाये ही जाते हैं, "मुसलमान सुरका से राह रसूख" के कारण ईद, बकरीद, शब्बेरात भी मनाये जाते । मुहर्रम और निर्जला एकादशी पर राजा बाजार की ओर से एकाध नाले के पुल पर केवड़ा मिले शरबत की "पंचायती छबील" लगती है ।

इन मुहल्लों की स्त्री-लड़कियों में पढ़ने का चलन नहीं के बराबर है । बल्कि पुराने लोगों के विचार से लड़कियों को पढ़ाना-लिखाना चरित्र के लिए आशंका का जनक माना जाता है । पर अब विचार धारा बदल रही है — कोहली वकील ने अपनी बेटियों भतीजियों को पढ़ाने लिखाने की व्यवस्था घर पर कर रखी है । लोगों के घरों में विविध टाइप की पुस्तकें पायी जाती हैं — सेठ जी के संग्रह में रामायण, भागवत, प्रेमसागर, चन्द्रकान्ता सन्तति के सब भाग, ऐसी ही गिनी चुनी पुस्तकें हैं । मास्टर जी के यहाँ सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेद भाष्य की भूमिका, महापुरुषों की जीवनियाँ — ऐसी पुस्तकें हैं । सबसे अधिक पुस्तकें कोहलियों के घर हैं — कुछ धार्मिक पुस्तकें, ढेरों उपन्यास — भूतनाथ, मनोरंजन पुस्तक माला, जासूसी

उपन्यास मालायें, लन्दन रहस्य, पेरिस रहस्य आदि ।

यहाँ लखनऊ में पर्दे का चलन हिन्दू और मुसलमान दोनों में अपने अपने ढंग से है । पुरुष मेहमान आने पर और घर में मर्दों के न होने पर घर की उम्रदार स्त्रियाँ पर्दे की आड़ से बात कर लेती हैं पर घर की लड़कियाँ और स्त्रियाँ पर्दे में रहतीं । रज़ा के घर में रज़ा की अनुपस्थिति में अमर के पहुँचने पर उसकी माँ अमर से पर्दे की आड़ से बात कर लेती हैं । अस्पताल में भी मुस्लिम स्त्रियाँ डाक्टरों को आँख, कान, नाक, ज़ुबान या गला दिखाने की मजबूरी में भी बुरका हटाने में हिचकती हैं ।

हिन्दू घरों में सम्भ्रान्त बहू-बेटियों के लिए साड़ी पर चादर लेने का रिवाज़ है । जो लड़कियाँ और बहुयें ऐसा नहीं करतीं, मुहल्ले, खानदानवाले उनपर टीका-टिप्पणी करते हैं । कोहली साहब की बड़ी बेटी जयरानी दिल्ली से आई है । उसने महीन धोती के नीचे 'पायजामे के ढंग का घुटनों तक लम्बा दराज' पहन रखा है । जिसे देखकर गली की लड़कियाँ, स्त्रियाँ आश्चर्य से कहती है, "दैया रे- - - - - खत्री बनियों के घर जनाना पायजामा पहरें - - - - ।"[72] बन्नों की डोकर कहती है, "अनी मेमों के फैशन करें और कहें पर्देदारी ।'- - - - ऐसी पर्दे वाली होती तो मुँह - मत्था उघाड़े गली-बाजार डोलतीं ।"[73] उसके 'बम्बइया ढंग से उलटे हाथ दोहर फेर ढँककर' साड़ी पर चादर न लिये देखकर बन्ना बहू, किसन-लाल की बहू की ओर देखकर कहती है, "हमें तो लगा मुजरा उजरा होगा - - - - - ।"[74] छोटी गली ऐसे मुहल्लों में लड़कियों में स्कर्ट, फ्रॉक का भी चलन नहीं है । पूरी गली में कोहलियों के महेन्द्र, नरेन्द्र और सेठ का पुत्र अमर ही पैन्ट पहनते हैं ।

इस पूरे पुराने शहर में परम्परा समर्थक लोगों की राय हज़रतगंज के बारे में अच्छी नहीं है । भले घर की बहू बेटियों के उधर जाने का सवाल ही नहीं है । नौजवानों का भी हज़रत गंज में घूमना अच्छा नहीं समझा जाता है । वहाँ 'मेमें और किरस्तान छोकरियाँ उघाड़े मुँह-सिर, नंगी बाहें - टाँगे घूमती फिरती

---

[72]- तेरी मेरी उसकी बात : यशपाल । पृष्ठ 107 ।
[73]- तेरी मेरी उसकी बात : यशपाल । पृष्ठ 108 ।
[74]- तेरी मेरी उसकी बात : यशपाल । पृष्ठ 109 ।

हैं । देसी मेम साहब लोग भी खुले सिर-मुँह, ऊँची एड़ी के जूते पहने आती - जाती हैं । उनके हवाघर §क्लब§ में मर्द - औरत शराब पीकर साथ नाचते हैं ।'75 देसी लोग वहाँ तमाशबीनी के लिए जाते हैं । §इस काल के लखनऊ में§ हजरत गंज में भीड़-भाड़ नहीं है । दुकानों के सामने फुटपाथों पर दुकानें भी नहीं है । विलायती कम्पनियाँ —'ह्वाइटवे' 'आर्मी ऐण्ड नेवी स्टोर' 'स्पेन्सर' की बड़ी बड़ी दुकानें 'युरोपियनों के मसरफ' की चीजें बेचने वाली दुकानें हैं ।

लखनऊ के सामान्य जीवन के सामाजिक नियम बड़े कठोर एवं समाज सापेक्ष हैं । परन्तु अपने अपने ढंग के व्यक्तिगत जीवन जीने की झलकियाँ मिल जाती हैं जहाँ 'कायदा यही कि इश्क तफरीह अपनी जगह, घर गिरस्थी अपनी जगह ।'76

रतन लाल सेठ स्वयं 'इश्क तफरीह' या दिल नवाजी के लिए 'इंशा' नामक तवायफ के यहाँ जाते हैं । इंशा की माँ को 'खानदानी' होने का गर्व है । खानदानी वेश्यायें मुजरे, नृत्य और संगीत के द्वारा जीविका कमाती है, शरीर-व्यवसाय नहीं करती । सेठ जी जब उसके यहाँ जाते तो चौक से मिठाई और गोल दरवाजे के मशहूर पनवाड़ी से गिलौरियाँ ले जाते । वे मौसमी फलों के तोहफे अपने सईस के हाथ वहाँ भिजवाते रहते हैं । घर पर पत्नी, बेटा, बहन के साथ उनकी समानान्तर अलग जिन्दगी है और वे वहाँ पूरे मर्यादावादी हैं ।

लखनऊ की 'कांधारी बाग गली' ईसाइयों का मुहल्ला है । जहाँ रेलवे वर्कशाप में काम करने वाले, अध्यापक और आफिस के बाबू आदि विभिन्न पेशे के ईसाई रहते हैं । कांधारी बाग की कई स्त्रियाँ भी नौकरी करती हैं । विधवा 'जेन' 'लालबाग गर्ल्स स्कूल' में मुंगफली, चबेना, खट्टी-मीठी गोली, कापी पेंसिल आदि बेचती हैं । 'मिस जून' प्राइमरी स्कूल की प्रधानाध्यापिका है । यौन-विकृति का शिकार पर 'प्योर योरोपियन' होने का दावा करने वाला 'किम ग्रोव' यहाँ रहता है । 'लागे तोरे नयनवा के बान,' 'श्याम

---

§75§- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल § पृष्ठ 112 §
§76§- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल § पृष्ठ 371 §

हमारी बहियाँ गहो ना' आदि को 'डिवोशनल सांग' न मानकर 'छिनरा' मोस्ट वल्गर ऐण्ड डिवाश'[77] मानने वाली, साहब लोगों की बोली 'हम तुमको बोला हम ऐसा नहीं मांगता' बोलने वाली मिस जून यहीं रहती है। जेन शिक्षित ~~इसाई~~ संगति में शहर की बोली बोलती है पर एक दो वाक्य के बाद अवधी पर उतर आती है — ऐसे देसी ईसाइयों से यह मुहल्ला भरा है।

विशिष्ट वर्ग की लड़कियों के लिए कान्वेन्ट या अंग्रेजी स्कूल हैं। इन स्कूलों में अपनी मोटर - बसें हैं — ये स्कूल बहुतही व्ययसाध्य है। नगर में साधारण वर्ग की लड़कियों के स्कूल जाने का तरीका है — पड़ोसी, गली-मुहल्ले की चार - छः लड़कियों का एक साथ किसी प्रौढ़ा 'बुलावी' के संरक्षण में स्कूल भेजना। स्कूलों की ओर से लड़कियों को ले जाने के लिए बैल जुते, पर्दे लगे ठेले होते हैं। चौकसी के लिए ठेलों में स्कूल की महरी बैठी होती है। कुछ ठेलों को बैल के स्थान पर विश्वस्त कहार खींचते हैं, ये अवांछित लोगों से चौकसी भी रखते हैं। तब भी ठेलों में यदा-कदा प्रणय - पत्रों के पुर्जे पकड़े जाते, कभी राह चलते छैले - बाँके लड़कियों की चोटी या आंचल खींच लेते हैं। यहाँ हाई - स्कूल पास करने वाली लड़कियाँ उँगलियों पर हैं। लड़कियों के दो ही कालेज हैं — एक अमीनाबाद में, दूसरा ; चाँद बाग में। यूनीवर्सिटी के दिल फेंक लड़के लड़कियों के कालेज जाने - लौटने के समय फुटपाथों पर खड़े रहते हैं, कुछ पीछा करते हैं, कुछ बोली कसते और कुछ आशिकाना अन्दाज में शेर पढ़ते —

'हविसे दीद मिटी है न मिटेगी हसरत
देखने के लिए चाहे उन्हें जितना देखा करें।'

लखनऊ यूनीवर्सिटी ग्रीष्मावकाश के बाद नये-पुराने विद्यार्थियों की भीड़ से भर उठती है — दो - ढाई सौ लड़के तो दस - पन्द्रह लड़कियाँ।

लखनऊ मेडिकल कालेज अभी दो ही इमारतों में है — गुम्बददार इमारत जो शाहमीना रोड के समानान्तर है। कोई तीस - चालीस नर्सें हैं— यूरोपियन या ऐंग्लो इण्डियन।

{77}- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल {पृष्ठ 366}

क्रिश्चियन परिवार में भी विवाह सम्बन्धों में जाति-रक्त की प्राथमिकता है । मिसेज पंत कहती हैं, "बहिन जात-पात के वहम में तो हम लोग नहीं पड़ते पर हमारे यहाँ अब तक सब रिश्ते ब्राह्मणों में ही हुये हैं ।-[78]

मुसलमान परिवार में भी विवाह सौदेबाजी है — रजा को डाक्टरी पढ़ने का पूरा खर्च वहन करने के लिए शमसुद्दीन तैयार हैं बशर्ते रजा उनकी बेटी से शादी कर ले । इन मुसलमान परिवार की स्त्रियों की बात-चीत का विषय 'इस उस खानदान के राज, मर्दों-औरतों के ऐसे वैसे ताल्लुकात, पीरों-फकीरों के करामात के किस्से, रसोई-सालन, शादी - गमी का जिक्र' होता है ।"[79]

लखनऊ की संस्कृति विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं नवाब फर्रे । नवाब साहब और नवाबजादे अंग्रेजों के वफादार राजभक्त हैं, पर बड़े नवाब को अंग्रेजियत से सख्त नफरत है । उनके ख्याल में 'अंग्रेजी तहजीब, गुफ्तगू, पोशाक सब लाशऊर और कमीने'[80] । नवाब साहब के गर्दन तक छटे पट्टेदार बालों के ऊपर मखमल का जरीदार ऊँची टोपी रहती, चूड़ीदार पायजामा के ऊपर छकलिया अचकन और पैरों में सलीमशाही जूती — यह उनकी पोशाक है ।

दीवान खाने में नवाब साहब के लिए खूब बड़े तख्त पर मोटी मसनद और मखमली जरीदार गिलाफ चढ़े गाव - तकिये हैं । मेहमान अगल - बगल जरा नीची मसनदों पर बैठते हैं । कुछ मोढ़े और कुछ विभिन्न किस्म की कुर्सियाँ भी हैं । नवाब साहब के सामने हर वक्त खमीरा महकता नेचा रहता । मेहमानों के लिए और दो नेचे घूमते रहते हैं । खुशबूदार चर्दे और किमाम लगी गिलौरियाँ आती रहती हैं ।

यह संस्कृति मात्र नवाब साहबों की ही मिल्कियत नहीं है । लखनऊ के हर पुराने बाशिन्दे में, इसकी झलक मिल जाती है । अब बुलन्द बाग के 'किशन परशाद सक्सेना' को ही लीजिये । उनके हास्पिटल रोड वाले खाली बंगले को डा0 अमर नाथ सेठ किराये पर लेना चाहते हैं । किराये पर घर लेने की बात सुनकर सक्सेना साहब क्षुब्ध हो जाते हैं, "हमारी जायदाद किराये पर लेंगे ? - - - किस बदतमीज ने आपसे कहा हम अपना बंगला

(78)- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल : पृष्ठ 209 ; (79)- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल (पृ0284), (80)- मेरी तेरी उसकी बात: यशपाल (पृ0555)

किराये पर देंगे ? शुरफा का गुफ्तगू का यह तरीका है !" वह कहते हैं, "लखनऊ के रईस जादों के तर्जे गुफ्तगू का यह हाल ! सब नामुराद अंग्रेजी तालीम का असर कि शुरफा भी अपनी तहजीब भूल गये ।"[81] वे फिर कहते हैं, "साहबजादे यों फरमाइये कि आपको रिहाइश की जगह की जरूरत है । हमारी जगह आपकी जरूरत में काम आ सके, हमारी खुशकिस्मत ।"[82] सक्सेना साहब के पास बैठा एक व्यक्ति उनकी बात चीत में पकड़ कर कहता है, "- - - - - - सक्सेना साहब को ऐसी बातों की क्या परवाह । अगर समझते हैं रस्म के तौर पर मुंशी जी के कारिन्दे को कुछ माहवारी बख्शीश दे दीजिएगा ।"[83]

यहाँ बाजार, दुकाने आठ बजे बन्द नहीं होतीं बल्कि बाज़ार रौनक पर शाम आठ बजे से आना शुरु करती है । बजाजे, सराफे, मनियारी, हलवाई और सभी दुकाने रात साढ़े ग्यारह-बारह बजे तक जगमगाती रहतीं । शुरफा और बड़े लोगों के बाजार का यही वक्त है । बजाजे का कारोबार अधिकांश खत्री, वैश्य, जैन और रस्तोगियों के हाथ में है ।

कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन के देशव्यापी प्रभाव से लखनऊ भी अछूता नहीं है । धनी-सम्पन्न लोग शान्ति और सुरक्षा चाहते हैं । इस वर्ग के अधिकांश लोग सरकार विरोधी आन्दोलन से दूर रहते हैं परन्तु विदेशी सरकार के प्रति घृणा, क्षोभ और देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष से सहानुभूति उनके हृदय में भी है । और, रहन-सहन में उसका प्रभाव दिखता है । सेठ जी ने देशी उम्दा तन्जेब के स्थान पर महीन मादा या देशी मिलों का अच्छा कपड़ा प्रयोग में लाना प्रारम्भ कर दिया है । वकील कोहली भी 'काले फिकोना' की शेरवानी छोड़ कर 'देसी कपड़े' की काली शेरवानी और किश्तीनुमा टोपी पहनने लगे हैं । शहर के कांग्रेस के कार्यकर्ता कहीं-कहीं गली-बाजारों में विलायती कपड़ों की होली जलाते भी देखे जा सकते हैं ।

नमक बनाकर नमक कानून तोड़ कर कांग्रेसी कार्यकर्ता स्वेच्छा से गिरफ्तार हो रहे हैं । काली मन्दिर के समीप 'हरि भैया' ने नमक बनाने का अनुष्ठान किया है तो गूंगे नवाब के पार्क में स्वामी रामानन्द ने ।

{81 से 83}- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल { पृष्ठ 379 }

सन् 1936 मार्च का अखिल भारतीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में होता है । जहाँ अब मोतीनगर, आर्य नगर, रघुवीर नगर बस गये हैं वहाँ उस समय खेत, झाड़ियाँ थीं या उबड़-खाबड़ परती भूमि । वहीं अधिवेशन के लिए 'फूंस की झोपड़ियों, छोलदारियों कनातों का छोटा सुन्दर सुथरा नगर – मोतीनगर' बनाया गया है, मोती लाल नेहरू के नाम पर ।

कड़े जाड़े की कोहरे भरी सुबह कांग्रेस स्वयं सेवकों की टोली प्रभात-फेरी के लिये निकल पड़ती है । आगे स्वयं सेवक हाथ में चरखा चिन्ह का तिरंगा झंडा उठाये हुये हैं । टोली गा रही है –

'उठो सोने वालों सबेरा हुआ है
वतन के फकीरों का फेरा हुआ है ।
झंडा ऊँचा रहे हमारा
विश्व विजयी तिरंगा प्यारा ।।'[84]

फिर नारा —'भारत माता की जय । महात्मा गांधी की जय ।- - - -
इन्कलाब जिन्दाबाद । विदेशी गुलामी का नाश हो ।'

विश्वयुध्द के कारण आशंका या बेचैनी है तो केवल राजनीतिक लोगों में । आम जनता के लिये कठिनाइयाँ हैं और सुविधायें भी । अनाज, कपड़े, घी, चीनी, तथा अन्य चीज़ों के दाम बहुत बढ़ गये हैं । कन्ट्रोल दाम की दुकानों पर केवल मोटा अनाज मिलता वह भी घुना हुआ और मोटा कपड़ा । युध्दकाल व्यापारियों के कारोबार का समय है और अफसरों के लिए आमदनी का । जनता में युध्द के कारण अनेकों कष्ट के बीच एक संतोष है । —'जर्मनी साले अंग्रेजों को खूब जूते लगा रहा है ।'[85] जर्मनी और हिटलर 'सामर्थ्य और दुर्धर्ष शक्ति के प्रतीक' बन गए हैं । इक्के वाले अपने घोड़ों को तेज चलने के लिए ललकारते हैं 'चल बेटा बढ़ चल, हिटलर की चाल ।' मुर्गा – तीतरों की लड़ाई में जीतने वाले मुर्गे तीतर हिटलर कहलाते, यहाँ तक कि गली मुहल्ले का सबसे जोरदार कुत्ते का नाम हिटलर है ।

युध्दकाल में हजरत गंज का भी रंग बदल गया है । जापानी आक्रमण

[84]- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल । पृष्ठ 164 ।
[85]- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल । पृष्ठ 452 ।

के प्रतिरोध के लिए लखनऊ की छावनी में अमरीकन सेना आ गई है । छावनी में उनके लिये स्थान की कमी पड़ रही है । विधान सभा मार्ग पर, बर्लिंगटन होटल, रायल होटल और कर्लटन होटल में भी अमरीकन सिपाहियों और अफसरों के लिए स्थान 'जाकड़' कर लिये गये हैं । हज़रत गंज में अमरीकन सिपाहियों के विनोद के लिये 'बार' और 'क्लब' बना दिये गये हैं । शाम को तो हजरतगंज में खाकी वर्दी पहने सिपाही भर जाते हैं दोनों हाथों में 'जिन व्हिस्की' की बोतलें और बगल में कोई 'छोकरी' लिये । सिपाहियों की संगति के लिए अनेक 'यूरोपियन, ऐंग्लोइण्डियन और देसी छोकरियाँ' हजरत गंज में इधर उधर दिखाई पड़ती हैं । वे या तो सिपाहियों की घात में रहती हैं या उनकी बगल में, हज़रतगंज के दोनों फुटपाथों पर घूमती रहती हैं ।

हजरतगंज में अनेकों नये 'रेस्तोराँ' खुल गये हैं । भारतीय या अंग्रेज जहाँ दो रुपये खर्चते हैं, अमेरिकन दस खर्च करते । अंग्रेजों की तरह वे देसी रेस्तोराँ से कतराते नहीं है । दुकानदार और रेस्तोराँ वाले अमेरिकन सिपाहियों को 'तर्जीह' देने को तत्पर रहते हैं ।

नगर में युध्द के आतंक के प्रति सतर्कता के प्रयत्न किये जा रहे हैं । ऐंग्लो इण्डियन, क्रिश्चियन और बहुत से राजभक्त परिवारों के जवान 'टैरीटोरियल सेना' में भरती होकर ट्रेनिंग ले रहे हैं । सिविल डिफेन्स कमेटियों के 'सिविल गार्डस' 'मिलीशिया §राख के रंग की§ वर्दी' पहन कर पार्कों में कवायद करते दिखाई पड़ते हैं । नगर के पार्कों, स्कूलों, दफ्तरों की खुली जगह में बम गिरने के समय सिर छिपाने के लिए खाइयाँ खोदी गई हैं ।

सरकार विरोधी स्वदेशी गुप्त संगठन भी लखनऊ में सक्रिय हैं — पाठक, श्यामा, उषा आदि इस संगठन के कार्यकर्ता हैं । उषा इस संगठन के कार्यक्रमों के अनुसार बनारस बलिया आदि दौरा करती है ।

उषा बनारस में रिक्शा रुकते ही देखती है कि एक बड़ा सा साँड़ डँकारता हुआ चला जाता है । वह देखती है गंगा नदी में तथा तट पर बँधी अनेक नावें हैं । कुछ लोग नदी में तैर रहे हैं । उषा को आश्चर्य होता है कि नदी के खुले तट पर गंगा स्नान करके स्त्रियों ने इस कुशलता से कपड़े बदल लिये

हैं कि शरीर का कोई भाग भी दिखाई न दिया । पुरुष लाल लंगोट या लाल अंगोछा बाँधे घाट पर नहा रहे हैं । नावों पर और सीढ़ियों पर पुरुष उत्साह से सिलों पर भांग पीस रहे हैं ।

वहीं, पूरे शरीर में राख मले, जटायें बाँधे, त्रिशूल गाड़ें, अग्नि के पास बैठे कुछ लोग चिलमें ऊँची उठाकर कश ले रहे हैं । यहाँ बनारस में गली-गली जवान, बूढ़ी स्त्रियाँ भीख माँगती दिखती हैं । वाराणसी के विषय में 'पूनम' का कथन "काशी का परिचय ही राँड़-साँड़, साधु-सन्यासी; इनसे बचे तो सेवै काशी ।" है ।'[86]

बलिया नगर की बस्ती संक्षिप्त ही है । रात नौ बजे तक पूरा सन्नाटा छा जाता है । कभी-कभार चौक में नौटंकी जमती तो सारे नगर में नगाड़े की आवाज रात भर सुनाई पड़ती रहती है ।

जिले के हाई स्कूल के गणित के अध्यापक मास्टर गोविन्द सिंह की स्कूल जाते समय की वेश-भूषा है सिर पर 'ऊँची बाड़ की अंडाकार टोपी', बन्द गले का कोट, घुटनों से थोड़ी नीचे तक देसी मोटी धोती और पाँवों में देसी जूता या देसी बना पम्प ।

डिप्टी कलक्टर रघुनन्दन उपाध्याय इसी जिले के हैं । सरकारी हल्के में उनकी सिफारिश का प्रभाव है । अपने जिले के लोगों के प्रति वे पक्षपात निःसंकोच होकर करते हैं ।

बलिया जिले में पोशाक या रस्म-रिवाज से हिन्दू मुसलमान की पहचान मुश्किल है । सभी की पोशाक कुर्ता और धोती है । परदा है केवल अमीर लोगों में — मुसलमानों में और हिन्दुओं में भी । एक दूसरे के काम-काज पर दोनों ओर से दोनों को निमंत्रण दिये जाते हैं । दोनों का दोनों के त्यौहार में सहयोग होता है । बलिया में मुसलमानों की संख्या 'आटे में नमक बराबर'[87] है । अधिकतर मुसलमान पेशे से कारीगर हैं ।

इधर सरकार भेद नीति का आश्रय लेकर दोनों में वैमनस्य बढ़ा रही

---

[86]- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल [पृष्ठ 598]
[87]- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल [पृष्ठ 612]

है । अतः नगर में बीस-पच्चीस ऊँची तुर्की टोपियाँ, काली शेरवानियाँ और अलीगढ़ी पाजामें में मुसलमान इधर-उधर दिखाई पड़ रहे हैं । कुछ मुस्लिम जवान धौंस देते सुनाई पड़ जाते हैं 'आने दो मौका देख लेंगे सालों को ।'[88] हिन्दू भी मुसलमानों की इस हेंकड़ी से 'बेपरवाह' नहीं है । बलिया में भी सरकार विरोधी गुप्त संगठन सक्रिय है ।

उषा पहले - पहले बम्बई गई है । वह बम्बई के स्थान विस्तार से चकित है । बिना धुँये के इंजन वाली 'तीर की तरह सड़सड़ाती जाती' गाड़ियाँ, जहाँ तक दृष्टि जाती बस्ती ही बस्ती, ऊँचे ऊँचे मकान, तरह तरह की पोशाकें उसके लिए सब अप्रत्याशित हैं । साधारण सवारी के लिये एक घोड़ा जुती बग्घी यहाँ प्रचलित है ।

यहाँ 'रुस्तम स्टेनो इन्स्टीट्यूट' जैसे टाइपिंग ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट है, जहाँ एक घंटे प्रतिदिन सिखाने की मासिक फीस पाँच रुपये, शार्ट हैण्ड सिखाने की फीस पाँच रुपये मासिक और ।

अनेकों लोग इस बम्बई में जीविका की खोज में आया करते हैं । हल्धर बाइस वर्ष पूर्व नौकरी के लिए यहाँ आया था । उसने दो भैंसे रखकर दूध का कारोबार शुरू किया था, अब उसके पास चौदह भैंसें हैं । खार और साम्ताक्रूज में दो-दो मकान बनवा लिये हैं उसने । अपने रहने का मकान अलग है । उसके पास एक सेकेण्ड हैण्ड फोर्ड गाड़ी है — हल्धर सेठ बन गया है ।

बम्बई में पेइंग गेस्ट रखने का रिवाज है । चालों या मामुली बस्ती में अकेले §बिना पत्नी के§ मर्द को कोठरी या खोली किराये पर नहीं दी जाती है । अकेले मर्द से आस-पास के गृहस्थो को अपनी स्त्रियों के लिये आशंका बनी रहती है । जिस चाल में जौहर §पाठक§ रहता है उसमें बड़ा एका है । बीच की मंजिल के लोग, पति-पत्नी और दो बच्चे से बड़े परिवार को नहीं आने देते चाहे खोली खाली ही रह जाये । पंचायत करके खाली जगह का किराया भर देते हैं । क्योंकि बहुत आदमी हो जाने से पानी, गुसल और सण्डास की तकलीफ हो जाती है । किन्हीं किन्हीं चालों में तो एक ही खोली के बीच में पर्दा बनाकर दो-दो परिवार गुजारा करते हैं ।

---

§88§- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल § पृष्ठ 612 §

उषा फिर लौट कर लखनऊ आ गई है । लखनऊ में {सन् 1945 दिसम्बर} चुनाव होने को हैं । हिन्दू - मुसलमान का भेद इस तरह वातावरण में फैलाया गया है कि रतनी का बेटा खालिद कहता है, "- - - - - हमारे लिए अव्वल सवाल रोजी-रोटी का नहीं, फर्जे दीन, हुकूमते इलाही कायम करना, पाकिस्तान है ।"

उधर इन सब राजनीति के दाँव-पेंच से बेखबर राजा बाजार की छोटी गली में स्वर्गीय सेठ रतनलाल की जायदाद को लेकर तरीको में भाग-दौड़, मुकद्दमेबाजी चल रही है । और इस प्रकार पूरे लखनऊ में राजनीतिक उथल-पुथल से बेखबर लखनऊ के परम्परा सेवी पुराने रहने वाले अपनी उसी सामाजिकता के बीच जीते जा रहे हैं जिनके मन में आधुनिक विचार धारा के प्रति एक आश्चर्य का भाव है और युगधर्म स्वीकार करना मजबूरी ।

प्रस्तुत कृति लखनऊ के रहने वालों के पारम्परिक चित्र तो प्रस्तुत करती ही है साथ ही एक संक्रान्तिकालीन जन-समाज की मानसिकता का भी स्पष्ट वर्णन होता है । बदलता समय युवक समाज को आकर्षित करता है और वे स्वेच्छा से प्रसन्नता पूर्वक उसे स्वीकार कर रहे हैं । पुरानी पीढ़ी परम्परा और रूढ़ि को पकड़े हुए नये जमाने में कुछ स्वीकारते हुए, कुछ नकारते हुए मजबूरी की जिन्दगी जी रही है । बनारस, बलिया और बम्बई की पृष्ठभूमि प्रासंगिक है पर संक्षिप्त चित्र भी स्पष्ट हैं ।

{89}- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल { पृष्ठ 745 }

तृतीय अध्याय

विशिष्ट उपन्यासों का अध्ययन

तृतीय अध्याय

विशिष्ट उपन्यासों का अध्ययन

तृतीय अध्याय में एक शती के विशिष्ट उपन्यासों को लेकर गाँव-नगर एवं महानगर का चित्रण प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत अध्ययन, कालक्रमानुसार कथाकृतियों की कथाभूमि तथा वहाँ के जनसमूहों को समग्रता से चित्रित करने का प्रयास करता है ।

गोदान (1936 ई0)

प्रेम चन्द का 'गोदान' (1936 में प्रकाशित) 'होरी' और 'गोबर' के माध्यम से 'बेलारी' और 'सेमरी' गाँव बनाम 'लखनऊ' शहर का चित्र प्रस्तुत करता है । 'सेमरी' में राय साहब रहते हैं 'बेलारी' जिनकी जमींदारी में आता है, जहाँ रहता है कथानायक 'होरी' । 'गोदान' में गाँव के अधिक चित्र हैं, 'लखनऊ' शहर के चित्र तो प्रासंगिक हैं ।

होरी बेलारी गाँव का किसान हैं और जमींदार से मेल-मुलाकात करता रहता है, जानता है कि मेल मुलाकात की बदौलत उस पर जमींदार की कृपा बनी रहती है । गाँव के सम्मानित (1) किसान की वेश-भूषा है - धोती मिरजई, जूता, पगड़ी और लाठी । जिसे वह विशेष अवसरों पर धारण करता है । किसान भोला तो होता है पर अपने मामले में 'पक्का स्वार्थी' । भाव-ताव में चौकस, किसी के फुसलाने में नहीं आता । उसका पूरा जीवन प्रकृति के साथ स्थायी सहयोग करके चलता है अतः किसी के 'जलते हुए घर में' हाथ सेंकना उसकी मानसिकता नहीं । किसी की विपत्ति कथा सुनते ही उसकी सारी हमदर्दी उसी के लिए समर्पित हो जाती है । स्वार्थ तिरोहित हो जाता है । 'भोला' अहीर के मवेशियों को 'रातिब' के बिना सूखते देखकर होरी उसे भूसा देने को तैयार हो जाता है । गाँव में सहज मानवता सामान्य है । जो होरी में भी है, भोला में भी तथा गाँव के और लोगों में भी ।

गाँव के किसान के लिए मान-अपमान का कोई अर्थ नहीं । क्योंकि 'तगादा' 'गालियाँ' - इन सब व्यवहारों का वह आदी होता है । किसान

सामाजिकता में अधिक जीता है, व्यक्तिगत रूप से उसके जीवन का कोई मूल्य नहीं । गाँव में व्यक्ति की सत्ता समाज सापेक्ष है । पंचायत के दण्ड उसे मानने ही हैं भले घर पर बाल-बच्चे भूखे रहें । सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा में जीवन भले ही चला जाय पर प्रतिष्ठा की रक्षा तो करनी ही है । झुनिया और गोबर के सम्बन्ध को लेकर गाँव में पंचायत हुई और होरी पर सौ रु0 नगद और 30 मन अनाज डाँड़ लगाया गया । जिसे होरी सिर झुकाकर स्वीकार कर लेता है । उसका विश्वास है, 'पंच में परमेश्वर' रहते हैं ।

गाँव में पूरा परिवार मिलकर खेतों में काम करता है - होरी का पुत्र गोबर, लड़की - सोना, रूपा सब । सुख-दुख में सहभागी । आपस में लड़ते झगड़ते हैं और एक दूसरे के लिए मरने मिटने को भी तैयार । गरीबी है पर सौमनस्यता उतने प्रभावित नहीं होती । शरीर पर कपड़े उतने ही जितने आवश्यक हैं । होरी का काम एक धोती से चल जाता । उसकी सयानी लड़की सोना गाढ़े की लाल साड़ी पहने होती और पाँच छः साल की रूपा के लिए कमर में एक लंगोटी काफी थी ।

पूर्व-पीढ़ी और उत्तर-पीढ़ी की मानसिकता का अन्तर गाँव में भी है — मात्र अन्तर, समस्या नहीं । 'होरी नम्र स्वभाव का आदमी था । सदा सिर झुका कर चलता और चार बातें गम खा लेता था' ।'[1] पर गोबर में विद्रोह का स्वर स्पष्ट है । उसे रोज़ रोज़ मालिकों {जमींदार} की खुशामद करने जाना पसन्द नहीं । वह तर्क प्रस्तुत करता है कि लगान, नज़र - नजराना, बेगार सभी कुछ तो करना पड़ता है तो क्यों किसी की खुशामद की जाय ।

गाँव के विधाता हैं - जमींदार, महाजन, पटवारी, पंडित और दरोगा । किसान इनकी मुट्ठी में हैं, वे इनसे बचकर कहीं जा ही नहीं सकते । खेत से अनाज खलिहान तक पहुँचा नहीं कि ज़मींदार का हिस्सा चला गया, महाजन का हिस्सा चला गया और बाकी बचे में कितने ही बहानों से और भी हिस्सेदार हो गए । घर तक फसल आने ही नहीं पाती । होरी कहता है, "अनाज तो सब का सब खलिहान में ही तुल गया । ज़मींदार ने अपना लिया,

---

{1}- गोदान : प्रेमचन्द {पृष्ठ 129}

महाजन ने अपना लिया - - - - - - - जमींदार तो एक ही हैं, मगर महा-
जन तीन तीन हैं - - - - - ।'[2]

गाँव में सम्मिलित परिवार का प्रचलन है । भोला अहीर अपने बेटों और बहुओं के साथ रहता है । सम्मिलित परिवार का अपरिहार्य अंग गृह-कलह भी है वहाँ । इसी प्रकार होरी किसान भी अपने भाइयों के साथ रहता था । परन्तु पारिवारिक कलह के कारण वे सब अलग अलग रहने लगे सम्मिलित परिवार की गृहस्वामिनी सास है । भोला कहता है 'नाटन खेती बहुरियन घर' अर्थात् नाटे बैल क्या खेती करेंगे और बहुएँ क्या घर सँभालेंगी ।

किसानों के पुरवे से अहीरों का पुरवा कुछ बेहतर था । भोला अहीर के दरवाजे पर दस-बारह गायें, भैंसे चरनी पर सानी खाती थीं ।'ओसारे में बड़ा सा तख्त पड़ा था - - - - किसी खूंटी पर ढोल लटक रही थी, किसी पर मंजीरा - - - - ।'[3] साख पर पुस्तक, शायद रामायण थी ।

गाँव में साख की रक्षा जी-जान देकर की जाती है क्योंकि इसी साख के बल पर प्रतिष्ठा मिलती है, कर्ज मिलता है, शादी ब्याह होता है । सम्मिलित परिवार साख को मजबूती देता है । अलगौझा से साख गिर जाती है । होरी के भाइयों में अलगौझा हो गया है — साख गिर गई है । अतः गोबर के विवाह के लिए लोग आते हैं और लौट जाते हैं । लड़की देने के लिए लड़की वाले दो तीन सौ रुपये माँगते हैं । साख को बनाए रहने की जिम्मेदारी घर के मुखिया की है — सारे परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी भी मुखिया की ही है । हीरा के भाग जाने पर पुनिया के घर खेत सबकी देख रेख करना होरी 'धरम'—कर्तव्य मानता है ।

गाँव में भोले-भाले किसान हैं तो लम्पट आदमियों की भी कमी नहीं है । बाबू, महाजन, ठाकुर एक से एक 'रसिया' हैं कोई जवान औरत देखी और लगे चारा फेंकने । झुनिया अपने अनुभव-कोष से ऐसी अनेक घटनाएं गोबर को सुनाती है ।

राय साहब अमर पाल सिंह सेमरी में रहते हैं जिसके लिए किसान

---

[2]- गोदान : प्रेमचन्द [पृष्ठ 23]
[3]- गोदान : प्रेमचन्द [पृष्ठ 25]

सोचते हैं 'सिंह का काम तो शिकार करना है - - - -'[4] । अतः जमींदारी की ज्यादतियाँ, बेगार, जाब्ता सभी बदस्तूर चलती थीं । बदनामी मुख्तारों के सिर, क्योंकि रायसाहब आसामियों से हँसकर बोल लेते थे । यह राय साहब दोहरी मानसिकता में जीने वाले व्यक्ति थे, ठीक जिस तरह उनका जीवन था - शहर और गाँव दोनों से वास्ता, ब्रिटिश हुक्काम और गाँव की किसान जनता दोनों से सम्पर्क, और वैसी ही विचारधारा । सिद्धान्त के रूप में जीवन के उदात्त मूल्यों के पक्के हिमायती पर आचरण में पूरे व्यावहारिक ।

गाँव में अलग अलग मौसम में मनोरंजन के अलग अलग रूप हैं —— होली में फाग, आषाढ़ में आल्हा, सावन में कजली और दशहरे के आस-पास राम लीला । रामलीला की व्यवस्था जमींदार साहब के जिम्मे है । गाँव के किसान भी उसमें पार्ट लेते हैं । होरी राजा जनक का माली बनता है । यह रामलीला ग्रामीणों [गँवारों] का मनोरंजन है । शहर के लोग, जो गाँव में राय साहब के अतिथि हैं, यहाँ भी अपने ढंग के मनोरंजन ढूँढ़ लेते हैं । शहर के चार लोग - बैंक के एजेन्ट, पत्रकार, प्रोफेसर, डॉक्टर आदि जिसमें पढ़ी लिखी महिलाएं भी शामिल हैं, साथ बैठ कर गप-शप करते हैं । कोई किसी को बेवकूफ बनाता है, कोई अपना राग अलापता है और इसी बीच कोई अपना उल्लू सीधा करने में लगा है । ये सभी वाग्वीर हैं । वास्तविक साहस का शहरी लोगों में अभाव है । ये सब 'लखनऊ के बाँके' हैं । इन लोगों के बीच किसी में इतना साहस नहीं है कि 'खान' से दो-दो हाथ कर लें । सभी पैसा और जान बचाने की फिक्र में हैं । परन्तु गँवार होरी खान की कमर पकड़ कर ऐसा अड़ंगा लगाता है कि खान की असलियत खुल जाती है । गाँव के किसान कानून और कलम से डरते हैं पर 'मस्त साँड़ से लड़ने का साहस' इन्हीं के पास है ।

शहर के बड़े आदमियों के लिए गाँव तफरीह की जगह है । वे गाँव आते हैं तो ग्राम्य जीवन का भरपूर आनन्द उठा लेना चाहते हैं । कभी पिकनिक का कार्यक्रम बनता है, कभी शिकार का । पर इन सब के बीच भी व्यावसायिक बुद्धि सजग एवं सक्रिय है । मिस्टर तंखा शिकार के बीच मिर्जा खुर्शेद से फायदा उठाने की पूरी कोशिश करते रहते हैं — कभी चुनाव में खड़े होने की बात करके, कभी बीमा कम्पनी के डाइरेक्टर होने का प्रलोभन देकर कम्पनी

[4]- गोदान : प्रेमचन्द [पृष्ठ 12]

का एक हिस्सा खरीदने का प्रस्ताव करते हैं । शहर के इन बड़े लोगों में जीवन की कोई समस्या नहीं है अतः गम्भीर आयोजन भी अन्ततः मनोविनोद में ही समापित होते हैं ।

गाँव में गरीब किसान का पेट भले न भरता हो भूखे नंगे रहकर भी उनमें जीवनी - शक्ति है । वरना साल के छः महीने किसी न किसी बहाने से ढोल मजीरा कैसे बजता रहता । 'इसे बिना तो नहीं 'जिया जाता' ।[5] होली तो हास्य विनोद का त्यौहार है ही । भंग भी पिलाई जाती है । गाँव में नाचने वाले हैं, गाने वाले हैं, स्वांग और नकल करने वाले हैं । गाँव के मूर्धन्य लोगों की नकल होती है, लोग हँसते हैं । पेट की भूख, महाजन की धमकियाँ, और कारिन्दे की ओसियाँ सब विस्मृत हो जाती हैं कुछ क्षण के लिए । बेलारी में होली के इस आयोजन में ठाकुर झिंगुरी सिंह की नकल हुई । इसी प्रकार नोखेराम, जमींदार के कारकुन, पटवारी पटेश्वरी लाल और पंडित दाता दीन सब पर नकल के माध्यम से व्यंग्य करके, समस्याओं से घिरे रा ये गाँव के किसान हँस लेते हैं । सर से पाँव तक ये लोग कर्ज में डूबे हुए हैं । महाजन फसल, घर, मवेशी सब पर निगाह लगाए हैं । घर में लड़की सयानी हो रही है, विवाह कैसे हो, पैसे का कहीं डौल नहीं । फिर वही कर्ज का सहारा । कर्ज पर घर रेहन, जीवन रेहन । जीवन भर कर्ज के बदले मजदूरी करो और सूद भरो । मूल फिर भी ज्यों का त्यों ।

गाँव हो या शहर । प्रकृति सबसे ऊपर है । गाँव में समस्यायें हैं तो क्या ? बच्चे वहाँ ज़िद करते हैं, मचलते हैं, लड़ते हैं । रूपा सोना में झगड़ा होता है । यौवन इनके जीवन और मन को अपने स्पर्श से मधुर बना जाता है । गोबर झुनिया के प्रति आकर्षण अनुभव करता है । झुनिया से मिला प्रतिदान उसके आकर्षण को प्रेम का रूप दे देता है । पर समाज का भय भी गोबर को है तभी तो 'एक विचित्र भय मिश्रित आनन्द से उसका रोम रोम'[6] पुलकित हो उठता है । भय समाज और बिरादरी का है और आनन्द है प्रेम का ।

गाँव की वृत्ति और आचरण में कोई विशेष भेद नहीं होता । सारा कुछ बहिर्मुखी । पति पत्नी एक दूसरे के सुख-दुख के साथी, एक दूसरे के लिए

{5}- गोदान : प्रेमचन्द { पृष्ठ-220 }
{6}- गोदान : प्रेमचन्द { पृष्ठ -47 }

जान देने को तत्पर । वही मत-वैभिन्य होने पर मरने मारने को तैयार । धनिया जो होरी की दशा देख देख कर सूखी जाती थी कि बुढ़ापा कैसे कटेगा, कुछ 'अशुभ' सुनना भी नहीं चाहती । वही झगड़ा होने पर उसे 'पापी' 'हत्यारा' सब कहती है । और धनिया के गृहणीत्व के अनुशासन में सिर झुका कर चलने वाला होरी उससे नाराज होकर उसे मार मार कर 'भुरकस' निकाल देता है । हाँ, परायी औरत पर हाथ उठाना गाँव में गर्हित है । हीरा का धनिया के प्रति मात्र कहना ही'- - - जूतों से बात करूँगा । झोंटा पकड़ कर उखाड़ लूंगा - - -'जनमत को उसके विरुद्ध कर देता है ।

शहर में पति पत्नी में यदि नहीं पटती है तो भी मूक विरोध के साथ, साथ रहते हैं । खन्ना के अपशब्द से आहत होकर गोविन्दी अपने एकान्त कमरे में बैठ कर रो लेती और खन्ना दीवानखाने में मुजरे सुनता या क्लब में शराब पीता । वैसे गाँव हो या शहर सारे भारत में मन एक सा है । खन्ना और गोविन्दी में हर तरह से विरोध होने पर भी गोविन्दी के लिए खन्ना 'सर्वस्व' थे । यहाँ तक कि पाश्चात्य रंग में रंगी हुई मिस मालती के लिए भी प्रेम 'देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है ।- - - वह सम्पूर्ण आत्म-समर्पण है । 'धनिया का पति 'चाहे अच्छा है या बुरा, अपना है ।' झुना "ऐसा प्रेम चाहती थी जिसके लिए वह जीए और मरे, जिस पर वह अपने को समर्पित कर दे ।' ऐसी ही विचार धारा से पोषित स्त्रियाँ गाँव और शहर दोनों में एक सी हैं । यों दूसरा पहलू भी है । गाँव में झुनिया कहती है — 'मैं उन सबों की नस पहचानती हूँ । सबके सब भौंरे रस लेकर उड़ जाने वाले । मैं भी उन्हें ललचाती हूँ, तिरछी नजरों से देखती हूँ, मुस्कराती हूँ । वह मुझे गधी बनाते हैं, मैं उन्हें उल्लू बनाती हूँ ।'[7] लखनऊ की मिस मालती इसलिए हँसती है कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं - - - - वह इसलिए चहकती और विनोद करती है कि इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है ।'[8] इसप्रकार दो विपरीत मानसिक और सामाजिक परिवेश की स्त्रियाँ एक जैसा ही सोचती हैं ।

गाँव की नैतिकता लचीली है पर 'धरम' बड़ा सख्त । भोला की स्त्री नोहरी नोखेराम की कृपापात्री है । पंडित दातादीन का पुत्र मातादीन

§7§- गोदान : प्रेमचन्द § पृष्ठ 48 §

सिलिया चमारिन को रखे हुए है । पर सिलिया उसकी रसोई नहीं कर सकती। संध्या, पूजन, रसोई की पवित्रता के द्वारा पंडित जी का ब्राह्मणत्व सुरक्षित है — धर्म की मर्यादा का पालन कट्टरता से किया जाता है । गोबर ने झुनिया को रख लिया खुले खजाने; और होरी तथा धनिया ने उसे स्वीकार करते हुए अपना लिया - यह 'अधरम' है । पंच-परमेश्वर के न्याय और निर्णय पर 'जरीबाना' भर देने पर प्रायश्चित हो जायगा और धर्म की रक्षा हो जायगी ।धरम के नाम पर सभी कुछ न्याय है ।

शहर में समाचार-पत्र शक्तिशाली हो चुके थे । बड़े आदमी - जमींदार और समाज में प्रतिष्ठित लोग पत्रकारों को चन्दा और दान देकर उन्हें मिलाए रहते । रायसाहब अमरपाल सिंह तक बिजली के सम्पादक पं० ओंकार नाथ से डरते हैं । वे कहते हैं, "यह समाचार पत्रों का युग है । सरकार तक उनसे डरती है, मेरी हस्ती क्या । आप जिसे चाहें बना दें ।"[9]

लखनऊ जैसे शहर में रोजी - रोटी की समस्या नहीं है — चौकीदारी का काम, तकादे का काम और नहीं तो चाय की दुकान ही रख लो - आमदनी ही आमदनी' । बस थोड़ी सी चतुराई की आवश्यकता है । चतुराई माने "कैसे दूसरों को उल्लू बनाया जा सके' और अपना उल्लू सीधा किया जा सके 'यही सफल नीति है ।'[10] गोबर यही चतुराई सीख कर गाँव आता है और धाक जमाता है । उधर लखनऊ में मिस्टर तंखा हों या मिस्टर खन्ना, चतुराई के बल पर लक्ष्मीपति बने हुए हैं । व्यापार {व्यावसायिक दृष्टिकोण} प्रमुख है अन्य सभी सम्बन्ध गौण । खन्ना कहते हैं - "व्यापार एक दूसरा ही खेल है । यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं, कोई किसी भाई नहीं ।"[11] तंखा दो जमींदारों को लड़ाकर बीच का फायदा उठाते हैं । एलेक्शन पैसे के जोर से जीता जाता था —'चाहे एक एक वोटर को एक एक हजार क्यों न देना पड़े ।'[12]

{9}- गोदान : प्रेमचन्द { पृष्ठ 179 }
{10}- गोदान : प्रेमचन्द { पृष्ठ 236 }
{11}- गोदान : प्रेमचन्द { पृष्ठ 239 }
{12}- गोदान : प्रेमचन्द { पृष्ठ 233 }

औद्योगीकरण नगर-संस्कृति का एक अविभाज्य अंग है । लखनऊ में कल-कारखाने और मिलों का विकास हो रहा है । मिल-मालिक और मजदूरों का संघर्ष भी चल रहा है, हड़ताल होती है । नगर में भी दो प्रकार के लोग हैं - उच्चवर्गीय और निम्नवर्गीय । दोनों की मानसिकता अलग अलग है । उच्च वर्गीय लोग दूसरे के जलते घर से हाथ सेंकते हैं । निम्नवर्गीय लोगों में एक दूसरे के लिए हमदर्दी है । एक दूसरे के आड़े वक्त पर काम आते हैं । गोबर के मिल में आहत होने पर पड़ोसिन 'चुहिया' तन, मन, धन से उन लोगों की सहायता करती है । शहर में स्वार्थ-वृत्ति उसके वातावरण में घुली मिली है । कोई भी शहर जाकर वहाँ की उस वृत्ति के प्रभाव से बच नहीं सकता । गोबर लखनऊ रह कर बेलारी वापस आया है । रहन-सहन में अन्तर आ गया है -'साफ-सुथरी धारीदार कमीज, सँवारे बाल' उस पर 'चमाचम बूट' । बात-चीत का ढंग और लहजा बदल गया है । कानून-कायदा जानने की बुद्धि आ गई है । अदालत की सहायता से कानूनी न्याय ले सकता है यह जान आया है - महाजन को रुपया अदा करने के बाद रसीद मिलनी होती है, यदि महाजन रसीद न दे तो कानूनी अपराध है ।

शहर की इस चतुराई ने गाँव वालों को अपना अधिकार पहचानने की बुद्धि दी, कुछ आत्मविश्वास दिया, बेचारगी से मुक्ति दी, वहीं स्वार्थ का कुछ ऐसा प्राबल्य हुआ कि बेटा बाप-माँ से अलग होकर शहर चला गया 'सहर का दाना पानी लगने से लौंडे की आँखें बदल गयीं ।'

गाँव में गाँव का भाई-चारा चलता है, गाँव की लड़की अपनी बहन-बेटी । शहर में ऐसा नहीं है अतः झिंगुरी, पाटेश्वरी और नोखे राम के लड़के जो शहर में अंग्रेजी पढ़ते थे, गाँव की सयानी लड़कियों पर डोरे डालने की फिराक में रहते हैं । दुलारी सहुआइन कहती है 'यह सहरी हो गए, गाँव का भाई चारा क्या समझें ।'[13] यों गाँव में सहज हास-परिहास वर्जित नहीं । देवर भाभी में, होरी और दुलारी सहुआइन में कभी कभी ऐसा हास-परिहास होता रहता है ।

गाँव वाले साधारणतया भीरु होते हैं । सहनशीलता उनका स्वभाव है । परन्तु जब उनका आक्रोश उभरता तो सारी सीमा तोड़ कर । सिलिया

[13]- गोदान : प्रेमचन्द [पृष्ठ 260]

के साथ अन्याय होता देखकर क्षुब्ध चमारों ने पंडित मातादीन को भरे समाज में भ्रष्ट करके उनके धर्म की निर्मल चादर पर धब्बा लगा दिया। यद्यपि 'परायश्चित' के द्वारा यह धब्बा धुल भी सकता था।

गाँव में जागृति आ रही है। होरी की बेटी गौना नहीं चाहती कि उसका बाप कर्ज के बोझ से यों ही लदा है, उसके विवाह के लिए और कर्ज ले। जागृति की लहर शहर में भी है। पत्र-पत्रिकाओं में स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा पढ़ कर शहर की पढ़ी लिखी स्त्रियाँ जागरूक हो उठी है। स्त्री - स्वाधीनता और नारी - जागृति की चर्चा 'जनाना क्लबों' में खूब जोर शोर से होती। यहाँ तक कि विवाहित जीवन आत्म-सम्मान के लिए घातक समझकर युवतियाँ अविवाहित रहकर नौकरी करना चाह रही हैं। उधर राजा दिग्विजय सिंह के बंगले पर वेश्या का नाच हो रहा था। जहाँ स्त्री-स्वाधीनता की हिमायती मीनाक्षी देवी अपने तलाकशुदा पति राजा दिग्विजय सिंह पर हंटर जमाती हैं।

शहर में जहाँ स्त्री-स्वाधीनता की बात स्त्रियों ने उठाई, वहाँ पुरुषों ने भी गिरी हुई स्त्रियों के सुधार की बातचीत शुरू की। क्योंकि उनके विचार में 'रूप के बाजार में वही स्त्रियाँ आती हैं जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण से सम्मानपूर्ण आश्रय नहीं मिलता, या जो आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती हैं।'[14]

मेहता ठीक ही सोचता है कि ग्रामीणों में देवत्व का आधिक्य इनकी दुर्दशा का कारण है। देश में, समाज में कुछ भी हो - इनसे कोई मतलब नहीं। 'इनकी निरीहिता जड़ता की हद तक पहुँच गयी है - - - - उनमें अपने जीवन की चेतना ही जैसे लुप्त हो गयी है।'[15] और इधर शहर के लोगों में सजगता और व्यक्ति-चेतना ने जीवन को भी निगल लिया है।

'गोदान', वास्तव में प्रेमचन्द द्वारा प्रस्तुत "गुन-दोष-मय" गाँव-'बेलारी' का चित्र है, होरी और धनिया जैसे किसानों के गाँव का। जिसमें समाज सापेक्ष व्यक्ति सुख-दुख मजबूरी और जीवन्तता, आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व में जीता है और मर जाता है।

---

(14)- गोदान : (प्रेमचन्द) (पृष्ठ 330)
(15)- गोदान : प्रेमचन्द (पृष्ठ 312)

टेढ़े - मेढ़े रास्ते § 1946 ई0 §

भगवती चरण वर्मा कृत 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' की वस्तु मुख्य रूप से उन्नाव शहर और बानापुर गाँव के क्षेत्र को लेकर चली है और प्रासंगिक रूप से कानपुर, इलाहाबाद और कलकत्ता को भी स्पर्श करती है ।

सन् उन्नीस सौ तीस के आस - पास का समय है । ब्रिटिश हुकूमत चल रही है । जमींदारी प्रथा अपने पूरे दम - खम से कायम है । जमींदार अपनी जमींदारी पर न रहकर शहरों में रहते हैं -- शहर में पढ़े - लिखे सुसंस्कृत लोगों से तथा अफसरों से परिचय और सम्पर्क बना रहता है । शहर की सुख सुविधा का भी लोभ है और सबसे बड़ी बात - किसानों के दुख-दर्द देखने, सुनने से बचा जा सकता है । पंडित रामनाथ तिवारी अवध के एक छोटे से ताल्लुकेदार हैं । अपनी रियासत 'बानापुर' में न रहकर उन्नाव में रहते हैं । अभी उन्नाव में बिजली नहीं आई है । जब तिवारी जी अपने कमरे में सोते हैं तो दरवाजे, खिड़कियों पर लगी खस की टट्टियों पर नौकर हर आध घंटे पर पानी छिड़कता रहता है और पंखा-कुली बाहर बरामदे में बैठकर लू-गर्मी झेलता हुआ पंखा खींचता रहता है ।

पढ़े लिखे प्रतिष्ठित लोग सरकार की ओर से 'आनरेरी मैजिस्ट्रेट' के पद पर नामजद कर दिये जाते हैं । तिवारी जी उन्नाव के मैजिस्ट्रेट भी हैं। वे अपने बंगले पर ही अदालत करते हैं पर अदालत का समय निश्चित नहीं है । हाँ मुकद्दमे के लिए आये हुए लोग अवश्य दस बजे आ जाते हैं और बंगले के सामने वाले नीम के पेड़ के नीचे बैठ कर प्रतीक्षा करते और बातें करते रहते हैं । पेशकार उस दिन पेश होने वाले मुकद्दमों की मिसिलें उलटते पुलटते रहते हैं और उनके आस-पास खड़े हुए वकीलों के मुहर्रिर पेशकार साहब की रुपये - अठन्नी से पूजा किया करते हैं ।

बानापुर में ब्राह्मणों-ब्राह्मणों में खूब चलती है । झगडू मिश्र यद्यपि बानापुर गाँव में केवल चार पाई के हिस्सेदार हैं । लेकिन 'मझँगाँव' के मिश्र होने के कारण वे अपने को 'बरतु' के तिवारी रामनाथ से अधिक कुलीन समझते हैं । अतः वे ताल्लुकेदार तिवारी जी से कभी नहीं दबते ।

ब्राह्मण होने के कारण तिवारी जी ब्राह्मण समाज के आचार - विचार मानने को बाध्य हैं । उनका पुत्र उमानाथ विलायत से आ रहा है । बिना प्रायश्चित करवाये उसे घर ले आने का अर्थ है सामाजिक बहिष्कार । पं० रामनाथ प्रायश्चित विधान सम्पन्न करा लेना चाहते हैं । अतः परमानन्द शुक्ल, पं० रामनाथ के घर निमंत्रित होकर आये हैं । बल्कि आस - पास के 'कनौजिया जाति के सरपंच' भी आमंत्रित हैं । सब ब्राह्मणों को ताल्लुकेदार होने के कारण तिवारी जी से दबना पड़ता था पर अब वे प्रसन्न हैं कि उन्हें मौका मिला है । नीलकंठ अवस्थी कहते हैं, "शास्त्र का विधान जो है सो तोड़ना मनुष्य के लिए वर्जित हैं ।"[16] पक्ष और विपक्ष को लेकर दो गुट बन जाते हैं और बात मार-पीट करके निपटारा करने पर आ जाती है । यह सब ब्राह्मण समाज में कोई विशेष बात नहीं है ।

कानपुर में इस समय स्वदेशी आन्दोलन बड़ी जोर पर है । पंडित रामनाथ तिवारी मिस्टर डाबसन डिप्टी कमिश्नर के यहाँ से लौटते समय देखते हैं कि कांग्रेस का एक बहुत बड़ा जुलूस, जिसमें लोग तिरंगे झंडे लिए हुए तरह - तरह के नारे लगाते हुए चल रहे हैं कोई 'इन्कलाब - जिन्दाबाद' तो कोई 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' गा रहे हैं ।"[17] इस जुलूस में शहर के प्रमुख व्यापारी, वकील डाक्टर आदि सम्भ्रान्त लोग खद्दर के कपड़े पहने पैदल चल रहे हैं ।

कानपुर उत्तर भारत का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है । यहाँ का व्यापारी वर्ग धन से कांग्रेस को बड़ी सहायता कर रहा है । श्रध्दानन्द पार्क में कांग्रेस की सार्वजनिक सभा हो रही है । जगदु मिश्र का लड़का मार्कण्डेय सभापतित्व कर रहा है । पार्क लोगों से ठसा-ठस भरा है । लोगों में अजीब उत्साह है । विदेशी शासन ही नहीं विदेशी वेश-भूषा पर भी आक्रोश है । उमानाथ को कोट-पैन्ट, टाई और हैट, के साथ देख कर स्वयं सेवक उनका हैट हटाकर सिर पर गाँधी टोपी रख देता है ।

कांग्रेस के अतिरिक्त कानपुर में साम्यवादियों का गुट भी सक्रिय हो रहा हैं । कानपुर को अपना क्षेत्र बनाकर उमानाथ देश में साम्यवाद का प्रचार

|16|- टेढ़े मेढ़े रास्ते : भगवती चरण वर्मा | पृष्ठ 125 |
|17|- टेढ़े मेढ़े रास्ते : भगवती चरण वर्मा | पृष्ठ 48 |

करना चाहता है और लेबर-लीडर ब्रह्मदत्त की सहायता लेना चाहता है । इधर लेबर लीडर ब्रह्मदत्त कांग्रेस - कार्यकर्ताओं को भी सहयोग देता है । ये लेबर लीडर मजदूर के चन्दे पर ऐश करते हैं और हर तरफ से लाभ में रहते हैं । चूँकि ब्रह्मदत्त के आदमी शराब पर धरना चला रहे हैं अतः वह उक्त परिस्थिति में शराब नहीं पी सकता । पर होटल में उमानाथ उसकी गाँधी टोपी उतार कर कहता है, "छोड़ो भी, यहाँ तुम्हे देखने वाला कोई नहीं है - - - - - - - ।" और उसे व्हिस्की पिलाता है ।

यहाँ पत्रकार जहाँ कहीं भी राजनीतिक विशेष घटना की बू पाते हैं, पहुँच जाते हैं । लेबर लीडर और कांग्रेस कार्यकर्ता ब्रह्मदत्त को एक सौ पाँच डिगरी बुखार की बात सुनकर 'प्रताप' और 'वर्तमान' अखबार के प्रतिनिधि संवाद-दाता उसका इन्टरव्यू लेने आ जाते हैं । पर इनकी अपनी कोई नैतिकता नहीं - उमानाथ के घर अच्छा जलपान और आतिथ्य पाकर वे उमानाथ की खुशामद पर आ जाते हैं ।

कानपुर में क्रान्तिदल भी सक्रिय हो रहा है । पंडित रामनाथ के तीसरे पुत्र प्रभानाथ ने क्रान्तिदल में विधिवत दीक्षा ले ली है । दल का संचालन करने के लिए कानपुर से बाहर के भी लोग आया करते हैं । पर कोई किसी का परिचय नहीं जानता । दल के कार्य संचालन के लिए धन की आवश्यकता की पूर्ति धनिकों पर डाका डालकर या ट्रेन से सरकारी खजाना लूट कर की जाती है । प्रभानाथ कानपुर के एलफिंस्टन सिनेमा के सामने खड़ी मोटरों में से एक "स्टूडी बेकर" गाड़ी ले जाकर अपने साथियों के साथ लाला नैनसुख दास [कपड़े के थोक व्यापारी] की दुकान पर जाता है और दल का सरदार मुनीम के मत्थे पर पिस्तौल रख कर पाँच हजार रुपये वसूल लेता है ।

इसी प्रकार रायबरेली से चौदह मील दूर पर खजाना ले जा रही रेलवे ट्रेन को लूटने की योजना बनती है ।

कांग्रेस का जुलूस और जोश देखकर झगडू मिश्र ने सही नब्ज पकड़ी है "यू सहर का जोश देस की स्वाधीनता की लड़ाई माँ काम न देई । सहर वाले देखत हैं तमासा देखत नाहीं हैं तमासा करत हैं - - - - - सौन ई तब जोश आप सहर माँ देख रहे हैं, ई का हम लोग एक ऐसी समझत आन जो ज्यादा दिन नाहीं चलन का । वास्तविक काम तो तबही होई जब ई गाँव वाले मनई अपने हाथ

मा लेहैं ।"[18]

इसका प्रारम्भ होता है बानापुर गाँव में जमींदार - तहसीलदार के द्वारा किये गये अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध सत्याग्रह में । परमेश्वर अन्न-जल छोड़ बैठा है कि रामसिंह ने बदला न लिया तो प्राण दे देगा और प्राण दे भी देता है । पूरा गाँव रामसिंह से बदला लेने के लिए पागल हो जाता है । बलि होती है स्वयं झगड़ू मिश्र की । आक्रोश है तो सही पर पूरे गाँव में एका नहीं है । इन्हीं में से कुछ आदमी मैनेजर को गाँव वालों की हलचल का पता भी देते रहते हैं ।

इलाहाबाद विद्या और संस्कृति का केन्द्र रहा है । पर अब संस्कारहीन संस्कृति और दिखावे की विद्या ही वहाँ दिखती है । राजेन्द्र कुमार वर्मा, प्रवक्ता इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के घर रामेश्वर प्रसाद जी आया करते हैं जो हिन्दी और अंग्रेजी में नाटक लिखते हैं । प्रोफेसर किशोर हिन्दी के विख्यात कवि हैं, जब तब अपने घर कवि - गोष्ठी आयोजित किया करते हैं । कोई उनके घर इसलिये आया करते हैं कि ‡थोड़ा पढ़े लिखे होने के कारण‡ उन्हें अपने घर के परचूनिये के धंधे से अरुचि हो गई है और वे किशोर जी की खुशामद किया करते हैं कि उन्हें वे कहीं मास्टरी की नौकरी दिलवा दें । ऐसे ही कवि और आलोचक परमसुख चौबे भी उनके यहाँ अक्सर आते रहते हैं । इन्होंने अपनी आलोचना की पुस्तक में प्रोफेसर किशोर को युग-निर्माताओं में एक साबित किया है । प्रो0 किशोर ने इस उपकार के बदले में अपने प्रभाव से इनकी किताबें छपवा कर उन्हें स्कूल कालेजों में टेक्स्टबुक बनवा दिया है ।

इसी इलाहाबाद में शशिप्रभा जी जो अपना वैधव्य काटने त्रिवेणी तट पर आई थीं, साहित्य सेवा में अर्पित होकर रह गई है । "शशिप्रभा धाम" साहित्यकारों का तीर्थ बन गया है । प्रति शाम को 'शशिप्रभा धाम' में शशिप्रभा जी का दरबार लगता है और दरबारी होते हैं साहित्यिक भक्तगण - चाटुकार । इस संदर्भ में उमानाथ का अनुभव विचारणीय है"- - - -हिन्दी के साहित्यिक अपनी निजी और आत्म छलना से जनित कल्पना में अपने को इतना अधिक खो चुके हैं कि वे इस सत्य को देखने के लिए किसी भी हालत में तैयार

‡18‡- टेढ़े मेढ़े रास्ते : भगवती चरण वर्मा ‡पृष्ठ 284‡

सबकी जिम्मेदारी उसके ऊपर है ।

छोटे-मोटे दुकानदार सुबह से शाम तक अपनी दुकानों पर बैठ कर पैसा पैदा करने में लगे रहते हैं ।

यहाँ वेश्यायें हैं, शराबखाने हैं, थियेटर - सिनेमा हैं, घुड़दौड़ और कितने ही ऐसे सामान हैं जो यहाँ के व्यापारी और पूँजीपति वर्ग लोगों की 'कृपा के फल' हैं और उन्हीं को प्रसन्न करने के लिए हैं । 'इस नगर में शान्ति नहीं है, इस नगर में सहानुभूति नहीं है, यहाँ जो कुछ है वह धन का पिशाच है और उस पिशाच में गुलाम बनाने की प्रबल अभिलाषा है ।'[23]

युक्त प्रान्त से कलकत्ता जाने वाले रईस और ताल्लुकेदार वहाँ ऊँचे, मँहगे होटलों में ठहरते हैं । प्रभानाथ ने चौरंगी के प्रसिद्ध 'प्रिंसेस होटल' में दो कमरों का एक सूट रिज़र्व करा लिया है और उसी में ठहरा है ।

कलकत्ते में क्रान्तिकारी दल कुछ अधिक सक्रिय है । प्रभानाथ की कार का दरवाजा खोल कर एक युवती उसके बगल में बैठ जाती है और पिस्तौल की नली प्रभानाथ की पसलियों पर लगा देती है । वह कहती है "तेजी के साथ चलो-एक दम, पुलिस पीछे है ।"[24] भवानीपुर मुहल्ले की एक सूनी गली की कोठरी में उनका अड्डा है । इस दल के 'बड़दा' एम0एस0सी0 पास करके कलकत्ता विश्वविद्यालय के शोध - छात्र रह चुके हैं और अब किसी केमिकल फर्म में नौकरी कर रहे हैं । एक सदस्य अविनाश घोष विश्वविद्यालय में एम0ए0 कर रहा है । हरिपद मल्लिक जैसे लोग दल के संचालन के लिए दस हजार तक रुपया देते रहते हैं ।

अनेकों बेकार काम की खोज में यहाँ आते हैं और निराश होकर आत्महत्या कर लेते हैं । प्रिंसेस होटल के क्लर्क का सम्बन्धी सोमेश एम0 ए0 पास करके भी जीविका के अभाव में आत्महत्या कर लेता है । रिक्शा चलाते चलाते रिक्शा चालक सड़क पर ही गिर पड़ता है और दम तोड़ देता है । वैभव और विपन्नता अपने 'अति' सीमा पर यहाँ दिखते हैं ।

|23|- टेढ़े मेढ़े रास्ते : भगवती चरण वर्मा | पृष्ठ 57-58 |
|24|- टेढ़े मेढ़े रास्ते : भगवती चरण वर्मा | पृष्ठ 68 |

'टेढ़े मेढ़े रास्ते' पंडित रामनाथ तिवारी तथा उनके पुत्रों को लेकर 'बानापुर' गाँव और उन्नाव, कानपुर, इलाहाबाद और कलकत्ता शहर की पृष्ठभूमि पर लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है जिसमें उक्त स्थानों के स्फुट चित्र हैं। कलकत्ता का चित्र, यद्यपि प्रासंगिक ही है, अधिक स्पष्ट और मुखर है।

मैला आँचल (1954 ई0)

'मैला आँचल' का 'कथाक्षेत्र' है बिहार राज्य के पूर्णिया जिले का एक गाँव —'मेरीगंज'। ग्रामीण समाज के 'फूल' और 'शूल', 'धूल' और 'गुलाल,' 'कीचड़' और 'चन्दन' 'सुन्दरता' और 'कुरूपता' के चित्र प्रस्तुत करती है यह कथाकृति आँचलिक परिवेश में।

'रौतहट' स्टेशन से सात कोस पूरब बूढ़ी कोशी को पार करके 'मेरीगंज' जाया जाता है। बूढ़ी कोशी के किनारे किनारे बहुत दूर तक ताड़ और खजूर के पेड़ों से भरा जंगल है। अंचल के लोग इसे 'नवाबी तड़बन्ना' कहते हैं। आस-पास के हलवाहे-चरवाहे बैसाख से आषाढ़ तक यहाँ 'ताड़ी के नशे में मोटर गाड़ी को भी सस्ता' समझते हैं। यही नहीं, साल भर के झगड़ों के फैसले यहीं होते हैं, शादी-ब्याह के लिए दूल्हे - दुल्हिन की जोड़ी यहीं बैठ कर मिलाई जाती है। और किसी की औरत को भगा ले जाने का 'प्रोग्राम' भी यहीं तय होता है।

'मेरीगंज' गाँव में इतिहास नहीं लोककथाएं, किम्वदन्तियाँ चलती हैं। नीलहे मार्टिन साहब (डब्लू0 डी0 बी0 मार्टिन) ने अपनी प्रियतमा पत्नी 'मेरी' जो 'जड़ैया'-मलेरिया की ग्रास बन गई थी, के नाम पर इस गाँव का नाम 'मेरीगंज' दिया था। इसका पुराना नाम न किसी को याद है न कोई लेना ही चाहता है — अज्ञात आशंकावश। यहाँ कोई भी विस्तार पूर्वक बता देगा कि मार्टिन साहब की मेम 'मेरी' 'इन्द्रासन की परी' की तरह सुन्दर थी, कि मार्टिन साहब का घोड़ा 'पंछराज' रेलगाड़ी से भी तेज भागता था, कि मार्टिन साहब पागल होकर दिन भर पूर्णिया कचहरी में चक्कर काटता फिरता था — — — आदि। यहाँ के दूल्हे

के लिए अपनी नवोढ़ा पत्नी के सामने गर्व का विषय है कि उसके गाँव में 'नीलहे साहब' की कोठी थी ।

मार्टिन साहब की कोठी ढह गई है पर कोठी के बगीचे में 'मेरी' की कब्र मौजूद है । आस-पास पीपल, बबूल तथा अन्य जंगली पेड़ों का घना जंगल बन गया है । जिसे यहाँ के लोग 'भुतहा जंगल' कहते हैं । 'ततमाटोली' के 'नन्दलाल' को 'बगुले की तरह उजली प्रेतनी' ने वहाँ 'साँप' के कोड़े' से मार मार कर ढेर कर दिया था ।

'मेरीगंज' गाँव के पूरब में 'कमला' नदी बहती है । जो बरसात में भर जाती है बाकी मौसम में केवल बड़े बड़े गड्ढों में पानी रह जाता है जिसमें मछलियाँ होती हैं और कमल के फूल । गाँव वाले कहते हैं कि ब्याह या श्राद्ध में उनको निमंत्रित करने वालों की वह सहायता करती थीं चाँदी के बर्तन देकर । जो बाद में वापस कर दिये जाते थे । परन्तु किसी गृहपति ने कुछ बर्तन चुरा लिए थे अतः कमला मैया ने 'बर्तनदान' बन्द कर दिया और उस गृहपति का तो 'वंश ही खत्म हो गया ।' बिगड़ी नीयत वाले गृहपति के विषय में राजपूत टोली वाले कहते हैं कि वह कायस्थ था और कायस्थ टोली वाले कहते हैं कि वह राजपूत था । यहाँ हर घटना, हर स्थान, हर व्यक्ति के विषय में कोई न कोई कथा है ।

गाँव में प्रमुख तीन दल हैं -- कायस्थ राजपूत और यादव । ब्राह्मण तृतीय शक्ति हैं -- संख्या में कम है । गाँव के अन्य जाति के लोग भी अपनी अपनी सुविधानुसार इन्हीं तीनों दलों में बँटे हुए हैं । कायस्थ टोली के मुखिया विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक हैं जिनके दादा महारानी चम्पा-वती की स्टेट के तहसीलदार थे और राज पारबंगा स्टेट की ओर मिल गए थे । कायस्थ टोली को राजपूत टोली कहते हैं 'कैथ टोली' और अन्य लोग कहते हैं 'मालिक टोला' । ठाकुर रामकिरपाल सिंघ राजपूत टोली के मु-खिया हैं । कायस्थ लोग राजपूत टोली को 'सिपैहिया टोली' कहते हैं -- रामकिरपाल सिंघ के दादा महारानी चम्पावती की स्टेट के सिपाही थे । यादव टोली पहले 'गुआर टोली' कहलाती थी । अब मुखिया खेला-वन के जनेऊ ले लेने के बाद 'यादव क्षत्रिय टोली' कहलाती है । यहाँ

आदमी से अधिक महत्त्व की बात है उसकी 'जात' — जाति । सारी सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ 'जाति' है । गाँव में डाक्टर आया । उसका नाम जानने के बाद पहला प्रश्न 'क्या जात है ?' केवल जाति ही नहीं उपजाति, गोत्र – इन सबके जाने बिना यहाँ पानी नहीं चल सकता । शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना – ऐसा वे मानते हैं । महंथ साहब के भंडारे में ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ सबकी अलग अलग पंगत बैठी थी । गाँधी जी की हत्या से अधिक महत्वपूर्ण है हत्यारे की जाति । जातिरक्षा के सामाजिक नियम कठोरता से पाले जाते हैं । 'फुलिया' असली बुंदेला क्षत्री" पैटमान साहब" के "घर" रहकर बुंदेला क्षत्री हो गई । मैके में माँ से अलग रसोई बनाती है — गर्व की बात है ।

सन् 1942 के जन आन्दोलन का प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई प्रभाव इस गाँव पर नहीं पड़ा था । पर जिले भर की खबर अफवाह रूप में यहाँ अवश्य पहुँची थी । अतः चार साल बाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के आदमी 'मले-रिया सेन्टर' बनाने के लिए यहाँ आए तो गाँव वालों ने उन्हें 'मलेटरी' समझा । हर टोले में यह खबर अलग अलग रूपों में पहुँची । राजपूत टोली में 'मलेटरी' द्वारा तहसीलदार साहब के गिरफ्तार होने की बात पहुँची । यादव टोली में 'बालदेव' को रस्सी से बाँधने का उपक्रम होने लगा, 'सुरा-जी' आदमी गाँव को बँधवा देगा । इस गाँव के लोग कारण-कार्य सम्बन्ध पर व्यर्थ बुद्धि नहीं खर्च करते । पर व्यावहारिक बुद्धि खूब है उन्हें । 'मलेटरी" वालों को खुश करने के लिए 'एक सेर घी, पाँच सेर बासमती चावल और एक खस्सी' का उपहार लेकर विश्वनाथ प्रसाद स्वयं जाते हैं । इस सामान का लगभग पचास रु० अन्य टोली से इकट्ठा करके तहसीलदार साहब को देना होगा । राजपूत टोली के रामकिरपाल सिंह भी हाँ – हुजूरी में जाते हैं । यादव टोली वाले तो बालदेव को पकड़ा कर 'एक हजार, दो हजार, पाँच हजार" इनाम पाने का स्वप्न देखने लगते हैं । वहाँ बालदेव का आदर सम्मान देखकर तुरन्त माफी भी माँग लेते हैं, 'हम लोग मूरख ठहरे और तुम सियानी । हम बूढ़ के बैंग हैं – – – हमारा कसूर माफ कर दो'[25] खेलावन सिंह बालदेव जी से अपने यहाँ रहने का आग्रह करने लगते हैं । डा० प्रशान्त कुमार ने सही समझा है "गाँव के लोग सीधे दीखते हैं, सीधे का अर्थ

[25]– मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु [पृष्ठ 17]

यदि अपढ़, अज्ञानी और अंधविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं वे । जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है हमारे तुम्हारे ऐसों को दिन में पाँच बार ठग लेंगे ।'[26]

गाँव में 'मलेरिया सेन्टर' को लेकर बड़ा उत्साह है । मजदूरी का काम छोड़कर गाँव के लोग 'इसपिताल का घर' बनाने को तैयार हैं । पर मालिक लोगों से 'आधे दिन की मजूरी' लेने के बाद -- सात दिन तक बिना मजदूरी के नहीं रहा जा सकेगा । पेट इनकी कमजोरी है और मजबूरी भी । ब्राह्मण टोली अस्पताल खुलने के खिलाफ है । 'जोतखी जी' कहते हैं, "डाक्टर लोग सुई भोंककर देह में जहर दे देते हैं, आदमी हमेशा के लिए कमजोर हो जाता है ।" कुआं में दवा डाल कर हैजा फैलाते हैं - - -। सबसे बड़ी बात "बिलैती दवा में गाय को खून मिला रहता है ।'[27] वास्तविकता यह है कि गाँव में अस्पताल हो जाने से जोतखी जी की डाक्टरी - ओझाई पर आँच आने की सम्भावना है ।

किसी का बढ़ता प्रभाव देखकर ईर्ष्या वश उसकी पीठ पीछे उसकी 'टोकरी भर' निन्दा-शिकायत करना और मुँह पर खुशामद करना यहाँ के जन-समाज का स्वभाव है । अस्पताल को लेकर बालदेव के प्रभाव को देखकर राजपूत टोली के मुखिया के घर सब मिलकर बालदेव की बुराई कर रहे थे कि अस्पताल के लिए मिला अनुदान उसने मार लिया है । पर सामने सब उसकी खुशामद करने लगते हैं । पर गाँव के नौजवान अभी इतने व्यावहारिक नहीं हो पाए हैं । अतः हरगौरी पहले तो बालदेव पर गर्म होता है फिर सबके व्यवहार को देखकर क्षुभित होता है और चकित भी । थोड़ी थोड़ी बात में झगड़ा, गाली-गलौच यहाँ सामान्य बात है । कभी जाति-अपमान को लेकर कालीचरण [यादव] अपने दल के साथ प्रतिशोध लेने पहुँच जाता है तो कहीं औरतें ही एक दूसरे के पुरत दर पुरत को न्यौतने बैठ जाती हैं । औरतों के झगड़े का प्रारम्भ तो दो ही औरतों से होता है फिर झगड़ने वालियों की संख्या बढ़ती जाती है । झगड़ा के साथ काम और काम के साथ झगड़ा चलता रहता है । धीरे धीरे सारे गाँव की औरतें शामिल हो जाती

---

[26]- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु [पृष्ठ 56]

[27]- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु [पृष्ठ 49]

हैं । घंटे दो घंटे बाद ही मेल मिलाप हो जाता है । एक दूसरे के हाथ से हुक्का लेकर गुड़-गुड़ाना, साग मांग कर ले जाना और बदले में शकर कन्द भेज देना - प्रारम्भ हो जाता है । मन में गाँठ बाँधे रखना इनके स्वभाव में नहीं है । ये केवल वर्तमान बल्कि तत्क्षण में जीते हैं ।

और भी बातें गाँव में प्रचलित हैं — पितृहीन बालक 'कुमर' और मातृहीन बालक 'टुअर' । 'पन्ननपट्टी' का बालदेव जो अब 'मेरीगंज' में रहता है 'कुमर' है 'टुअर' नहीं । आँगन में वे ही सोते हैं जिसके "आँगन वाली" - पत्नी है । विधुर बाहर सोते हैं । उनके आँगन में सोने का अर्थ है वे बीमार हुए हैं । इनके लिए 'इनकिलाब जिन्दाबाद' का अर्थ है "हम जिन्दा बाघ हैं" । 'गनेश की नानी" "डाइन" है, तीन कुल में किसी को नहीं छोड़ा । 'पियाय की माँ" 'जनाना डाक्टर' है — पाँच महीने के पेट को भी इस सफाई से गिरा देती है कि किसी को कुछ मालुम नहीं होता । रेडियो में ठेस लगते ही गुस्सा होकर बोलता है 'बेकूफ' । लड़की की जात बिना दवा दारु के ही अच्छी हो जाती है । चूँकि लाल झंडी दिखाने से गाड़ी रुक जाती है । अतः लाल 'ओढ़ना' ओढ़कर गाड़ी पर चढ़ने जाओ तो गाड़ी रुक जायगी और "ओढ़ना" 'जप्पत" हो जायगा । ओझा भूत-प्रेत को 'पेड़ में काँटी ठोक' कर वश में कर लेते हैं । 'बाँझ निपुत्तर' के लिए टोटका विधान करते हैं । "खलासी जी" ओझा हैं उनके 'तुकताक' करने से 'उचित दास' की 'डेरा वाली' पुत्रवती हो चुकी है । अखबार में झूठी खबर छपती है - "औरत मर्द हो गई" कैसे हो सकता है ? गाँव में यदि बन्दर मरे तो 'बनरभूत' होकर गाँव को सताता है - - - - आदि आदि यहीं तक इनकी बुध्दि सीमा है ।

गाँव में एक मठ है जहाँ ब्रह्मबेला में प्रातकी होती है और बाद में सतसंग । सतसंग की उपस्थिति के हिसाब से मठ में भोजन की व्यवस्था होती है । रहने, ठहरने, खाने के लिए मठ के नियम हैं । मठके नियम को जरा भी ढील दिया जाय तो साधु-बैरागी एक ही महीने में उसे उजाड़ देंगे । व्यवस्था कोठारिन जी - लक्ष्मी दासिन के हाथ में है ।

यहाँ 'अपना मत' करके कुछ नहीं है जो भी है जन-मत । वो भी स्थिर नहीं है — वह परिचालित होता है स्वार्थ को दृष्टि में रखकर या सुन-सुनाकर । मठ के महंथ 'सेवादास' इस क्षेत्र के ज्ञानी साधु माने जाते थे ।

लेकिन महंथ साहब के दासिन लाने पर जन-मत बदल गया -'धर्म भ्रष्ट हो गया है - - - - ब्रह्मचारी नहीं व्यभिचारी हैं।'[28] महंथ साहब द्वारा दिये गए भंडारे 'पूड़ी जिलेबी का भोज' ने गाँव वालों की राय बदल दी —— कैसा भी हो आखिर साधु है।'[29] एक आध को छोड़कर गाँव वालों ने कभी पूड़ी जिलेबी चखी नहीं थी।

भोज से पहले 'कालीथान' पर पूड़ी जिलेबी चढ़ाने की परम्परा है। फिर जंगल के देवी देवता और भूत पिशाच के लिए कोठी के जंगल की ओर दो चार पूड़ी फेंक दी जाती है। फिर गाँव - भोज होता है।

साधु - महंथों की मृत्यु 'चोला बदलना' है। उनकी मृत्यु पर सारा गाँव इकट्ठा होता है। महंथ साहब की मृत्यु के विषय में फिर एक कथा -'सरकार ध्यान लगा कर बैठे तो देह से जोत निकलने लगा - - - आदि। महंथ को 'माटी देने' की एक विशेष परम्परा है। पहले शिष्य -'रामदास' माटी देता है फिर 'लछमी दासिन' उनकी चादर पर मुट्ठी भर मिट्टी डालती है फिर फूलों की माला। तदनन्तर साधु लोग कुदाल से 'गोर' भरने लगते हैं। गाँव के 'कीरतनियाँ लोग' 'समदाउन' प्रारम्भ करते हैं ——

'हाँ रे बड़ा जतन से सुग्गा एक हे पोसल,
- - - - - - - - - - - - - - - -
- - - - - सुग्गा बिरिछी चढ़ बैठल
पिंजड़ा रे धरती लोटाये - - - -।'[30]

मठ पर नये महंथ की 'चादर टीका' होने का एक विशेष विधान है। जिसको टीका मिलनी होती है वह सिर के बाल और मोंछ - दाढ़ी मुँड़ा- कर लंगोटी और कौपीन धारण करके बैठता है। 'आचारज गुरु' का मुंशी 'एक- रारनामा' और 'सुरत हाल' लिखता है। गाँव के लोग दस्तखत करते हैं फिर 'आचारज गुरु' दही का टीका लगाकर चादर ओढ़ा देते हैं। इसमें गाँव वालों की सहमति आवश्यक है क्योंकि मठ को गाँव वालों के बाप दादा ने सम्पत्ति दान की है। मठ के पास अच्छी सम्पत्ति है — नौ सौ बीघे की काश्तकारी, दस बीघे कलमी आम का बाग, ब्वारी केले का बाग, चार मुलतानी भैंस, दो

|28-29|- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु | पृष्ठ 28 |
|30|- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु | पृष्ठ 48 |

कोड़ी माय ।

रमजू दात की स्त्री [तंत्रिमा टोली की औरतों की तरदारिन है – हाट – बाजार जाते तमय, मालिक के खेतों में धान रोपने या काटने के तमय, शादी ब्याह के तमय । 'राजपूत' 'बाभन' और 'मालिक टोले' के आदमी – औरतों ते तामने – तामने बात कर लेती है । तारे गाँव के स्त्री पुरुष के भेद उतकी मुट्ठी में हैं । उतते तभी डरते हैं कब किसका भेद खोल दे । यही नहीं, वह उनके तम्बन्ध करवाने में तहायक भी होती है । "खलाती जी" का 'फुलिया' ते 'चुमौना' करवाने के लिए उते असली गिलट का कंगन खलाती जी व्दारा मिला है । 'रमपियरिया की माये' को वह तमझाती है कि महंथ ते 'कठतर' लेकर छोड़ना तब रमपियरिया को 'दातिन' बनने देना ।

यहाँ पर–स्त्री और पर – पुरुष में तम्बन्ध होना आम बात है । एक स्त्री का कई पुरुषों ते तम्बन्ध होना और एक पुरुष का कई स्त्रियों ते तंबंध भी ताधारण बात है । फुलिया की माये अपने खात भतीजा के तंग भागी थी और यही मुतर टोली के 'कलरू' के ताथ 'रतलीला' भी करती है । रमजू दात की स्त्री 'तिंघवा की रखेली' है । तहदेव मितिर और फुलिया कोठी के बगीचे में मिलते रहते हैं । जोधे की स्त्री रामलगन सिंह के बेटे ते फँती हुई है और उचित दात की बेटी कोयरी टोले के तरन महतो ते । चौतखी जी की चौथी पत्नी 'कमबीरा भाभी' के पेट के बच्चे का बाप उनका नौकर है, कौन नहीं जानता है । इन बातों को लेकर जब तब पंचायत होती रहती है । पर पंचायत का फैसला अधिक ते अधिक दत दिनों तक लागू रह तकता है । पंचायत का एक ही अर्थ है —'फोकट में भोज'[31] मिल जाना और फिर 'जाति की बन्दिश में जरा ढील देने ते तब गड़बड़ा जाता है' ।

अपनी महानता भिन्नता और जीवन-जीविका संघर्ष के बीच भी इनकी जीवनी शक्ति और तहृदयता अद्वितीय है । 'कम्हार' [खलिहान] में दिन के तमय ताल भर की कमाई का लेखा जोखा होता है और शाम को वहीं 'सो-रिक' या 'कुमार विज्जैभान' की गीत-कथा होती है । बैलगाड़ी हाँकते हुए

[31]- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु [पृष्ठ 252]

गाड़ीवान 'महुचिया' गीत गाता चलता है । कभी किसी टोली में 'सुरंगा-सदाबृज' की कथा होती है । कभी 'बिदापत' नाच होता है, कभी 'बि-कटा' । यादव टोली के अखाड़े में ढोल बजता है —

डिम्मा, डिम्मा डिम्मा डिम्मा ।
आधा आधा आधा आधा ।
धत्ता गिड़धा धत्ता गिड़धा ।[32]
आधा गिड़धा आधा गिड़धा ।

सुनने वालों की देह कसमसाने लगती है । 'काली थान' पर 'शोभन मोची' पूजा के दिनों में ताल बदल देता है —

धागिड़ धिन्ना धागिड़ धिन्ना ।
जै जगदम्बा जै जगदम्बा ।[33]

'संथाल टोली' में माँदर डिग्गा और मुरली की धुन पर संथाल सुन्दरियाँ जूड़े में गादे फूलों के गुच्छे लगाकर, उजले दाँतों की पंक्तियों पर खिल-खिला हँसी सजा कर झुमुर - झुमुर नाचती हैं ।

मँहगी हो या अकाल पड़े पर्व त्योहार मनाने ही होते हैं । मालिक लोगों से हाथ की सीप देकर उधार लेकर 'पुआ - पकवान' बनता है—होली तो मनानी ही होगी । रंग के लिए पैसे कहाँ, गोबर और कीचड़ से होली खेली जाती है । 'जोगीड़ा' 'फगुआ' '[illegible]' गाया जाता है — "बुरा न मानो होली है" के साथ । गाने वाले इन गीतों में स्वरचित पंक्तियाँ जोड़ते जाते हैं । सारे गाँव वाले बच्चे से लेकर बूढ़े तक मतवाले हो उठते हैं —"फागुन मास तो हँस लो, गा लो । को जीते को खेले फाग ।"

वर्षा ऋतु में 'तत्मा टोली' 'पासवान टोली' 'धानुक-कुर्मी टोला' और 'कोयरीटोला' की औरतें इन्द्र को रिझाने के लिए, बादल वर्षा का आह्वान करने के लिए 'जाट-जाटिन' खेलती हैं बीच बीच में अभिनय और व्यंग्य - नाट्य भी होते रहते हैं मर्दों को 'जाट - जाटिन' देखने का अधिकार नहीं है । यदि कोई छिपकर देखे तो उस पर जुर्माना होती है ।

---

[32]- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु । पृष्ठ 72 ।
[33]- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु । पृष्ठ 73 ।

भले ही गाँव शहर से दूर है पर राजनीति वहाँ भी पहुँच गई है। पूर्णिया के कामरेड गंगा प्रसाद सिंह यादव से निर्देशित होकर कालीचरन गाँव में सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना करता है —'लाल झंडा सेन्टर' । कांग्रेस पार्टी की ओर से 'चरखा – सेन्टर' खुला है वैसे ही काली टोपी सेन्टर । चूँकि कांग्रेसी कार्यकर्ता "बालदेव जी" को कपड़े की पुर्जी बाँटने के काम से छुट्टी नहीं मिलती इसलिए 'चवन्नि' का काम करने के लिए 'बौनदास' — बावन-दास को भेजा गया है । कालीटोपी वाले संयोजक जी 'बुध्दू किलास' — बौध्दिक क्लास चलाते हैं । चरखा – सेन्टर में रात्रि पाठशाला चलाई जाती है ।

राजनीतिक उथल-पुथल या दाँव-पेंच से गाँव की सामान्य जनता न तो प्रभावित होती है न उसकी रुचि है । पर गाँव में बालदेव जैसे एकाध लोग हैं जो राजनीति से जुड़े हैं वे, बावन दास से समाचार पाकर कि 'चन्नम पट्टी' के कांग्रेसी कार्यकर्ता 'चुन्नी गोसाईं' अब सोशलिस्ट पार्टी में चले गए ; विलायती कपड़ों की पिकेटिंग करने वाले वालेन्टियरों को पीटने वाला "सागर मल" 'मरघत थाने' का सभापति है; जुआ कम्पनी चलाने वाला तथा लड़कियों का व्यापार करने वाला 'दुलार चन्द कापरा' 'कटिहा' थाने का सेक्रेटरी है – चकित हो जाते हैं । वे कुछ समझ नहीं पा रहे हैं ।

समझ तो कालीचरन भी कुछ नहीं पा रहा है । डकैती के केस में गिरफ्तार होकर काली चरन जान पाया है कि पार्टी-पार्टी कुछ नहीं है, सब लूटने खाने का बहाना है । सोशलिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी साहब उसे पह-चानने से इनकार कर देते हैं । गाँव का भोला निर्दोष उत्साही कालीचरन अब समझ पा रहा है, वह जान पा रहा है कि उसकी सहायता 'चरित्तर कर्मकार' जैसा डकैत सहज भाव से कर सकता है शहर के बाबु, सेक्रेटरी आदि नहीं । पर नहीं, गाँव वासुदेव अधिक समझदार है वह ' इस ओर' में शामिल हो गया है और प्रसन्न है । यों गाँव में समझदारी की कमी नहीं है वे जानते हैं कि सोशलिस्ट पार्टी से सम्बन्ध होने पर कालीचरन को लेकर वे भी पकड़े जा सकते हैं अतः वे सोशलिस्ट पार्टी का नाम भी नहीं लेते । वे यह भी जानते हैं कि "सेक्रेटरी साहब" की सिगरेट का पैसा नहीं लेना है ।

गाँव के लोगों को मालुम है कि जिसके पास पैसा है वही 'बोतल मिनिस्टर' बलवान है । देह के जोर से आजकल कुछ नहीं होता । तहसील-दार साहब की बेटी कमला आधी रात तक डाक्टर बाबू के घर बैठी रहती है पर किसी को कहने की हिम्मत नहीं है कि तहसीलदार साहब की बेटी का चाल चलन बिगड़ गया है । 'तहसीलदार हरगौरी सिंह अपनी खास मौसेरी बहन से फँसा हुआ है । बालदेव जी कोठारिन से लटपटा गए हैं ।'[34] काली चरन ने चर्खा-मास्टरनी मंगला देवी को अपने घर में रख लिया है । इनको कोई कुछ नहीं कहता । सारे कानून गरीबों के लिए हैं । गाँव में बस दो ही जाति ---'अमीर और गरीब' ।[35]

अशिक्षा अंधविश्वास और गरीबी के बीच गाँव जगने लगा है । गाँव के मठ में 'लरसिंघदास' को 'महंथी टीका' दिये जाने के पक्ष में सारे गाँव के दस्तखत कर दिये जाने पर भी गाँव का नवजवान कालीचरन और उसके साथी सक्रिय विरोध करके स्वर्गीय महंथ के शिष्य रामदास को टीका दिलवाते हैं । वे अब अन्याय सहन नहीं करेंगे । तहसीलदार हरगौरी सिंह से अपना विरोध प्रदर्शन करने के लिए नाई, धोबी, चमार असहयोग कर रहे हैं - चमारों ने मरी गाय उठाने से इनकार कर दिया है ; नाइयों ने काम करना बन्द कर दिया है --- राजपूत टोले के लोगों की दाढ़ी बढ़ रही है । कालीचरन कहता है'- - - - विश्वनाथ मामा - - - -आज तक मैंने आपको देवता की तरह माना है । लेकिन गरीबों के खिलाफ कदम बढ़ाइएगा तो हम भी मजबूर होकर - - -'[36] गाँव-पंचायत में अब सवर्ण ही पंच नहीं है । 'बाभन-राजपूत' के साथ यादव, नाई, मोची, धोबी सभी के प्रतिनिधि पंच बनते हैं । यह बात दूसरी है कि तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की राय सर्वोपरि है ।

गाँव की संथाल टोली अन्य गाँव वालों से अलग है । वे 'दिकू' और संथालों पर विश्वास नहीं करते । प्रसन्न होने पर हँसते हैं, मांदल पर नाचते और गाते हैं । पर नाराज होने पर विष बुझे तीरों से अपने विरो-धियों पर प्रहार करते हैं । ऐसे अवसर पर गाँव वाले भी इन्हें नहीं छोड़ते- संथाल पुरुषों को भालों से मारते हैं और स्त्रियों में बूढ़ी, जवान, बच्ची के

{34}- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु { पृष्ठ 180 }
{35}- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु { पृष्ठ 180 }
{36}- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु { पृष्ठ 181 }

साथ 'जो जी में आवे' करते हैं ।

गाँव में कोई दुर्घटना होने पर दरोगा सभी दलों को विश्वास में लेकर हर एक से अपना वाजिब वसूलते हैं । उनका इलाका है —'उपरी झाड़-झपट, पान-सुपारी' वसूलना उनका हक है, गाँव वालों को सहज स्वीकार्य भी है । गाँव के तहसीलदार साहब, सिंघ जी और खेलावन यादव भी इससे बाहर नहीं हैं । हाँ, तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद ऐसे समय पर अपना भी उल्लू सीधा कर लेते हैं । तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद के तीन रूप हैं — मामला-मुकदमा, लेन-देन, नफा-घटी की बात के समय एक दम कठोर रूप । घर में हास्य-प्रिय, रसिक और कुशल गृहस्थ, भोला-भाला इन्सान । और तीसरा रूप है असहाय पिता का । जिसकी एक मात्र पुत्री पर बेहोशी का दौरा पड़ता है, जिसकी शादी नहीं हो पाती है [कमला मैया की वरदा पुत्री है वह, कमला मैया नहीं चाहतीं कि उसका विवाह हो अतः जिससे विवाह तय होता है वह 'वर' मर जाता है, कारण, कमला मैया कुँवारी थीं]।

गाँव में चौकीदार ढोल बजाकर सुनवा देता है जैसे 'कल सुबह अस्पताल में सुई दी जावेगी । बाल-बच्चे, बूढ़े-जवान, औरत-मर्द आकर सुई ले लें ।' अस्पताल में किसी के न आने पर 'कोठी के हाट' के समय गाँव वालों को सब ओर से घेर कर काली चरन और उसके साथी जबरदस्ती हैजे की सुई लगवा देते हैं । बालदेव जी ने सात दिन की बुखार की दवा एक ही बार खाकर, बार बार के काम से मुक्त होना चाहा और गर्मी सिर पर चढ़ गई तो उसकी मौसी कहती है कि डाक्टर ने कमला की बीमारी उतार कर बालदेव पर चढ़ा दिया है । बालदेव जी मानते हैं कि उन पर महात्मा जी का 'भर' [देवी देवता सवार होना] होता है । जोतखी जी की स्त्री मर जाती है पर जोतखी जी स्त्री के बेपर्द होने की बात स्वीकार नहीं कर पाते—डॉक्टर से पेट कटा कर बच्चा निकलवाने के लिए राजी नहीं होते ।

गाँव के लोग अन्य बातों में भले ही मूर्ख हों पर स्वार्थ की बात खूब समझते हैं । तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद के साथ काम करने वाला 'सुमिरत दास', हरगौरी सिंह के तहसीलदार होने पर उसकी तरफ है —'हरगौरी बाबू हीरा है । विश्वनाथ प्रसाद तो एक नम्बर के मक्खीचूस और सक्की

आदमी है ।'[37] वही सुमिरत दास आज फिर विश्वनाथ प्रसाद की ओर से बोल रहा है कि सुराज के उपलक्ष में तहसीलदार साहब भोज देंगे – 'पूड़ी, जिलेबी, हलुआ, दही चीनी का ।'[38] गाँव का आदमी अच्छी तरह जानता है कब, कहाँ और क्या कहना चाहिए ।

इस गाँव का कोई शुभ कार्य या उत्सव बिना नाच गाने के पूरा नहीं होता । अस्पताल खुला तो नाच, होली है तो गाना बजाना और अब 'सुराज' हुआ तो 'बलवाही' 'बिदेसिया' और 'नौटंकी कम्पनी' तीनों का कार्यक्रम होगा नौटंकी में 'लखनौ की बाई जी' मुख्य आकर्षण हैं । ये ग्राम-वासी केवल वर्तमान में रहते हैं । व्यर्थ भविष्य की चिन्ता करना इनके स्वभाव में नहीं है । धान, पाट, तम्बाकू और मिर्च का भाव चढ़ जाय तो सबके सब किसान खुशहाल हो जाते हैं । 'हरमुनियाँ' '[illegible]' से लेकर 'इंग्लैंड' और 'पहाड़िया घोड़ा' तक खरीद डालते हैं । बन्दूक के लाइसेन्स के लिए अफसरों को डालियाँ भेजने लगते हैं, मेले में रात भर मुजरा सुनते हैं, और पैसे की गर्मी में खून भी कर डालते हैं।

ये 'सुराज' का अर्थ नहीं जानते । 'जब तक बन सुराज नहीं पावें'—[39] सुराज इनके लिए कोई धन है । जिसे 'आठ आना' के हिसाब से बाँट कर हिन्दू मुसलमानों को बराबर बराबर बाँटा जायगा और हिन्दू का हिस्सा सुराज 'हिन्दुस्तान' में रहेगा और मुसलमानों के हिस्से का 'सुराज' 'पाकिस्तान' में जायगा ।

गाँव में 'सुराज' का उत्सव मनाया जाता है । 'हेड-टीन' लिये हुए हाथी पर 'भारत माता की मूर्ति' के साथ 'सुराज' का जुलूस निकलता है । गाँव वाले सोचते हैं—लछमी, सरस्वती, पार्वती गौरा, भारत माता सभी बहनें हैं । कालीचरन की पार्टी नारा लगाती है, 'सुराजी कीर्तन' भी होता है—

हाथी चढ़ल आवे भारत माता
होली है देखत सुराज । चलू सखी देखन को
घोड़ा चढ़ले आवे वीर जवाहिर पैदल गाँधी
पैदल गाँधी महाराज । चलू सखी देखन को ।'[40]

सब सोचते जाते हैं, गीत चढ़ता जाता है । 'सुराज' का उत्सव

---

[37]- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु । पृष्ठ 156 ।
[38]-[39]- मैला आँचल : फणीश्वरनाथ रेणु । पृष्ठ 231-232 ।
[40] मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु [पृष्ठ 239]

संथाल टोली में भी हो रहा है । वे मांदर और डिग्गा पर नाच रहे हैं —

रिं रिं ता धिन ता ।
डिग्गा डा डिग्गा ।

दोहरी मानसिकता, दोहरा व्यक्तित्व – स्वार्थ परकता, चालाकी 'पटनिया रोग' है — पटना जैसे शहरों की देन है जो कारबिस गंज, चन्ननपट्टी, पुरैनिया मेरीगंज में संक्रमित होकर फैल रहा है । सोशलिस्ट पार्टी का 'बासुदेव' काली चरन को अलग ~~अलग~~ करके अपनी पार्टी बना रहा है । उसने बार बार शहर जाकर जान लिया है कि किस तरह छुप कर पानी पिया जाय कि 'एकादसी का बाप' भी न जाने । कारबिसगंज के 'रामकिसुन' आश्रम का कांग्रेसी कार्यकर्ता 'छोटन बाबू' 'बिलेक मारकेटी' के साथ कचहरी में घूमते हैं । भूमिहार, राजपूत, कायस्थ, हरिजन लड़ रहे हैं कि आगामी चुनाव में उसके अधिक से अधिक आदमी चुने जायँ । ये सारी राजनीतिक बातें 'पट-नियाँ रोग' हैं ।

गाँधी जी की हत्या – मृत्यु की खबर गाँव वालों ने सुनी । वे 'बाँस की हुँथी' कंधे कंधे ले जाकर प्रवाह करने जा रहे हैं । सारा गाँव साथ जा रहा है । 'अकलिया लोगों' ने समदाउन शुरू कर दिया है —

अरे काँचहि बाँस के खाट रे खटोलना
आकेर मूँज के र हे डोर ।
- - - - - - - - - - - - - - -
चार समाजी मिली डोलिया उठोओल
लई चलल जमुना के ओर ।"[51]

गाँव के स्त्री पुरुष, बूढ़े-जवान, बच्चे फफक कर रो पड़ते हैं । 'सराध के दिन' तहसीलदार साहब भोज देंगे जिसमें ब्राह्मण राजपूत यादव और हरिजन एक पंगत में बैठकर खायेंगे ।

और शहर में — गाँधी जी का 'भस्म' लाने के लिए कौन उपयुक्त पात्र होगा, कायदे से तो जिला सभापति को लाना चाहिए, यदि और कोई जा रहा है तो इसमें कुछ रहस्य होगा — ऐसी बात चल रही है । कांग्रेस सभा-

---

{51}- मैला आँचल : फणीश्वर नाथ रेणु । पृष्ठ 307 ।

पति के चुनाव में राजपूत और भूमिहार का मुकाबला है । कटिहार काटन मिल वाले सेठ भूमिहार की ओर हैं और फारबिस गंज जूट मिल वाले राजपूतों की ओर । सब पैसे का तमाशा है । कानून और कचहरी में भी पैसे का खेल है ।

ऐसी विरूपताएँ केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं, हर तरफ हैं । पटना में पाँच आने का एक ऐम्प्यूल आठ रुपये में बिकता है । मुहल्ले में खेलने वाली लड़की को रात दो बजे "बड़े बड़े बाबू लोग" मोटर में घसीट ले जाते हैं जो बाद में घास के पार्क में कराहती हुई पाई जाती हैं । खास पटेरा भाई अपनी बहन के प्रति बदतमीजियाँ उछालता है । डा० ममता श्रीवास्तव जैसी तमाम सेवी महिलाओं के चरित्र पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए, मुस्कराकर किसी मिनिस्टर के साथ उसका नाम लिया जाता है ।

कटिहा थाने का सेक्रेटरी 'दुलार चन्द कापरा' 'मोरंगिया माल' पीकर 'दो टाँग वाली मुर्गी — कोई 'रिफ्यूजिनी' के साथ रात बिता कर गाँधी जी के मृत्युदिवस का सदुपयोग करना चाहता है — अवैध रूप से सामान सीमा पार पहुँचाना चाहता है, किसी भी कीमत पर, बावन दास की हत्या करनी पड़े तो भी ।

इस तरह की कुछ - एक घटनाएँ गाँव के जीवन को थोड़े समय के लिए आन्दोलित कर जाती हैं । फिर उनका अपना जीवन अपने ढंग से चलने लगता है । अपनी अज्ञानता और स्वार्थपरकता में भी उनका निर्दोष सहज भोलापन किसी तटस्थ प्रेक्षक को एक ऐसा आत्मीय संस्पर्श देता है कि वह "ग्राम-वासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले" इस गाँव के लोगों में आशा और विश्वास प्रतिष्ठित करने के लिए इसी गाँव में रहकर काम शुरू करना चाहता है।

<u>बूँद और समुद्र { 1956 ई० }</u>

'बूँद और समुद्र' नामक उपन्यास में लेखक ने 'देश के रूप में लखनऊ और खास तौर पर चौक' को लेकर मध्यवर्गीय नागरिक समाज का चित्र प्रस्तुत किया है । रायसाहब द्वारिका दास अग्रवाल की प्रथम पत्नी ताई, महीपाल सुनार और उनका परिवार, त्रिभुवन नाथ वर्मा और उनकी पत्नी तारा,

सज्जन और वनकन्या ; महिपाल उसका परिवार और डा0 शीला स्विंग ; सज्जन, महिपाल और नगीन चन्द जैन उर्फ कर्नल तथा बाबा रामदास इन कुछ चरित्रों को प्रमुख रूप से लेकर, एक विस्तृत फलक पर, लेखक ने लखनऊ के जन-समाज का 'गुण दोष भरा ज्यों का त्यों' चित्र आँका है ।

चौक लखनऊ का पुराना मुहल्ला है । पुराने लोग, पारम्परिक तरह का रहन-सहन — यहाँ न समय भागता है, न लोग हर समय व्यस्त हैं । जाड़े की दोपहर में छत पर कुछ औरतों का 'सीना-पिरोना' चल रहा है, कुछ औरतें गेहूँ फटक रही हैं, कुछ दाल बीन रहीं हैं । बुड्ढे अपने अड़ावर उतार कर धूप सेंक रहे हैं । पड़ोसिनें मुंडेर के किनारे लग कर बातें भी करती जाती हैं और 'मुन्ने-मुन्ने' का स्वेटर भी बुनती जाती हैं । इस मोहल्ले के बड़े-बूढ़ों की दृष्टि में, पढ़ लिख कर नौकरी करने वाली 'बैसिकल {बाइसिकल} पर चलने वाली लड़की 'बिगड़े संस्कार' की है । पत्नी का पति के साथ खाना-पीना घोर 'कलियुग' का लक्षण है । पुराने लोग पुरानी मान्यताओं को लेकर अपने ढंग से रह रहे हैं । परन्तु नई पीढ़ी में पुरानी मान्यताओं और परम्पराओं से मुक्त होकर रहने की चेष्टा घर करने लगी है । मझली सुनार की बहुओं की नजर में अपनी पड़ोसिन तारा —'मिसिज वर्मा', जिन्होंने अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह {लौ-मैरिज} किया है, 'हीरोइन' है । सम्मिलित परिवार मजे में चल रहे हैं । सास बहुओं पर 'मुनासिब रोब' रखती है, बहुएँ भी अदब करती हैं । पर समय की माँग के अनुसार बेटे-बहुओं को व्यक्तिगत स्वाधीनता मिली हुई है । मझली सुनार की दोनों बहुएँ अपने अपने कमरे में 'इस्टोप' पर 'अंडा - मछली और पावरोटी' आदि बनाकर खाती पीती हैं । पर 'घर के चौके में सबका भोजन समाज, घर का चलन व्यवहार एक है ।' नन्दो, मझली सुनार की लड़की, भाई भौजाइयों में खोट निकालती रहती है और एक दूसरे से मिली भी रहती है ।

चौक की इस गली में जहाँ साधारण मध्य वर्ग के लोगों के घर-द्वार हैं वहीं पुराने रईसों की पुरानी कोठियाँ भी हैं, भले ही वे सिविल-लाइन्स में बनवाए गए अपने नए बंगलों और कोठियों में रह रहे हों । राजा साहब द्वारका दास की पुरानी कोठी में उनकी पहली पत्नी बतौर 'ताई' रहती हैं । वे दूसरी पत्नी तथा बाल बच्चों के साथ सिविल लाइन्स में रहते हैं । यों सेठ रूपरतन, शालिग्राम जायसवाल और जानकी सरन जैसे लक्ष्मीपतियों के आवास चौक में ही हैं । — वे पुराने रहने वाले हैं ।

इस गली-मोहल्ले में तरह तरह के लोग रहते हैं। पति से अलग रहने वाली, खूब छूत-विचार मानने वाली, प्रतिदिन भोर में गोमती स्नान करके अनेक देवी-देवताओं सहित राधा-कृष्ण की पूजा करने वाली, दुनिया-घुमाने को कोसने वाली, जादू-टोना करने वाली चिड़चिड़ी-लड़ाकू {और मनहूस} ताई यहाँ रहती हैं। उन्ही का किरायेदार बनकर सज्जन वर्मा जैसा सुरुचि सम्पन्न आधुनिक कलाकार भी यहाँ रह रहा है - भले ही मोहल्ले का अध्ययन करके अपने चित्रों के लिए विषय एकत्र करने आया हो। 'शाहनजफ रोड', जहाँ पर सज्जन वर्मा का स्थायी निवास स्थान है वहाँ के लोग परम्परा गत भारतीय जीवन से करीब करीब दूर हो चुके हैं। उनका सामाजिक जीवन गली मुहल्ले के सामाजिक जीवन से भिन्न है। शाहनजफ रोड के रहन सहन में या तो पूरी भारतीय अरिस्टोक्रेसी है या पाश्चात्य ढंग के रहन सहन का अनुकरण। गली में कोई विशिष्ट व्यक्ति आ जाय तो गली के सामान्य जीवन में हलचल आ जाती है और सार्वजनिक चर्चा का विषय हो जाता है। कलाकार इनकी दृष्टि में 'लाज़िमी तौर पर चरित्र हीन' होते हैं। अतः इनका विरोध करने के लिए दैनिकों में सम्पादक के नाम शिकायती पत्र भी छपा डाले गए।[42]

माघ-पूस के जाड़े में भी गली भोर-सुबह जग जाती है। गोमती से नहाकर लौटते हुए लोग - सुमाइयों की आवाजाही, सूर, कबीर के भजन गाते हुए फ़कीर, पेपर वाले की आवाज़, "चाय्हु गरम बिस्कुट करम" की आवाज़, गली के नल पर औरत - मर्दों की बक-बक -- गली गुलज़ार है। कोई फूहड़ गृहिणी घर का कूड़ा गली में फेंक रही है। कहीं उधर से कागज़ की पोटली में बच्चे का पाखाना गली में फेंका जा रहा है। मैन-होल से पानी निकल-निकल कर सड़क पर फैल रहा है। उधर 'लाले दलाल' के दरवाजे पर अनिष्ट कामना करके टोटके का आटे का पुतला रखा है और लाले की बहू की भय और आक्रोश मिश्रित चीख - पुकार चल रही है। गली पूरी तरह जग चुकी है।

हर घर में अन्दर ही अन्दर अलग - अलग ढंग के भेद हैं। मसूती कुमार की लड़की चन्दो ने घर के नौकर से मिल कर अपने ही घर में चोरी करायी है, 'कुलच्छन' करती है। मनिया की बहू पड़ोस में आने जाने वाले कवि से प्रेम करती है। मनिया का सम्पो की बहू से अनैतिक सम्बन्ध है।

{42}- बूँद और समुद्र : अमृत लाल नागर, { पृष्ठ 9 }

मास्टर जगदम्बा सहाय का अपनी विधवा भतीज-बहू से सम्बन्ध है, उनके नाजायज बच्चे की लाश कम्पनी बाग में पायी गयी है - ऐसी बातें गली के स्त्री-पुरुषों के वार्ता-विषय हैं । गली के चबूतरे पर लाला, बनिया, नौकरी पेशा, खोंचे वाले तथा अन्य आने जाने वालों में दुनिया-जमाने की बात राजनीति का रुख ले लेती है । कोई कांग्रेस की हिमायत करता है, कोई कम्यूनिस्टों को दोष देता है । यहाँ तक कि 'हिन्दू धरम का सत्यानास' करने वाले गाँधी जी ठहराए जाते हैं ।

राजनीतिक नेता.लोग गली मोहल्लों में घटित इन दुर्घटनाओं का का सदुपयोग {१} करके एलेक्शन में जनता का वोट अपनी अपनी तरफ घसीटने लगे हैं । {यह स्वतंत्र भारत का पहला चुनाव है} किसी पार्टी के पक्ष में, किसी के विपक्ष में, विभिन्न पार्टी के प्रत्याशी और प्रचारक, इन घटनाओं को अपने अपने ढंग से रंग देकर पार्टी प्रचार करते हैं । कभी जनसंघ का जुलूस निकलता है, कभी कांग्रेस का । कांग्रेस वाले नाजायज बच्चे को कम्युनिस्ट 'भल्ले बाबू' का बाप बताकर पर्चे बँटवाते हैं क्योंकि मास्टर जगदम्बा सहाय का सम्बन्ध कांग्रेस से है अतः उन्हें इस लांछन से बचाना है । गली के लोग भी पूरे जोश के साथ विभिन्न पार्टी के पक्ष-विपक्ष में अपनी राय प्रगट करते हैं । गोमती-स्नान करने वाली स्त्रियों में राजनीति-चर्चा केवल वोट डालने तक सीमित है और वोट 'मेल मुलाहिजे में की जाने वाली एक कार्यवाई' मात्र है ।'[43]

ऊपर से ढका-छुपा होने पर भी परिवार/समाज में अनेक विसंगतियाँ देखी जा सकती हैं । राजा साहब द्वारका दास और ताई,पति-पत्नी होकर भी अलग अलग रह रहे हैं । परन्तु सामाजिक मर्यादा का निर्वाह किया जा रहा है {"सरकार {राजा साहब} ने कहा है कि जब तक यह जिन्दा रहेंगी उनका यही मान होगा । मेरे बाद भी तुम्हें ऐसे ही निभाना होगा"} । मास्टर जगदम्बा सहाय की कुदृ-दृष्टि अपनी भावज पर है और भावज की बहू से भी उनका सम्बन्ध है । लेखक सज्जन महिपाल अपनी बुद्धिहीन परन्तु निष्ठावान पत्नी के साथ रहने को प्रतिबद्ध है । यह दोहरी मानसिकता में

{43}- बूँद और समुद्र : अमृत लाल नागर {पृष्ठ 408}

का विचार है । पुलिस के पेशे में इन्सान की करुणा मर जाती है क्योंकि रोज ही 'ऐसे तमाशे' देखने पड़ते हैं । अतः वे {दरोगा जी} सोचने को मजबूर हो जाते हैं कि इन्सानियत धर्म - कर्म, आर्ट - कल्चर आदि सब ढोंग हैं क्योंकि ये सब इन्सान का संस्कार करने में असमर्थ रहे हैं ।

लखनऊ का अमीनाबाद, हजरतगंज अब 'अल्ट्रामाडर्न' हो गए हैं । हजरतगंज की शाम "रोशनी, तड़क-भड़क, फैशन-स्टाइल, जनानी मर्दानी जवानी की चहल-पहल, हुस्न और रंग सुगंध से' चमकती-दमकती है । और रात होते सूनी होने लगती है । सूने हो रहे हजरत-गंज में पैदल टहलते हुए चित्रकार सज्जन का मन स्त्री-संग चाहता है और अन्तरमन उसे धिक्कारता है । उसके जीवन में तीन तरह की औरतें आती हैं —'एक से वह पैसे देकर आनन्द खरीदता है, दूसरी से प्रेमोपहार में रस पाता है, तीसरी वे तमाम औरतें जिससे केवल शिष्टाचार के उपरी नाते हैं ।'[45] उसके मन में नारी के लिए कोई श्रध्दा नहीं । क्योंकि सर्वत्र उसे नारी के रुप में वेश्या के दर्शन हुए हैं । केवल उसकी माँ ही ऐसी स्त्री थी जिसके लिये उसके मन में गहरी श्रध्दा है । उसकी माँ परम्परा से प्राप्त संस्कार और निष्ठा की अवतार थीं ।

लखनऊ में नशा और वेश्या किसी समय भद्र समाज का फैशन माना जाता था - सज्जन के बाबा, पिता ने 'नाच, मुजरा, संगीत, शराब, ऐश में'[46] आठ-दस लाख रुपये फूंके । नयी पीढ़ी जिन गुणों के कारण अपनी माँ में भक्ति रखती है । वे ही गुण {'घरवा सँभालने वाली'} अपनी पत्नी में नहीं चाहती । उसे 'पढ़ी लिखी नये विचारों की, सुन्दर'[47] चतुर और न जाने कितनी तरह की खूबियों वाली' पत्नी की चाहना है । एकनिष्ठता पत्नी का अनिवार्य गुण है । हरजाईपन स्त्री में बल्कि अपनी पत्नी में अक्षम्य है । इसी एकनिष्ठता के कारण लेखक महिपाल अपनी पत्नी का सम्मान करता है भले ही मानसिक धरातल पर उसका ताल-मेल अपनी पत्नी से न बैठता हो और उस को पूरा करने के लिए डा0 शीला स्विंग का साहचर्य चाहता हो । सज्जन वनकन्या से प्रेम तो करता ही है उससे भी अधिक वह उसके दृढ़-चरित्र से प्रभावित होकर मन ही मन श्रध्दावनत भी होता है । साथ ही साथ अंग-संग के लिए शिवा रामदास जैसी स्त्रियों के

{45}- बूंद और समुद्र : अमृत लाल नागर { पृष्ठ 86 }
{46}- बूंद और समुद्र : अमृत लाल नागर { पृष्ठ 86 }
{47}- बूंद और समुद्र : अमृत लाल नागर { पृष्ठ 87 }

साथ घर बाहर रात भी बिताता है । अपनी आत्मग्लानि को सत्तर साल की खूबसूरत, बदमिजाज, बदचलन, रानी साहिबा खैरापुर के कथन 'जो स्त्री बेवफा नहीं वह आबरूदार नहीं । जो सती है वो मूर्खा है - - - खुशी और मस्ती के मौके पर ऐसी मनहूस औरतों का जिक्र नहीं करना चाहिए ।' से ढक लेता है ।

निर्धनता, विपन्नता लेखक की नियति है । संघर्ष उसका जीवन है दूसरों के दुःख पर वह द्रवित होकर फूट - फूट कर रो पड़ता है । अपने बाल बच्चों को ढंग की जीवन सुविधा देने के लिए रेडियो के लिए नाटक, वार्तायें लिखता है । पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और लेख लिखता है । वह व्यक्ति, परिवार और समाज को लेकर द्वन्द्वमय जीवन जीने को मजबूर है । महिपाल शुक्ल इसका उदाहरण है ।

ब्राह्मण समाज में अपनी अपनी जाति को लेकर ऊँच नीच का बड़ा विचार है । लड़की अपने से नीचे कुल में नहीं दी जाती अर्थात षट्कुलीय, धाकर ब्राह्मण से सम्बन्ध नहीं करते । विवाह में दान-दहेज, लेन-देन का पूरा चलन है । लड़के वाले लड़की वालों, को बात बात पर नीचा दिखाते हैं । लड़की वाले दबे रहते हैं । महिपाल की भांजी शकुन्तला का विवाह ब्राह्मण समाज की परम्परा का चित्र प्रस्तुत करता है । समाज का यथार्थ व्यक्ति के आदर्शों को निगल जाता है — स्वाभिमानी और विद्रोही व्यक्तित्व वाला महिपाल टूट जाता है, आत्महत्या कर लेता है ।

उच्च मध्यवर्गीय परिवारों को छोड़कर सारा मध्यवर्गीय समाज अपनी मानसिकता, सफेद-पोशी और सीमित आय को लेकर खींच-तान में फँसा है । परिवार के अच्छे कमासुत बेटे अलग रहने लगते हैं । परिवार [सम्मिलित] के दायित्वों और आवश्यकताओं पर वे अपना जीवन बलिदान करने को तैयार नहीं । वे अपने ढंग से जीना चाहते हैं । अतः उनके माँ बाप और अन्य लोग निरालम्ब होकर और दलदल में फँसते चले जाते हैं । महिपाल शुक्ल का भाई डा० जयपाल शुक्ल अपनी पत्नी बच्चों के साथ अलग अलग रहता है । महिपाल के परिवार की सहायता तो क्या देता उल्टे महिपाल से उसे शिकायत कि उन्होंने अपनी आदर्शवादिता के चक्कर में उसका विवाह बिना दहेज लिए कर दिया अन्यथा वह इंग्लैण्ड हो आया होता । वैसे ही वकील साहब का बड़ा बेटा इंग्लैण्ड डॉक्टरी पढ़ने गया और वहीं बस गया । दूसरा बेटा आई०सी०एस० हो गया

वह चौक की गली में रहने वाले दकियानूस पिता से क्या सम्बन्ध रखता ? तीसरा बेटा मिलिट्री में कैप्टन है । जिसने विवाहिता पत्नी को छोड़कर अपनी बेबेरी बहन से विवाह कर लिया है । फ्रस्ट्रेशन से पागल बहू के भरण-पोषण का दायित्व वकील साहब पर है । पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी की मानसिकता में दूरी अधिक आ गई है यहाँ तक कि महिपाल शुक्ल की लड़की राज्यश्री अपनी माताजी को खुश करने के लिए गूंगी बन कर अपना जीवन नष्ट करने को तैयार नहीं है और अपने लिए उचित वर स्वयं ढूंढने का विचार रखती है । चौक के गली मुहल्लों में नई रोशनी अपना प्रभाव डालने लगी है ।

कई मंजिलों वाले मकानों के कारण चौक की गलियों और घरों में अँधेरा और सीलन बना रहता है । गोकुल द्वारे के पास का टीला टिल्लू उस्ताद का अखाड़ा कहलाता है । गोकुल द्वारे की गली में टिल्लू उस्ताद अपने साथियों के साथ बैठे हैं और आने जाने वाले पर बोली कसते हैं । पुलिस-आफिस के बड़े बाबू को आते देखकर उन की बिटिया को लेकर फूहड़ बातें, तो कभी ताई को देखकर मिसी गिरधारी लाल से लगाकर उन्हें कुछ कहना उनका अपने ढंग का मनोरंजन हैं ।

चौक, जो कभी लखनऊ का महत्वपूर्ण स्थान हुआ करता था वहीं सेठों द्वारा बनवाई गई गोकुल द्वारे की हवेली है जो गदर के पहले की बनी हुई है । उस गोकुल द्वारे के अन्दर एक 'अँधेरे कोठे में बड़ी तड़क-भड़क के साथ'[48] राधा कृष्ण का युगल विग्रह स्थापित है । मुखिया जी, स्त्रैण भितरिया जी, सरल स्वभाव वाले आत्मानन्दी कीर्तनिया जी आदि स्थायी रूप से वहाँ रहते हैं । गली मुहल्ले की औरतें राधाकृष्ण का दर्शन करने आती हैं तो सास-बहू की निन्दा, एक दूसरे के भेद, दुनिया जमाने की बात लेकर आपस में मन हल्का कर आती हैं । सेठ लोग गोकुल द्वारे के नाम पर चन्दा इकट्ठा करते हैं और अपनी कृपापात्रियों पर उसे लुटाते हैं । ताई प्रमाण हैं कि 'सर्द-पूनो' को खन्ना बहुरिया ठाकुर जी की छत पर समाधानी से 'अपना मुँह-काला करा रही थीं ।'[49] समाधानी जी गोकुल-द्वारे के प्रबन्ध-समिति के विशेष व्यक्ति हैं । जो गोकुलद्वारे के नाम पर एकत्र की रकम 'खन्ना-बहुरिया' के ऊपर खर्च करते हैं । इस रहस्य के सार्वजनिक होने से मुखिया, भितरिया, कनपड़िया सभी के चेहरे उतर गए - क्योंकि रहस्य की गोपनीयता का दायित्व इन्हीं पर था, इन्हें अपने पेट का डर है । इन मन्दिरों,

{48-49}- बूंद और समुद्र : अमृतलाल नागर { पृष्ठ 152, 150 }

आश्रमों के नाम पर अनाचार चलते हैं । मथुरा-यात्रा के समय सज्जन वहाँ के मन्दिरों से सम्बद्ध गोसाईं बाबा लोगों में व्यभिचार-दुराचार की बातें सुनता है । इसी प्रकार गौओं के नाम पर, रामलीला, कीर्तन मंडलों के नाम पर,अनेक सामाजिक ट्रस्टों के नाम पर भ्रष्टाचार चल रहे हैं ।

अनाज ढोते हुए मजदूर, भैंसा गाड़ी, ऊँट और आने जाने वाले लोगों से भरे तथा जनरव के शोर से आपूरित नकड़ा बाजार में 'महिला सेवा मंडल' नामक संस्था में प्रत्यक्षतः महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने के लिए आयुर्वेद कक्षा, सिलाई कसीदाकारी, बुनाई कक्षा, संगीत कक्षा और धर्मकक्षा चलाई जाती थी और अन्दर ही अन्दर स्त्रियों का {उनकी स्वेच्छा से अथवा बलात्} व्यापार चलता था । संरक्षण में बड़े बड़े आदमियों का सहयोग था - पुलिस से लेकर मिनिस्टर तक, सेठों से लेकर समाजसेवियों तक । दूसरी ओर सज्जन वर्मा के घर, मंदिर में पूरी पवित्रता और धर्म की रक्षा होती है, जहाँ जाकर सज्जन वर्मा जैसे आस्थाहीन व्यक्ति को भी शान्ति का अनुभव होता है । बाबा रामदास का सेवा भाव और उनका गोमती किनारे का पागल-खाना लखनऊ के लिए गर्व की बात है । नवयुग की आधुनिक विचारधारा व्यक्ति की सामाजिक चेतना जगाने के लिए प्रयत्नशील हो रही है पूरी आस्था और आत्म विश्वास के साथ । सज्जन और वनकन्या मिलकर जन-सामान्य के लिए सहकारी बैंक खोलते हैं, कन्या-पाठशाला चलाते हैं,सार्वजनिक हित के लिए योजनाएँ बनाते हैं, कर्मरत होते हैं ।

सच पूछा जाय तो नगर में उन्हीं की संख्या अधिक है जिन्हें 'गोकुल द्वारे की पालिटिक्स' या महिलासेवा मंडल के काण्ड से कुछ लेना देना नहीं है । किसी घटना/दुर्घटना या भेद के अनावृत्त होने से थोड़ी देर के लिए प्रभावित होते हैं; मोहल्ले-गलियों में बात कर लेते हैं, अपनी अपनी राय जाहिर करके, अपनी अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो जाते हैं । चौक क्षेत्र और सिविल लाइन्स के क्षेत्र के रहन-सहन में जितना अन्तर है, मानसिकता में उससे कहीं अधिक अन्तर है, मानसिकता में उससे कहीं अधिक अन्तर है । विवाहित महिपाल का डा० शीला स्विंग के साथ का साहचर्य शाहनजफ रोड पर रहने वाला सज्जन अनुचित नहीं मानता । परन्तु चौक में इस सम्बन्ध को लेकर कनसुकियाँ चलती हैं । सज्जन और कन्या का साथ-साथ घूमना-रहना उच्चवर्ग में अस्वीकृत नहीं है । परन्तु इन दोनों को

साथ साथ देखकर चौक के लाला जानकीसरन की नजर में 'अर्थभरी, छिछोरपन भरी चमक' [50] आ जाती है ।

सामन्ती परिवार में ब्याह, टीका आदि मात्र रस्म न होकर वैभव प्रदर्शन का बहाना बन जाती है । राजा साहब सर द्वारका दास अग्रवाल के पोते के टीके में कोठी की सजावट के अलावा दिल्ली के गायक, नृत्यांगनाओं का प्रोग्राम, शास्त्रीय गवैयों का कार्यक्रम, जादू का प्रदर्शन, कवि-सम्मेलन का प्रबन्ध अलग-अलग कक्ष में था । बाहर शामियाने में 'पतुरिया' का नाच चल रहा था । सभी कलाकारों के साथ कवियों की 'फीस' भी तय थी । समय बदल गया है कवि लोग अपनी कविताएं गवर्नर और मिनिस्टर के सामने प्रस्तुत करना चाहते हैं । अतिथियों में नगर के गणमान्य और प्रतिष्ठित लोगों के अलावा गवर्नर, मिनिस्टर और पुराने ताल्लुकेदार हैं । इस सारे उत्सव में अप्रत्यक्ष रूप से 'राजवैभव पैसे के वैभव की चाटुकारी कर रहा है और पैसे का वैभव राजवैभव की । - - - -इस सांस्कृतिक समारोह में अधिकतर व्यावसायिक बातें ही हो रही हैं । तिलक की महफिल, यह सांस्कृतिक समारोह एक बहाना है । धन खर्च कर यह अधिक धन कमाने का मेला है ।' [51]

चौक में ताई अपने किरायेदार की पत्नी तारा के बच्चे की छठी मना रही है । स्त्रियां ढोलक पर घरेलू गीत गा रही हैं । 'बेरुआ चढ़ाने की रस्म' 'छठी पुजाने का नेग' आदि पारम्परिक ढंग से किया-धरा जा रहा है । ब्रह्मभोज और मोहल्ले-पड़ोसियों की दावत, स्त्रियों की भीड़--ताई की हवेली में आज चारों ओर भब्भड़ ही भब्भड़' फैला है ।

'भारतीय जीवन की विरोधाभास' ताई अपने सौत के पोते के टीके के अद्वितीय उत्सव की चर्चा सुन कर प्रसन्न नहीं होती बल्कि एक प्रति-स्पर्धा उपजती है उनके मन में । 'किसी का कारज करने की' उनके मन में बड़ी 'साध' है । तारा के बच्चे की छठी करने के बाद वह 'राधा-किशुन' का ब्याह करके अपना हौंसला पूरा करना चाहती है । कलाकार सज्जन की देख रेख में राधा-कृष्ण के विवाह की सजावट हुई --- दक्षिण के गोपुरम् शैली के फाटक, अन्दर भगवान के मंडप में ब्रजमंडल का वातावरण ---'एक ओर वृन्दावन के घाटों, मंदिरों

§50§- बूंद और समुद्र : अमृत लाल नागर §पृष्ठ 334§
§51§- बूंद और समुद्र : अमृत लाल नागर §पृष्ठ 342§

का मॉडल' यानी प्राचीन मथुरा का मॉडल था। गोकुल, बरसाना, गोवर्धन पर्वत, राधाकुंड, कृष्णकुंड आदि बनाए गए थे। 'बिजली से नाचते मोर, हिरन, बन्दर, मैदानों में चरते हुए गायों के झुंड, मथुरा-वृन्दावन आदि के निकट से होकर बहती हुई यमुना, पहाड़ी से बहते हुए झरने के दृश्य बहुत सुन्दर मालूम पड़ रहे थे।' लौकिक रीति-रिवाज के साथ राधा कृष्ण का विवाह सम्पन्न हुआ। साईं 'राधा' को विदा करते समय (अपनी मृत कन्या को भी याद करके) अचेत हो गईं। गली-मुहल्ले में यह उत्सव चर्चा का विषय बना रहा।

कांग्रेसी प्रत्याशी सालिगराम जायसवाल कला-प्रदर्शिनी के नाम पर अपना प्रचार करते हैं। असित कुमार हालदार, आचार्य ललितमोहन सेन, शिल्पाचार्य हिरण्य राय चौधरी, महाशिल्पी श्रीधर महापात्र की कलाकृतियाँ सजाई गई हैं, वे भी आए हुए हैं। कुछ कलाकृतियाँ उल्टी टंगी हैं, कुछ अंधेरे में हैं - संयोजन पर ध्यान नहीं दिया गया, लगता है। ध्यान है 'हर एक्सीलेन्सी' के ऊपर। कला वेत्ता दर्शक और कलाकार दोनों क्षुब्ध हैं।

प्रतिक्रिया रूप में 'साईं की हवेली' में प्रदर्शिनी का आयोजन होता है — कला-दृष्टि से और समाज-सेवा के भाव से। चित्रों की प्रदर्शिनी में प्रत्येक चित्रों की व्याख्या का भी प्रबन्ध था। साथ में महिलाओं का मेला भी चल रहा था जिसमें मूंगफली, चाट और पान की दुकानें थीं। बाहर निकलने का अवसर पाने के कारण दर्शक स्त्रियाँ प्रसन्न हैं — चित्रों से उन्हें सरोकार नहीं।

गली में एक और वार्ता - विषय मिला। इलेक्शन के जमाने में यहाँ भी वार्ता - विषय की क्या कमी है? चुनाव-स्थान पर हिंजड़े किस लाइन में खड़े हों - मर्दों की या स्त्रियों की। अफसरों के आदेशानुसार वे मर्दों की लाइन में खड़े होते हैं। वेश्याएँ भी वोट देने आई हैं। सभ्य समाज पर व्यंग्य करती हुई सबको बाप पति बताती हैं — पार्टी एजेन्टों को भी घसीट लेती हैं।

चौक की गली में होली का जुलूस 'काले लाल, हंसाती पीले पीले रंगे मुंह-हाथ पैरों वाले, टीन और डब्बों से चित्र-विचित्र बने, चीथड़े पहने, एक जोकर को गधे पर नौशा बनाये, कनस्टर पीटते, भद्दे व्यंग्य उछालते, लोगों के

मुँह पर कालिख लगाते, कीचड़ में तड़ाये हुए टाट लिए' [52] निकलता है,। शाहनजफ रोड जैसे पॉश मुहल्लों में इसका न प्रचलन है और न प्रभाव । सामान्य स्थितियों में चौक में किसी घर में औरत तोतों को "सीताराम' पढ़ा रही होती है, बच्चे बाँस का घोड़ा बनाए छत पर दौड़ रहे होते हैं । कहीं छोटी बच्चियाँ अभिनय करती हुई गा रही होती हैं, किसी घर की महिला महरी से हाथ नचाती हुई कुलकुल बातें कर रही होती है । और कहीं पंडित जी अपनी खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए पालथी मार कर 'ऊँचे नीचे खाँचेदार स्वर में' सत्य-नारायण की कथा सुना रहे होते हैं —'सुनने वाले भी बैठे जरूर थे बाकी सुन रहे थे या नहीं सत्य नारायण ही जाने' [53]। इसी प्रकार सुबह से शाम हो जाती है ।

चौक के गली मुहल्ले और शाहनजफ रोड की संस्कृति के बीच कर्नल और अलीजान दरबान जैसे लोग हैं । कर्नल की चेतना कलाकारों लेखकों जैसी भले ही न विकसित हो पर "वह दूसरे पर जान देना जानता है' [54], 'दुनियादार, कायेदार आदमी है' — शाहनजफ रोड पर रहने वाले सज्जन तथा चौक की गली में रहने वाले महिपाल का तमाम मित्र है । आदमी परखने में तो जौहरी है । और अलीजान, सज्जन के बाबा, पिता के काल का दरबान रहा है । पुराने अदब-कायदे पर चलने वाला तीज-त्यौहार तथा अन्य मुबारक मौकों पर सलाम करने आ जाया करता है । बुजुर्ग होने के नाते वह सज्जन और उसकी पत्नी पर अपना हक समझता है और उस घर का नमक खाया है अतः मालिक मान कर अदब भी करता है । तहजीबो कायदा, अदब व मोहब्बत, ईमानदारी व एखलाक का जीता-जागता लखनऊ की ऐतिहासिक संस्कृति के प्रतिनिधि पात्र के रूप में पूरी कथा-कृति में वह अकेला है ।

लखनऊ के जन-समाज के चित्रण के विस्तार में लेखक ने गोमती तट पर अंग्रेजी अमलदारों का चित्र, क्लूर होटल, सिनेमा-हाउस तथा लेखकों की गल्प गोष्ठी की स्फुट झलकियाँ भी प्रस्तुत की हैं । प्रसंगवश मथुरा-वृन्दावन के कुछ चित्र आए हैं । कृष्ण-जन्मभूमि, पोतराकुण्ड (जहाँ देवकी ने कृष्ण के पोतड़े धोये थे), [illegible] की कर्मभूमि-[illegible], मोरों के शोर और [illegible] के कलरव से गुंजित गोवर्धन, बरसाना और मथुरा का सुचित्रण — प्रेमभूमि अपनी संस्कृति

---

[53]- बूंद और समुद्र : अमृत लाल नागर | पृष्ठ 547 |
[54]- बूंद और समुद्र : अमृत लाल नागर | पृष्ठ 530 |

के अनुरूप प्रभाव डालती है। अनेक बेकमती विधवाएँ यहाँ राधा-माधव की सेवा करती हुई जीवन बिताती हैं। समस्त ब्रजभूमि में व्यवहारगत मधुरता और सहजता उसकी अपनी विशिष्टता है। लोक-संस्कृति अब भी वहाँ रसी-बसी है।

'बूँद और समुद्र' में चित्रित लखनऊ सन् 1953 से सन् 55 के बीच का लखनऊ है। अतः न इसमें नवाबी संस्कृति की छाया है और न महानगरीय सभ्यता की घुसपैठ। 'नागरिक सभ्यता की परम्परा' को प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने उस लखनऊ को लिया है जो चौक के आस-पास है और वहाँ आज भी परम्परायें जीती हैं -- जियी जाती हैं। जहाँ भोर सुबह ही गली बन जाती है। दोपहर (जाड़े की दोपहर) में स्त्रियाँ स्वेटर आदि बुनती हुई पड़ोसिनों से बात करती हुई देखी जा सकती हैं और वृध्द धूप सेंकते हुए। सास-बहू, ननद भौजाई के परम्परागत सम्बन्ध तथा सम्मिलित परिवार यहाँ जीवित हैं। बेरुआ चढ़ाने और छठी पुजाने का (रस्म यहाँ धूमसे मनाई जाती है। सवेरे-शाम या छुट्टी के दिन गली के चबूतरे पर विभिन्न प्रकार के लोगों के बीच गली मुहल्ले की बात से लेकर राजनीति तक की चर्चा होती है। होली का जुलूस इन्हीं मोहल्लों में निकलता है। सत्यनारायण की कथा की शंखध्वनि इन्हीं गली मुहल्लों में गूँजती हैं और जब तब औरतों के बीच हुए वाग्युध्द के दृश्य भी यहाँ अप्रचलित नहीं हैं। लखनऊ के सिविल लाइन्स क्षेत्र में महानगरीय संस्कृति पनपने लगी है पर चौक का क्षेत्र उससे प्रभावित नहीं होता, बल्कि अपनी परम्परा और पुरानी मान्यताओं पर अंध आस्था रखते हुए चौक के लोग अपने अपने ढंग से वहाँ के (सिविल लाइन्स के) रहन सहन, खान-पान पर अपनी नापसन्दगी और विरोध प्रगट करते रहते हैं। उनकी परम्परा और मान्यता उनके लिए गर्व की वस्तु है। अतः चौक से इतर मोहल्लों के (पुरातनिक) चित्र चौक के जन जीवन की रेखाओं को अधिक उभारते हैं। ऐसे ही परिवार-समाज के चित्रों का आकलन है बूँद और समुद्र।

अँधेरे बन्द कमरे (1961 ई०)

'अँधेरे बन्द कमरे' में लेखक ने स्वयं इस पुस्तक के लिए कहा है कि यों तो यह आज की दिल्ली (सन् 60-61) का रेखा चित्र है, या पत्रकार मधुसूदन की आत्मकथा अथवा हरबंस-नीलिमा के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक दिल्ली महानगरी का रेखा-चित्र भी प्रस्तुत करती है और मधुसूदन की आत्म-कथा के माध्यम से हरबंस-नीलिमा के चरित्र की खामियों-खूबियों के साथ उनके

अन्तर्द्वन्द्व को भी ।

कभी भारत गाँवों में बसा करता था । इधर इस तेजी से नगर-संस्कृति का प्रसार हुआ है कि गाँव और कस्बे सब इसकी चपेट में आ गए हैं और नगर, महानगर हो गए हैं । इन महानगरों की संस्कृति की उपन्यास के रूप में प्रस्तुति है 'अँधेरे बन्द कमरे' । तेज गति, भाग दौड़, अति व्यस्तता इन महानगरों का एक प्रमुख चरित्र है । उसके पात्रों में मधुसूदन पत्रकार ही वह व्यक्ति है जो इस महानगरीय सभ्यता के दंश को महसूस करता है और पुरानी दिल्ली की मजबूर जिन्दगी का सह-भोगी प्रेक्षक भी है । नई दिल्ली के दाँव-पेंच का तटस्थ दर्शक है और पुरानी दिल्ली का स्थूल और बौद्धिकता हीन वातावरण उसकी मानसिकता के आड़े आता है । अतः नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली, दोनों के चित्र निस्संगता के साथ भोगी गई उसकी स्वानुभूति पर आधारित चित्र हैं ।

पत्रकार मधुसूदन 9 वर्ष बाद दिल्ली आता है । इस नौ वर्ष में ही दिल्ली इतनी बदल गई नजर आती है कि पहिचानी भी नहीं जाती'.[55] । जनपथ के चौराहे पर ट्रैफिक संकेत के लिए बत्ती का रंग बदलता रहता है । 'मोटरों और बसों की भीड़ से सड़क भरी है ।' 'काफी हाउस' विशिष्ट वर्गों ॥?॥ का एक अड्डा बन गया है बल्कि यों कहना चाहिए आधुनिक सभ्यता का एक अंग बन गया है । महा-नगरों का जीवन कितना यान्त्रिक हो उठा है कि एक संवेदनशील व्यक्ति के लिए वहाँ रहना, एक मुस्तकिल तनाव में जीना होता है । मधुसूदन इसी अभिशप्त यान्त्रिक जीवन के उबाऊपन को ॥बम्बई प्रवास काल के॥ व्यक्त करता है । 'रोज सुबह चार बजे ही ट्रामों की धरड़-धरड़ और टनन-टनन की वजह से नींद टूट जाती थी जिससे दिन भर दिमाग की नसें तनी रहती थी ।'.[56]

यह व्यस्तता बम्बई में भी है और दिल्ली में भी और ऐसे ही अन्य महानगरों में भी । सभी नगर महानगर इस व्यस्तता के शिकार हैं । राजधानी में, जहाँ आए दिन कोई न कोई विशिष्ट व्यक्ति ॥वी0आई0पी0॥ आते रहते हैं, उसकी व्यस्तता का क्या कहना । 'राजधानी में जीवन की गति इन दिनों इतनी तेज हो जाती है कि एक दिन का समय दिन भर के कार्यों के लिए कम प्रतीत होता है'.[57] "जिन्दगी की तेज रफ्तार" के कारण कभी किसी के मन में यह बात उठने भी

॥55॥ अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश । पृष्ठ 11 ।

॥56॥ अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश । पृष्ठ 16-17 ।

॥57॥ अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश । पृष्ठ 160 ।

नहीं पाती कि जाड़े में थोड़ी देर धूप में बैठ कर सुस्ता ले अथवा उमड़ते घुमड़ते बादलों पर ही दृष्टि घुमा ले । 'जीवन का हर क्षण आगे आने वाले किसी और क्षण की तरफ दौड़ा जाता था - - - - हर क्षण यह आशंका बनी रहती थी कि हम समय से पीछे तो नहीं छूट गए ।'[58]

दिल्ली की महानगरीय व्यस्तता के अनेक चित्र 'अँधेरे बन्द कमरे' में यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं । सुबह सुबह हजारों साइकिलें विभिन्न बस्तियों से निकलती हैं और शाम को वापस जाती हैं । विभिन्न प्रकार की नई पुरानी गाड़ियाँ हार्डिंग रोड, सुन्दरनगर, चाणक्यपुरी, नार्थ एवेन्यु, जनपथ, राजपथ, औल्ड मिलरोड, पार्लियामेन्ट, स्ट्रीट, कनाट प्लेस, कनाट सर्कस पर दौड़ती रहती हैं । चुस्त दुरुस्त कपड़े पहने लड़कियों से लेकर बस के पीछे दौड़ते हुए बाबू, सभी कनाट-सर्कस पर देखे जा सकते हैं ।

महानगर की यह आपाधापी मानव के आपसी सम्बन्धों को भी निगल बैठी है -- 'ऐसे में आदमी अपने मित्रों के यहाँ जाने का फर्ज भी कैसे पूरा कर सकता है '[59]। वक्त की दौड़ में स्वेच्छा से अपनाई गई यह व्यस्तता महानगर में आपसी सम्बन्धों से अधिक मूल्यवान हो गई है । हर आदमी व्यक्तिगत सुख / सोशल स्टेटस प्राप्त करने के लिए व्यस्त है महानगर में -- 'दाँवपेंच' 'मुलाकातें' 'पार्टियाँ' 'काफी हाउस' आदि में । इसे हर आदमी महसूस भी करता है । 'कहने को हमें दम मारने की फुर्सत नहीं होती मगर हम वास्तव में हम पूरे दिन भर में दम भर भी जिये नहीं होते, केवल पहले से एक और दिन बीत चुके होते हैं, उसी धुरी के इर्द गिर्द एक बार और घूम लिए होते हैं ।'[60]

महानगर में जिन्दगी अर्थहीन हो गई है । लेखक इसलिए लिखता है कि लिखने का मन होता है और मन यों होता है कि बेकार वक्त काटना मुश्किल लगता है । जिस व्यक्ति से मिलो लगता है 'हीना-झपट' में पड़ा है । कारण वही है 'व्यक्तिगत सुख' की सोच । महानगर में इस व्यक्तिगत सुख की नैतिकता का 'एक बना बनाया शास्त्र' है - - - - अपने अलावा हर एक को हीन समझो, हर एक को अविश्वास की नजर से देखो, खुद झूठ बोलो और दूसरे के झूठ पर नाक भौं चढ़ाओ, कोई तुमसे मूल्यों की बात करे तो कंधे हिलाकर मुँह बिचका दो और एक ही विश्वास लेकर

---

[58]- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश : पृष्ठ 161 ।
[59]- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश : पृष्ठ 161 ।
[60]- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश : पृष्ठ 222 ।

जियो कि बड़े लोगों से मिल जुलकर, अपने सहयोगियों को बेवकूफ बनाकर तुम्हें अपना उल्लू सीधा करना है । सरकार से अपने काम निकालो और दोस्तों में बैठ कर सरकार की निन्दा करो । अगर तुम्हारा सम्बन्ध इन्टेलेक्युअल वर्ग से है तो बड़ी बड़ी डींग मारो, विदेश में जाकर रहने के सपने देखो और अपने ओछे स्वार्थों को सिध्दान्त और दर्शन का रूप दे लो । और इन सबसे प्राप्त होने वाला व्यक्तिगत सुख क्या है ? सोशल स्टेटस ।'[61]

दिल्ली आकर मधुसूदन कस्साबपुरा में अपने मित्र अरविन्द के साथ रहने लगता है -- एक कमरे में दो व्यक्ति ; जिसे ठाकुर साहब नामक दफ्तरी ने सबलेट (sublet) कर रखा था उन दोनों को । बल्कि यों कहना चाहिए वे दोनो पेइंग-गेस्ट थे । पुरानी दिल्ली के जीवन्त चित्र प्रस्तुत करती कस्साबपुरा की वह गली है जिसमें मधुसूदन रह रहा है । मधुसूदन अपने गाँव के पोखर को याद करता है जिसके कीचड़ में सुअर लोटते थे । गाँव के पोखर की कीचड़ में लोटते हुए सुअर कस्साबपुरा की लिज-लीजी जिन्दगी के प्रतीक से हैं । उनमें फिर भी एक ताज़गी थी, जो यहाँ नहीं है ।

मधुसूदन हरबंस के घर का जो चित्रण करता है वह एक हरबंस का घर न होकर नई दिल्ली के रहने वालो में से काफी लोगों का घर हो सकता है -- 'कमरा न होकर ढका हुआ बरामदा ही था - - - - - वह बरामदा उनके यहाँ बैठक और खाना खाने के कमरे के तौर पर इस्तेमाल होता था ।'[62]

तब दिल्ली में स्कूटर - रिक्शा नहीं चले थे । मधुसूदन पैदल ही घर की ओर चलता है तो वह 'फुटपाथ पर, दुकानों के बाहर लोइयाँ और कम्बल ओढ़कर'[63] सोए हुए लोगों को देखता है । रोशनी की चकाचौंध के नीचे, इन फुटपाथों पर सोते हुए, जीविका के लिए, छोटे-छोटे नगरों, गाँवों से आए हुए लोग एक विसंगति से लगते हैं ।

दिल्ली के काठबाजार से होकर मधुसूदन गुजरता है तो उसकी आपबीती के साथ उस वेश्या बाजार का एक ऐसा चित्र सामने आता है जो जितना सत्य हो सकता है उतना घिनौना भी । पर कहीं बाई जी के, दलालों के सत्य घिनौने चित्र भीतर ही भीतर आदमी को झकझोर भी देते हैं । उधर बस्ती हरफूल में एकदम सन्नाटा है । दुकानें बन्द हो चुकी हैं । खिड़की की हल्की आवाज वातावरण के सन्नाटे को और भी उभारती सी महसूस होती है । काठबाजार की रौनक और बस्ती

---

(61)- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश (पृष्ठ 295)
(62)- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश (पृष्ठ 36)
(63)- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश (पृष्ठ 40)

हरफूल का सन्नाटा दो मोहल्लों के दो चित्र प्रस्तुत करते है।

कस्साबपुरा की वह गली जिसमें मधुसूदन रहता है उसमें चित्रित जीवन - समाज एक ख़ास कस्बाई टाइप के जीवन-समाज का चित्र है। कहीं से भी कोई यह नहीं कह सकता कि यह भी उसी दिल्ली का एक हिस्सा है जो महानगर है, और जो राजधानी है। गली में दुर्गंध और सड़ांध भरी है। अन्य अन्य किरायेदारों और रहने वालों के बच्चे कहीं भी इकट्ठा होकर गली में 'धींगामुश्ती' करते रहते थे। सवेरे से ही बाहर गली में सब्जी और मछली की मंडी सी लग जाती थी। वहीं सब्जी लेने वालों की भीड़ भी इकट्ठी हो जाती थी और उनसे भाव तोल करते हुए लोगों की इतनी 'चिल्ल पों' मचती कि घर और गली का अन्तर ही मिट जाता। स्त्रियों में गाली गलौज सामान्य बात थी। ऊपर नीचे बच्चें रोते रहते। लड़कियाँ पम्प चलाती रहतीं। ठकुराइन, गोपाल की माँ और राजू की भौजाई ड्योढ़ी में आकर चूल्हे सुलगाती हुईं भोंडे हँसी-मजाक करती हुई गली मोहल्ले वालों पर टीका टिप्पणी करती रहती। कहीं किसी के घर की नाली दूसरे के घर में से होती हुई जाती है और उसी पर झगड़ा, कभी पम्प पर पानी भरने वाली लड़कियों में लड़ाई। हर आदमी मजबूरी में जी रहा है या जीने के लिए मजबूर है। सब असंतुष्ट, टूटे से, जिन्दगी को घसीट रहे हैं चाहे बत्रा हों या मधुसूदन। पर जिन्दगी को ढोने का यह भाव बत्रा या मधुसूदन जैसे बुद्धिजीवी आदमी में ही है। ठकुराइन, गोपाल की माँ या अन्य उस गली में रहने वाले लोग कदाचित इस एहसास से भी शून्य हैं। उनकी मानसिकता (कस्बाई) उन्हें यह सब सोचने समझने का अवसर ही नहीं देती। और शायद तभी वे लोग अपनी उन परिस्थितियों में भी हँसबोल लेते हैं। घुटन घुटन कुंठा जैसा उनमें कुछ भी नहीं है। मतभेद होने पर ज़ोर ज़ोर से लड़ लेते हैं। और प्रसन्न होने पर हल्के भोंडे हँसी मज़ाक से मन बदल लेते हैं।

नई दिल्ली के उच्च वर्ग के लोगों में काफी-हाउस, क्लब, टैक्सी, पालिटिक्स के ऊपर बातें होती हैं। कहीं आफिस तथा उसकी दिनचर्या पर। महानगर में पुराने सभी मूल्य खो से गए हैं। न कला है, न कलातत्त्व और न गुणग्राहक ही। 'थियेटर रैस्त्रों रियो और पुरलिक। कला की दुनिया (१) का व्यावसायिक पक्ष।'[64] नई दिल्ली में मानव सम्बन्ध (आपसी सम्बन्ध) कला, शिष्टाचार-सबका व्यावसायिक पक्ष ही सब कुछ है, उस कुछ भी हो। 'भरत-नाट्यम का अर्थ कहाँ मूल्य नहीं', एक मनोरंजन

(64)- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश : पृष्ठ 212 :

है। कथकली कठपुतलियों का नाच है। उस प्रदर्शन में सबसे महत्वपूर्ण अंग विज्ञापन है।·65

हरबंस का ड्राईंगरूम पाश्चात्य सभ्यता का द्योतक है जो आजकल उच्च-स्तरीय समाज की अनिवार्यता है। हर रख-रखाव में एक 'अतिरिक्त सजगता'। पुरानी दिल्ली के कस्साबपुरा की एक छोटी सी गली में रहने वाला मधुसूदन नई दिल्ली में हरबंस के घर जब सोकर उठता है तो उसका यह कथन "मन अपने घर की असुविधाओं का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि सुबह सुबह वह उन्हीं की माँग करता है। दूसरे के घर की सुविधायें भी अस्वाभाविक और बेगानी लगती हैं·66 दिल्ली नगर और महानगर इन दोनों के बीच स्तर भेद को प्रगट करता है। कहाँ ठकुराइन की बनाई हुई धुएं की गंध वाली चाय को गिलास से पीते हुए सुड़कना और कहाँ बेड रूम में 'बेड टी' का 'सिप'। पुरानी दिल्ली में सोकर उठने पर सोडावाटर के कम्पनी के ट्रकों की आवाज सुनाई पड़ती थी, यहाँ आँख खुलने पर नृत्य का अभ्यास कर रही घुंघरुओं की झंकार।

महानगरों में भाग रही जिन्दगी के जो चित्र नई दिल्ली की पृष्ठभूमि पर चित्रित हुए हैं उनमें'नदी के बहाव' की तरह कार, बस और आदमियों की भीड़ से भरी सड़कों के 'तह में एक और दुनिया' हो सकती है जिसका प्रेक्षक की दृष्टि से देखने पर कुछ अनुमान नहीं हो सकता। लकदक लिबासों में विशिष्टता का व्यक्तित्व ओढ़े हुए (आम आदमी से अलग) ये लोग अपनी वास्तविक और व्यक्तिगत जीवन में, हो सकता है, किस कदर मजबूर जिन्दगी जी रहे हों। महानगर का हर आदमी दोहरी तिहरी जिन्दगी जीता है और यह पता चल पाना मुश्किल है कि उसका वास्तविक रूप क्या है — शायद वह स्वयं भी इन रूपों में जीते जीते, भूल गया हो- अपने को पहचान न पाये।

दिल्ली के दो रूप हैं — 'चमक दमक और चहल पहल' भरी नई दिल्ली का जीवन और दूसरी तरफ 'गन्दगी और बदबू में पनपती हुई सीलनदार कोठरियों की जिन्दगी'। और इन दोनों के बीच भी कुछ है — एक संक्रमण, एक बदलाव की स्थिति। 'एक नया शहर है जो तेजी से बन रहा है उसके पीछे एक पुराना शहर है जो धीरे धीरे ढह रहा है। एक तरफ बड़ी बड़ी योजनाओं और नये प्रयोगों की जिन्दगी है जिसकी अपनी एक सँस्कृति है' इधर गंदगी और बदबू से भरी गलियों में अँधेरी और घुटनभरी

165।- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश । पृष्ठ 212 ।

166।- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश । पृष्ठ 220 ।

कोठरियों की ।कस्साबपुरा जैसे मोहल्लों में। जिन्दगी है उनकी भी 'अपनी एक संस्कृति' है ।

आमदनी और स्तर के बीच सन्तुलन बनाए रखने के प्रयत्न में अविवाहित क्लर्क, पत्रकार, अध्यापक जैसे लोग रोहतक रोड के आस-पास के इलाकों में कई मंजिला इमारत के ऊपर बरसातियों में, जो कमोबेश कमरे के रूप में हैं, रहते हैं । इतनी तेजी से बदल रही दिल्ली को देखकर मधुसूदन का संवेदनशील मन सोचने लगता है कि 'चाँदनी चौक जो कभी दिल्ली का हृदय था, आज भी वहीं हैं अथवा वहाँ से विस्थापित होकर किसी और जगह धड़कने लगा है ।'[67] दिल्ली के इतिहास ।क्योंकि दिल्ली एक ऐतिहासिक नगरी रही है। और आज की दिल्ली में कोई ताल-मेल नहीं बैठता । सचमुच दिल्ली में रहने वालों की कभी अवश्य ऐसी स्थिति होती है कि रातों को नींद नहीं आती - इतना टैंशन, इतना मानसिक बोझ । कभी राजनीतिक घटनाएँ, कभी कोई दुर्घटना, ऐसी ही कोई न कोई बात । बड़ी कुशलता के साथ लेखक ने इसे उभारा है -- 'दर्दे-जिगर' से रात की नींद उड़ जाने वाले शहर में 'सारे जहाँ के दर्द' से नींद नहीं आती ।'

इस महानगर के विस्तार में व्यक्ति है जैसे 'जंगल में भटकी रूह' । जो कभी दफ्तर के केबिन में काम करता हुआ, कभी दोस्तों में कहकहे लगाता हुआ, कभी हालों में नृत्य देखता हुआ, कभी ऐसा कुछ देखता जिसमें वह स्वयं न होता और कभी इन सबसे अलग खुले आकाश में सपने बनता हुआ ।

जीवन बहुत ही औपचारिक और डिप्लोमैटिक । दूतावास की पार्टी, खाना और पीना, राजनीति पर बातचीत, कहीं कोई निश्चित उत्तर नहीं । प्रश्न प्रति प्रश्न । अपनी जिन्दगी से असन्तुष्ट भारतीय कलाकार । विदेशी कलाकारों से स्पृहा । लेखक लेखन धर्मी नहीं, कलाकार कला धर्मी नहीं - सब की कामर्शियल स्थिति । साहित्यिक गुटबन्दियाँ हैं । अपनी अपनी महत्वाकांक्षा साधने के लिए किसी बड़ी हस्ती का पल्ला हर कोई पकड़ना चाह रहा है - पत्रकार, कलाकार, लेखक प्राध्यापक सभी ।

अजनबीपन महानगरीय संस्कृति की अन्यतम विशिष्टता है । यह अजनबीपन परिचितों और सम्बन्धियों के बीच भी है -- रास्ते में कोई परिचित सामने

।67।- अँधेरे बन्द कमरे । मोहन राकेश । पृष्ठ 287 ।

पड़ जाता है तो 'दोनों' के चेहरे पर एक अर्थहीन मुस्कान आ जाती है जैसे न पह-चानना चाहते हुए भी एक दूसरे को पहचानना पड़ रहा है।'[68] और पति-पत्नी के बीच भी। सम्भवतः नीलिमा - हरबंस के अन्तर्द्वन्द्व का एक कारण यह भी हो।

दिल्ली का काफी हाउस 'परमहंसों' (जो स्वार्थ को छोड़कर अन्य किसी व्यक्ति वस्तु परिस्थिति से प्रभावित नहीं होते) का अड्डा है। एक ग्रुप पत्र-कारों का है (पत्रकार/समाचार पत्र की अहमियत आधुनिक जीवन की अनिवार्यता है। राजनीति और समाचार-पत्र आज के जीवन में इस तरह से घुसे हैं कि इनसे अलग आज के समाज की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती।) जो अपने ढंग की बातें करते हैं, दूसरा ग्रुप विभिन्न पेशे के लोगों का है; एक अन्य ग्रुप 'आर्ट-सर्किल' वालों का है जो सबसे 'आकर्षक और लोकप्रिय' सर्किल है जिसमें रंगमंच- निर्देशक, अनुभवी कलाकार, नाट्य-समीक्षक, कुछ नये अमेच्योर आर्टिस्ट और कुछ टिकट बेचने वाली लड़कियाँ हैं। और बातचीत - व्यावसायिक रंगमंच तथा साहित्यिक रंगमंच से प्रारम्भ होकर वि-भिन्न नाटकों की कमियों पर व्यंग्य - विद्रूप के साथ टीका-टिप्पणी करती हुई समाप्त होती थी। एक और ग्रुप लेखक कवि आलोचकों का है जो नयी कविता, नयी कहानी, साहित्य में नई कांशसनेस पर बात करते हैं। यह सारी मानसिकता या बुद्धिजीविता महज एक फैशन है जिसे बेनकाब करता है जनक सुखाड़िया जो न कवि है न लेखक न आलोचक। कवि, कहानीकार सुरेन्द्र इसे स्वीकार भी करता है 'यह आदमी एक झपट्टे से सबके नकाब उतार देता है।'[69] जिस विसंगति को लेकर बुद्धिजीवी-समाज में चर्चा-परिचर्चा आयोजित होती है, महानगर के साहित्यकार, कलाकार स्वयं उसमें कितना आबद्ध हैं।

नई दिल्ली में कोई काम असम्भव नहीं बशर्ते 'टैक्ट और कान्टैक्ट' हो। पूरा उपन्यास दिल्ली के विभिन्न चित्रों से भरा पड़ा है — 'बस पर धक्कम धक्का करते हुए लोगों की गाली-गलौच, मद्रास होटल के पास ग्राउन्ड में नवयुवती के साथ संदिग्ध स्थिति में पकड़े गए नवयुवक की भीड़ और पुलिस द्वारा मरम्मत, मिठाई के सामने बिकती हुई पेठा और गुलाब की पंखुड़ियाँ, पुलिसमैन के डर से भागते हुए बूट-पालिश करने वाले लड़के, थियेटर कम्यूनिकेशन्स बिल्डिंग के सामने फुटपाथ पर पड़े अपाहिज की कराह, भीड़ में खोये हुए अपने लड़के के लिए बिलखती हुई माँ, कुछ लड़-कियों को होटल के कमरे में ले जाती हुई [illegible] के खास खास नम्बरों की

[68-69]- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश, पृष्ठ 287, 293।

की गाड़ियाँ ---- फैक्ट्रियों से काम करके लौटते हुए मजदूर, दफ्तरों से आते हुए बाबू, विदेशों से नाजायज तौर पर लाए गए माल को बेचते हुए लड़के, अखबार की सुर्खियाँ, कान्फ्रेन्सें और भाषण, स्वागत और अभिनन्दन, इन्टरव्यू और बयान, फाइलें और फीते, कला की प्रदर्शनियाँ, सौन्दर्य की खोज, मूल्यों की खोज ----[70] आदि नई दिल्ली के जन जीवन के सामान्य चित्र हैं।

नई दिल्ली पाश्चात्य देशों के नगरों के नक्शे-कदम पर चल रही है। भारत की राजधानी में कोई भारतीयता नजर नहीं आती। उर्दू शायर का कथन 'भारत-माता गाँवों में ही क्यों रहती है। क्या वह कभी दिल्ली आई ही नहीं, या दिल्ली की हवा रास न आने से वापस गाँवों में चली गई ?'[71] भारत की राजधानी पर बड़ा सटीक व्यंग्य है।

पुरानी दिल्ली को देखकर तो यह विश्वास करना कठिन जान पड़ता है कि यह भी उसी दिल्ली का एक भाग है। दरीबा से होकर कटरा मशरू के अन्दर घुसने पर तंग-दर-तंग गलियाँ 'जो पानी और कई लेसीले द्रव्यों से इस तरह चिपचिपी' हैं कि 'एक एक कदम बहुत सँभाल कर रखना पड़ता था। ---- सारी गली एक बहुत बड़े उगालदान की तरह थी जहाँ बरसों का उगाल कई तहों में जमा हुआ है। ---- हर गली का घर जैसे क्षय रोग का मरीज हो और दुर्गन्ध और बच्चों और स्त्रियों के शोर के रूप में भयानक खाँसी उसके अन्दर से उठ रही हो।[72]

नौ दस बरसों में पुरानी दिल्ली और पुरानी हो गई थी। नहीं बदले थे तो वहाँ के लोग। ठकुराइन भाभी की आत्मीयता उसी तरह थी और गली के लोगों का लड़ना-झगड़ना और शोर भी बदस्तूर। एक दूसरे के विषय में बिना लाग लपेट के बात करना, थोड़े फूहड़ हँसी मजाक, मन को अनायास खोल देना, हर बात का सीधा अर्थ-पुरानी दिल्ली का चरित्र है।

नई दिल्ली में लड़कियों को कारों में होटल के कमरे में ले जाया जा रहा होता है और पुरानी दिल्ली के कसाबपुरा की गली में तेरह चौदह साल की लड़की फिल्मी गीत गाती हुई नाच रही होती है। 'उसके इर्द गिर्द

{70}- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश {पृष्ठ 302}

{71}- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश {पृष्ठ 297}

{72}- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश {पृष्ठ 303}

जमा भीड़ में से कुछ लोग उसे पास बुलाने के लिए हाथ में चवन्नियाँ अठन्नियाँ लिए थे । वह जिस किसी के नज़दीक जाती थी, वही उसका हाथ थाम लेना चाहता था ।"[73] यहाँ लोग पेट भरने के लिए सड़क पर नाचने को मजबूर हैं और वहाँ 'सोशल स्टेटस' प्राप्त करने के लिए, बड़े लोगों को खुश करने के लिए लड़कियाँ होटल में ले जायी जा रही हैं । यहाँ मजबूरी है वहाँ फैशन ।

महानगरीय जीवन पद्धति जहाँ हर वक्त यह सोचना पड़ता है कि 'एटीकेट की माँग है ----' आदमी को एक अव्यक्त ऊब और थकान से बोझिल बना देती है । पोलिटिकल सेक्रेटरी की पत्नी भी इस ऊब और थकान से नहीं बची है । पोलिटिकल सेक्रेटरी के घर पर शराब और नृत्य की गोष्ठियाँ जमती हैं । पति आगे बढ़ने के लिए पत्नी को "इस्तेमाल" करता है । पत्नी पति को साधन बनाती है । नीलिमा कहती है, "कुछ लोगों के साथ अपना सम्पर्क और परिचय बढ़ाने के लिए, उनसे अपने छोटे छोटे काम निकलवाने के लिए तुम किसको आगे करते आए हो ?"[74] पति पत्नी के बीच एक समझौता सा है । दोनों एक दूसरे से ऊबे हुए पर एक साथ रहने को मजबूर । यहाँ पति पत्नी भी एक दूसरे के लिए अजनबी होते हैं । (नीलिमा का कथन 'हम आज तक भी एक दूसरे के लिए अजनबी थे' ।

ये ही लोग पत्र पत्रिकाओं में पुरानी दिल्ली की गलियों के विषय में लिखे गए लेख की उसी ढंग से प्रशंसा करते हैं जैसे किसी कहानी की, जैसे यह भी उनकी औपचारिक बात-चीत का एक पहलू हो । नई दिल्ली के पुरुष सुषमा के शब्दों में 'सब के सब दरिन्दे हैं'[75] और स्त्रियाँ ? सुषमा क्या स्वयं उनका प्रतिनिधित्व नहीं करती ?

इसके दूसरी ओर ठकुराइन मामी पुरानी दिल्ली से नई दिल्ली आती हैं और पूरे हक के साथ मधुसूदन से बात करती है, चाहे वह गन्दे मोहल्लों की रपट के बारे में हो जिसे मधुसूदन ने लिखा था, चाहे वह अपनी बेटी निम्मा की शादी के बारे में । नई दिल्ली में अखबार ही अखबार है और पुरानी दिल्ली की ठकुराइन मामी कहती हैं, "यह सब अखबार ही अखबार है भैया---- वह मरा अखबार खाकर ही तो जिन्दगी काट रहे हैं ।"[76]

(73)- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश (पृष्ठ 306)
(74)- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश (पृष्ठ 346)
(75-76)- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश (पृष्ठ 380, 403)

इधर के गरीब ठाकुर साहब जो अपनी पत्नी और लड़की का समुचित भरण-पोषण भी नहीं कर पाते थे, ठकुराइन उनके नाम को रोती है, उनके न रहने से अपने को असुरक्षित महसूस करती है । जबकि नीलिमा हरबंस सारी आधुनिक सुख सुविधाओं का भोग करते हुए भी किस कदर असन्तुष्ट, एक दूसरे के लिए शिकायतों का अम्बार लिए अलग हो जाते हैं । शुक्ला का कथन "उन्हें [नीलिमा को] जिन्दगी में जो कुछ मिला है उसकी वे परवाह नहीं करतीं और जो कुछ नहीं मिला उसी के पीछे भटकती हैं"[77] महानगर में महत्वाकांक्षा 'मृग-तृष्णा' के पीछे भागने वाली अधिकांश स्त्रियों की नियति बन गई है । इधर इबादत अली की लड़की के विषय में सारी बातें स्वयं ही बताकर उसका अफसाना बन जाना ठकुराइन को अखरता है । वह कह उठती है, "हाय यह भी कोई लिखने की बात थी ? वह मरी जैसी भी थी, तुम उसके बाप के दिल से तो पूछ कर देखो कि उसके चले जाने से उसको कैसा लगता है ।" नई दिल्ली में यह सम-वेदना कहाँ ? वहाँ तो हरबंस शुक्ला के बच्चे को प्यार तक नहीं दे सकता । सारिका [नीलिमा] के घर छोड़कर चले जाने पर शुक्ला की देख रेख में हरबंस को पहली बार लगता है कि घर घर है, पर विसंगति तो यह है कि वह कहीं अन्तर में अपेक्षा गृहिणीत्व की करता है [कदाचित अपनी इस अपेक्षा को महसूस करने का वक्त उसे नहीं मिला] और अपनाता है आधुनिकता को । ठकुराइन अपने पेइंग गेस्ट को भी 'अपने सगों' की तरह रखती है उसी प्यार के साथ खिलाती पिलाती है 'जो आज के जमाने में अपने सगों में' भी कम पाया जाता है ।

संक्षेप में यदि कहें तो नई दिल्ली के चित्रों में व्यस्तता, भीड़, व्यक्ति-परकता, प्राइवेसी औपचारिकता, प्रत्येक सम्बन्धों में दिखावा और डिप्लोमेसी के चित्र हैं । हर कहीं कामर्शियल स्पिरिट है, स्वार्थ-साधना के विभिन्न दाँव-पेंच हैं । ऊँची ऊँची बिल्डिंग्स, कॉफी हाउस, मयखाना, नियॉन लाइट्स, परफ्यूम आदि आदि ग्लैमर ही ग्लैमर है । पुरानी दिल्ली की जिन्दगी अति साधारण व्यक्ति मुफलिसी और गरीबी की जिन्दगी है । समय वहाँ कुछ ठहर ठहर कर चलता है । वहाँ प्यार के लिए भागदौड़ न होकर भोजन, वस्त्र और आवास की समस्या के लिए संघर्ष है । फ्रस्ट्रेशन न होकर एडजस्टमेन्ट है । पुरानी दिल्ली में बेमतलब भी लोग एक दूसरे से बोल लेते हैं — अपनापन सा है लोगों में। एक दूसरे की निन्दा करके भी एक दूसरे के लिए हमदर्दी है । नई दिल्ली में

[77]- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश [पृष्ठ 428]

कोई किसी का हमदर्द नहीं । ऐसा लगता है नई दिल्ली कम्प्यूटर बुद्धि से संचालित है, पुरानी दिल्ली में सारे अभावों के बीच भी भावों का स्पन्दन है और शायद यही ही है । पुरानी दिल्ली है भारत-माता का घर-आँगन और नई दिल्ली ड्राइंगरूम ।

यह कथा-कृति जहाँ पत्रकार मधुसूदन की आत्मकथा, हरबंस नीलिमा के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी है वहाँ सबसे पहले आज की §सन 61 के आस पास की§ नई दिल्ली बनाम पुरानी दिल्ली का रेखाचित्र है जो पाठक के सामने एक चल चित्र जैसा जीवन्त दृश्य उपस्थित कर देता है । यहाँ लेखक की पैनी दृष्टि और शिल्पगत कुशलता के साथ स्वाभाविक चित्रण उसकी अन्यतम उपलब्धि कही जा सकती है ।

जहाज का पंछी

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने अपनी कथाकृति के लिए स्वयं कुछ नहीं कहा है । पुस्तक ही कहती है, जो कुछ कहना है । 'कलकत्ते के विषमता जनित घेरे' में फँसकर भटकते हुए एक मध्यवर्गीय नवयुवक के जीवन की दस्तावेज सी है यह पुस्तक कलकत्ता महानगरी का कोई एक समग्र चित्र नहीं है इसमें, बल्कि स्फुट, यत्र तत्र बिखरे विभिन्न चित्रों को बड़ी कुशलता से संकलित किया गया है 'जहाज के पंछी में' जिसके माध्यम से कलकत्ता महानगरी प्रतिध्वनित होती है ।

रंगीनी के आवरण में हर तरह की गंदगी छिपाए हुए सभ्य संसार, यह कलकत्ता महानगरी है । अव्यवस्था और कशमकश जहाँ के जन-सामान्य की नियति है । अपनी व्यस्त दिनचर्या से थोड़ा अवकाश निकाल कर पार्क में छात्र, अध्यापक, दफ्तर का बाबू या साधारण चपरासी बेंच पर बैठ कर विश्राम करते हैं ; हाँ आस-पास किसी ऐसे-वैसे आदमी को देखकर, सम्भवतः जेबकतरे की आशंका से वे चौकन्ने हो उठते हैं । छात्रों के बीच राजनीति पर बातें चलती हैं । नवयुवक वर्ग में भी दूसरे पर विश्वास न करना एक सामान्य अभ्यास है । यदि कोई अपरिचित सहायता भी करे तो उसे चोर गिरहकट समझ लिया जाता है दीन पर दया करना सम्भवतः महानगर के नीति-शास्त्र में नहीं है, अलबत्ता हर एक पर सन्देह करना यहाँ अधिक स्वाभाविक है । हमदर्द व्यक्ति यहाँ 'गलत ढंग का भावुक' है'[78]

§78§- जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी § पृष्ठ 15 §

इस महानगरी में भोजन से अधिक आवास की समस्या है । पुलिस की ठोकरों से बेहोश हुआ कथानायक होश आने पर अपने को जब अस्पताल में पाता है तो आवास और भोजन दोनों के लिए आश्वस्ति का अनुभव करता है। एक और रोगिणी जो स्वस्थ हो चुकी है पर रोग का बहाना बनाकर कुछ और दिन अस्पताल में रहना चाहती है क्योंकि अस्पताल से निकल कर भोजन और आश्रय की समस्या का उसे फिर सामना करना पड़ेगा । ऐसे कई रोगी आसानी से अस्पताल छोड़ कर जाना नहीं चाहते । डॉक्टर रोगमुक्त मरीजों को छुट्टी देकर खाली बिस्तर अन्य रोगियों को देना चाहता है । अतः असहाय मरीजों और डाक्टर में आए दिन तू तू मैं मैं होती रहती । पुराने डाक्टर इस प्रकार की घटनाओं को देखते देखते संवेदनशून्य से हो गए हैं । नये आये डॉक्टर मानव-संवेदना से मुक्त नहीं हो पाए हैं अतः असहाय और जरूरत मन्द रोगियों को रुपये पैसे से सहायता कर देते हैं ।

कालेज के बंगले के पास फुटपाथ पर बंगला, अंग्रेजी और कुछ हिन्दी की पुस्तकें बिकती हैं । आने जाने वाले लोग कुछ पुस्तकें उलट-पलट कर देख लेते हैं, कुछ एक खरीद भी लेते हैं — अच्छी मोल-भाव के बाद । चितरंजन एवेन्यू पर सेठ की कोठी है — बाहर फाटक पर दरबान है, अन्दर लक्ष्मी का विलास । धर्मतल्ला के आगे मैदान में दिन भर की व्यस्तता से थके नर-नारी आराम करने के लिए बैठे हैं, बच्चे खेल रहे हैं, पिरेम्बुलेटर पर लेटे शिशु आनन्द से किलकारियाँ भर रहे हैं सड़कों पर ट्रामों और मोटरों की कतारें भाग रही हैं । 'व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ता' के साथ साथ 'तुच्छ अहं की तुष्टि' [79] की आकांक्षा ने इस महानगर में एक व्यक्ति के हृदय का कणमात्र सम्बन्ध दूसरे व्यक्ति के हृदय से नहीं रहने दिया है । किसी अकिंचन असहाय व्यक्ति की मजबूरियों अथवा करुणगाथा सुनने का भी समय नहीं है 'मारवाड़ी अमहाजन' जैसे सेठों को, तो वे सहायता क्या करते। अलबत्ता घर में काम मांगने आए हुए कई दिनों के भूखे व्यक्ति के बेहोश हो जाने पर घर की औरतों ने उसे अच्छे से खिलाया पिलाया । वह भी इसलिए नहीं कि वे लोग दीन-भूखे को मानवता का हक देना चाहते थे बल्कि इस खुशी में कि एक हत्या लगने के पाप से वे लोग बच गए । और फिर उसे शीघ्र से शीघ्र घर से दूर हटवाने के लिए व्यग्र हो उठे — बला टले ।

---

§79§- जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी § पृष्ठ 54 §

ऐसा नहीं है कि सहज मानवता का महानगर में अभाव हो । वह घाट पर के मछुआरों में है -- सेठ जी अज्ञात दीन आगन्तुक को भी अपने भोजन पर आमंत्रित कर लेते हैं । वेलेस्ली स्ट्रीट का प्यारे धोबी अस्पताल में मिल गए एक साथी गरीब को अपने कारबार का हिस्सेदार बना लेता है -- केवल उतने ही परिचय के आधार पर । और वह व्यक्ति उसके घर का सदस्य सा बन जाता है । पर यह भी उतना ही सत्य है कि नगर को महानगर का रूप देने वाले व्यापारी, उद्योगपति जैसे अन्य अन्य लोगों में इन सहज स्नेह -मानवीयता का अभाव है, उनमें एक ही सम्बन्ध है - व्यावसायिक,आचरण कुछ भी हो ।

ऐसे भीषण जनसंख्या वाले महानगर में व्यवस्था बनाए रखने के लिए कलकत्ता की पुलिस अतिरिक्त सजग है । कोई केस मिल जाय, कोई सही गलत फँस जाय -- जेब गरम हो । कलकत्ता महानगरी में अज्ञात कुल-शील, अनिकेत, दीन, असहाय लोगों की कमी नहीं है; यद्यपि यह भी सही है कि इनमें से काफी लोग जरायम पेशा-जेबकतरे, वेश्याओं के दलाल, पुलिस के मौसेरे भाई होते हैं तो भी कुछ तो ऐसे हैं ही जो निराधार हैं । इनमें संदिग्ध सा दिखने वाला कोई भी व्यक्ति पुलिस का शिकार है । जिनकी जामा तलाशी से मिली रकम, अथवा डरा धमका कर वसूली गई रकम पुलिस वालों का प्रतिदिन का जेब खर्च बनती है। कलकत्ता में रक्षक के रूप में भक्षक, अमानवीय, निर्दय और डाकू लोगों का सरकारी नाम पुलिस है । जाने कितनी 'बरसाती' की डोलती कन्याओं की "अस्मत और आबरू"[80] इनके हाथ लुटी है । कितने जालिम जमींदारों के ये सहायक हुए हैं । यही नहीं कैसे भी अपराधी क्यों न हों इन्हें 'दक्षिणा' देकर वे हवालात या जेल में भी हर सुविधा पा सकते हैं । 'मजीद गिरहकट' दस रुपये की दक्षिणा देकर "गेंहू की रोटी, तरकारी और नमक मिर्च" का विशेष भोजन हवालात में मँगवा लेता था । बीड़ी, तम्बाकू आदि की सुविधा तो साधारण बात है । इधर अपराधी बन्धुओं में इतना भाई चारा कि सुख-दुःख के सब बराबर साझीदार । तथाकथित जेबकतरा मजीद जब बन्दीगृह छोड़ कर जाने लगा तो अपने इन बन्धुओं का विछोह उसके नैन के कोरों में झलक उठा । मुँह हँसता रहा आँखे भीग उठीं ।

अदालत में भी पुलिस की धाँधली - बनाया मुकद्दमा, नकली गवाह,

---

[80]- जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी [पृष्ठ 90]

जिसके लिए कथाकार/कथानायक का कथन ही प्रमाण है —'- - - पुलिस वालों को खुली छूट है कि किसी भी आदमी को - विशेषकर अव्यवस्थित और निःसम्बल आदमी को जिस हद तक चाहे परेशान करे, जाली गवाहों को खड़ा करके उसे चोर या खूनी तक साबित कर दे'[81] कलकत्ता की पुलिस का एक उदाहरण है। जबकि मजिस्ट्रेट में मानवीयता और विवेक-बुध्दि का स्वस्थ संगम है।

पुलिस वालों के इलाके बँटे हैं कलकत्ता में। अपने अपने इलाके के लूटपाट में इनका हिस्सा निश्चित है। क्या विडम्बना है इस महानगरी में कि 'असमाजिक या जरायमपेशा आदमी' एक निःसम्बल व्यक्ति के लिए सहायक सिध्द होता है और पुलिस उसे दर-दर ठोकरें खाने के लिए और अन्त में अपराधी बन जाने के लिए मजबूर कर देती है। यह 'रोज कुँआ खोद कर रोज पानी पीने वाले' — अर्थात् रोज किसी न किसी की 'जेब काट कर पेट की ज्वाला शान्त' करने वाले सस्ते किस्म के भोजनालय में खाना खाते हैं — इस्तेमाल किए हुए बर्तनों में गोश्त और रोटी। ऐसे सस्ते सुलभ भोजनालय कलकत्ता में आम हैं।

कथानायक अब पहुँचा है गली दर गली होते हुए एक बहुत पुराने मकान में। जो कलकत्ता महानगरी का अन्यतम चित्र है। जहाँ पर 'करीम चाचा' हैं, 'पहलवान' हैं, अनेक अखाड़िए हैं। 'सईद पहलवान'- अपनी रक्षिता {रखैल} वेश्या 'चम्पाबाई' से प्रतिकूल होकर उसकी पुत्री का विवाह हिन्दू युवक से करवाने के लिए कृत संकल्प होकर उसे हिन्दी पढ़वाता है, इधर बनारस की रखैल 'रामकली' की मधुर स्मृति करीम चाचा का जीवन सम्बल है।

कलकत्ता से केवल बारह मील दूर कामार पुर गाँव में जमींदारों और उनके आदमियों द्वारा किए गए अमानुषिक कृत्य की इति होती है कलकत्ता में। हरिपद की बहन पर अत्याचार हुआ और वह विष खाकर मर गई। अपनी बहन के अपमान का बदला हरिपद, अत्याचारी की पुत्री का अपहरण करके लेता है। उसकी प्रतिशोध की अग्नि में भी उसकी सहज मानवीयता मरी नहीं है। अतः उसका अपहरण करके भी वह उसे अपमानित नहीं

{81}- जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी {पृष्ठ 102}

करता, वरन् उससे विवाह कर लेना चाहता है । ये व्यक्ति कानून की दृष्टि में संदिग्ध चरित्र हैं पर जो प्रतिशोध के आवेश में भी स्त्री की मर्यादा रक्षा के लिए सचेष्ट हैं जबकि शरीफ आदमी और पुलिस इन दोनों की दृष्टि में किसी की कोई मर्यादा नहीं है । ऐसे ऐसे विभिन्न विचित्र चरित्र इसी कलकत्ता नगरी की छाया तले रह रहे हैं ।

करीम चाचा, जो कलकत्ते में रहते हैं और एक बड़े रईस जैसे परिवार के प्रतिष्ठित पुरुष हैं – ~~अपनी~~ अपनी आपबीती सुनाते हैं । जिसमें आज से पहले के बनारस का चित्र उभरता है । आज से पहले का बनारस अपनी रंगबाज़ी और मस्ती के लिए प्रसिद्ध रहा है । रईसों के घर बहुमूल्य साज-सज्जा से युक्त बड़े हाल कमरे में "मुजरे" का आयोजन सामान्य बात थी। बनारस की 'रामकली' और कलकत्ते की 'मुन्नीजान' के बीच होड़ लगाकर मुजरे का जीवन्त चित्र प्रस्तुत हुआ है । बनारस का सामन्ती जीवन उतर आया है ।

कलकत्ते में तथाकथित अपराधी वर्ग के जीवन के अन्तरंग चित्र किसी भी सहृदय को उनका हमदर्द बना देते हैं । रेलगाड़ी के प्लेटफार्म पर मोटी रकम वाले यात्री को दूसरे क्षेत्र के जेबकतरे को बेचता हुआ जेबकतरा अपने आश्रय में आए हुए दीन-दुखी को पूरी सुरक्षा देने को तत्पर है । कानूनी दृष्टि से अपराधी वर्ग के ये लोग अन्तर में कितने निश्छल और सहृदय हैं पर कलकत्ता महानगरी का अभिशाप इन्हें अपने अन्तरतम रूप में रहने नहीं देता ।

रात की बाहों में कलकत्ता महानगरी जगमग रोशनियों से घिर कर मोहक और रंगीन हो उठती है । बड़े बड़े रेस्त्रां, जिसमें 'शहर के धनी और वैभवशाली – देशी और विदेशी – स्त्री पुरुष' बैठे हैं । एक विशिष्ट सभ्य समाज का शिष्टाचार सबके चेहरे पर है । दोहरे व्यक्तित्व वाली महानगरीय सभ्यता में व्यक्ति का असली रूप पहचानना मुश्किल है । सी0आई0 डी0 इन्स्पेक्टर "सम्भ्रान्त और निरीह" व्यक्ति को चोरी का झूठा इलजाम लगा कर पूछना चाहता है । साड़ी, चश्मा पर्स आदि से सुसज्जित महिला है — अनेकानेक 'होटलों' में घुसती और निकलती, भोजन आश्रय की समस्या से आक्रान्त, पेशा करने को मजबूर औरत । यहाँ जो दिखता है

यह सही नहीं होता और जो सही होता है वह दिखता नहीं । लेखक स्वयं इस नगरी को 'देवकुमारी या दैत्यबाला' कहता है ।'[82]

कलकत्ता के खिदिरपुर मोहल्ले में रेसकोर्स – रेस का मैदान है । जहाँ हजारों की भीड़ है । रुपया 'महाचुम्बक बन कर इन लोहे के पुतलों को नचा रहा है ।'[83] और अधिक पाने की लालच में घोड़े पर बाजी लगा कर सेठ, क्लर्क, कुली, फेरीवाले, चोर, गिरहकट सभी पागल बन की सीमा तक उत्तेजित हो उठते हैं । कलकत्ते का एक समुदाय इस नशे से पागल है ।

उच्च वर्ग के लोगों में, कलकत्ते में ऐसे भी व्यक्ति हैं । इनके घर अनेक प्रकार गोष्ठियाँ जमती हैं । कभी विशुद्ध राजनीतिज्ञ लोग जुटते जिसमें 'सामयिक राजनीति की चर्चा और वर्तमान परिस्थितियों में देश की आर्थिक और वैदेशिक नीति क्या होनी चाहिए'[84] — इस पर गम्भीर रूप से विचार विनिमय होता था । एक गोष्ठी अर्थवादियों — बड़े मारवाड़ी बंगाली सेठों की जमती थी । ये सेठ उनके राजनीतिक प्रभाव का लाभ उठाते और बदले में उन्हें भी लाभांश मिलता । इन गोष्ठियों के अतिरिक्त उनके घर विशुद्ध आमोद प्रमोद की गोष्ठियों की भी आयोजना होती ।

ऐसे राजनीतिक प्रभाव वाले व्यक्ति हर पल शंकित रहते हैं कि कोई भेदिया उनके दाँव-पेंच भरी जिन्दगी को उघाड़ न दे । 'भादुड़ी महाशय' अपने रसोइये के मात्र इस कथन पर कि रवीन्द्रनाथ मात्र बंगभूमि के गौरव नहीं है बल्कि विश्व की अन्यतम विभूति हैं — उसे अपने घर से निकाल देते हैं । उदार उदात्त चेतना में उन्हें किसी न किसी विरोधी राजनीतिक दल की बू आती है जो उनकी स्वार्थ-संकुचित बुध्दि को आशंकित कर जाती है ।

यहाँ की चकाचौंध के नीचे अति सामान्य लोगों की जिन्दगियाँ हैं — धोबी हैं, नाई हैं, और और लोग हैं । महानगरीय सभ्यता ने पुराने पेशेवर धोबियों के धंधे पर चोट पहुँचाई है । 'फैशन के पीछे दीवाने' आज सभी लाण्ड्री में कपड़े धुलवाना अधिक पसन्द करते हैं । 'सैफ्टीरेज़र' के चलन से नाइयों के धंधे में भी मन्दी आई है ।

{82}– जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी | पृष्ठ 187 |
{83}– जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी | पृष्ठ 194 |
{84}– जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी | पृष्ठ 206 |

इसी कलकत्ते की धरती पर अनेक उजड़े हुए ऐंग्लो - इन्डियन लोगों ने आश्रय पाया है । 'ऐंग्लो' वे रह नहीं गए । 'इन्डियन' उन्होंने कभी अपने को माना नहीं । अतः भयंकर रूप से कुंठा के शिकार हैं ये लोग । 'मिस्टर ब्राउन' कोयला बेंचते हैं जिसे वे 'डर्टी जॉब' कहते हैं -- जिसे करते किसी योरोपियन को शोभा नहीं देता । उनकी निगाह में सभी भारतीय 'डर्स' 'बेइमान' 'चोट्टे'[85] हैं ।

इसी कलकत्ते की गलियों में शरीर-व्यापार करने वाली, अत्याधिक भड़कीला श्रृंगार किए, दयनीय सी औरतें हैं -- पारस्परिक होड़ में आत्म-विज्ञापन के लिए आतंक उपजाने वाले हाव भाव करती हुई । उधर पॉश रहन सहन के अन्दर भी चकले चल रहे हैं । अनाथ, असहाय, परिस्थितियों की मारी लड़कियाँ इन चकलों की स्वामिनी --'नायका' के चंगुल में फँसकर फिर या तो निःसत्व होकर या मरकर ही मुक्त हो सकती थीं । "गाहकों" से प्राप्त सारे पैसे की हकदार ये स्वामिनियाँ और बेचारी लड़कियों को भरपेट भोजन भी न मिलता । 'मिस साइमन' के चकले में हिन्दू, मुसलमान, बर्मीज, ऐंग्लोइन्डियन आदि विभिन्न जाति और देश की लड़कियाँ हैं । पुलिस वालों की मिस साइमन से मिली भगत ह । अतः पुलिस विभाग से इनके व्यापार में मदद ही मिलती है । इन भाग्यहीना लड़कियों का कहीं कोई सहायक नहीं । इस महानगरी की भीड़ में ऐसे ही कहीं एक - आध 'फ्रैंक' 'इब्राहीम', 'कथानायक' जैसे निकल आते हैं जो 'गंदगी' भरे 'कोढ़ केन्द्र' को अपनी उदात्त चेतना एवं सहज मानवीयता से सुवासित करने का प्रयत्न करते हैं ।

इस महानगरी का सवेरा भी अजीब है । बत्ती की रोशनी में भोर-सुबह भी रात का भ्रम उत्पन्न करती है । बस और ट्रामों की आमद-रफ्त, फुटपाथों पर सोये बुड्ढों की खाँसने की आवाज और माताओं की गोद में सोये हुए बच्चों का दूध के लिए कसमसाहट भरा रोना — यहाँ की प्रभाती है — प्रातः चलने का संकेत है ।

कोई युवती यहाँ 'परिस्थितियों की विवशता — आर्थिक

---

[85]- जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी [पृष्ठ 256]

असुविधा'[86] के कारण अविवाहित रह जाती है । और कहीं कोई भद्र महिला {'बौध्दिक'} उपयुक्त जीवन-साथी न पाकर विवाह नहीं करती और सामाजिक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं से जुड़कर अपना जीवन व्यतीत करती है । 'अग्रगामी नारी संघ' जैसी संस्था का संचालन करती है । जिसमें इस नगर की 'उन्नत और प्रगतिशील' विचारों की महिलाएं एवं किशोरियाँ सदस्य हैं । गाँव और नगर की तुलना में, महानगर में स्त्री का अविवाहित रहना कोई विशेष बात न होकर सामान्य सी बात है —— अपने जीवन का निर्णय लेने में स्त्री स्वतंत्र है । दूसरी बात, इन प्रबुध्द - प्रगतिशील महिलाओं में पुरुष-मित्र या पुरुष-साथी सहज रूप में लिया जाता है —— स्वस्थ रूप में । {भारतीय समाज में युवती या महिला के पुरुष मित्र को कुछ विशेष अर्थों में देखने का अभ्यास है} ।

बड़े समृध्द घरों में एक न एक सनक चलती है । किसी के घर 'गोष्ठियाँ' तो किसी के घर 'बाबा जी' । ये 'बाबा जी' गृहपति, बड़े-बूढ़ों की दृष्टि में 'सिध्द महात्मा' 'त्रिकालदर्शी हैं और नवयुवक, किशोरों की दृष्टि में 'धूर्त' 'पापी' हैं'[87] । इनकी सेवा में अन्न, धन, मेवा, मिष्ठान्न सभी कुछ श्रध्दा पूर्वक अर्पित किया जाता है । कलकत्ता में अनेक प्रकार के ठग हैं —— जेबकतरे, चोर, उच्चक्के, पुलिस और साधु अनेक रूपों में- पेशा एक ही हैं, पध्दति अलग अलग है ।

जहाज का पंछी उड़ते उड़ते आ बैठा है 'राँची' की भूमि पर बल्कि सच कहा जाय तो राँची के मानसिक अस्पताल में । जहाँ पर भारत के विभिन्न गाँव - नगरों से आए मानसिक रोगी - पागल, वहाँ इलाज करवा रहे हैं । पागलों में अधिकांश । पच्चीस वर्ष के ऊपर के हैं । लगता है ये सामाजिक विषमता से तन, मन की शक्ति भर संघर्ष करते रहते हैं और अन्त में विक्षिप्त होकर पागल हो जाते हैं । कोई स्त्री गुण्डों के हाथ लाज लुटा कर, घर समाज से भी कोई हमदर्दी न पाकर बल्कि बहिष्कृत होकर पागल हो गई है । अन्य किसी 'बीना' को मनचाहा पति न मिल पाया और जो मिला उसने भी छोड़ दिया, समाज में बदनामी अलग फैली —— इससे पागल हो गई । धर्म संकीर्णता के कारण किसी "मिस पवार" को जीवन भर अविवाहित रहना

{86}- जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी { पृष्ठ 350 }
{87}- जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी { पृष्ठ 454 }

बढ़ा — वह असंतुलित हो गई । स्त्री रोगिणियाँ दाम्पत्य कारणों से असंतुलित हुई जबकि पुरुष रोगी अधिकांशतः आर्थिक कारणों से । और तो और आज के स्वार्थ - अंध सामाजिक परिवेश में जो उदार चेता महापुरुष हैं वे भी अपने को स्वस्थ मस्तिष्क का स्वामी नहीं समझ पा रहे । क्योंकि स्वार्थी समाज की मानसिकता से वे ताल-मेल नहीं बिठा पाते और मानव समाज की स्वार्थ बुद्धि के आड़े आते हैं उनके विचार । कहीं ग्रामीण समाज उन पर कु-आचरण का दोष लगा कर उन्हें बाहर कर देता है तो हरिद्वार के स्वार्थी, धन-प्रतिष्ठा लोलुप साधु समाज को वे छोड़कर चले आते हैं । फिर सोचने को मजबूर हो जाते हैं कि क्या उनके ही मस्तिष्क में विकार है जो वे समाज में खप नहीं पा रहे ।'

घूम फिर कर कथानायक फिर उसी कलकत्ता की ओर चल पड़ता है जो उसे 'छः फीट लम्बी तीन फीट चौड़ी जगह देने में असमर्थ रहा है, वह महानगरी जिसके कालाग्नि से जलते हुए महापेट के भीतर नाना प्रकार की पीड़ाओं, असंतोषों, अत्याचारों और भाग विलासों के सम्मिलित साधनों के मिश्रित रस निरन्तर विभिन्न रुपों में पचते चले जाते हैं - - - - ।'[88] क्योंकि कलकत्ता का वातावरण उसके लिए एक चुनौती सा बन गया है जिसे वह स्वीकार करने के लिए और उससे जूझने के लिए कलकत्ता की ओर प्रस्थान करता है ।

संक्षेप में कहा जाय तो "जहाज का पंछी" में कलकत्ता के प्रमुख तीन रुप उभर कर सामने आए हैं । पहला, ऊपर ऊपर बड़े और सम्पन्न आदमियों का अभाशून्य और ग्लैमर पूर्ण जीवन । दूसरा है — अन्दर ही अन्दर पकने, बहने वाले मजबूर लोगों का जीवन — शरीर व्यापार करने को मजबूर औरतें और अपराध करने को मजबूर पुरुष । तीसरा है, इन दोनों के बीच पूरा फायदा उठाने वाला रक्षक वर्ग — पुलिस । बीच बीच में कुछ अन्य झलकियाँ भी हैं । इन सब को साथ लिए-लिए कलकत्ता का यह जहाज चलता जाता है।

{88}- जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी { पृष्ठ 5।4 }

वह पथ बंधु था [पूर्व पथ - 1962]

मालवा के एक अनाम 'आंचलिक परिपार्श्व' [कस्बा] को कथाक्षेत्र बना कर 'साधारण जन' को लेकर प्रस्तुत कथाकृति का विस्तार किया गया है। काल है बीसवीं शती का पूर्वार्द्ध।

यहाँ रहता है श्रीनाथ बाबू का परिवार अपने तीन पुत्रों - श्रीमोहन, श्रीधर और श्रीवल्लभ, पुत्रवधुओं और पौत्र - पौत्रियों के साथ। श्री नाथ बाबू आजन्म वैष्णव मन्दिर में कीर्तनिया रहे तथा ब्रजभूमि तक रास मण्डली लेकर जाते रहे। इसके अतिरिक्त वे नवदुर्गा में भागवत आदि बाँचने पास-पड़ोस के राजा-महाराजाओं के यहाँ जाया करते थे।

इसी कस्बे में रहते हैं नारायण बाबू जो कि अवकाश प्राप्त ओवरसियर हैं। एक तार बाबू पेमेन मजूमदार साहब हैं जो पाँच बजे आफिस का काम समाप्त कर बगीचे में कुर्सियाँ डलवा कर एक मेज पर ग्रामोफोन का रिकार्ड चढ़ाकर मित्रों की प्रतीक्षा करते बैठे होते हैं। चितले वकील साहब शाम को अपने बड़े से चबूतरे पर आरामकुर्सी पर विश्राम करते होते और सामने लाल जाजम और सफेद चाँदनी के एक सिरे पर बड़े लैम्प के सामने पेशकार, मुवक्किलों से घिरा मिसिलें लिख रहा होता। चितले साहब की पेशवाई हवेली के आगे निकले हिस्से पर चिकें पड़ी रहती हैं और वहाँ से संगीत के रियाज का स्वर आता रहता है —'कैसी निकसी चाँदनी - - -, उपवनि गात कोकिला'[89]।

संध्या के समय किसी के घर से रामायण की चौपाइयाँ सुनाई पड़ती हैं। फकुमवीस बाड़े के सदाशिव का रुद्रपाठ दूर-दूर तक सुनाई पड़ता है। रास्ते में 'थानक जी' [स्थानक] के अंधेरे हाल में प्रार्थनायें गाते हुए जैन साधुओं की 'मुँहबँधी आवाजें' सुनाई पड़ती हैं। इस समय रात्रि के प्रारम्भ पर ही म्युनिसिपैलिटी का लैम्प पोस्ट भभकता मिलता है और मौ बजते बजते बुझ भी जाता है और गली 'एक दम घुप्प' अंधेरी हो जाती है।

कस्बे से लगभग दो मील दूर पर एक पहाड़ी है। लाल पत्थरों की वह पहाड़ी पूरब से पश्चिम तक मीलों फैली हुई है और अशोक और आम के अनेक

---

[89]- वह पथ बंधु था : नरेश मेहता [पृष्ठ 109]

वृक्ष यहाँ से वहाँ तक लगे हुए हैं । बरगद के पेड़ यहाँ अधिक हैं । यह पहाड़ी चारों ओर झील जैसे तालाब से घिरी हुई है । इसी पहाड़ी पर छावनी है । इस छावनी में नारायण बाबू की पहली कोठी बनी थी वरना वहाँ किसी काले आदमी का निवास निषिद्ध था । इस कस्बे में एक मात्र नारायण बाबू ही ऐसे हैं जिनके घर, इस समय, 'टाइम्स आफ इण्डिया' आता है ।

छावनी के परेड ग्राउन्ड पर शाम के समय फौजी कवायत करते होते हैं । चार-चार के झुंड में फौजी अफसर शाम के समय क्लब की ओर जा रहे होते हैं । कुछ कर्नल और कैप्टन रैंक के फौजी या तो घोड़े पर सवार या फिर पत्नियों के साथ कुत्तों की जंजीर पकड़े सैर को निकल रहे होते हैं ।

कस्बे के करीब-करीब दो मील उत्तर पर बैजनाथ महादेव का विशाल मन्दिर है और साथ में एक पक्का आश्रम है । ऊपर थोड़ी ऊँचाई पर एक बड़ी धर्मशाला है । यहाँ से थोड़ी ही आगे शिवरात्रि पर तथा कार्तिक में यात्रायें लगा करती हैं ।

यहाँ एक झील के समान विशाल तालाब है । कहते हैं इसका निर्माण शाहजहाँ ने करवाया था । यह तालाब कस्बे का पिता माना जाता है अतः यहाँ के लोग नदी के बजाय इसी तालाब में नहाने आया करते हैं । रविवार या किसी छुट्टी के दिन इस तालाब पर नहान पर्व जैसा लगता है ।

बाँध के एक सिरे पर उत्तर में एक मराठा सरदार बाला साहब की किले जैसी कोठी है । तालाब के एक किनारे धोबी अपने-अपने पत्थर पर दिन भर 'छीयो-छीयो' किया करते हैं ।

नदी के घुमाव के सिरे पर उदासी मठ के परकोटे हैं । उसके महन्त अपनी एक पाठशाला चलाते हैं । उनकी एक शिष्या वेश्या है जिसे वे 'नियम से सितार और संगीत'[10] सिखाते हैं । शाम को वे बढ़ई के औजार लेकर कुछ न कुछ बनाया करते हैं । उन्होंने एक ऐसा चरखा बनाया है जो पैरों से चलाया जाता है और उससे कई तार (सूत) निकलते हैं । कस्बे में लोग उनकी बुराई किया करते हैं पर वे इससे उदासीन हैं । और, उनकी पाठशाला कई सालों से चल रही है ।

---

(10)- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता (पृष्ठ 109)

कभी कभी वहाँ नौटंकी भी होती है – तब दर्शकों की काफी भीड़ होती है । किनारे पर एक नगाड़े वाला 'किड़ किड़ धाम, किड़–किड़ धाम' की आवाज में नगाड़े को पीटता है और उसका साथी कान पर हाथ रख कर गाता है —

'कलकत्ते की कालिका
और परवत पर किलकाय ।
अब आते हैं साथियों
अमर सिंह जी राय ।'.91

और फिर नगाड़े की ध्वनि तभी थमती जब पर्दा उठता और राणा अमर सिंह 'तलवार कसे, जामा और पाजामा पहने, पाउडर मले, कड़कते हुए पैर पटकते पार्श्व से आते ।'.92

कुछ घटनायें यहाँ इतिहास बन गई हैं – बाला साहब के प्रथम युध्द में जाने पर 'विक्टोरिया क्रास' पाने के महोत्सव की साज–सज्जा, भोज आदि के अलावा काशी, उज्जैन और बड़ौदा की शहनाई तथा लखनऊ और बनारस की हुंडियाँ आदि लोक गाथाओं का विषय बन गई हैं ।

इस कस्बे के एक मात्र बंगाली पेमेन बाबू प्रतिवर्ष दुर्गा पूजा पर अपने हाथों दुर्गा की मूर्ति बनाते हैं और श्री धर बाबू मंजीरे बजाते हुए स्तवन प्रारम्भ किया करते हैं —

'या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता
- - - - - - - - - - - - - - - - ।'.93

नारायण बाबू तबले की संगत करते हैं और स्वयं पेमेन बाबू तानपूरा ले लेते हैं ।

हर साल मनाये जाने वाले गणेशोत्सव की तुलना में एक साल बाला साहब ने बहुत अच्छा गणेशोत्सव मनाया था जिसमें महाराष्ट्रीय और अमहाराष्ट्रीय दोनों पहली बार सम्मिलित हुए थे । इस उत्सव को देखने के लिए आस–पास के लोग भी आये थे ।

---

[91]– "यह पथ बंधु था" : नरेश मेहता [पृष्ठ 113]
[92]– "यह पथ बंधु था" : नरेश मेहता [पृष्ठ 113]
[93]– "यह पथ बंधु था" : नरेश मेहता [पृष्ठ 97]

बाला साहब की पुत्री इन्दु का विवाह भी यहाँ चर्चा का विषय है । रिश्तेदारों से बाला साहब की कोठी में तिल धरने की भी जगह नहीं थी और बिदा के दिन पूरा स्टेशन मंडप की भाँति सजाया गया था ।

यहाँ पहले रेलवे - लाइन नहीं थी । मेल कार्ट {मेल कार्ट - डाक ताँगा} में बैठ कर उज्जैन जाना ही बड़ी बात समझी जाती थी । बड़े-बड़े साहूकार, जमींदार या अफसर ही सरकारी कोर्ट कचहरी के काम से उधर आते जाते थे । अब तो रेल-लाइन के आ जाने से आये दिन लोग उज्जैन जाने लगे हैं ।

जन सामान्य में विवाह की अपनी परम्परा है । श्रीनाथ के पुत्र श्रीमोहन के विवाह में बैलगाड़ी पर बारातियों ने बीस कोस की यात्रा की थी । वर श्रीमोहन घोड़े पर सवार था । एक गाड़ी में रंडियाँ, तबलची और साजिन्दे थे । एक गाड़ी में बाजे वाले तथा आठ गाड़ी में बाराती ।

बाद में रेल यात्राएँ प्रचलित होने लगीं श्रीधर ने पहली रेल यात्रा की जब वे ग्वालियर के नार्मल स्कूल में पढ़ने गए हैं ।

सम्मिलित परिवार चल रहे हैं पर रुग्णावस्था में । श्रीनाथ के पुत्र श्रीवल्लभ ने तबादले की अर्जी दी है {क्योंकि} वह सबके साथ नहीं रहना चाहता श्री मोहन की पत्नी सावित्री पास-पड़ोस में अधिक रहती है क्योंकि मालवा के साधारण परिवार में दो की चार करने की कला, बड़ियों का मसाला पूछने के बहाने, दूसरे की गतिविधियों से अवगत होने की कला इसी माध्यम से सम्पन्न होती है । अब रही श्रीधर की पत्नी सो उसे घर का खाना बनाना, बर्तन धोना, कपड़ा धोना सभी करना होता है -- सो तो सभी बहुएं करती हैं ।

यों घरों में रहने वाली स्त्रियाँ बातें भी खूब रस लेकर करती हैं । अब श्रीमोहन की पत्नी सावित्री को ही लीजिए । कभी नाइन से तेल मलवाते समय या दोपहर में पान "चबाते हुए" हुए पड़ोसिन से बातें करती हुई कहती हैं "डाली बहन, तुझे क्या बताऊँ, ये श्रीधर की बहू, अब तुम जानो, सिवाय कभी कभी खाना बना देने के कटी उंगली पर पेशाब नहीं करती ।"[94] और न जाने कितनी गन्दी बातों का रस श्रीमती सावित्री देवी अपनी बैठक में बैठी

{94}- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता {पृष्ठ 327}

डाली, फूलकुँवरि, चम्पा, सरयू, अजुध्या आदि से कहती और खिलखिलाती रहती हैं ।

श्रीधर के अचानक नौकरी छोड़कर चले जाने से पूरे कस्बे में एक हलचल सी मच जाती है । बात यह हुई कि श्रीधर ने एक '- - - - राज्य का गौरव' नामक इतिहास पुस्तक लिखी थी जिसमें श्रीमन्त सरकार तथा उनके 'पुण्य स्मरणीय पितामहों' के नाम के पूर्व राजकीय सम्बोधनों एवं पदवियों'[95] का प्रयोग नहीं किया था । अतः शिक्षा विभाग के इन्सपेक्टर ने उनसे भूल सुधारने तथा एक क्षमा - पत्र लिखने का सरकारी आदेश भेजा था । अपने उक्त इतिहास में किसी भी प्रकार का संशोधन करने के लिए तैयार न होने के कारण श्रीधर बाबू नौकरी से त्यागपत्र देकर चले जाते हैं । फिर तो माता-पिता से राह चलते लोग पूछते हैं कि "सिरीधर" क्यों चला गया । {वह "हिन्दी फाइनल मिडिल स्कूल' में इतिहास के मास्टर थे} रास्ते में परचूनी, गांधी या मुनीम कहते "कुछ पता चला मँझले का ? उज्जैन में तो तुम जानो वह है नहीं । अभी कल ही कुँवर दर्जी गया था - - - - ।'[96] श्रीधर की माता से बड़ी हवेली वाली मासू माँ पूछतीं, "बहू सच्ची ही सिरीधर अपने से गया ? मुझे तो लगे है कि बड़े की बहू ने जरूर ऊँच-नीच कह दिया होगा । —— '[97] श्रीनाथ बाबू और उनकी पत्नी को सबसे आँख बचाकर जाना पड़ता — क्या उत्तर दें।

कोई रहे या जाये दुनिया के काज करियावर तो करने ही होते हैं। पिता के अज्ञात वासी हो जाने पर भी गुणवन्ती का विवाह होता है । विवाह के साज-सामान के लिए बहीखाते में —

——'श्री गणेशाय नमः

—— महाप्रभु सदा प्रसन्न ।'[98]

—— द्वारकाधीश की जय ——'[98] लिखकर ब्याह के क्रिया कलाप का प्रारम्भ किया जाता है ।

तो सुशीला की शादी में ——

'बरेली के बाजार में झुमका गिरा रे'[99]

{95}- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता {पृष्ठ 30 }
{96-97}-यह पथ बंधु था : नरेश मेहता {पृष्ठ 14 }
{98}- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता {पृष्ठ 457}
{99}- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता {पृष्ठ 519}

या फिर

"सैंया गए कलकत्ता

हमें लाये हर मुनिया"[100]

आदि गाने गाये जाते हैं ।

लगभग बीस वर्ष बाद श्रीधर जब वापस फिर अपने कस्बे की ओर लौटते हैं तो मालवी पहरावा – घाघरा, लुगड़ा पहने मालवी औरतें और ऊँची-ऊँची धोती बाँधे, साफे में मालवी देहाती समाज से भरे रेल के डब्बे परिचित मालवी गंध से उन्हें आपूरित कर देते हैं । परन्तु परिवर्तन स्पष्ट लक्षित है — रेल की खिड़की से नयी सड़कें बँगले, कालोनियाँ दिख रही हैं । लगता है जैसे शहर का प्रभाव बढ़ गया है — पनचक्कियों का शोर, ट्रक की भरमार, साइकिलों की बढ़ती । वेश-भूषा में भी परिवर्तन आया है, लाल पगड़ियाँ अब कम दिखती हैं। फिर भी पहाड़ियाँ, जंगल, अमराइयाँ, खेत, तालाब सब पूर्ववत् हैं – परिचित और आत्मीय ।

{उत्तर खंड}

{अपने कस्बे को छोड़कर श्रीधर ठाकुर चालीस मील पैदल चलकर उज्जैन पहुँचते हैं।}

उज्जैन में धर्मशाला में कमरे उन तीर्थयात्रियों को दिये जाते हैं जो परिवार के साथ आये हों । अकेले तीर्थयात्रियों को सामान आदि रखने के लिए अलमारी मिलती है और शयन उन्हें बरांडे में करना होता है ।

जाड़े के दोपहर में क्षिप्रा का घाट अधिकांशतः सुनसान पड़ा होता है । केवल कुछ माली बैठे दिखते हैं । 'पंडों की छतरियाँ' इस समय खाली हैं । दो-एक देहाती नाइयों से बाल घुटवा रहे हैं । आवारा गायें और साँड़ घूम रहे हैं। रंगीन ओढ़नियाँ ओढ़े मारवाड़ी स्त्रियों का झुंड गाता हुआ आता दिखाई पड़ता है । क्षिप्रा के जल में एक कनकटा साधु निर्लज्ज ढंग से स्नान करता हुआ नाइयों से बातें करता है ।

श्रीधर ठाकुर उज्जैन से इन्दौर पहुँचते हैं इन्दौर एक नदी द्वारा दो हिस्सों में विभक्त है — नदी के उस पार "जूनी इन्दौर" और इस पार नया इन्दौर । जूनी इन्दौर में पुराने ढंग के लकड़ी के बने हुए पैरमाई दुमंजिले, तिमंजिले मकान हैं । नदी के पुल के ठीक सामने हर [illegible] का मंदिर है । गरीब

{100}– यह पथ बंधु था : नरेश मेहता {पृष्ठ 519}

मराठी तथा दक्षिणी महिलायें नदी के घाट पर कपड़े धोती हैं । पुल पर कभी ही कोई मोटर गुजरती, अधिकांशतः घोड़े, तांगे और बग्घियाँ ही निकलती हैं । बीसवीं शती के दूसरे दशक में पालकियों की प्रथा दैनिक व्यवहार में कम हो चली हैं । पहले सम्पन्न वर्ग के पुरुष पालकियों पर चढ़ कर आया जाया करते थे पर अब पुजारियों कथावाचकों, वृध्दों या अपंगों के अलावा पुरुष वर्ग पालकी पर नहीं चलता । सम्पन्न लोगों की सवारी घोड़े, बग्घियाँ, तांगा और मोटर हो चली है । भद्र घरों की महिलाओं का वाहन अब भी पालकी है । छोटे घरों की स्त्रियाँ 'छेड़ा' {घूंघट} निकाले पैदल ही कहीं भी आती जाती हैं । जूनी इन्दौर से नये इन्दौर के इस पुराने पुल पर पूने शाही पगड़ियों में अधिकांश दक्षिणी लोगों का आना जाना लगा रहता है.।

पुस्तके साहब यहाँ के नामांकित वकील हैं, पुरानी पुश्तैनी सामाजिकता है । वे 'श्रीमन्त' हैं । काफी प्रशस्त और वैभव सम्पन्न घर है उनका । राजनीति के कर्णधारों में उनकी गिनती होती है । किशन बाबू कहते हैं, "यह पुस्तके ढोंगी व्यक्ति है । हरिजन - फंड, खादी फंड, चरखा फंड, महिला फंड - जाने किन - किन फंडों का चन्दा खाये बैठा ह और जब काम पड़ता है तो चन्दे का हिसाब गलत बताया जाता है । हर बार मुझे अपना मुंह बन्द रखने को बाध्य होना पड़ता है ।"[101] किशन बाबू 'प्रजामण्डल' में अवैतनिक काम करते हैं । जीविका के लिए उन्हें 'वीर अर्जुन' 'व्यंकटेश्वर समाचार' में लेख आदि लिखकर दस-पाँच रुपये कमाने पड़ते हैं ।

जूनी इन्दौर में किसी खिचे साहब नामक मराठा सरदार की रखैल मालिनी वेश्या रहती है । जो अब अपनी लज्जाजनक बीमारी के साथ अकेले यहाँ जीवन व्यतीत कर रही है । इन्दौर के इसी हिस्से में गोटा किनारी बेचने वाले राजस्थानी रहते हैं ।

इन्दौर में आजकल राजनीतिक गतिविधियाँ तीव्र हो चली हैं । प्रातः ही प्रभात फेरियाँ निकलती हैं, "विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झंडा ऊँचा रहे हमारा' — गाते हुए, "वन्दे मातरम्" के नारे लगाते हुए ।"[102]

{101}- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता { पृष्ठ 216 }
{102}- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता { पृष्ठ 187 }

विल्को पार्क, जहाँ पुष्प की सुषमा के बीच इक्के-दुक्के प्रेमी युगल बैठे दिखाई पड़ते हैं वहाँ यदा-कदा जुलूस चल कर सभा के रूप में एकत्र हो जाता है। अक्सर पुस्तके साहब उस सभा को सम्बोधित करके अभिभाषण देते हैं।

'प्रजामण्डल' यहाँ की राजनीतिक सभा है। पुस्तके साहब उसका संचालन करते हैं और बिशन बाबू जैसे कुछ कार्यकर्ता हैं उसके।

छावनी पर अनेक पारसी लोगों के काटेज हैं जिसके कुछ हिस्से कुछ लोगों ने किराये पर उठा दिये हैं। एक पारसी महिला के किरायेदार बिशन बाबू हैं।

एक चर्च है यहाँ, जिसके द्वार पर लिखा है 'यह प्रभु का घर है, जो चाहे सो आवे।'[103] श्रीधर को इतने सारे 'एकदम काले और बदसूरत' ईसाइयों को देखकर आश्चर्य होता है। उनका विचार था गिरजाघर अंग्रेजों के लिए होता है। चर्च के पार्क में एक झील है। चर्च के सदस्य छुट्टियों में यहाँ नौका विहार करते हैं। शिकार के शौकीन बंसी पानी में डालकर झील के किनारे लेट, हैट मुख पर सब धूप खाते 'शिकार और धूप स्नान' का आनन्द लेते हुए पूरा रविवार बिता देते हैं।

जब कभी चर्च में विवाह सम्पन्न होता है तो नवविवाहित युगल आगे-आगे और पीछे-पीछे आदमी औरतों का झुंड 'रंग बिरंगे कपड़ों में हँसता'[104] बोलता आता दिखता है। यह जुलूस वर-वधू को एक नौका पर चढ़ा देता है और नवयुगल डाँड़ चलाते हुए झील में आगे बढ़ते जाते हैं। माउथ आरगन और वायलिन संगीत के गत बजाते रहते हैं। सारा वातावरण 'रंगीन और संगीतमय'[105] हो उठता है।

रविवार को विल्को पार्क में फौवारे के जल के आस-पास घूमते खेलते अंग्रेज बच्चे बड़े प्यारे लगते हैं। बच्चों की मातायें चहलकदमी करती रहती हैं। आयायें 'प्राम' पर छोटे बच्चों की देखभाल करती होती हैं। दूर मिलों की चिमनियों से 'अजगर जैसा धुँआ'[106] आकाश में रेंगता दिखता है।

।103।- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता । पृष्ठ 187 ।
।104।- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता । पृष्ठ 207 ।
।105।- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता । पृष्ठ 207 ।
।106।- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता । पृष्ठ 211 ।

मेडिकल कालेज के छात्रों के लिए रविवार भी एक उत्सव जैसा होता है, कुछ शहर घूमने चले जाते हैं, कुछ हॉस्टल में कैरम या ताश खेलते होते हैं ; नहाने भी गाते-बजाते जाते हैं ।

मजदूर बस्ती इससे पूर्णतया भिन्न है । मालवा मिल की मजदूर बस्ती मैदान और पोखर के उस पार है । श्रीधर और बिशन बाबू मिलकर वहाँ हरिजनों के लिए रात्रि पाठशाला चलाते हैं । श्रीधर बाबू मजदूर बस्ती में घुसते ही हैं कि एक झोपड़ी से एक औरत चीखते हुए बाहर निकलती है और पीछे गाली बकता हुआ एक आदमी । वह उस औरत को वहीं गिरा देता है और मारना शुरू कर देता है । आस-पास की झोपड़ियों से औरतें और मर्द जमा हो जाते हैं पर लोग पिटती पत्नी और पीटते पति को मात्र दर्शक की हैसियत से देखते हैं । पीटने वाला रघुनाथ बोलता जा रहा है "यह मेरी औरत है इसीलिए मार रहा हूँ । - - - यह साली पहलवान की बीबी होकर उस ड्राइंग सेक्शन के बाबू से फँसेगी ? खून पी जाऊँगा इसका ।"[107]

किसी दिन पूरी मज़दूर बस्ती एकदम उदास हो उठती है जब कभी कोई मातादीन इंजन से कट जाता है और तब केवल निराश्रय पत्नी किसी रेल के नीचे अपने बच्चे सहित कट जाने को मजबूर हो जाती है । श्रीधर जैसा अतिरिक्त संवेदनशील व्यक्ति शून्य दर्शक बन कर देखता रह जाता है ।

इन्दौर में राजनीतिक जागृति कुछ विशेष है । लोग चन्दा स्वेच्छा से दे देते हैं, बल्कि सभाओं में भी सम्मिलित होते हैं । हाँ, स्वयं सेवक बनने को बहुत कम लोग तैयार होते हैं । व्यापारी वर्ग और नौकरी पेशा वर्ग तो बिल्कुल ही नहीं तैयार होते । विद्यार्थियों और महिलाओं में स्वयं सेवक बनने का काफी उत्साह है ।

प्रभात फेरी के जुलूस में पुस्तके साहब की पत्नी श्रीमती मालती झंडा लेकर आगे-आगे चलती हैं तो उनकी पुत्री कमल पुस्तके विद्यार्थियों का नेतृत्व करती है । जनसामान्य अभी पूरी तरह इस जुलूस आदि का उद्देश्य और अर्थ समझ नहीं पाया है अतः स्त्री-पुरुषों की भीड़ सड़क पर रुक कर देखने लगती है तो होटलों, हलवाइयों के लड़के कड़ाइयाँ मांजते - मांजते, कप धोते-धोते रुक कर आश्चर्य से

---

[107] - यह पथ बंधु था : नरेश मेहता । पृष्ठ 220 ।

इस जुलूस को देखने लगते हैं।

जिस दिन महाराज बाड़े के सामने खारे पानी से नमक बनाया जाता है उस दिन वहाँ अपार भीड़ होती है। पुस्तके साहब भाषण देना प्रारम्भ करते हैं कि पुलिस की लाठियाँ चलनी शुरू हो जाती हैं। पुस्तके साहब और मालती पुस्तके पकड़ ली जाती हैं। भीड़ भाग चलती है। शहर में धारा एक सौ चौवालिस लागू हो जाती है। सन् 1857 के बाद पहली बार लोगों के मुँह और कानों में 'स्वतंत्रता' और 'स्वराज्य' शब्द गूँज रहे हैं।

इन्दौर में कुछ क्रान्तिकारी दल भी सक्रिय है। 'बिशन बाबू', ईसाई लड़की 'रोजी सैक्सन' अर्थात् रत्ना आदि उसके कार्यकर्ता हैं।

इन्दौर के पढ़े-लिखे और जाग्रत समाज में भी प्रेम-विवाह स्वीकार्य नहीं है। बिशन बाबू का कमल पुस्तके से विवाह को पुस्तके साहब स्वीकार नहीं करते बल्कि बिशन बाबू के लिए, लड़की भगाने के अपराध में, वारन्ट तक निकलवा देते हैं।

श्रीधर बिशन के साथ बनारस पहुँचता है। बनारस मालवा से एकदम भिन्न है। यह बनारस की ही विशेषता है कि किसी भी अवसर पर केवल काशी में ही प्रतिष्ठित व्यक्ति आश्चर्य की वस्तु न होकर 'पा लागी पंडितजी' का सार्वभावेन अधिकारी है जो कि विशेष वस्त्र से विभूषित होने पर।

गंगा के घाट पर श्रध्दालु बंगाली विधवा से लेकर पेट के नीचे गमछा कसे व्यक्ति तथा गले में 'सोने की सिकड़ी' वाले साहू तक स्नानार्थी देखे जा सकते हैं। कहीं गंगा तट पर शहनाई वालों के साथ औरतें गाती बजाती वर-वधू के साथ गंगा पूजन को जाती हैं। श्रीधर यहाँ 'गहरेबाजी' और 'बनारसी गुरु' का परिचय पाता है। बंगाली वैष्णव कीर्तन—'सामरि तोरा लागि अनुखन विकल मुरारि'[108] मृदंग और झाँझ की संगत के साथ यहीं आस-पास सुनाई पड़ता है। और बजरों में 'मौजमस्ती' करते रईस चुस्त कुरते धोती और दुपल्ली टोपी पहने मिल दिखेंगे। बजरों पर कहीं कहीं मुजरा भी होता रहता है। पान खाना तो बनारस में व्यसन नहीं माना जाता। इधर

---

108 यह पथ बंधु था : नरेश मेहता, पृष्ठ 435

मणिकर्णिका घाट पर हर समय जलती चितायें देखी जा सकती हैं।

बलिया निवासी पंडित उदयभानु शास्त्री जैसे अनेकानेक प्रवासी यहाँ संस्कृत पाठशालाओं में निःशुल्क अध्यापन करते हैं, 'पानी के भाव पर'[109] संस्कृत के बुकसेलर के लिये पुस्तकें लिखते हैं। पूर्णिमा, एकादशी आदि पर्व पर रुद्रपाठ, चण्डी पाठ आदि के द्वारा पूरक आय का प्रबंध करते हैं। पुस्तक प्रकाशन प्रचलित व्यवसाय हैं जिसमें प्रकाशक जरूरतमन्द लेखकों का पूरा फायदा उठाते हैं। प्रकाशकों के बीच अपनी राजनीति है। किसी अन्य के लिखे जेल के संस्मरणों को ठाकुर सकलदीप सिंह अपने नाम से प्रकाशित करवाते हैं -- 'अरे भाई आप ज्ञान बेच कर पैसा कमाते हैं, वह पैसा देकर ज्ञान खरीदते हैं।'[110] यदि कोई सत्य को लेकर कुछ लिखता है तो उसे क्रान्तिकारी या ऐसा ही कोई अभियोग लगा कर जेल तक भिजवा देते हैं।

यहाँ रहने वाले पंडित शिवनाथ त्रिपाठी जैसे लोग काशी की दालमंडी से लेकर गुंडे तक पर अभिमान करते हैं क्योंकि वे काशी की परम्परा और प्रतीकों में से है। क्वीन्स कालेज के आगे टीहों पर जुलाहे, चिक बनाने वाले, कुम्हारों के कच्चे घर हैं। कहीं कोई साइन बोर्ड भी दिख जाता है 'बनारस के असली उस्ताद मास्टर - - - भाँड़ का मकान इस गली में है।'[111]

अपने पारम्परिक परिवेश के साथ काशी देश की स्वाधीनता के लिए भी क्रियाशील हैं। बेनियाबाग में तिरंगे झंडे के नीचे शिव प्रसाद गुप्त तथा पं० मदन मोहन मालवीय भाषण देते होते हैं तो क्रान्तिकारियों के दल भी सक्रिय हैं। यही नहीं, हिन्दू-मुस्लिम के दंगे भी हो रहे हैं।

काशी का बंगीय काशी रूप सामान्य काशी से भिन्न हैं -- यहाँ 'कीर्तन है, अप्रतिम सुख है, समाज प्रताड़ित विधवायें हैं, अवकाश प्राप्त बंगाली बुद्धिजीवी हैं, क्रान्तिकारी हैं - - - -'[112] और न जाने क्या क्या और कितने होंगे।

इस प्रकार श्रीधर ठाकुर के माध्यम से प्रस्तुत कृति मालवा के कस्बे, उज्जैन और इन्दौर नगर के साथ साथ प्रासंगिक रूप से बलिया का अति संक्षिप्त एवं काशी के जीवन्त चित्र प्रस्तुत करती है। जिस मालवा को बीस वर्ष पहले श्रीधर छोड़कर गए थे उसमें काफी परिवर्तन लक्ष्य करते हुए भी उन्हें अपनी भूमि अपनी प्राकृतिक सम्पदा के साथ उतनी ही आत्मीय लगती है।

-।-।-।-

।।09।- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता । पृष्ठ 402 ।

।।10-।।।।- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता । पृष्ठ 492, 421 ।

।।12।- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता । पृष्ठ 436 ।

और अन्त में, "यह एक निपट साधारण जन की दुख गाथा है जो धरती को विस्मित करने की चेष्टा में व्यापक बनी रहती है"।[113] ---'यह पथ बंधु था' इसका दस्तावेज है।

आधा गाँव । 1966 ई0 ।

तुगलक के एक सैय्यद सरदार मसऊद गाजी द्वारा फतह किया गया 'गादिपुर' --- अब गाजीपुर के एक गाँव गंगौली की पृष्ठ भूमि को लेकर प्रस्तुत कथाकृति चली है। इस गंगौली का भी एक इतिहास है। मसऊद गाजी के एक लड़के नूरुद्दीन शहीद ने गाजीपुर से कोई बारह चौदह मील बसे इस गंगौली गाँव को फतह किया था। कहते हैं इस गाँव के राजा का नाम गंगा था और उसी के नाम पर इस गाँव का नाम गंगौली पड़ा। गंगौली के पूरब में नूरुद्दीन शहीद की समाधि अभी भी है।

गंगौली में गंगौली के सैय्यदों ने एक कर्बला बनवाया है जो उस समाधि के दक्खिन में है। गाँव के पश्चिम में एक तालाब है। तालाब से निकली मिट्टी के टीले पर आम और जामुन के पेड़ हैं, गाँव के 'मीर साहबान' दस मोहर्रम को इस टीले पर नमाज पढ़ने आते हैं। तालाब के पश्चिम में चूने का बना हुआ तीन दरों वाला नील का एक वीरान कारखाना है जिसे गोदाम कहा जाता है। यह स्थान गंगौली के चरवाहों के काम आता है या प्रेमियों के एकान्त मिलन के। इस समाधि और उजड़े कारखाने (गोदाम) के बीच गंगौली आबाद है। यह गंगौली थाना कासिमाबाद में आता है जिसके थानेदार ठाकुर हर नारायण प्रसाद हैं और दीवान हैं समीउद्दीन खाँ।

गंगौली के एक कोने पर करीब दस घर सैय्यदों के हैं। जो उत्तर पट्टी और दक्खिन पट्टी के हिस्सों में बंटे हैं, बीच में जुलाहों के घर हैं। इसके बाद फिर कच्ची गली आगे चल कर गंगौली के बाजार में दाखिल हो जाती है। गाँव के आस-पास झोंपड़े के पुरे में 'चमार' 'भर' और 'अहीर' रहते हैं। पाकड़ पेड़ के दाहिने तरफ कई इमाम चौक हैं जिन पर भी मोहर्रम को ताजिये रखे जाते हैं और फिर एक बड़ा आँगन है। जमींदारों में इस आँगन का बड़ा महत्व है --- 'बिरादरी की औरतें यहीं उतरती हैं, मरने-जीने का खाना यहीं होता है। आसामियों को सजा यहीं दी जाती है। पट्टीदारों के मामले यहीं उलझाये, सुलझाये

113- 'यह पथ बंधु था' की प्रस्तावना से

जाते हैं और यहीं थानेदारों, डिप्टियों और कलक्टरों का नाच - रंग होता है — ये आँगन न हो तो जमींदारियाँ न चलें ।"[114]

सैय्यद परिवारों में दूसरा ब्याह कर लेना या 'ऐरी-गैरी' औरत को घर में डाल लेना बुरा नहीं समझा जाता है । शायद ही मियाँ लोगों का कोई ऐसा खानदान हो जिसमें 'कलमी लड़के और लड़कियाँ"[115] न हों । मझले दादा के अब्बा ने नईमा जुलाहिन से निकाह कर लिया था और गज्जन मियाँ ने 'जमुर्रद' नाम की एक रंडी को रख लिया था । पर नईमा जुलाहिन थी, वह सैय्यदों के बीच में नहीं रह सकती अतः उसके लिए अलग 'खलवत' का इन्तजाम किया गया था । सुलेमान चा ने एक चमाइन डाल रखी है पर वे मज़हबी आदमी हैं इसलिए वो 'झंगटिया बो' {चमाइन} के हाथ की कोई गीली चीज का प्रयोग नहीं करते और अपना खाना खुद पकाया करते हैं ।

गंगौली में ईद बकरीद से कम मोहर्रम का महत्व नहीं है । यहाँ सैय्यदों में बकरीद के बाद से ही मुहर्रम की तैयारी शुरू हो जाती - दद्दा मरसिये की धुन गुनगुनाना शुरू कर देते, अम्मा बच्चों के लिए काले कपड़े सिलने में लग जातीं, बाजी नौहों की नई धुनों की मश्क में लग जातीं । यहाँ का मुहर्रम मशहूर है । सैय्यद लोग लारी पर बैठ कर गंगौली मुहर्रम करने आते हैं । मासूम आदि का परिवार भी मुहर्रम करने गंगौली आया है ।

दस मोहर्रम को तीसरे पहर बड़े ताजिये का दरबार लगता है । लकड़ी के बीसों ताजिये बड़े ताजिये के इधर-उधर बैठ जाते 'आसामियों की तरह'[116]। फिर आठ कहारों के कंधे पर बड़े ताजिये की सवारी चलती और पीछे पीछे दूसरे ताजिये चलते और उनके पीछे हजार, पाँच सौ आदमियों की भीड़ होती । औरतें बच्चों को बड़े ताजिये के नीचे से निकालतीं, मन्नतें मानतीं जारी {भोजपुरी में कर्बला गाथा} पढ़तीं, शरबत चढ़ातीं । ये औरतें गाँव की राकिने, चमाइनें और अहीरने होतीं । सैदानियाँ तो डोली के बिना घर से निकल ही नहीं सकतीं ।

गंगौली के सैय्यदों के लिए बहुत सी चीजें आश्चर्य की वस्तु हैं । मासूम

{114}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा { पृष्ठ 14-15 }
{115}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा { पृष्ठ 17-18 }
{116}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा { पृष्ठ 73 }

की बाजी से 'फरेबी दुनिया' फिल्म की कहानी सुन रही लड़कियाँ मान नहीं पातीं कि तस्वीरें भी चलती, बोलती और गाती हैं। और यदि ये सब सच है तो उनके ख्याल में 'ई सब कयामत के आसार हैं।'[117] गंगौली के बहुत से लोगों ने रेलगाड़ी नहीं देखी है। क्योंकि स्टेशन यहाँ से दस मील पर है और गाजीपुर बारह मील पर। मियाँ लोगों के विचार से दुनिया गाजीपुर के बाद खत्म हो जाती है। रेल पर सबसे पहले हकीम सैय्यद अली कबीर जैदी ने सफर किया था – वे लखनऊ के मोहर्रम आठ की जुलूस देखने के लिए गए थे। कई साल तक वे रेल, उसके डब्बे, इंजन की सीटी और गड़गड़ाहट की बात करते रहे – गाँव वाले मुँह खोले उनकी बात सुना करते। केवल रकियाने के लोग व्यापार के सिल-सिले में रेल से सफर किया करते हैं अतः रेल उनके लिए आश्चर्य की वस्तु नहीं है।

गंगौली के मीर साहबान के लड़के जुलाहों के लड़कों के साथ नहीं खेला करते हैं। अतः जब मासूम इन लोगों के साथ कबड्डी खेलने लगा तो सबसे ज्यादा आश्चर्य जुलाहों को ही हुआ।

गंगौली गाँव में सैय्यद और सैदानियों के अलावा अन्य किसी के घरों में पाखाने नहीं हैं। सैदानियों के अलावा अन्य औरतें झुंड बना कर लोटे लेकर खेतों में जाती हैं और वहाँ पास-पास बैठ कर सासों की शिकायतें करतीं या ऐसी ही अन्य बातें करती हैं। 'कभी-कभी कोई लड़की अंधेरे में कुछ दूर सरक जाती थी तो कोई नयी बेजुबान कहानी बन जाती थी।'[118]

लड़ाई {द्वितीय विश्वयुद्ध} से पहले इन सैदानियों में बातें होती थी कि 'फलाँ मियाँ की बीबी अपने भतीजे से फँसी हैं, फलाँ को उनके देवर ने रख छोड़ा है – – – – – –'[119] और अब लड़ाई के जमाने में तो '– – – –जमाने में तो आग लग गई है, कोई चीज मिलती ही नहीं – – – – गेंहू चार सेर का मिल रहा है। कफन के लिए परमिट लेना पड़ता है और परमिट के लिए रिश्वत देनी पड़ती है।'[120] गाँव के सैय्यदों के लड़के-अबुल कासिम, सईद, अमबदवा, बकरीदना, सम्मू, इम्तियाज ये सब लड़ाई में भरती हो गए हैं। पूरे गाँव से चैंतालिस लोग लड़ाई पर गए हैं पर लौट पाते हैं केवल दो-सम्मू और गोबरधन का लड़का नारायण।

{117}- आधा गाँव : राही मासूम रजा {पृष्ठ 38}
{118}- आधा गाँव : राही मासूम रजा {पृष्ठ 112}
{119-120}- आधा गाँव : राही मासूम रजा {पृष्ठ 122}

स्वाधीनता आन्दोलन और कांग्रेस की हलचलों का प्रभाव इस गाँव में स्पष्ट है। यद्यपि यहाँ के सैयदों को बदलता समय पसन्द नहीं आ रहा है। वे कहते हैं, "खुदा गारत करे इन माटी मिले कांगरेसियों को जिन्होंने चमारों और भंगियों का ससबा बढ़ा दिया है।"[121] सुखराम चमार का लड़का परसराम खद्दर की टोपी पहन कर ऐसी-ऐसी तक़रीर करता है कि मौलवी इब्ने हसन क्या करेंगे। अब ये लोग अछूत नहीं है 'हरिजन' हो गए हैं। कोई महीना भर पहले परसराम की लीडरी में चमारों का एक गोल पंडित के कुंए पर चढ़ गया था और पानी भर लाया था।

गाँव में हिन्दू और मुसलमान समान भाव से रहते हैं केवल गंगौलीवाली होकर। एक बार जब सुन्नी लोग 'हज़रत अली का ताबूत' न उठने देने पर आमादा हो गये थे तब 'परसरमवा ऊधम मचा दीहस कि ई ताबूत उठी औ ऊ ताबूत उठा।'[122] इधर फुन्नन मियाँ नमाज में अखाड़े के गुरु भाई कुँअरपाल सिंह को बख़शने की दुआ माँगते हैं। हिन्दू लोग इमाम साहब को भोग चढ़ावा देते और मियाँ लोग तथा इमाम साहब उसे स्वीकार करते। यहाँ के मुसलमान 'बलहरे' का चन्दा देते हैं। मठ के बाबा को ज़हीर मियाँ ने पाँच बीघे की माफी दे रखी है।

अब इस गाँव में अलीगढ़ में पढ़ने वाले अब्बास मियाँ जैसे लोग आकर जब-तब पाकिस्तान के हक़ में तक़रीर किया करते हैं। यही नहीं अलीगढ़ से दो पढ़े लिखे लड़के गंगौली आये हैं और गंगौली के मुसलमानों को समझाते हैं कि पाकिस्तान बनने में ही मुसलमानों की भलाई है —'हिन्दुओं पर भरोसा नहीं किया जा सकता।'[123] जब कि गंगौली के मुसलमान 'बाप दादा की कब्र' 'चौक' 'इमामबाड़ा' 'खेती बाड़ी' छोड़कर पाकिस्तान जाने की बात सोच भी नहीं सकते।

बल्ली बाई के नुक्कड़ पर लड़कों का एक जुलूस 'मुस्लिम लीग जिन्दाबाद' 'कायदे आज़म जिन्दाबाद' के नारे लगा रहा है। इन सबके बावजूद गंगौली बदस्तूर है — जुलाहे सूत सुखा रहे हैं। औरतें कहीं लड़-झगड़ रही हैं, कहीं हँस बोल रही हैं। लड़के गद्दा मचा रहे हैं और इक्कट-दुक्कट खेल रहे हैं। मियादाद

{121}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा {पृष्ठ 122}
{122}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा {पृष्ठ 144}
{123}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा {पृष्ठ 252}

छः बरस बाद, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, जब तन्नू गंगौली आता है तो उसे यह परिवर्तन स्पष्ट दीख पड़ता है -- कई मकान पुख्ता बन गए हैं, दरजी गुलजार ने फौज वालों को "गल्ला सप्लाई" करके 'ढेर पैसा' कमा के रख लिया है।

वक्त ने लोगों को बगावत करना सिखा दिया है। गंगौली के लोगों ने, जिनसे ड्योढ़ा लगान लिया गया था, जिनके खेतों का अनाज छीन लिया गया था, जिनके भाई-भतीजे लड़ाई में काम आये थे और जिनसे थाना कासिमाबाद कई पुश्तों से रिश्वत ले रहा था, थाना कासिमाबाद पर धावा बोल दिया है। इधर हरपाल सिंह, गोबरधन और मुम्ताज मारे गए और उधर ठाकुर साहब और तमाम सिपाही दरख्त से बाँध कर फूंक दिये जाते हैं और क्वार्टरों में आग लगा दी जाती है।

गाँव में परिवर्तन हर दिशा से प्रवेश कर रहा है। जवाद मियाँ का बड़ा लड़का कमाल उर्फ कम्मो जो गंगौली में मदरसा पढ़ाया करता था-उसकी होम्योपैथी डाक्टरी ने गाँव में हंगामा खड़ा कर दिया है। एक तो वे लगती थीं, दूसरे वे सस्ती थीं और सबसे ऊपर 'अंग्रेजी दवा फिर भी अंग्रेजी दवा है'।[127]

सुखरमवा चमार का लड़का परसरमवा अब गाँव का लीडर होकर 'परशु-राम' हो गया है, जिला कमेटी का मेम्बर है। वह, हर वक्त, 'बगुले की तरह' सफेद उजले कपड़े पहने रहता है, कलाई में घड़ी, कुर्ते की जेब में फाउन्टेनपेन और आँखों पर चौड़े फ्रेम का चश्मा लगाये रहता है। अब वह चिलम या नारियल नहीं पीता, सिगरेट पीता है। पंडित, ठाकुरों और कायस्थों के साथ बैठता है। मियाँ लोग उसे कुर्सी देते हैं। कलक्टर से वह सिफारिश करता है। थानेदार उसको सलाम करते हैं। गाँव वालों से वह कहता है, "मैं तो यह कहता हूँ कि हम्मन मियाँ के जोर जुलुम का जमाना खत्म हो गया "------"जमीन का मालिक ऊ है जो हल चलावी।"[128]

एक स्वामी जी आये हैं कहीं से, जो गाँव-गाँव घूमते हुए हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध भड़का रहे हैं। गाँव का [गंगौली का] मातादीन पंडित भी गाँव भर में कानाफूसी करता हुआ विष फैला रहा है। इसी बात को लेकर सलीमपुर जाम में एक जलसा होता है जिसमें तय किया जाता है कि गंगौली, अलावलपुर, डुंडरही पर एक साथ हमला करके मियाँ लोगों को काट डाला जाय

[127-128]- आधा गाँव : राही मासूम रजा [पृष्ठ 273,281]

और जिन मियाँ के घर 'कोई समाइन, ललाइन या मरिन - ओरिन डाली गयी होंय तेके तेके घर की लड़किन को निकाल लिहा जाय ।'[129] गंगौली के मुसलमानों को आश्चर्य हो रहा है कि भला, गंगौली वाले हिन्दू और मुसलमान में कब से बँट गए । फुन्नन मियाँ ने मातादीन पंडित को मन्दिर बनाने के लिए जमीन दी है, खाने पीने के लिए दस मण्डा जमीन अलग से दी है । अगर उन्होंने {फुन्नन मियाँ ने} मंदिर बनाने के लिए जमीन न दी होती तो वे मातादीन पंडित की माँ का क्या न कर देते 'बाकी बीच में मंदिर का नाम आ जाये से' उनका हाथ कट गया है ।'- - - - केह मारे की आखिर त ऊ हो खुनाए खुदा है ।'[130]

पाकिस्तान बन जाने पर गंगौली से भी बहुत लोग पाकिस्तान चले गए हैं । सफ़ीरवा चला गया, हकीम अली कबीर का इकलौता बेटा पाकिस्तान में है बीबी बच्चों, माँ-बाप को छोड़कर । तन्नू इधर सल्लो {उसकी बीवी} को छोड़कर पाकिस्तान चला गया है । फुन्नन मियाँ का एक लड़का जंग में काम आया और दूसरा हिन्दुओं को बचाने में शहीद हो गया । मिगदाद की बीबी उसका साथ छोड़कर अल्ला को प्यारी हो गई — अब तो गंगौली में हकीम अली कबीर, फुन्नन मियाँ, फुस्सू मियाँ, मिगदाद - कुछ यही गिने चुने लोग रह गए हैं — यानी कि सारी गंगौली {आधा गाँव} में तनहाई ही तनहाई रह गई है, एक अजीब सन्नाटा ।

गंगौली के मीर साहबान पाकिस्तान बनने से केवल तनहा ही हुए थे पर जमींदारी जाने से तो वे तमाम लोग देखते देखते 'नूरुद्दीन शहीद के मक़बरे की तरह गिर गए ।'[131] इन लोगों के लिए पाकिस्तान का बनना न बनना बेमानी था लेकिन जमींदारी के खात्मे ने इनकी शख्सियत की बुनियादें हिला दीं ।'[132] मुहर्रम में अब 'तबर्रुक' की तादाद कम होने लगी है । ताजिये के गिलाफ पुराने होकर खिसकने लगे । मन्नती ताजियों का कद कम होने लगा है। यतीम का हिस्सा हिस्सा बन्द हो गया है । दरवाजे वीरान दिखायी देने लगे । दस को बड़ा ताजिया उठाने का सवाल तर्क कर दिया गया न कहार थे न उनकी मरम्मत के लिए काफ़ी पैसा ।'[133] . बस हम्माद मियाँ का ताजिया 'दुल्हन

{130}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा {पृष्ठ 284}
{131-132}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा {पृष्ठ 307}
{133}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा {पृष्ठ 309}

की तरह' निकलता है। लड़कियों की शादी की समस्या अलग से – तमाम इन्जीनियर डॉक्टर अच्छे – अच्छे लड़के पाकिस्तान जा चुके हैं।

परशुराम एम०एल०ए० हो गया है। अब जो वह चाहते हैं गंगौली में वह होता है – दारोगा, थानेदार सब कहने में है। फुन्नन मियाँ जैसे लोग जो परशुराम की "नाक के बाल' हैं, बहुत लोगों का काम कराते हैं और अब उनके दिन अच्छे हो रहे हैं। फुस्सु मियाँ ने इमामबाड़े वाले एक कमरे में जूते की दुकान कर ली है। लोगों ने बहुत मजाक उड़ाया पर फुस्सु मियाँ कहते हैं, "खुद हज़रत अली ने भी जूते टाँके थे [']।"[134]

हम्माद मियाँ और जवाद मियाँ के अलावा अब किसी में अपने दरवाजे पर बैठने का हौसला नहीं था –– हुक्का पिलाना पड़ता, पान खिलाना पड़ता। जूतों की दुकान ने फुस्सु मियाँ को इस लायक बना दिया है कि वे दुकान बढ़ाने के बाद अपने दरवाजे पर बैठ सकें। अब्बू मियाँ ने अपना मरदाना मकान कम्मो को किराये पर दे दिया है।

अब सैय्यद ज़ादे दागी खानदान के 'हरामी' लड़कों से भी अपनी लड़कियों की निस्बत कर रहे हैं। अब वे हड्डी का खरापन नहीं देख रहे –– यह सब 'जमींदारी के चोचले' थे। मौलवी बेदार पाकिस्तान चले गये हैं उनका गिरता पड़ता मकान परशुराम ने खरीद लिया है और अब वहाँ पक्का मकान खड़ा हो गया है।

अब जब परशुराम गंगौली आता तो शाम को उसके दरवाजे पर "दरबार' लगता है जिसमें सखाति भी आते और 'फ़ाकामस्त सैय्यद साहबान' भी। वे लोग कुर्सियों पर बैठते, सिगरेट पीते, रेडियो सुनते। उनसे थोड़ी दूर पर गाँव के गरीब लोग होते जो पहले ही की तरह ज़मीन पर उकडूं बैठे होते, खैनी खाते और बीड़ी पीते होते। वे अब भी ज़मीन पर बैठते पर अब वे मियाँ लोगों के सामने बीड़ी पीने लगे हैं।

गंगौली में अब बिरादरी के झगड़े नहीं होते, हिन्दू मुसलमान के दंगे भी नहीं होते, अब तो ताकतों का टकराव होता है – सियासत चलती है।

---

[134]– आधा गाँव : राही मासूम रज़ा [पृष्ठ 341]

अब परशुराम एम०एल०ए० और हम्माद मियाँ में चलती है – कत्ल से लेकर जेल तक ।

गंगौली का वह हिस्सा जो लेखक का परिचित है 'आधा गाँव' का कथा क्षेत्र है §जिसे लेखक ने भूमिका में स्पष्ट कर दिया है§ । कथावस्तु द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले के समय से लेकर जमींदारी उन्मूलन के बाद तक के गंगौली को लेकर चली है । कथाकृति गाँव के मीर साहबान के रहन-सहन, हिन्दू मुसलमानों के सौमनस्यपूर्ण वातावरण, विश्वयुद्ध के बाद की गंगौली, बाहर से आये हुए लोगों द्वारा फैलाये गए हिन्दू-मुसलमान के बीच पनपते विद्वेष, पाकिस्तान बनने और स्वतंत्रता के बाद अछूतों के 'हरिजन' के रूप में प्रतिष्ठित होने का दस्तावेज तो प्रस्तुत करती ही है साथ ही साथ ज़मींदारी उन्मूलन के बाद टूटी ज़मींदारी और अप्रत्याशित इतने परिवर्तनों को मजबूरी में स्वीकार करते बुजुर्गों के जीवन्त एवं मार्मिक चित्रों को प्रतिध्वनित भी करती है ।

अलग अलग वैतरणी § 1967 ई० §

प्रस्तुत कथाकृति 'अलग अलग वैतरणी' 'पूरबी मख्न' के 'करैता' नामक गाँव के इतिहास-भूगोल और सामाजिक पर्यावरण का एक चित्र प्रस्तुत करती है जिसमें आंचलिकता की आत्मीयता के साथ साथ गाँव की कस्बों और नगर की ओर भागने की मजबूरी भी बखूबी उभर कर आई है ।

इस गाँव को दो टुकड़ो में बाँटती हुई एक तलैया है जिसमें गाँव की गलियों का गन्दा पानी इकट्ठा होता रहता है । जिसमें पूरब की ओर जल-कुंभी के नीले नीले फूल खिले रहते हैं और पश्चिमी हिस्से में कुई के फूल । कभी कभी तलैया के गन्दे जल में एक झुंड लड़के लड़कियाँ 'डुबकी छुऔव्वल' का खेल खेलते रहते हैं । इस तलैया के दक्खिनी कगार पर करैता की "चमरौटी" आबाद है। तलैया ही गाँव के सवर्ण लोगों से "चमारू लोगों" को अलग करती है । करैता का 'सीपिया' नाला, वहाँ के पूर्वी ताल से निकलकर 'देवी धाम वाले इनारे' को काटता हुआ उत्तर में बहती गंगा में जाकर मिल जाता है ।

करैता गाँव मीरपुर के बबुआन की ज़मींदारी रहा है । अब ज़मींदारी

नहीं है पर मीरपुर के बबुआन और छावनी का नाम अब भी है । इस छावनी पर जमींदारी के समय ठाकुर देवीचरण सिंह से लेकर उनके पौत्र ठाकुर जैपालसिंह रहते चले आये थे । पर अब जैपालसिंह मीरपुर रहने लगे हैं । करैता में एक और ठाकुर परिवार है सुरजू सिंह का । इन दोनों परिवारों में पुश्तैनी प्रतिद्वन्द्विता, दुश्मनी की सीमा तक —, चलती चली आ रही है ।

रामनवमी के अवसर पर करैता के देवीधाम पर हर साल मेला लगता है । [illegible] का यह सबसे बड़ा मेला अपनी 'रंगीनी, चहल-पहल, हँसी-खुशी और मस्ती के लिए' आस-पास दूर-दूर तक प्रसिद्ध है । भेंड़ा की लड़ाई सब मेले में होती है पर गबरू नट का मशहूर भेंड़ा 'करीमन' इसी मेले में आता है, सासाराम के कलक्टर क्लार्क साहब की मोटर को डाँक जाने वाला 'देवीचक' के 'केशो बाबू का अबलखा' यहीं की घुड़दौड़ में शामिल होता है । 'छन्नूलाल उस्ताद' की बिरहे की मंडली केवल इसी मेले में आती है । 'रामदास' की 'सदाबहार कम्पनी' की नौटंकी इसी मेले में होती है । और तो और, औरतों से छेड़-छाड़ तो हर मेले में होती है पर इस छेड़खानी के कारण 'मारपीट और खून-खराबा' इसी मेले में होता है ।'[135]

करैता के मेले की प्रसिद्धि और विशिष्टता का एक कारण 'अस-कामिनी देवी' का प्रताप भी है । ठाकुर जैपाल सिंह के पितामह स्वर्गीय ठाकुर देवीचरण सिंह को विन्ध्याचल देवी ने साक्षात दर्शन देकर और अपनी मूर्ति देकर कहा था 'ले जा इसे अपने गाँव में प्रतिष्ठित कर ।'[136] ठाकुर देवीचरण सिंह ने पत्थर का विशाल मन्दिर बनवा कर विधि-विधान से इसे पधरवाया था । इन्हीं की कृपा से देवी चरण सिंह का वंश चला था । अतः हर साल रामनवमी के अवसर पर 'बाँझ और निपूती' औरतें यहाँ मनौती मानने आतीं । 'गोसाईं उपधिया' तब देवी धाम के पुजारी थे । ठाकुर की ओर से पूजा - भोग आदि के लिए उन्हें दस बीघे खेत माफी मिले थे ।

मेले में देवीकुंड तथा मन्दिर के चारों ओर आदमी ही आदमी दीख पड़ते हैं — इनमें मर्द कम औरतें और बच्चे अधिक । 'तरह तरह की रंगीन साड़ियों में लिपटी, लाल पटार किए, माथे पर अँगूठे के बराबर सिन्दूर का बुन्दा

{135}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ - 3 }
{136}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ - 12 }

लगाएं, कलाइयों में चूड़ियाँ और गहने झमकाती, भीड़ में एक-दूसरे का संग छूटने की आशंका से परेशान चीखती-चिल्लाती, माथे की गठरियों को सँभालती, धक्के देने वाले पर गुर्राती-खिसियाती औरतें- - - -.[137] खिलौने, पिपहरी के लिए ज़िद करते बच्चे हैं । किसी की माँ को कठवत खरीदना है तो 'टुम्मू बाबू की अम्मा' को करैते के मेले से 'अमफरनी' और 'कद्दूकस' लेना है ।

करैता के भोलू साह खाली 'गुड़ही जलेबी' की दुकान लगाये हैं । 'चिन्नी की मिठाई' पाँच रुपया सेर कौन खरीदेगा । उत्तर की ओर 'बमनिया' वालों की मिठाइयों की चार दुकानें हैं । पर 'सालों के मुँह पर पपड़ी पड़ी है ।' 'सैयदराजा' से नयी बाज़ार के 'परसोत्तम सेठ' की दुकान 'चार बीघा में घेरा डाले हैं । टट्ठर और तिरपाल घेर कर कुर्सियाँ लगाई हैं । केवड़ा डाल कर पानी पिलाता ह । पर दोपहर तक एक खेप भी पूरियाँ नहीं खपी ।

उधर एक बड़ा भारी तम्बू गड़ा है, फाटक पर मचान बँधी है । उधर एक 'मँड़आ' खड़ा है 'चुन्ना पोते - - - - कपार पर चोंच की तरह नोकीली टोपी लगाये'.[138] । साथ में एक 'चमर नेटुआ' भी है, नाच-गाकर आदमी बटोरते हैं । भीतर जाने का दस पैसा टिकट है ।

अचानक बीच मेले में 'चीख, चिल्लाहट चिघ्घाहट, हल्ला-गुल्ला- - - - - तड़ातड़ी- - - जिसको जहाँ मौका लगा' भाग रहा है । रैमानपुर के बाबू लोगों की बहू को हरिया, छबिलवा और सिरिया के साथ छेड़ रहा था । इसी पर रैमानपुर वालों ने उन्हें चौतरफा घेर कर लाठी छोड़ दी उन पर - बस भगदड़ मच गई । कन्दल सिंह दहाड़ कर कहने लगे'- - - बह गये आप लोग । करैता के मेले में करैता वाले गुण्डई नहीं करते थे कभी । - - - - धिक्कार है आप लोगों को ।-[139] करैता के बग्गन मिसिर, सुमकर, चुप रह जाते हैं ।

समय बदल गया है और क्या कहा जाय । देवी मन्दिर के पुजारी शीतला प्रसाद कहते हैं "- - - -भीड़ ऐसी कि सांस लेना मुश्किल बाकी दच्छिना के नाम पर ठन-ठन गोपाल ।"[140]

{137}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह {पृष्ठ - 1 }
{138}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह {पृष्ठ - 8 }
{139}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह {पृष्ठ - 20 }
{140}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह {पृष्ठ - 13 }

समय सचमुच बदल गया है । जमींदारी खत्म हो गई है । अब दशहरे पर आसामियों की भीड़ जमींदार को जुहार करने नहीं आती, न ही छावनी के मुख्य द्वार पर रखा परात नजराने के रुपयों से भर उठता । अहीरों ने जमींदार को दही-दूध, कोइरियों ने साग-सब्जी, मल्लाहों ने मछलियाँ, जुलाहों ने मुरगी और गड़ेरियों ने सलामी में 'खस्सी' देना बन्द कर दिया है । उधर पर्व त्यौहारों पर छावनी से बँटने वाले लड्डू बन्द हो गए हैं । होली के अवसर पर छावनी की ओर से न तो कंडालों में ठंडाई घुलती, बँटती । अब न तो छावनी के लड़कों देखकर गाँव का कोई बूढ़ा झुककर सलाम करता, न औरतों तक को देखकर कोई अपने चबूतरे की चारपाई से उठकर खानदानी लिहाज दिखाता है । अतः छावनी के वर्तमान 'बुढ़ऊ मलिकार' बाबू जैपाल सिंह ने 'करैता की काली माटी पर' पैर न रखने की मन ही मन प्रतिज्ञा सी कर ली है — वे मीरपुर चले गए हैं, वहीं रहते हैं ।

करैता में कुछ है जो इस समय के प्रभाव से अछूते हैं । रास्ते में बन्दर नचाने वाले मदारी के पीछे लड़के वैसे ही ताड़ी बजाते गाते चलते हैं —

महुआ की रोटी केसारी की दाल
महुआ की रोटी केसारी की दाल'[141]

बीतू धोबी भले ही अब अपनी मण्डली के साथ ढोल और करताल लेकर न गाता हो पर लादी धोकर चलते चलते उसका गाना अब भी है —

उनके अँखिया से लोखा गिरत होइहैं ना ।
उनके गज मोती अँधेरा भिंजत होइहैं ना ।।'[142]

गाँव में अभी भी, हमेशा की तरह, जिस साल वर्षा नहीं होती औरतें शिव जी के अरघा के पास बैठ कर 'हर परवरी' — हल पर्वरी गाती हैं । गाँव की दो सबसे लम्बी औरतें छाँटकर हल में जोती जाती हैं । यह हल 'एक घरी रात गये भँधेरा है । हलवाहा भी औरत और बैल भी औरतें, दाना-पानी पहुँचाते हैं गाँव के वृद्ध । गाँव वाले मानते हैं 'नारी पृथ्वी माता की बेटी है। औरत है । ऊ हल में जोती जाय । हाय हाय ई तकलीफ देखकर पृथ्वी माता

{141}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह {पृष्ठ - 22}
{142}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह {पृष्ठ - 28}

की आँखें काहे नहीं आँसुओं से भर जायेंगी ।"[143] इन आँसुओं की वर्षा से धरती नहा कर हरी-भरी हो उठेगी । यहाँ {करैता में} सोमारू बो भौजी बैल बनती हैं । पहले तो टीमल सिंह दाना-पानी पहुँचाने का काम करते थे । पर अब उनकी आँखें जाती रहीं तो दयाल पंडित को यह काम करना पड़ता है ।

बुल्लू पंडित जिनका असली नाम दयाल पंडित है, इस गाँव के 'हँसी-खुशी के सफर मैना' हैं ।"[144] पचीस पैतालिस की उम्र होते हुए भी उनके चेहरे पर 'मिलौम चिकनाई' है । करैता में कोई शादी ब्याह हो या उत्सव समारोह हो; दयाल महाराज उसमें सबसे पहले बुलाए जाते हैं । गाँव की औरतें उनसे 'तेल, साबुन, चोटी, कंघी, जम्फर-ब्लाउज' आदि मँगाती रहती हैं कस्बे भेजकर ।

इसी गाँव के हैं सुखदेव राम । यादववंशी होते हुए भी न उनसे दण्ड-बैठक हो पायी और न भैंस की पीठ पर बैठ कर, कान पर हाथ लगाकर बिरहा गाना । पढ़ाई-लिखाई भी नहीं हुई उनसे । वे घर-गाँव छोड़कर, गाजीपुर, बनारस घूमते घूमते "कांग्रेसी" हो गए और घूम-घाम कर पाँच साल बाद फिर करैता आ गए हैं —'खाँटी खादी' का 'उज्जर' कुर्ता और 'लकदक' साफ धोती, माथे पर 'गान्ही टोपी' । पूरी यादव पाल्टी, मोड़, दुसाध, कोइरी, काछी सब उनकी 'पाल्टी' में है । गोसाई महाराज सुखदेवराम जी के आस-पास 'तरक्कीवान लोगों को 'बुटाते रहते हैं । जब गोसाई महाराज 'गोजी' में तिरंगा झंडा बाँध कर अकेले सारा गाँव घूमते हैं तो पीछे-पीछे गाँव के लड़के ताली पीटते हुए चिल्लाते चलते हैं —

> पतली कईन तिरंगा झंडा ।
> सुखू चेला गोसाई झंडा ।।"[145]

अब गाँवों में पंचायत के चुनाव होने लगे हैं । करैता में भी पंचायत के सभापति का चुनाव होने को है । सुरजूसिंह ने अपनी अलग "पाल्टी" बना ली है । एक से एक "बदमाश और लुच्चे-लुच्चे" हैं इ उनकी पार्टी में — हरिया तिरिया, छविलवा, समाधर और सुरत, ये सब थोड़ा-बहुत पढ़े लिखे भी हैं ।

{143-144-145}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह {पृ0-23, 4, 301}

सुखदेवराम की अलग पार्टी है । वह देस-दिहात का सबसे बड़ा कांग्रेसी नेता है । सुरजू सिंह अपनी पार्टी में सभापति के पद के लिए प्रत्याशी हैं । अपने खानदानी प्रतिद्वन्द्वी सुरजू सिंह को 'गाँव का सरगना' न बनने देने के लिए बूढ़े जैपाल सिंह मीरपुर से करैता आये हैं अपनी वही पुरानी पंच कल्यानी घोड़ी पर --'पटक मिरजई और पटक साफा पहने ।'[146] बीरा पीठ पर बड़ा सा गट्ठर बाँधे आगे-आगे चल रहा था, गुदुन अहीर लम्बी सी मोटी लाठी को कंधे पर टिकाये घोड़ी के पीछे-पीछे । गोबरधना बहेलिया दुनाली बन्दूक और कारतूस की मटमैली पेटी लगाये साथ-साथ था । सारे गाँव में हौलदिली छा गई है ।

गाँव में छोटा-बड़ा कोई काम हो, चहल-पहल पूरी तरह हो जाती है । ग्राम सभा का चुनाव है । सभापति के पद के लिए तीन उम्मीदवार हैं-- सुरजू सिंह की दरी उत्तर की तरफ, दक्खिन की तरफ सुखदेव राम की और बीच में जैपाल सिंह की दरी बिछी हुई है । सुरजू सिंह की दरी पर काफी भीड़-भाड़ है । उनके कार्यकर्ता सिरिया, छबिलवा आदि जुटे हैं । दरी के पास एक ऊँचे स्टूल पर बड़े से थाल में पान-बीड़ी, सिगरेट आदि सजा रखा है । जैपाल सिंह की दरी पर छ-सात लोग चुपचाप बैठे इधर-उधर देख रहे हैं, न पान, न सिगरेट, न चर्चा । सुखदेव राम की पार्टी में चमरौटी के रामकिसुन, झिनकू, घुरबिनवा आदि अनेक लोग बैठे हैं ।

व्यक्तिगत स्तर पर अब करैता में उत्सव समारोह कम होते हैं - जमींदारी टूटने के बाद । फिर भी इस साल बबुआनों की छावनी पर धूम-रौनक दिखाई पड़ती है - केले के खम्भे, रंगीन कागजों की झंडियाँ, अशोक के पत्तों के फाटक, शीशे की हँडिया गैस बत्ती और हवा में फरफराता हुआ चँदोवा । ऐसी सजावट करैता में बरसों बाद दिखी है । कहने को है कि बाबू जैपाल सिंह के पोते बुद्दू बाबू का जन्म दिन है पर वास्तव में यह सारा उत्सव है सुरजू सिंह के हारने की खुशी में । जैपाल सिंह ने स्वयं हार कर अपने उम्मीदवार सुखदेव राम को जिताया है । सैयदराजे से कीर्तन मण्डली आई है उत्सव की शोभा बढ़ाने के लिए । स्टेज पर रामदास उस्ताद की मण्डली बैठी है । बाजे पर गत बजने लगती है । ढोलक की आवाज पर गाँव के इस-उस सभी पार्टी के लोग

---

[146]- अलग अलग वैतरणी : शिवप्रसाद सिंह [पृष्ठ - 46]

घूम-घाम कर, छुपे-छिपे छावनी पर आने लगते हैं ।

अब, भले ही, करैता गाँव की पंचायतें मलिकाने के चबूतरे पर नहीं होती और न ठाकुर बैपाल सिंह मुखिया के आसन ही पर बैठते हैं पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इधर करैता गाँव में हुई घटनाओं का सभी फैसला ठाकुर की मर्जी मुताबिक ही हुआ है ।

बैसाख की दुपहरी में कोई आदमी यदि करैता के तमाम नवयुवकों से मिलना चाहता हो तो उसे तनिक भी कठिनाई न होगी, बस दो तीन अड्डे हैं । एक अड्डे पर कहीं 'तेल लगे चीकट ताश' के पत्ते खेले जा रहे होंगे । कहीं खेत की फसलों के दिनों में माँ-बाप की नज़र बचा कर बेचे हुए अनाज के पैसों से जुआ खेला जा रहा होगा । कहीं कोई व्यक्ति इसके - उसके घर के "गन्दे और गलीज" किस्से चटपटे ढंग से सुना रहा होगा । इन सबमें "सबसे बड़ा और सबसे रंगीन" अड्डा सुरजू सिंह का 'बइठका' है ।

कहीं भी बाजा बजे, गाँव वाले सम भाव से सबमें शामिल हो जाते हैं चाहे वह छावनी पर बुद्दू बाबू के जन्म दिन के उत्सव का हो या धर्मू सिंह के यहाँ की कुर्की का एलान करने के लिए हो या देवी की पुजैया के लिए हो ।

धरमू सिंह के यहाँ कुर्की है --'गुलमवा का नाती' "चरका" नगाड़ा बजा बजा कर गाँव भर में ऐलान कर रहा है । आवाज़ गाँव की गलियों में "घुमर" रही है । एक कुतूहल, एक तमाशा सबको अपनी ओर खींच रहा है । लोग उझक-उझक कर जुलूस में जा मिलते हैं ।

झब्बू भैया का लड़का देवनाथ डाक्टरी पास करके आया है । झब्बू की भौजी ने मनौती मानी थी । उसी की पुजैया में आगे-आगे बैण्ड बाजा बजता जा रहा है और पीछे-पीछे गीत गाती औरतें । पूजा करके लौटने उप-धाइन के साथ गाँव के अनेक लोग--लड़के, लड़कियाँ, चरवाहे, कमकर-[illegible] झुंड बाँध करके उनके पीछे-पीछे घर तक आते हैं ।

ठाकुर बैपाल सिंह ध्यान[illegible] दी गई ज़मीन पर और उन्हीं के [illegible] बनवायी गयी कच्ची इमारत में करैता का स्कूल था । बाद में ग्राम-सभा के सभापति सुखदेव, बैपाल सिंह और सुरजू सिंह की सहायता से यह नई इमारत

बनी है । स्कूल के बाहर एक घासों से ढका बहुत सुन्दर मैदान है । मगर वह गाँव वालों के लिए 'कुल्ला फराकत' के काम आता है । इस स्कूल के हेडमास्टर मुंशी जवाहिर लाल की वेशभूषा - घुटनों तक गन्दी धोती और शरीर में आधी बाँही की बंडी तथा पैरों में खड़ाऊँ है । हेड मास्टर के कमरे में एक पैर टूटी मेज है जिसे ईंट को तले ऊपर रखकर संतुलित किया गया है । उसी मेज के ऊपर स्कूल के सरकारी कागजात रखे जाते हैं ।

गाँव की परम्परा से हट कर कोई भी स्त्री, पुरुष गाँव वालों की दृष्टि में एक आश्चर्य की वस्तु है । कल्पू बो बहू पटना शहर की है, पढ़ी-लिखी हैं । सीरी कहता है '--- सुना दो चोटी काढ़ती है । कनपटी के पास माँग काढ़ कर सेंदुर लगाती है ---- ।'[147]

करैता स्कूल का नया आया मास्टर शशिकान्त भी वहाँ के गणमान्य व्यक्तियों के लिए विचित्र व्यक्ति है क्योंकि वह बालकों को ढंग से पढ़ाता है, खेल-कूद का भी प्रबंध करता है । जबकि मुंशी जवाहिर लाल शिक्षा से अधिक ध्यान बालकों की गुरु-सेवा पर देते हैं । वे कक्षा पाँच के हर लड़के से एक-एक रुपया महीना वसूल करते हैं मिट्टी के तेल के लिए । दो-दो रुपया शुरुआत में में ही ले लिया गया है लालटेन के लिए । स्कूल के बाद लड़के घर से खा-पीकर सात बजे मुंशी जी के पास आ जाते हैं । बीच बरामदे में ईंटों के ऊपर लालटेन रख दी जाती है । फिर लड़के चारों ओर टाट बिछा कर बस्ता लिए बैठ जाते हैं । कभी कभी उनमें से किसी एक लड़के को अपने साथ रात को सुला कर "थोड़ी सी सेवा" भी ले लेते हैं । क्योंकि 'मास्टर लोग कितनी ही सेवायें' ले सकते हैं, लेते रहते हैं ।'[148]

करैता की चमरौटी की अपनी अलग दुनिया है । सुंदरबिनवा की माई को इसलिए पता है कि वह चमार है और "मान्ह लोग" {चमार आदि} सवर्णों की तरह दोनों जून नहाते धोते नहीं है । चमार को सफाई-धुलाई से क्या मतलब पर सत्य भगत की लड़की दुलरिया दोनो जून नहाती है । दुलरिया वहाँ की विशिष्ट व्यक्ति है । चमटोल की औरतें अक्सर शाम को दुलरिया को घेर कर बैठ जातीं और दुलारी से कहानी सुनतीं । दुलारी कहानी कहती कथिया की

{147}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 142 {
{148}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 411 {

की देह की पतली । पान-फूल सी सुकुमार । बाँकी तिरिया - - - -।
अन्त करती ----

धनि सतवन्ती नारि, धरम की ज्योति बरी ।
भेस बदल पिय ठाढ़, देखि धनि मुरछि परी ।।[149]

धनेसरी बुढ़िया तो सारी चमटोल के लिये बिना दाम का तमाशा है। उसके आदमी घुरफेक्कन से और कुछ काम तो न होता पर कहीं भी गाय, बछिया, बूढ़े बैल या पड़वा, पड़िया के मरने की खबर मिलती तो वह चार चमारों को इकट्ठा करके, बाँस और रस्सी लेकर वहाँ पहुँच जाता। मरे जानवर को 'बाँध, छान कर' बाँस में लटका कर उठवा लाता, फिर चमरौटी के पूरब वाले खेत में डाँगर खलिहाना। फिर तो उस दिन चमरौटी में जश्न मनाया जाता है। माँस तो सभी खाते पर खाल वह किसी को नहीं देता। यदि गाँव के पेड़ों पर गीधों की कतार बैठी हो या आसमान में मँडरा रही हो तो यह जाना जा सकता है कि घुरफेक्कन {खाल खलियाने में} आज बहुत व्यस्त है, यहाँ तक कि 'खैनी की खिल्ली' भी उसे कोई दूसरा खिलाता है। इसी वृत्ति के कारण घुरफेक्कन का हाड़ गोदाम के मालिक करीम खाँ और चमड़े के आढ़ती सुखे भंडारी से अच्छा मेल-जोल है।

पहले धनेसरी धान कूटती हुई ठेकियाँ चलाती रहती थी और गीत गाती जाती थी --

"बैगन बाग में करेली तुरै न जाब सखी, बैगन बाग में" वह मजूरी करती, किसी गिरहस्थ का आटा पिसाने जाती, तेलहन लेकर तेल पिरवाने जाती थी पर उम्र ढलने के साथ वह दुलारी चाची, सुकालू बो, धन्नू बो की तरह 'सौरी कमाने' लगी। इसके अतिरिक्त अनेकों की इज्जत बचाई है धनेसरी ने। गंगा-जली के चार-पाँच महीने के पेट को रात भर 'मोड़-माड़' कर गिराया था। 'बो हो माई, गाँव भर का मामला है। वैसे उसकी इज्जत वैसी अपनी'।[150] वह अंधी है तो क्या हुआ, खुशी तो तब है कि 'अब वह सब की किसी को जरूरत नहीं है। क्या "क्लिनिक" चल रहा है "मोती रख्खर" अब "काटा" कम हो गया है।

{149}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 225 }
{150}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 211 }

चैत की सुबह में चमरौटी में एक अजीब सी हलचल रहती है । सबको चार मील दूर 'सिवान' पहुँचना होता है 'कटनी' के लिए । और, चैत की शाम हमेशा ही गुलज़ार और 'मसतायन' रहती है । आधी रात तक चमारिनें फसलों के डाँट को जो उन्हें 'बनी' में मिलता है, लबदे से पीट-पीट कर दाना भूसा अलग करती हैं । घरों में, खँडहरों में, चबूतरों पर लकड़ियों या उपले की आग में सेंकी जाती 'हर्रा' चिप्टियों की सोंधी गंध से चैती हवा 'बौरा' जाती है ।

अक्सर चमरौटी में कोई न कोई हल्ला मचता रहता है –– कभी लड़ाई-झगड़ा, कभी मकान गिरने का, कभी आग लगने का । पर कभी सबसे अलग एक रहस्यात्मक कोलाहल भी – डोमन कक्का के दरवाजे पर खाना मचमा है । धनेसरी बुढ़िया गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रही है ––'बुलाओ सारे गाँव को – – – – बिना सबको दिखाये दरवज्जा न खोलो । – – – – – – अइसा 'मिलाज करम' मैंने नहीं देखा । – – – ई चमटोल न हुई, रंडीखाना होय गयी ।'[151]– – – – सुना डोमन की छोरी कवनो रजपुत को कोठरी में घुसाये है ।'[152]

ऐसी घटना होने पर जाति चौधरियों की पंचायत––'बटोर' होती है । सुरजू सिंह और डोमन चमार की लड़की सुग्गी के सम्बन्ध को लेकर बारहो गाँव की बटोर होती है – करैता, दीधा, ममतरा आदि सभी गाँवों के चौधरी आते हैं । सभास्थल के पूरब की ओर जमीन खोद-खोद कर बड़े बड़े दो चूल्हे बने हैं जिन पर बड़े बड़े हंडों में चावल और सुअर का मांस पक रहा है । पूरी जमात के खाने और सुअर के पटठे का प्रबन्ध डोमन की ओर से है – मानी बात है ।

गाँव में नीची से नीची जाति का कोई मर्द हो या औरत, लड़का हो या लड़की, बूढ़ा हो या बूढ़ी हो, ऊँची से ऊँची जाति वालों के साथ उनका रिश्ता तय है – झन्नू भगत, हंसी सिंह, दीप सिंह, देऊ सोखा, सहदेव कानू सभी चाचा हैं और उनकी औरतें चाची । उसी नाते से हंसी काका की बहू कप्पू की लड़की के 'चिचिन राजा' की भाभी हैं । और, भाभी से हँसी––

[151]– अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह {पृष्ठ 507}
[152]– अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह {पृष्ठ 508}

मजाक न किया जाय तो उसमें अपनी अहमन्यता के साथ-साथ भाभी का अपमान भी समझा जा सकता है ।

ऐसे ही एक है जलील चाचा करैता में । जब करैता के दिन अच्छे थे तब वे गोल चौड़ी मोहरी का पायजामा, कलाबत्तू के गोटे वाला तंजेबी कुरता कान में हिना का इत्र और पैरों में मिजागा पहने, बात बात में 'शेरो - शायरी के रेशमी बेल बूटे' टाँकते बात करते थे । अब भले ही उनकी 'करीने से सँवारी काली दाढ़ी' 'रुखी-सूखी, बेतरतीब हो गई हो, बातों में शेर कहना और शेरों में बात कहना उनका वही है । वे अपना हाल विपिन को बताते हैं ——

हासिल ने हाथ धो बैठे ऐ आरजू खिरामी
दिल जोशे गिरिया में है डूबी हुई असामी
उस शमआ की तरह से जिसको कोई बुझा दे
मैं भी जले हुवों में हूँ दाग़े - ना - तमामी ।'[153]

तब हर बड़े घरों में मुसलमानों के आतिथ्य के लिए अलग से बरतन हुआ करते थे — खास तौर से चीनी, शीशे के बरतन । ठाकुर जैपाल सिंह को तो जलील मियाँ ने तश्तरी और गिलास का पूरा सेट खरीदवाया था जो जलील मियाँ या दूसरे मुसलमान अफसरान के लिए इस्तेमाल होते हैं ।

गाँव का साधारण आदमी जब शहर से हो आता है या शहर में रहने के बाद गाँव आता है तो वह अपने को गाँव वालों से अलग, कुछ विशिष्ट सा समझने और दिखाने लगता है । देवी चौधरी का लड़का जगेसर सिपाही है, जौनपुर के थाने में लगा है । वह गाँव आता है तो उसके चेहरे पर "एक खास तरह की ऐंठ" हमेशा बनी रहती है । उसका वेश बदला है, बोली भी बदली है । जब वह एक हाथ में झोला और एक काँख में दो फुट का रूल दबाये गाँव में घुसता है तो गाँव के कुत्ते भूँकने लगते हैं । वह रूल घुमाता हुआ कहता है, "भाग ससुर, यहीं हमें एक बेंट बस साले 'डौग' का बाओगे । - - कहता हूँ साला गाँव है, यहाँ साले यहाँ के कुत्ते हैं ।"[154] घर पहुँच कर जब वह

---

[153]- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 237 }
[154]- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 290 }

चिवड़ा गुड़ का नाश्ता नहीं करता ; उसे मिठाई चाहिए बनिया, हलवाई के घर की । बल्कि वह चाय का सामान स्वयं साथ लाया है, चाय का प्याला और तश्तरी सहित तथा बिस्कुट का डब्बा भी । कमासुत जगेसर शहर से कोरी साड़ी और मोटी छींट का एक गजा कपड़ा माँ के लिए, 'मोरपंखी साड़ी और रंगीन ब्लाउज तथा उठे हुए वक्ष वाली नई कट की चोली' अपनी पत्नी के लिए, मोटिया की एक मिर्जई और भागलपुरी सिल्क का चदरा देवी चौधरी के लिए और एक धारीदार नीले रंग की पूरी बाँह वाली स्वेटर अपने भाई रमेसर के लिए लाया है । अब तो जगेसर के दरवाजे पर दिन भर 'नवये लड़कों' की भीड़ लगी रहती है । हँसी-ठट्ठा, हल्ला-गुल्ला, ताश और साथ में ट्रांजिस्टर चलता रहता है ।

गाँव में लोग मानते हैं 'डागदरी जैसी आमदनी किसी काम में नहीं? ---- देखिये कस्बे का कानु डागदर कैसा रुपया बटोर रहा है'[155]। बब्बू उपधिया के लड़के देवनाथ के डाक्टरी पास करके गाँव में डागदरी शुरू करने से पहले 'साइत-मुहुरत' होगी फिर 'काम-धाम' होगा । 'एकदम से वह नकुन' नहीं देखेगा । लड़का गाँव में डाक्टरी करेगा इससे बब्बू उपधिया खुश नहीं है क्योंकि उन्हें आशा के अनुकूल पैसा नहीं मिल पायेगा । गाँव के लोग दवा लेने के बाद कमर की टेंट खोल मुड़े-तुड़े नोट और रेजगारी इस भाव से निकालते हैं मानो ठगे जा रहे हों । उनका वह पैसा एक दिन के लिए भी पूरा नहीं पड़ता । कल की दवा के लिए भी दाम की चिन्ता उनके चेहरे पर स्पष्ट हो जाती है ।

गाँव के ये निर्धन दीन भले ही 'मुफ्त' में इलाज करवाना चाहते हों व पर वे अहसान नहीं हैं । अँमराई का लछिमन अपने इलाज के बदले में दो बार दहेंड़ी और दो बार एक-एक लौकी डा0 देवनाथ के घर स्वयं पहुँचा चुका है । गाँव का कोई आदमी खुशी-खुशी दवा कराने नहीं आता - पहले 'दो बून' जाना तो नसीब हो ।

जब जमींदारी थी और जमींदार का दबदबा था तब गाँव वालों में किसी का जब कहीं "ऊँचे खाले" पैर पड़ जाता था तो वे खुद ही बिना कहे जमींदार को रुपया जमा जाते थे [और जमींदार सब सँभाल लेता था]। पर

---

[155]- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह [पृष्ठ 144]

अब 'ई नया राज है - - - - अपने ही लोग अपने को लूट रहे हैं ।'[156] अब तो गाँधी टोपी का अपना प्रभाव है । तभी तो सुखदेवराम भी थाना-पुलिस, नेता-अफसर सभी को समझा बुझा कर काम करा लेते हैं । अब देखिये न, सुखदेव राम की गाँधी टोपी के प्रभाव से ही स्कूल की इमारत पर छत पड़ पायी है, चमारों के लिये कुआँ बन पाया है और गाँव की नालियों के लिए नाबदान बन पाये हैं ।

गाँव में कोई "चोरी चमारी" आदि जैसी घटना घट जाती है तो गाँव वाले न तो 'हाईकोर्ट ठेकाने' की बात करते हैं और न पंचायत, ग्राम-सभा में रिपोर्ट करते हैं । रातों-रात खेत कट जाते हैं, मवेशी खूँटे पर से सिवान में हाँक दिये जाते हं, दिन-दहाड़े । पर 'चोरी का जवाब चोरी, चमारी का जवाब चमारी ।'[157] क्योंकि गाँव का आदमी जानता है थाने-रपट में सौ-पचास पुलिस-दरोगा को भेंट करने पड़ेंगे और पंचायत में रपट कराने पर सभापति और सरपंच को पूजना पड़ेगा । अतः सभापति सुखदेव राम मायूस होकर गाँव वालों को कोसने लगते हैं "ऐसा लीचड़, निकम्मा गाँव शायद ही कहीं हो - - - - - -।" पर जगेसर, जो शहर में रह आया है, जानता है कि 'अब एक आदमी को एक से लड़ाने से कुछ नहीं होता, 'ऐसी जुगुति बैठाओ कि गोल से गोल लड़े । - - - - - -' दो गोल में बन जाये तो देखो देखो हजार रुपये का धन्दा उतर आये ।'[158]

गाँव में खबरें जाल हँम से दौड़ती हैं । कहीं खबर लड़ाई-झगड़े या चोरी चमारी की हुई तो कहना ही क्या — बेतार का तार लग जाता है । चाहे सुगनी और सुरजू सिंह को लेकर चमरौटी की घटना हो, धरमू सिंह के घर कुर्की की बात हो या कि 'बच्चन मिसिर ने जगेसर पर हाथ चला दिया - - - - - - ।'[159]

कभी गाँव में बायस्कोप संदूक वाला 'अजाब लीला, अजाब लीला' चिल्लाता हुआ तमाशा दिखाने लगता तो जगेसर {सिपाही} और सुखदेव राम ग्राम सभा से आज्ञा न लेने के अपराध में उसे धौंसिया कर उसकी दिन भर की कमाई छीन लेते हैं - ऐसा अंधेर तो गाँव में जमींदारी के समय भी नहीं था ।

{156-157}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 306, 307 }
{158}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 308 }
{159}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 319 }

गाँव की अपनी राजनीति है, पार्टियां हैं । कोई तीसरा तो इनकी राजनीति या पार्टी से नहीं जुझना चाहता, उसको वे पार्टी वाले टिकने नहीं देते । मास्टर शशिकान्त जब तिरिया और जुझारथ वाले मामले में गवाही देने से इनकार कर देते हैं तो कस्बे के सारे मास्टरों की तनखाह लेकर लाटते समय उनकी आँख में धूल डालकर उन्हें लूट लिया जाता ह और वे चुपचाप गाँव छोड़कर चले जाने को मजबूर हो जाते हैं ।

गाँव के लोगों में अब भाई-चारे का भाव तिरोहित होता चला जा रहा है । कुछ पुराने लोग हैं, वे उस अतीत को भूल नहीं पाते । खलील मियाँ का हाता, पहले, होली के मौके पर शाम होते होते भर जाता था । खलील मियाँ एक कंडाल में ठंडाई और भांग घोल कर रखवाये रहते, एक तश्तरी में पान, इलायची, खुशबूदार जर्दा और मीठी सुपारियाँ आर दूसरी तश्तरी में अभ्रक मिली अबीर होती -- फिर घंटों होली मिलना चलता रहता। पर अब छावनी पर जैपाल सिंह नहीं रहते और न खलील मियाँ के दरवाजे पर होली होती है ।

नवम्बर के अन्त तक करैता के सिवान पूरी तरह हरे-भरे हो उठते हैं। हल्का जाड़ा पड़ने लगता है । लोग गलियों के मोड़ पर सूरज की किरणों की सीध में घाम भी खाते और कोई ज्वार और बोम्हरी का सावा भी फाँकते जाते हैं । करैता से धरती माता भी रुठी हैं अन्यथा इन दिनों करैता में 'गिरहस्थ' लोग चिवड़ा और दूध का कलेवा करते थे । अब तो अधिकांश लोग नये चावल का भात आर चने के साग का सालन खाकर पेट भर रहे हैं ।

करैता के लिए खिचड़ी का त्योहार एक विशेष पर्व है । पहले तो छावनी की ओर से गंगा किनारे एक बड़े शामियाने पर चिवड़ा, लड्डू, तिलौरे और गुड़ गाँव के हर नहाने वाले को जमींदार खुद अपने हाथ से बाँटते थे सब अपने अपने गमछे में लेकर कलेवा करते, फिर जिसकी इच्छा होती गाँव लौट जाते या कस्बे की ओर मेला देखने चले जाते । जुझारथ ने नदी-तट का यह 'वाहियात कलेवा' बन्द करा दिया है । आर किसी तीज-त्योहार पर चाहे कुछ नहीं पर इस दिन बच्चों के जाड़े के नये कपड़े अवश्य बनते हैं । ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षा के प्रथम पानी गिरने के साथ बालियों में प्रथम हल उठाने की रस्म सम्पन्न होती है । करैता में छावनी पर अखाड़े भीड़ लगाये हैं । सिपाही

लोहार सबके हल - फाल ठीक कर रहा है । लोगों में 'हसमुतनी' भी चल रही है । जग्गन मिसिर विंधेसरी को सुना सुना कर जोर से कहते हैं कि वह नहीं जानते कि उनकी लोहारिन उन्हें पटक कर आरी से चीरने जा रही थीं और उन्हें यह भी नहीं मालुम था कि विंधेसरी अम्बा प्रसाद राजवैद के यहाँ बिजली का झटका लगवाने गये थे । पर गाँव की जो दशा है कि सारा हास्य विनोद विंधेसरी के उत्तर से एक कारुणिक मोड़ ले लेता है । विंधेसरी कहता है "- - - - ऊ मेरी छाती पर इसलिए नहीं चढ़ी थी कि मैं नामर्द हूँ । पाँच दिन से फाका हो रहा है घर में । कहती थी जाओ मिर्जापुर सुना, जंगल कट रहा है उहाँ । वहीं काम करो । गाँव में रहोगे तो लड़के उपास करके मर जाँयगे ।"[160]

गाँवों में शादी ब्याह प्राय: वैशाख से आषाढ़ के बीच में होते हैं, क्योंकि इस समय गाँव के लोग खाली होते हैं । घर में नई फसल का अनाज होता है । फिर, गर्मी में बरातियों-घरातियों के लिए ओढ़ना जुटाने में दिक्कत नहीं होती । पर पुष्पी की शादी चपिया फागुन में ही कर रही हैं । अब तो गाँव में सयानी बिटिया की इज्जत बचनी भी मुश्किल हैं । पुष्पी की शादी में छावनी की कनिया ने धरमूसिंह के घर न्योता भेजा है---
"बड़े बड़े डालों में चावल-दाल, आलू-बैंगन । एक पीली साड़ी, ब्लाउज का कपड़ा । छोटी कंघी, शीशा और बड़ा सा सिन्होरा । आलता और साबुन रोगन की शीशियाँ ।"[161]

यद्यपि पुष्पी की शादी 'रिन करज लेकर पार करने वाली' बात है- "विवाह" नहीं 'निबाह' है । क्या करे कोई 'एह जमाने में विवाह ऐसे ही होता है ।"[162] तो भी गाँव की रीति-रिवाज का पालन तो होता ही है । दरवाजे पर आम के पल्लवों का सेहरा बँधा ह । एक ओर आँगन में मँडुवा है । दरवाजे पर चावल पीस कर लाल सफेद रंगो में "कोहबर" बना है, पेड़ के "सातिये" हैं । बारात करैता के स्कूल में टिकी है । पाँच-सात तो बराती हैं । "द्वारपूजा" "गुरहथी" और "विवाह" तीन बार बाजे बजते हैं । तीन बार स्कूल से धरमू सिंह के दरवाजे तक जुलूस आता है । और मौर

{160}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 604 }
{161}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 491 }
{162}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह { पृष्ठ 496 }

में बिदाई होती है । बखरी के दरवाजे पर औरतें रो रही हैं । पुष्पा लाल चूनर में लिपटी घूंघट में ढकी है मिउनिया उसे अँकवार में थामे हैं । पीछे पीछे रोती, आँख पोछतीं औरतें हैं, उनके बीच में दो एक बहुयें हँसी किलोल कर रही हैं । कल्पू बो भौजी गा रही हैं --

'उनके अँखिया से लोखा गिरत होइ है ना
उनके गज मोती अँधरा भिजत होइ है ना
फूल परिजतवा झरत हो इ हैं ना
लरकइयाँ के नेहिया टूटत होइ है ना ।'[163]

गाँव की यह दशा देखकर विपिन कहता है — "सवाल खाली कल्पू या हरिया, सिरिया, छबिलवा का नहीं है मिसिर जी, सवाल तो पूरे वातावरण का है "- - - - -" समझ में नहीं आता आखिर गाँवों में इतनी गन्दगी कहाँ से आ गई ।"[164] वह पढ़ा लिखा नवयुवक अन्तत: परम्परा से चली आ रही कथा [Legend] को प्रमाण मानता हुआ कह उठता है, "- - - सचमुच ही इस गाँव पर कीनाराम का शाप है । इसे बरबाद होने से कोई रोक नहीं सकता ।"[165]

विपिन काफी दिनों बनारस में पढ़ता रहा है । अपनी पढ़ाई पूरी करके वह लगभग एक साल करैता में रहा और उसे लगता है - - - -"वहाँ किसी भले आदमी का रहना मुश्किल है । यह एक जीता जागता नरक है, जिसमें वही आता है जिसके पुण्य समाप्त हो जाते हैं । चारो ओर कीचड़ बदबू, नाबदान, गू-मूत, बीमारियाँ, कुलबुलाते कीड़े, मच्छर, जहरीली मक्खियाँ — इसके बीच भुखमरी, डरावनी हड्डियों के ढाँचे, कीचरीली आँखों और फूले पेट वाले छोकरे, घरों में बन्द आपाद मस्तक गन्दगी में डूबी औरतें, जो एक दूसरे को खुले आम चौराहे पर नंगियाने में ही सारा सुख और खुशी पाती हैं, कुंठाते मन के अब्याहिल जैसे नवयुवक जो अँधेरी बन्द गलियों में बदफेली करने का मौका ढूंढते फिरते हैं, हारे-थके प्रौढ़ जो न गृहस्थी के जुये को उतार पाते हैं, न उसमें उत्साह से जुट पाते हैं । मौत का इन्तजार करते बूढ़े अपने

---

[163]- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह, पृष्ठ 499
[164]- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह, पृष्ठ 402
[165]- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह, पृष्ठ 611

अपने ही बेटे - बेटियों से उपेक्षित बिलबिलाते रहते हैं — यही है न हमारी जन्मभूमि करैता ।"[166] यह स्थिति केवल करैता गाँव की ही नहीं है, पास का 'कैमवा' गाँव जिसे कीनाराम का वरदान मिला था कि 'तुम्हारी बस्ती फूलती-फलती रहेगी,' उसका भी यही हाल है ।

गाँव में कुछ करने की आशा लेकर आये नवयुवक अपने गाँव में ही लांछित - अपमानित होकर या हार कर गाँव छोड़ कर कस्बे या शहर की ओर भाग रहे हैं । डा0 देवनाथ ने कस्बे में डाक्टरी की दुकान खोल ली है तुलसी किराने वाले के बगल में । वह कहता है, "खूब मजे में हूँ यहाँ । न हाय - हाय न खाँय - खाँय । - - - - बड़ी बात यह है कि यहाँ कोई बिना समझे बूझे मेरे मामले में टाँग नहीं अड़ाता । किसी को मेरे प्रयोगों से जलन नहीं होती ।"[167]

बीनू बरेठा का लड़का सुरजितवा ने भी गाँव छोड़ दिया है, और कस्बे में लाँड्री खोल ली है । अपने बाप से वह कह आया है '- - - तुम्हीं मुफ्त में नरक साफ करो ।' कपड़ा पीछे इकन्नी पैसा भला गाँव में कौन देता है ? गाँव में हमेशा से अगहनी और चैती में मिलता है, परब - त्यौहार में 'बायक' भी । इसी में साल भर कपड़ा धुलता है ।

और, अन्त में विपिन भी गाजीपुर में नौकरी करने चला जाता है । जग्गन मिसिर का कथन सत्य है '- - - - सभी चले जाते हैं । हमारे गाँवों से आजकल इकतरफा रास्ता खुला है । निर्यात् सिर्फ निर्यात । जो भी अच्छा है, वह यहाँ से चला जाता है । अच्छा अनाज, दूध-घी, सब्जी जाती है । अच्छे मोटे ताजे जानवर, गाय-बैल, भेंड़-बकरे, जाते हैं । हट्टे कट्टे मजबूत आदमी जिनके बदन में ताकत है, देह में बल है, खींच लिए जाते हैं पल्टन में, पुलिस में । मलेटरी में । मिल में । फिर वे लोग जिनके पास अकल है, पढ़े लिखे हैं, यहाँ कैसे रह जायेंगे ? वे जायेंगे ही । जाना ही होगा'।[168] - - - - 'अब तो एक नये तरह का अभाव शोष हो रहा है । यहाँ रहते हैं वे जो यहाँ रहना नहीं चाहते, पर कहीं जा नहीं पाते । यहाँ से जाते अब वे हैं, जो यहाँ रहना चाहते हैं, पर रह नहीं पाते ।'[169]

[166-167]- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह [पृष्ठ 587]
[168]- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह [पृष्ठ 612]
[169]- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह [पृष्ठ 613]

राग - दरबारी [1968 ई०]

'राग दरबारी का सम्बन्ध एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे गाँव की जिन्दगी से है जो पिछले बीस वर्षों की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने घिसट रही है। यह उसी जिन्दगी का दस्तावेज है।'[170]

उक्त शहर का किनारा छोड़ते ही देहात की शुरुआत हो जाती है। जिस सड़क के एक ओर पेट्रोल स्टेशन है और दूसरी ओर छप्परों, लकड़ी और टीन के टुकड़ों की मदद से खड़ी की हुई अनेक दुकानें है, बस वही सड़क "शिवपालगंज" — कथाक्षेत्र की ओर जाती है।

इस सड़क के गाँव पहुँचने पर कुछ कूड़ों के घूर, 'कुछ घूरों से भी बदतर दुकानें', तहसील, थाना, ताड़ीघर, विकास खण्ड का दफ्तर, शराबखाना, कालिज - शिवपाल गंज का' इतना हिस्सा दिखता है। कुछ दूर और जाने पर घनी अमराई में बनी एक कोठरी है। बरसात के दिनों में हलवाहे इस कोठरी में जुआ खेलते हैं। जब यह कोठरी खाली रहती है तो शिवपाल गंज के 'नर-नारीगण मौका देखकर इसका मन पसन्द इस्तेमाल करते हैं।'[171] कालेज के मास्टर इसे 'प्रेम भवन' कहते हैं। मुख्य शिवपाल गंज तो सड़क छोड़कर दूसरी ओर है। पर 'असली शिवपाल गंज तो वैद्य जी के बैठक' में है। शिवपाल गंज में वैद्य जी की बैठक 'दस डाउनिंग स्ट्रीट' या 'व्हाइट हाउस' से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

वैद्य जी यों तो पेशे से वैद्य हैं जो 'प्रगट रोगों का प्रगट रूप से' और 'गुप्त रोगों का गुप्त रूप से' इलाज करते हैं। वे यहाँ के एकमात्र कालेज "छंगामल विद्यालय इन्टर कालेज" के मैनेजर हैं। वे ही यहाँ के 'कोआपरेटिव यूनियन' के मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं।

तहसील का मुख्यालय होने के बावजूद शिवपाल गंज इतना बड़ा गाँव नहीं है कि उसे टाउन एरिया होने का हक मिलता। यहाँ एक ग्राम सभा है जिसके प्रधान रामाधीन भीखम खेड़वी हैं, के भाई हैं। गाँव के लोग यह मानकर

[170]- राग दरबारी : श्री लाल शुक्ल [प्राक्कथन से]
[171]- राग दरबारी : श्री लाल शुक्ल [पृष्ठ 375]

चलते हैं कि ग्राम सभा का अमीर होना, उसके प्रधान का अमीर होना एक ही बात है ।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चार कमरे वाले डाकबंगले, कच्ची दीवारों पर छप्पर डालकर बनाए गए अस्तबलों के से कमरे, और उसी के पास नयी ढंग की बनी इमारत 'सामुदायिक मिलन केन्द्र' — इन सबों के मिले जुले रूप को 'छंगामल विद्यालय इण्टर कालेज, शिवपालगंज' कहा जाता है । इस इण्टर कालेज के प्रिंसिपल की वेशभूषा है दुबले पतले शरीर पर खाकी हाफ पैन्ट और कमीज, पैरों में सैन्डिल तथा बगल 'पुलिस सार्जेन्टों वाला' बेंत । इनकी दो विशेषताएं हैं – एक तो 'खर्च का फर्जी नक्शा बनाकर' {कालेज के नाम पर} अधिक से अधिक सरकारी पैसा प्राप्त करना और दूसरा, गुस्से की दशा में अवधी बोली का प्रयोग करना । विद्यालय के विद्यार्थी भी वेश-भूषा के मामले में स्वतन्त्र हैं । अधिकांश विद्यार्थी धारीदार पायजामा और बुश्शर्ट या कमीज और "अंडर वीयर" पहन कर कक्षा में आते हैं ।

कालेज के मैनेजर वैद्य जी के पुत्र 'रुप्पन बाबू' वहाँ के स्थानीय नेता हैं । वे सबको एक निगाह से देखते हैं —'थाने में दारोगा और हवालात में बैठा हुआ चोर, इसी प्रकार 'इम्तिहान में नकल करने वाला विद्यार्थी और कालेज के प्रिंसिपल' उनकी निगाह में एक हैं । उनकी इतनी इज्जत है कि दुकानदार उनके हाथ 'सामान बेचते नहीं अर्पित करते' हैं, इक्के वाले उन्हें शहर तक पहुँचा कर 'किराया नहीं आशीर्वाद' मांगते हैं । उनकी नेतागीरी का क्षेत्र कालेज है, जहाँ वे दसवीं कक्षा में पढ़ते हैं । उनका इशारा पाकर अनेक विद्यार्थी 'तिल का ताड़' बना सकते हैं । वे सफेद धोती और रंगीन बुश्शर्ट पहनते हैं और गले में रेशमी रुमाल लपेटे रहते हैं — नेता की वेश-भूषा सामान्य से हटकर जो होनी हुई।

शिवपाल गंज के रहने वाले अपने लिए 'गंजहा' शब्द 'सम्मानसूचक पद' की तरह प्रयोग करते हैं । शहर से आये रंगनाथ ने ट्रक वाले को दो रुपया दिया था, जिस पर वह बैठ कर आया था । इस पर वैद्य जी की बैठक के दरवाजे पर बैठा रहने वाला "सनीचर" कहता है, "रंगनाथ भैया शहर से आये हैं । उन्हें मैं कुछ नहीं कह सकता । पर कोई गंजहा से दो रुपया तो

क्या दो कौड़ी भी ऐंठ ले तो जाने ।"[172]

यों तो शिवपाल गंज छोटा सा गाँव है । परन्तु शहर के निकट होने के कारण उसे काफी फायदे हैं । जैसे शिवपाल गंज की दीवारों पर "पब्लिक सेक्टर" और "प्राइवेट सेक्टर" दोनों के विज्ञापन बहुतायत से देखे जा सकते हैं —"अधिक अन्न उपजाओ" मलेरिया उन्मूलन से सम्बध्द, पैसा बचाने के विषय में आदि पब्लिक सेक्टर के विज्ञापनों के अतिरिक्त प्राइवेट सेक्टर के विज्ञापन हैं जैसे एक ही दवा जिसके लगाने से दाद जड़ से दूर हो जाती है, खाया जाय तो जुकाम दूर हो जाता है और बताशे.. में डाल कर पानी से निगला जाय तो हैजे में लाभ होता है । बिजली के झटके से नामर्दी के इलाज का, सुजा रोग, आँखों की बीमारी, पेचिश आदि की दवा के विज्ञापन आम हैं । वैद्य जी का विज्ञापन अवश्य कुछ अलग तरह का है — टीन की तख्तियों पर लाल हरे अक्षरों में लिखा होता है "नवयुवकों के लिए आशा का सन्देश" नीचे वैद्य जी का नाम और उनसे मिलने की सलाह ।

गाँव के किनारे एक छोटा सा तालाब है — गंदा कीचड़ से भरा हुआ और बदबूदार । जिसमें असंख्य कीड़े-मकोड़े और मक्खियाँ पनप रही हैं। इसी तालाब के किनारे गाँव के लड़के सबेरे - शाम अथवा जब भी जरूरत महसूस हो 'ठोस,द्रव तथा गैस तीनों प्रकार के पदार्थ उसे समर्पित करके हल्के होकर' लौट जाते हैं ।"[173]

इस तालाब का आर्थिक महत्त्व भी है । इसके किनारे उगने वाली दूब से यहाँ के इक्कावान अपने घोड़ों की खाद्य समस्या हल करते हैं । ग्राम -सभा तालाब की मछली की नीलामी से समृध्द होती है ।

इस गाँव में एक बस अड्डा है । जिसके एक ओर मन्दिर है । जिसकी सीढ़ियों पर पड़े बासी फूल और मिठाइयों के दोनों के कारण चींटियाँ और मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं । दूसरी ओर एक धर्मशाला है जिसके पिछवाड़े "पेशाब का महासागर" सूखा रहता है । बस अड्डे के पीछे एक झील है । जो आस-पास के लिए "खुली हवा के शौचालय" का काम करती है ।

{172}- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल { पृष्ठ 39 }
{173}- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल { पृष्ठ 256 }

उधर शिवपाल गंज के पालतू सुअर सबेरे-सबेरे पहुँच कर उस गन्दगी को अपने आहार के रूप में "आत्मसात" कर लेते हैं ।

बस अड्डे पर कुछ भिखमंगे रिरियाते हुए भीख माँगते रहते हैं । मरियल कुत्ते जहाँ तहाँ पड़े रहते हैं । आस-पास मिठाई और पूड़ी की दुकाने हैं जिन पर 'तोंदियल हलवाई' बैठे होते हैं ।

उपर्युक्त विवरणों से यह नहीं अनुमान किया जाना चाहिए कि शिवपाल गंज में यही कुछ है । शिवपालगंज में एक डाक बंगला है, जहाँ शहरों के हाकिम दौरा करने के बीच ठहरा करते हैं । यहाँ एक अखाड़ा भी है जहाँ नियमित रूप से कई लड़के आया करते हैं । यह अखाड़ा वैद्य जी के बड़े लड़के बद्री पहलवान चला रहे हैं ।

एक थाना है शिवपाल गंज में । जहाँ पेड़ों के नीचे 'कुत्तों की तरह पड़े हुए' चौकीदार हैं । पास में मिठाइयों और चाय की दुकानें हैं । जिस पर धुंआ उगलती हुई ढिबरियाँ जलती रहती हैं, आस-पास टूटे कुल्हड़, गन्दे पत्ते और मक्खियाँ देखी जा सकती हैं । सड़क पर हैं 'घरघराते हुए, नशेबाज ड्राइवरों के हाथों चलने वाले हत्याभिलाषी ट्रकों के कारवाँ, साइकिल के कैरियर पर घास जैसे कागजात लादे हुए वसूली के अमीन । तहसीलदार के बदकलाम अरदली । — — — — — कालिज की तरफ से आते हुए, एक दूसरे की कमर में हाथ डालकर चलते हुए, कोई कोरस जैसा गाते विद्यार्थी ।'[174] थाने में इमली के पेड़ के नीचे भंग घोटने वाला लंगोट बन्द सिपाही शिवलिंग पर भंग चढ़ा रहा होता है । एक चौकीदार घोड़े के पुट्ठे पर खरहरा कर रहा होता है । हवालात में बैठा हुआ एक डकैत जोर जोर से हनुमान चालीसा पढ़ रहा होता है ।

शिवपाल गंज का इतिहास भी कम सम्पन्न नहीं है । यहाँ एक ऐसा चोर हो चुका है जो दस साल की उम्र में ही इतना तेज दौड़ता था कि पंद्रह साल के लड़के भी उसे पकड़ नहीं पाते थे । एक साल बाद वह मुसाफिरों के देखते देखते उनका सामान गायब करने में, कुशल हो गया था । चौदह वर्ष की अवस्था तक तो वह ऊपर का शीशा तोड़कर दरवाजे की भीतरी सिटकनी खोलकर

{174}- राग दरबारी : श्री लाल शुक्ल {पृष्ठ 338}

चोरी करने की कला में प्रवीण हो चुका था ।

अभी तीस साल पहले की बात है एक ठाकुर दूरबीन सिंह हुआ करते थे वहाँ । सारे इलाके में मशहूर था कि शहर में जैसे बाबू जयराम प्रसाद वकील मारपीट के मुकदमें में खड़े होने के लिए पचास रुपया हर पेशी लेते हैं उसी तरह दूरबीन सिंह मारपीट {करने} के लिए पचास रुपया लेते हैं । बड़ी लड़ाइयों में जहाँ आदमी इकट्ठे करने पड़ते, प्रति व्यक्ति रकम बढ़ती जाती । इसके अतिरिक्त उनके आदमियों को गोश्त और शराब भी देनी पड़ती थी । दूरबीन सिंह सेंध नहीं लगाते थे, दीवार फाँदते थे ।

इन दिनों शिवपाल गंज में दूरबीन सिंह के नाम पर, डाकू-चोर गाँव वालों को छोड़ देते थे - "सनीचर" का स्वानुभव प्रमाण है । पर कुछ दिन बाद नयी पीढ़ी जो तमंचा और चोरबत्ती से युक्त थी उसने लाठी चलाने वाले और दीवार फाँदने वाले दूरबीन सिंह को अपदस्थ कर अपना झंडा गाड़ दिया । उन्होंने सनीचर से कहा 'जाकर बता देना अपने बाप को । अंधों में काना बनने के दिन लद गए ।'[175]

'चमरही' इस गाँव के एक मुहल्ले का नाम है जिसमें चमार रहते हैं । यह मुहल्ला जमींदारी के समय में जमींदारों ने बसाया था । चमरही और शिवपाल गंज के बीच एक चबूतरा है जिसे 'गाँधी चबूतरा' कहते हैं । जाड़े में इस पर लोग धूप खाया करते हैं । पहले चमारों के इस मुहल्ले में कोई "बाँभन ठाकुर" निकल जाता तो वहाँ के लोग उठकर खड़े हो जाते, जिनमें झुककर हाथ जोड़ कर 'पाँव लागी महाराज' कहते, औरतें बच्चों को गली से हाथ पकड़कर खींच कर किनारे कर लेती थीं । और, महाराज मुंह से आशीर्वाद देते हुए, निगाहों से देखते जाते कि किसकी लड़की जवान हो गई है और कौन लड़की ससुराल से वापस आ गई है । जमींदारी टूटने के बाद अब किसी बाँभन-ठाकुर को वैसा "गार्ड आफ आनर" नहीं दिया जाता । बल्कि बाँभनों ने इस स्थिति से बचने के लिए उधर से निकलना ही बन्द कर दिया है ।

पहले से समय काफी बदला है पर बात नहीं बदली है । तब जमींदार था, अब सरकारी आदमी हैं । जब गाँव में जबरदस्ती करके कोई मुर्गा ले

{175}- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल { पृष्ठ 74 }

रहा होता तब निश्चय ही गाँव में किसी हाकिम के आने की बात है । उनके आतिथ्य के लिए मुर्गे के अतिरिक्त चमरही की लड़कियों की भी दरकार होती है । लच्छन बाबू कहते हैं, मुर्गे का तो ठीक हो गया पर उसका क्या होगा ?" " - - - - - रमधन्ना की लड़की तो ससुराल चली गई । अब क्या करोगे ?"[176] शिवपाल गंज चूँकि शहर के पास और सड़क से लगा हुआ है अतः बड़े-बड़े नेता और अफसर वहाँ अक्सर आया करते हैं और खा-पीकर शिवपाल गंज के विकास के लिए 'लेक्चर झाड़कर' चले जाते हैं ।

यहाँ पर व्यक्तियों को उनके रूप-गुण के आधार पर नामकरण कर देने का रिवाज है — माँ-बाप द्वारा दिये गए नाम की आवश्यकता ही नहीं रहती । यहाँ लँगड़े को 'लंगड़', अंधे को 'सूरे', जिसके कान कुश्ती लड़ते समय टूट गए थे 'टुट्टे' कहते हैं । एक बुड्ढे को 'बहरे बाबा' तथा एक व्यक्ति जिसके मुँह पर चेचक का दाग है, 'छत्ता प्रसाद' कहा जाता है । वैद्य जी चूँकि गाँव के पढ़े लिखे और विशिष्ट व्यक्ति हैं वे काने को 'शुक्राचार्य' कहते हैं ।

शिवपाल गंज वालों को जिस तरह 'गंजहा' होने का अभिमान है, शहर के रिक्शेवाले को उससे कम कुछ अपने शहरी होने का नहीं है । बद्री पहलवान जिस रिक्शे पर बैठकर शहर से गाँव-शिवपाल गंज आ रहे हैं, उसे अभिमान है कि वह गोंडा, बहराइच जैसे छोटे-छोटे शहर के रिक्शेवालों को मुँह नहीं लगाता । वह बीड़ी नहीं, सिगरेट पीता है । वह बद्री पहलवान से कहता है, "पहलवानी तो अब दीहात में चलती है ठाकुर साहब । हमारे उधर तो छुरे बाजी का जोर है ।"[177]

रुप्पनाथ सनीचर को बताता है, शहर का चलन है कि जिसके हाथ में कोई ओहदा हो वह खुद व्यापार नहीं करता — भाई — भतीजे को लगा देता है । इस पर ग्राम-सभा का वर्तमान प्रधान सनीचर वस्तुस्थिति स्पष्ट करता हुआ कहता है कि वास्तविक प्रधान तो वैद जी हैं और यह दुकान भी उन्हीं की है "मैं बैठ रहा हूँ । समझ लो मैं उनका शिकमी हूँ ।"[178] बात यह है कि ग्राम प्रधान चुने जाने के बाद सनीचर ने परचून की दुकान खोल ली है जिस पर पान-बीड़ी, आटा-चावल, दाल, मसाला, आदि खुले आम बिकता है । उनको अंग्रेजी

(176)- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल (पृष्ठ 338)
(177-178)- राग दरबारी : श्री लाल शुक्ल (पृष्ठ

दवाइयाँ जो चोरी से स्थानीय अस्पताल के स्टोर से दुकान पर आती हैं, अमरीकी दूध के डब्बे जो स्थानीय प्राइमरी स्कूल से आपूर्त होते हैं, वहाँ खुले आम बिकते हैं । कुछ चीजें जैसे गांजा, भांग, चरस छिपा कर खरीदी और छिपा कर बेची जाती हैं । सनीचर की दुकान पर सरकारी नियंत्रण वाली शक्कर अब मिलने लगी है -- लगता है सरकारी मान्यता भी मिल गई है । यह सब "वैद जी" के प्रभाव का परिणाम है ।

सनीचर से पहले रामाधीन भीखमखेड़वी, जो शिवपाल गंज से लगे भीखमखेड़ा गाँव के रहने वाले थे, के चचेरे भाई पंचायत के सभापति थे -- यह वह समय था जबकि वह बिना चुनाव लड़े सभापति हो गए थे । यह बात अलग है कि गाँव सभा की जमीन का पट्टा देने का अधिकार रामाधीन को रहा है और उसका चचेरा भाई, अगर जरूरत पड़े तो जेल जाने के लिए । रामाधीन शायर हैं, अफीम की डिबिया पर उन्होंने लिखा 'कलूटी लड़कियाँ हर शाम मुझको छेड़ जाती हैं' और बद्री पहलवान के पड़ोस के गाँव में आटा चक्की लगवाने पर लिखा --

'क्या करिश्मा है ऐ रामाधीन भीखम खेड़वी
खोलने कालिज चले आटे की चक्की खुल गई ।'[179]

शिवपालगंज से लगभग पाँच मील की दूरी पर एक जंगल है, वहाँ एक टीले पर एक देवी का मन्दिर है, वहीं मेला लगता है । मेले में जाती हुई झुंड की झुंड वहाँ की औरतें बिना घूंघट के निःशंक, निश्चिन्त भाव से गीत गाते हुए चली जा रही होती हैं -- औरतों के आगे-पीछे बच्चे और मर्द । बैलगाड़ियाँ अपने ढंग से रास्ता निकालती हुई चली जाती हैं । जाड़ा शुरू हो जाने पर भी किसी के शरीर पर ऊनी वस्त्र नहीं दीखता, हाँ कुछ बच्चे अवश्य फटे स्वेटर पहने हैं । औरतें रंगीन सस्ती रेशमी साड़ियों में, पर नंगे पाँव हैं। 'मर्दों की हालत -- हिन्दुस्तानी छैला, आधा उजला आधा मैला' ।[180]

कुछ लोगों के लिए तो मेले की भीड़ उनके मनमानी हरकतों के लिए उचित वातावरण प्रस्तुत करती है । अब सनीचर को ही लीजिए । मेले में वह अनेकों युवकों की बातें-बातें देखता हुआ कभी किसी औरत के कंधे पर प्रेम से हाथ

[179-180]- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल [पृष्ठ 60, 142]

रख कर उनकी 'छातियों के आकार-प्रकार का हाल चाल' लेता हुआ मेले में चला जा रहा है । यह सब उसकी निगाह में 'बदतमीजी' नहीं है, 'मेला' है । उसके अनुसार देहाती मेले में यही 'हेरा-फेरी' का चमत्कार ही तो विशेष उपलब्धि है ।

मेले में "निस्पिट्टर साहब" (इन्सपेक्टर साहब) और खोंचे वाले में प्रति खोंचे दो रुपया और दस रुपये के बीच कमीशन का मोल-भाव चल रहा है। कुछ 'बुच्चे गंजहे' मिठाई की दुकान या देशी शराब की दुकान पर हो-हल्ला मचा रहे हैं ।

इस मेले में वेश्यायें भी आई हैं जो 'रोहूपुर' गई थी, अब 'बैजे गाँव' जा रही हैं । उनके साथ का आदमी रंगनाथ को बताता है " - - - सिर्फ गाती भर हैं । गुनी जनों के बीच रही है । पेशा नहीं करती ।"[181] पर सनीचर बताता है 'इलाके की सबसे गड़ियल पतुरिया है ।'[182]

जिसकी लाठी उसकी भैंस - इस गाँव को संचालित करने वाला मूल मंत्र है । कालिज के प्रबंध-समिति के मैनेजरी के चुनाव में ठाकुर बलराम सिंह पर विपक्ष दल का मोर्चा सँभालने का भार है । वे 'असली विलायती' 'छः गोली वाली' लेकर आये हैं । वैद्य जी के आदमी जोगनाथ को चोरी के इलज़ाम में पकड़ लेने के कारण दारोगा को शिवपालगंज छोड़ना पड़ जाता है - स्थानान्तरण हो जाता है । वैद्य जी की बड़ी पहुँच है ।

बद्री पहलवान पड़ोस के जिले में एक नौजवान की जमानत लेने जाते हैं । जिस पर बलात्कार और मार-पीट का मुकद्दमा चल रहा है क्योंकि वह व्यक्ति बद्री पहलवान के अखाड़े का चेला है और 'पालक बालक' की जमानत लेना धर्म है । यों बकौल बद्री पहलवान के "गुण्डे इजलासों के नीचे ही नहीं ऊपर भी हैं ।"[183]

शिवपालगंज भले ही गाँव है, पर इसके यह अर्थ नहीं कि वहाँ कोई प्रेम-पत्र नहीं लिखता । सनीचर द्वारा लिखा गया एक प्रेम-पत्र बेला के पिता

---

[181]- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल । पृष्ठ 165 ।
[182]- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल । पृष्ठ 165 ।
[183]- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल । पृष्ठ 308 ।

मवादीन ने पकड़ा जो बेला को लिखा गया था । वह गाँव ही क्या जहाँ अफवाह जंगल की आग की तरह न फैले । एक खबर रही कि खन्ना मास्टर के दल के किसी लड़के ने बेला को एक प्रेम पत्र लिखा है और उसमें झूठ-मूठ रूप्पन का नाम जोड़ दिया है । दूसरी खबर यह कि बेला ने रूप्पन को एक प्रेम-पत्र लिखा था, जिसका जवाब रूप्पन ने भेजा है । पर सर्वाधिक प्रचलित खबर यह रही कि 'बेला एक बदचलन लड़की है'[184] । इसी प्रकार कालिज में भी कभी-कभी प्रेमपत्र और उसको लिखने वाला लड़का दोनों पकड़े जाते हैं । पर यदि प्रेम-पत्र लिखने वाले का बाप कालेज के नये ब्लाक बनने के लिए पच्चीस हजार ईंटें देने का वादा कर लेता है तो लड़के को कालेज में पुनः प्रवेश मिल जाता है ।

गाँव में चोरी-चमारी के हल्ले में लोग अपनी पुरानी अदावत को बदला ले लेते हैं । जैसे रात में चोर-चोर के हल्ले में छोटे पहलवान ने भगौती को चोर की आड़ में एक डंडा जड़ दिया । क्योंकि 'भगौती और छोटे की चल रही थी ।'[185]

इस गाँव में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो सामान्य लोगों की श्रेणी से कुछ हट कर हैं जैसे पंडित राधेलाल । उनकी प्रतिष्ठा 'कभी न उखड़ने वाले गवाह के रूप में' है और यही उसकी जीविका का साधन भी है । कुछ परिवार ऐसे हैं जहाँ बाप बेटे में जब तक मार-पीट न हो तब तक उनका खाना नहीं पचता । छोटे पहलवान और उनके बाप वर्तमान समय में अपनी इस खानदानी परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं । कुसहर प्रसाद तो अपने बाप की अर्थी तक नहीं निकलने दे रहे थे, कहते थे कि घाट तक घसीट कर ले जायेंगे। छोटे पहलवान के परदादा पहले अपने बाप से 'टुर्र-पुर्र' कर लेते थे तब मुँह में पानी डालते थे । बिना 'टुर्र-पुर्र' किये उनका पेट गड़गड़ाया करता था । कुछ परिवार में, औरतों में लगभग प्रति शाम से रात तक 'काँव-काँव' होता रहता है जिसे कि 'गंजहों' की बोली में "कुकरहाव" कहते हैं ।

मास्टर मोतीराम, यहाँ, शहर के समाचार-पत्र के संवाददाता हैं । वे गाँव की साधारण चोरी को अखबार में 'डाके' के रूप में प्रकाशित

---

[184]- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल [पृष्ठ 212]
[185]- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल [पृष्ठ 110]

करते हैं वही उनकी विशिष्टता है ।

शहर में जो स्थान चायघर, कमेटीरूम, पुस्तकालय या विधान-सभा का है वही शिवपालगंज में सड़क के किनारे बनी हुई पुलिया का है । लोग वहाँ बैठते हैं और 'गप लड़ाते' हैं ।

भेड़ चाल गाँव का एक विशेष चरित्र है । रंगनाथ काँसों के जंगल से होकर गुजर रहा था तो पगडंडी पर झुलते हुए काँसों की फुनगियों को पकड़ कर उसने गाँठे लगा दीं । किसी के पूछने पर उसने यों ही कह दिया कि इस गाँठ को लगाने से हनुमान जी प्रसन्न होते हैं । उस आदमी ने भी काँसों में गाँठे लगा लगा कर जय हनुमान जी कहना प्रारम्भ कर दिया । फिर तो पीछे आती औरत भी काँसों में गाँठे लगाकर जय बजरंग बली उचारने लगी । और फिर जब रंगनाथ थोड़ी देर बाद फिर उस रास्ते से वापस लौटता है तो वह सुनता है कि हनुमान जी ने किसी को सपना दिया था उन्हीं की आज्ञा से लोग वहाँ गाँठे बाँधने लगे हैं । और सारी काँसों में गाँठे ही गाँठे पड़ी हुई हैं ।

इस गाँव की अपनी सामाजिक मान्यतायें है । पड़ोस के गाँव का हरीराम गुंडा जब खून के मुकदमें में बाइज्जत बरी होकर आता है तो वह पूरे इलाके के 'बाइज्जत समझे जाने वाले' —'यानी स्त्रियों अछूतों और मुसलमानों को छोड़कर' सारे लोगों को दावत देता है । जोगनाथ जब जेल से छूट कर आता है तब वह अपने मेली-मुलाकातियों को एक-एक कुक्कड़ पिलाता है ।

शिवपालगंज में शराबखाने से लगभग सौ गज आगे एक पीपल का पेड़ है जिस पर शिवपालगंज वाले के कथनानुसार, एक भूत रहता है । अतः गाँव वाले दिन डूबने के बाद उधर से नहीं निकलते हैं । क्योंकि उधर से निकलने वालों को वहाँ तरह तरह की आवाजें सुनाई पड़ी थीं और उन्हें बुखार आ गया था । इसलिए रामेलाल भूत बहुत अच्छा झाड़ते हैं । चूँकि झाड़े झाड़े पीपल के पास सन्नाटा रहता है इसलिए उसके आस-पास अक्सर रात्रि की वारदातें हो जाती हैं ।

वहाँ कभी-कभी मलेरिया विभाग वालों का दौरा होता है ।

तब गाँव की दीवारों पर गेरू से वे अपने उद्देश्य और नारे लिख जाते हैं जिसे गाँव वाले 'मलेरिया महारानी की इस्तुति' कहते हैं । साथ ही साथ कुछ एक मशीन लेकर गाँव के कुँआ-ताल, गड्ढा-गड्ढी सभी पर "फिर्र-फिर्र" करते हुए घूमते रहते हैं । किसी-किसी का खून निकाल कर मशीन में डाल कर जाँच भी करते हैं । शहर से कोआपरेटिव डेरी वाला ट्रक दूध इकट्ठा करने के लिए रोज़ सबेरे यहाँ आता है । यहाँ के तेली शहर से मशीन का पेरा सरसों का तेल लाकर उसे "कोल्हू का पेरा शुद्ध सरसों का तेल कह कर गाँव में बेचते हैं ।

गाँव की आबादी जहाँ खतम होती है वहाँ सड़क के दोनों किनारों पर बच्चे बैठ कर पाखाना कर रहे होते हैं । उनसे कुछ दूर प्रौढ़ महिलायें भी 'उसी मतलब' से सड़क के के दोनों किनारे बैठी होती हैं जो अचानक किसी के आने-जाने के आ जाने पर खड़ी हो जाती हैं और उनके चले जाने पर फिर बैठ जाती हैं ।

कभी-कभार गाँव के किनारे जंगल में कुछ बंजारे आकर बस जाते हैं । वे कच्ची शराब बनाते और सस्ते दामों पर बेचते हैं । उनकी "श्याम और सलोनी" लड़कियों के पीछे गाँव के नवजवान अपनी खेती-काम छोड़कर 'भँड़ा बन' उनकी झोपड़ियों के पास बने रहते हैं । और, तब पुलिस लड़कियों और शराब पर आपत्ति उठाती हुई बंजारों को इलाके से बाहर खदेड़ देती है।

कभी फटी हुई तहमद 'काला चीकट दार" कुर्ता' पहने कोई डुगडुगी बजाता हुआ बन्दर बन्दरियों को लेकर चलता जाता है और पीछे पीछे गाँव के लड़के शोर मचाते चलते हैं, उनके पीछे भूँकते हुए कुत्ते - - - -।

शहर गाँव से बिलकुल अलग है और शहर का सिविल-लाइन्स क्षेत्र तो शहर का विशिष्टतम हिस्सा । यहाँ विद्यालय निरीक्षक का 'आफिस कम रेजिडेन्स' है {जिसे लेखक आफिस कम रेजिडेन्स अधिक के अर्थ में लेता है} । शहर के इस और सड़क पर आमदरफ्त कम है । कभी कोई 'चमचमाती खड़खड़ कार धूल से निकल जाती है ।'[186] तो कभी कोई खड़खड़ा प्राइवेट कार । शाम के समय "चौथे दर्जे के सरकारी अफसर' ऊँचे अफसरों के बच्चों को साइकिल पर लादे चले जा रहे होते हैं ।

{186}- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल {पृष्ठ 315 }

शहर में दो तरह के बाजार हैं 'एक काले या नेटिव लोगों का और दूसरा गोराशाही बाजार'[187]। यह दूसरे तरह का बाज़ार है -- यहाँ अंग्रेजी सिनेमाघर, शराबखाने, होटल और चमकदार दुकाने हैं। चारो ओर 'अंग्रेजी की बहार' है -- अंग्रेजी में विज्ञापन, अंग्रेजी में ही दुकानों के नाम। 'गन्दे कालर वाले क्लर्क, लक दक कपड़ों वाली व्यापारियों की औलादें, आवारा जैसे घूमने वाले बहुत से राजनैतिक कबाड़ी, छके-छकाये अफ़सर' सभी अंग्रेजी बोल रहे हैं। 'पाप म्यूजिक' के रेकार्ड बज रहे हैं। 'कुछ छोकरे हाथ पाँव उल-जलूल ढंग से चला चला' कर मस्त हुए जा रहे हैं। कुछ लड़कियाँ झबरे बालों, चूड़ीदार पायजामों और तंग कुरतों में लैस अंग्रेजी में बातें करती चली जा रही होती है।

शहर की तुलना में गाँव का आम आदमी बेचारा है, मजबूर है। शिव-पालगंज के गयादीन का अनुभव प्रमाण है -- "गाँव में मजबूरी नहीं तो और क्या मिलेगा रंगनाथ बाबू - - - - - शहर में हर बात का जवाब होता है। मान लो कोई आदमी मोटर से कुचल जाय, तो कुचला हुआ आदमी अस्पताल पहुँच जायगा। अस्पताल में डाक्टर बदमाशी करे तो उसकी शिकायत हो जायगी। शिकायत सुनने वाला चुप बैठा रहे तो दस-पाँच लफंगे मिल कर जुलूस निकाल देंगे। उस पर कोई लाठी चला दे तो लोग जाँच बैठलवा देंगे। तो वहाँ हर बात की काट आसानी से निकल आती है। इस लिए वहाँ मजबूरी की मार नहीं जान पड़ती। अगर मजबूरी हो जाय - - - - - आसानी से वह फाँसी लगाकर मर जाता है और दूसरे दिन उसका नाम अखबार में छप जाता है। लोग जान जाते हैं कि वह मजबूरी से मरा था। फिर कुछ दिनों अखबार में मजबूरी की बात चलती रहती है। और समझ लो यह भी मजबूरी की एक काट है।'[188] - - - - -' और गाँव में कोई मोटर से कुचल जाय तो मोटर वाला रफूचक्कर हो जायगा। कुचला हुआ आदमी कुत्ते की तरह पड़ा रहेगा। अगर कहीं अस्पताल हुआ तो दो चार दिन में मरते मरते वहाँ पहुँच जायगा। अस्पताल में अगर कोई डाक्टर हुआ भी तो पानी की बोतल पकड़ा कर कहेगा कि लो भाई, राम का नाम लेकर पी जाओ। राम का नाम तो लेंगे ही क्योंकि उनके पास देने के लिए दवा ही नहीं होगी। होगी भी तो चुरा कर बेचने के लिए रख ली गई होगी। तभी तो कहा शहर में हर दिक्कत के आगे कोई राह है और देहात में हर राह के आगे एक दिक्कत है।"[189]

।187।- राग दरबारी : श्री लाल शुक्ल । पृष्ठ 318 ।
।188-189।- राग दरबारी : श्री लाल शुक्ल । पृष्ठ 382, 383 ।

प्रस्तुत कथाकृति व्यंग्यात्मक शैली में जिस गाँव का चित्र प्रस्तुत करती है वहाँ व्यक्ति सत्ता गाँव के समाज, राजनीति और अर्थ व्यवस्था को अनुशासित कर रही है। सामान्य व्यक्ति वर्तमान परिस्थिति और इस व्यवस्था को स्वीकारने के लिए मजबूर है वह चाहे विद्यालय के प्रिंसिपल साहब ही क्यों न हों। उनके लिए 'तुम कहो तो हाँ भैया बहुत ठीक' और वैद्य जी कुछ कहें 'तो हाँ महाराज बहुत ठीक'।'[190] उन्हें चार-चार बहनों की शादी करनी है। पास एक कौड़ी भी नहीं है। अगर वैद्य जी कालिज से निकाल दें तो माँगे भीख तक न मिलेगी। और जो इस व्यवस्था के विरुद्ध न्याय का पक्षधर होने की सोचता है वह या तो उखाड़ दिया जाता है या उखड़ जाता है — भले ही वह वैद्य जी का पुत्र रुप्पन बाबू क्यों न हों। इस प्रमुख चित्र के साथ-साथ गाँव के सामान्य जन-जीवन का भी विस्तार से चित्रण हुआ है जिसमें गाँव का मेला है, चमरौटी का समाज है, औरतें हैं, झगड़ा है, पार्टीबन्दी है, मार-पीट है, बस अड्डा और गाँव के तालाब तथा मेले के दृश्य हैं - - - - - - - अफवाहें हैं - - - - - - और शहर का रंगनाथ उनका एकमात्र |तटस्थ| प्रेक्षक है। शहर का अति संक्षिप्त चित्र है जो गाँव के और शहर के जीवन के वैभिन्न्य को खोल कर रख देता है और इन दोनों के दो रुप को निर्ममता के साथ स्पष्ट करता है गयादीन का कथन।

<u>उत्तर कथा | प्रथम खण्ड - 1979 ई0 |</u>

प्रस्तुत कथाकृति 'उत्तरकथा में लेखक ने मालवा मुख्यतः उज्जैन के 'व्यक्ति और समाज' का लगभग पचास वर्षों का | सन 1900 से 1947 - 48 तक का | एक विशद चित्र प्रस्तुत किया है।

विन्ध्याचल के नीचे का प्रदेश मालव - प्रदेश है — 'वटवृक्षों की अतीव गंभीरता, पीपलों का वासुदेवत्व, नीचे बबूलों की वानस्पतिकता कुपथा मकरायों की संक्षेपी कौटुम्बिकता, पीले घासों वाले कुंज चरागाह, विभिन्न-वर्णी कमल, झीलें और कम पानी वाली नदियाँ वाले'[191] इसकी भौगोलिक रुपरेखायें हैं। जलवायु इसकी सामान्यतया समशीतोष्ण है और उपज है - गेहूँ,

|190|- राग दरबारी : श्री लाल शुक्ल | पृष्ठ 249 |
|191|- उत्तर कथा |प्रथम खण्ड| नरेश मेहता | पृष्ठ 26 |

दाल, बाजरा, मक्का, जुआर और कपास । चौमासे में 'धाराधार बरसते मेघ'[192] से रास्ता कई दिनों तक डूबे रहते कि गाड़ियों, पालकियों, घोड़ों, मुनियों साधुओं की यात्रायें रुक जातीं । पर मालवी किशोर हैं कि गाते रहते-

'पानी बाबा आओ रे - - - - -'
'मेघ राजा पानी दे
इन्दर राजा पानी दे ।।'[193]

कालिदास और विक्रम, भोज और बाणभट्ट की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक सम्पदाओं की पीठ मालवा इधर 'निरक्षर ब्राह्मणों, दुब्बुंजिये महाजनों दकियानूस तथा विलासी ठाकुरों तथा यायावर गूजर - बंजारों एवं बनवासी भील-भिलालों'[194] का स्थान रह गया था । यहाँ 'सरस्वती ही शेष रह गयी और न लक्ष्मी'। इस भूमि की दुर्गा तो मध्ययुग में ही तिरोहित हो चुकी थी ।'[195]

आज के { सन् 1900 ई0 } मालवा के देहातों में एक सामन{हल} के अधिकांश किसान थे और शहर में कुंकुम-मेंहदी, परचूनी, गंधी आदि की दुकानें थीं । नौकरी कम थी । ब्राह्मणों के पास सिवाय पूजा-पाठ, यजमानी और सत्यनारायण की कथा बाँचने के अलावा कोई काम न था । सम्पन्न ब्राह्मण परिवार गिनती के थे । फिर भी मालवा के सामान्य ब्राह्मणों की विशेष अवसरों पर पहने जाने वाली वेश-भूषा पारम्परिक ही है — स्याला, सोला-मुकुटा, कड़ाऊ तथा ऊपर से जरीकिनार वाला सारंग पुरी दुपट्टा । श्री रमण आचार्य इसी वेशभूषा में पं0 महादेव शुक्ल के पुत्र से अपनी कन्या का सम्बन्ध स्थिर करने के लिए जाते हैं ।

महादेव शुक्ल उज्जैन के सम्पन्न ब्राह्मण हैं । उनके पुत्र त्र्यम्बक शुक्ल का विवाह है । बारात पास के गाँव में जा रही है — पर नितान्त आवश्यक लोगों के साथ और अपरिहार्य आवश्यक कर्मकाण्ड का ही पालन किया जा रहा है क्योंकि उज्जैन तथा आस-पास के गाँव में भयानक हैजा फैला हुआ है । एक दमनी { छोटी बैलगाड़ी } पर छः बराती हैं । मालवा के

{192-193}- उत्तर कथा { प्रथम खण्ड } नरेश मेहता { पृष्ठ 26 }
{194-195}- उत्तर कथा { प्रथम खण्ड } नरेश मेहता { पृष्ठ 27 }

ब्राह्मणों के पारम्परिक वर-वेश 'बागा बख्तर' लाल मखमली कामदार जूतियों और कमर में गुलाबी उपवस्त्र बाँधे वर घोड़े पर चल रहा है। धूप से मर जाने पर भी हल्दी रंगा मुख और काजल आँजी आँखें स्पष्ट हैं। बराबात्रियों में नाई ने 'ग्यास' {पेट्रोमैक्स} पकड़ रखा है। गाड़ीवान के कंधे की बन्दूक बता रही है कि वह राजपूत है।

यदि उज्जैन तथा उसके आस-पास हैजा न फैला होता तो महादेव शुक्ल जैसे प्रतिष्ठित और सम्पन्न ब्राह्मण के पुत्र के विवाह में गिनती के पाँच जन न जाकर 'दसियों हाथी, पचासों ऊँट, घोड़े, बैण्डबाजा, गाड़ियाँ, ढमनियाँ, रामजनियाँ, पचीसों वर्दीधारी - - - - - क्या क्या नहीं होता।'[196]

यह बात अपनी जगह पर है कि त्र्यम्बक 'दुजवर' है और उसके विवाह में 'कैसा लेन-देन ?'[197] फिर भी मालवा के अन्य किसी ब्राह्मण की भाँति श्रीमती गोदावरी देवी आचार्या भी पाँच तोले की ठुस्सी, चार तोले की गलसरी, तीन तोले का मंगलसूत्र, लाकिट छह तोले की, हाथों में गोखरू, चूड़ियाँ और कंगन दस तोले के, कानों के झुमके, बुन्दे और बालियाँ, नाक के लिए हीरे की कील और सच्चे मोती का 'उत्तम-मध्यम'[198] नथ - इतना तो अपनी बेटी दुर्गा को विवाह में देना ही चाहती हैं।

इधर उज्जैन में क्षिप्रा के पुल की बाँधी और हैजे की विभीषिका की मवाह, चितायें जल रही हैं। भीड़ है पर शब्दहीन। मुहल्ले, गलियाँ, तेरियाँ सब पर 'भयग्रस्त निर्ममता'[199] व्याप्त है। यद्यपि पटनी बाजार, मगरमुँहा, कार्तिक चौक, सिंहपुरी की तरफ स्थिति ठीक हो चली है तो भी पटनी बाजार मोहल्ला वीरान पड़ा है। रोवे की बैठने वाली मालिन भी नहीं है, बोटी, बिजली वालों की दुकानों के पटरों पर खड़े कुछ बच्चे और लोग भय तथा उत्सुकता से शुक्ल जी के घर लौटी बारात देख रहे हैं। शुक्ल जी के घर लकड़ी के चौखट में सिन्दूर रंजित गणपति की मूर्ति तथा श्री गणेशाय नमः लिखे द्वार पर केवल आम के पत्तों की बन्दनवार है, नीचे जलती काली सिर

{196}- उत्तर कथा {प्रथम खण्ड} नरेश मेहता {पृष्ठ 56}
{197}- उत्तर कथा {प्रथम खण्ड} नरेश मेहता {पृष्ठ 33}
{198}- उत्तर कथा {प्रथम खण्ड} नरेश मेहता {पृष्ठ 40}
{199}- उत्तर कथा {प्रथम खण्ड} नरेश मेहता {पृष्ठ 64}

पर लिये बहन रास्ता रोकने की रस्म के लिए खड़ी है । और, गीत गाती स्त्रियां हैं । केवल रस्म पूरी की जा रही है ।

यदि सब ठीक ठाक होता तो परम्परानुसार त्रयम्बक एक महीने पहले से "बाने" बैठता । फिर इस - उस यजमान के घर, बुआ - मासी के घर 'बाना झेला'[200] जाता । झालानी सेठ की जेवरों से लदी घोड़ी पर रोज रंग बिरंगे मलमल के कुरते पहन कर त्रयम्बक उज्जैन की सड़क पर निकलता तो लोग याद करते । पर न हल्दी चढ़ी, न मण्डप लगा, न देवास महाराज का बैण्ड आया, न पुलिस लाइन का मशक बाजा बजा और न जयपुर की नाचने वालियां ही आई । किसी दिन भी बाजे-गाजे के साथ चार जनी मिल कर आस-पास पड़ोस में तेड़ा {बुलावा} देने न गई, न रात में, चार जनी मिल कर "बनड़ा" {विवाह गीत} गा पाई । उज्जैन में सामान्यतया पारम्परिक रूप से विवाह के 'काज करियावर' इसी तरह सम्पन्न होते हैं ।

काज करियावर {कार्य व्यापार} पर ही स्त्रियों को अपने गहने - कपड़े दिखाने का सुयोग बनता है । सुनार से 'नई डिजाइन'[201] के गहने बन-वायें जाते हैं, बहू के लिए बनारसी, बंगलौरी के अलावा रोज पहनने की मिल की अच्छी धोतियां लेनी होती हैं। वर को बदलने के लिए "कैलीको" की धोतियां चाहिए । 'कुवांसियों' {ब्याह में आने वाली बहन - बेटियों} के लिए 'वायल, एकलाई और केले की रेशमी साड़ियां'[202] चाहिए ही । नाइन, पानी वाली, मालिन, मेहतरानी आदि के लिए भी छापेवाली धोतियां चाहिए । वर को जो नाई उबटन लगाएगा वह वर की उतारी धोती तो लेगा ही । - - -सुकाल होता तो सब होता ।

उज्जैन का "घर" समाज दो वर्गों में बँटा हुआ है — सास वर्ग और बहू वर्ग । जिन सासों की बहुयें कुएं में छलांग लगा कर या 'घासलेट डार कर' आग लगा लेतीं - उन सासों की अपने समाज में धाक बंध जाती । अपनी पहली बहू, त्रयम्बक की पहली पत्नी को धक्का देकर कुएं में गिरा कर मार डालने के कारण श्रीमती कृष्णा देवी शुक्ल की सासों के समाज में "होनहार सास"[203] में गिनती होने लगी है । होने को तो श्रीमती कृष्णा देवी की सास भी उन सासों

{200}-{201}- उत्तर कथा {प्रथम खण्ड} नरेश मेहता { पृष्ठ 67 }
{202}- उत्तर कथा { प्रथम खण्ड } नरेश मेहता { पृष्ठ 67 }
{203}- उत्तर कथा { प्रथम खण्ड } नरेश मेहता {पृष्ठ 74 }

में थीं जो बहू की हथेली पर अपनी चारपाई के पाये रखवा कर बैठने में विश्वास करती थीं लेकिन 'जब अपना ही दूध पानी निकल जाय तो परायी लड़की को कब तक कोसा जाय ?'[204]

उज्जैन के ब्राह्मणों विशेषकर पंडों के घर रोज का नियम था कि दोपहर के बाद रसोई पानी के लिए चूल्हा जलाया जाता। लगभग रोज एक न एक यजमान या जाति का कोई न कोई भोज होता। अतः गृहस्थी में सासों के पास कोई काम न होता था। पुरुष वर्ग ट्रेन और मोटरों पर यजमानों की खोज में निकल जाते, बहुएँ झाड़ू-बुहारु, बर्तन-कपड़ों की सफाई तथा बच्चों की देख-रेख में लगी होतीं, सासें या तो छोटा-मोटा सीना-पिरोना अथवा समाई की बत्तियों के लिए रुई लेकर अपने या पड़ोस के 'ओटले' [चबूतरे] पर बैठ जातीं। फिर चार जनियाँ मिल कर बहुओं की निन्दा और बेटियों पर उनके ससुराल में होने वाले कष्टों की चर्चा में लग जातीं। बहुओं के हिस्से में था घर का सारा काम – गेंहू पीसना, दाल दलना, पापड़ बेलना, घर का सारा काम, आधी रात के पहले सोने का प्रश्न ही नहीं था। हाँ, शैय्या त्याग प्रातः चार बजे अवश्य और हर हालत में करना होता था। इस पर कहीं पति पत्नी से हमदर्दी रखे [चाहे बीमारी आदि में ही] तो इस 'नखरे'[205] की सजा भी बहू को उठानी पड़ती — मार खानी पड़ती। दुर्गा भी, चूंकि बहू है, अतः इन सब अनुभवों से गुजरना उसकी नियति है। यदि बहू को 3-4 वर्ष बच्चा न हो तो पुत्र के दूसरे विवाह के विषय में सोचना सासें शुरु कर देती हैं। दुर्गा की बुआ की लड़की वसुन्धरा के विवाह के पाँच वर्ष होने पर भी बच्चा नहीं हुआ तो उसकी सास अपने पुत्र का दूसरा विवाह करने की सोच रही है।

अभी मालवा में [उज्जैन में] सभी परम्पराओं का पालन हो रहा है—स्त्रियाँ 'अबोटा' [रसोई का वस्त्र] पहन कर खाना बनाती हैं और पुरुष 'सोला-मुकटा' [रेशमी वस्त्र] पहन कर खाना खाते हैं। मालवा के गाँवों में श्राद्ध पक्ष के बाद पूजा आने की तैयारी में दीवारों पर गोबर से 'साँझी' बनाई जाती है। 'कोट, किला, नगर, कौंच, फाटा' बनाए जाते हैं। पालकी पर बैठे शिव गौरी पूजने के वास्ते। नवरात्रि में 'जवारे' [यवांकुर] जलाशय में प्रवाहित किए जाते। आकाशदीप, नदी में दीपदान, मिट्टी के कलशों में रखे

[204]- उत्तरकथा [प्रथम खण्ड] : नरेश मेहता [पृष्ठ 74]
[205]- उत्तरकथा [प्रथम खण्ड] : नरेश मेहता [पृष्ठ 111]

दीप और सखियों के साथ गाते गीतों के समवेत स्वर एक मनोरम औत्सविक वातावरण की सृष्टि करते हैं ।

मालवा में तब न उद्योग धंधे थे न विशेष, नौकरियाँ । उद्योग धंधे, मंडियों और राज्याश्रयों के अभाव में कुटीर उद्योग धंधों के रूप में बड़ी मुश्किल से जी रहे थे । चूँकि मालवा और नीमाड़ की पट्टी में कपास होता था इसलिए 'सर' सेठ हुकुमचन्द जैसे दो चार मारवाड़ी उद्योगपतियों ने 'मालवा मिल' 'विनोद मिल' आदि नामों से कुछ मिलें खोल ली हैं । एक ट्रेन मीटर गेज की, 'बाम्बे ऐण्ड सेन्ट्रल रेलवे' तथा एक ट्रेन ब्राड गेज की 'ग्रेट इण्डिया पेनिनसुला' मालवा में चलने लगी है । एक नेशनल हाइ-वे 'बाम्बे आगरा रोड' नाम से मालवा में होकर जाती है । रेलें सार्वजनिक उपयोग के लिए हैं — यह मालवी जन की कल्पना में नहीं था । ट्रेन जब धड़धड़ाती, बैल-गाड़ी के पास से गुजरती तो मालवी जन की 'आँखें फटी की फटी रह जा-ती' ।[206]- भला इनमें कौन बैठता होगा ? 'नदियाँ थीं पर पुल नहीं थे — — — लोग थे पर काम नहीं था । विद्यार्थी थे पर विद्यालय नहीं थे । रीति-रिवाज थे, पर संस्कृति या चेतना नहीं थी ।'[207]

उज्जैन मालवे का दूसरा बड़ा शहर था । यहाँ शिक्षा के लिए हाई-स्कूल ही था जो अजमेर बोर्ड से सम्बध्द था । चूँकि इन्दौर में 'होल्कर कालेज' और 'क्रिश्चियन कालेज' बन चुके थे इसलिए उज्जैन में भी 'माधव कालेज' बनने की योजना बन रही थी — ग्वालियर राज्य के लिए यह प्रतिष्ठा का प्रश्न है । यहाँ का {उज्जैन का} उद्योग विकसित हो इसके लिए चुंगी के उस पार चुंगी फ्री एक मंडी स्थापित करने की योजना स्वरूप ले रही थी । यों तो उसका नाम 'माधवनगर' रखा गया है पर जनसाधारण में उसका नाम 'फ्री गंज' प्रचलित है । {अंग्रेजों के सम्पर्क से उत्पन्न} पाश्चात्य उच्च वर्ग या उच्च मध्य वर्ग मालवा में नहीं है । कुछ राजमंत्री, सरदार, श्रीमन्त तथा सेठ साहूकार के अलावा बाकी जन-सामान्य सिवाय वेश भूषा — कोट, पाजामा, कमीज और बाबदार टोपी[208] के, मानसिकता और रीति-रिवाज को लेकर अपने देहाती सम्बन्धियों से किसी भी अर्थ में भिन्न नहीं हैं।

{206}-{207}- उत्तरकथा {प्रथम खण्ड} : नरेश मेहता { पृष्ठ 263 }
{208}- उत्तरकथा {प्रथम खण्ड} : नरेश मेहता { पृष्ठ 264 }

इस शती के आरम्भ में कौड़ियों का स्थान पाइयों और पैसों ने ले लिया है । अशर्फियाँ और गिन्नियाँ प्रचलन से हट रही हैं । मलका विक्टोरिया तथा सप्तम एडवर्ड के कलदार चाँदी के, एक तोला वजन के, रुपये चलने लगे हैं । इन्दौर में अंग्रेजों का पी0ए0 [पोलिटिकल एजेन्ट] 'मालवा हाउस' में रहने लगा है ताकि मालवे के रियासतों पर नजर रख सके ।

चूँकि मालवा में दो बड़ी रियासतें हैं इसलिए इन्दौर के पास 'महू' में अंग्रेजों की एक छावनी है । वस्तुतः 'महू' एम0 एच0 ओ0 डब्ल्यू0 अर्थात 'मिलिटरी हेड क्वार्टर्स आफ वार' का संक्षिप्त रूप है । मालवा के दक्षिण, पश्चिम और पूर्व में अंग्रेजी भारत है जो अपेक्षाकृत आधुनिक है ।

उज्जैन - आगर नैरोगेज रेलवे लाइन का स्टेशन, सिग्नल केबिन और रेलवे क्वार्टर्स, उज्जैन के आस-पास के देहाती जन साधारण के लिए आश्चर्य और 'मनोरंजक धारणाओं'[209] के स्रोत बने हुए हैं । क्योंकि इधर आस-पास कोई पक्का मकान था ही नहीं ।

स्टेशन के पास फ्रीगंज में नयी मण्डी, बाजार और बस्ती बसाई जा रही है — घंटाघर, हाईस्कूल सभी कुछ । उज्जैन के चारों ओर 'जीनिंग फैक्ट्रियाँ' खड़ी हो गई हैं । उनके कारण लोगों को काम धंधा मिलने लगा है । वाटर वर्क्स के नल, बिजली के तार लग रहे हैं । दुकानों के पटरों पर 'गमछा पहने वैष्णवी तिलक, भस्मी के त्रिपुण्ड या देवी की लाल बिन्दी व मुँह में पान और आँखों में भांग का नशा जमाये' उज्जैनी[210] - - - इस परिवर्तन पर खीझते हुए या टीका टिप्पणी करते हुए क्या पंडित जी, क्या सेठ जी, क्या मुखिया क्या हलवाई सभी मिल जायेंगे'।[211]

उज्जैन बहुत तेजी से आधुनिक बन रहा है । नगर में तथा नगर के बाहर नये ढंग के मकान बन रहे हैं । बड़े स्टेशन से थोड़ा हट कर एक छोटा स्टेशन बन रहा है । उज्जैन से लगभग चार मील दूर पर ट्रेन का मेन स्टेशन या जंक्शन 'मकोड़िया ग्राम' में बन रहा है । कालेज बन जाने से वहाँ फ्रीगंज में किरायेदार लड़के भी काफी रहने लगे हैं । एक बनियों का हाई

[209]- उत्तर कथा [प्रथम खण्ड] : नरेश मेहता [पृष्ठ 264]
[210-211]-उत्तर कथा [प्रथम खण्ड] : नरेश मेहता [पृष्ठ 365]

स्कूल भी वहाँ खुल गया है । एक जैसे मकान, एक जैसे चौराहे, खुली सड़कें, पेड़ों की लम्बी लम्बी कतारें - सब नया नया और कितना अच्छा लगने लगा है । जनसंख्या तो अभी नहीं बढ़ी है इस मुहल्ले की लेकिन गुजराती, दक्षिणी सेठ, वकील, मास्टर-प्रोफेसर, लड़के तथा कुछ फैशनेबुल लोग यहाँ आकर रहने लगे हैं ।

इस नये रहन-सहन के समानान्तर उज्जैन के पुराने मुहल्लों में पुरानी परम्परा चल रही है । पंडित शिव शंकर आचार्य अपनी माँ की जाति भोज की इच्छा पूरी करने के लिए महाकाल में हिमाद्रि, रुद्रपाठ, संकल्प आदि करवाते हैं । सिद्धनाथ - भैरोगढ़ में सिद्धवट पर पूजा-पाठ हवन का सांगो पांग विधान करवाते हैं । धुड़साल में भोजन का प्रबन्ध होता है । जाति के लोग, ब्राह्मण, बटुक, ब्रह्मचारी, साधु-सन्त सभी भोजन में आमंत्रित होते हैं । स्त्रियाँ पूड़ी बेलती जाती हैं, गीत गाती जाती हैं । रंग-बिरंगे परिधानों से युक्त स्त्रियों की बात-चीत, खिलखिलाहट से उज्जैन का वह आरण्यक भाग जीवन्त हो उठता है ।

सोले - मुकुटे {रेशमी वस्त्र} तथा लोटे थैलियाँ लिए स्त्री पुरुष ; बटुक-ब्रह्मचारी, साधु-महात्मा कपड़े के जूते में या लकड़ी की चट्टियों में आवे हैं । उनके वेशों से स्पष्ट है कि वह किस सम्प्रदाय के या मठ के हैं । अधिकांश पीत या भगवाँ एक वस्त्र में है । सम्पन्न लोग तांगे से आये हैं और वृध्द तथा अति सम्भ्रान्त घर की महिलायें शिबिका में आयी हैं ।

उज्जैन में 'मुक्ता' {श्राध्द भोज} पूरी परम्परा निर्वाह के साथ होता है । 'सामान' {श्राध्द के अवसर पर दिये जाने वाले बर्तन आदि} जाति भोज सबका विधान होता है । पंडित महादेव शुक्ल अपनी विमाता की मृत्यु पर इन सभी पारम्परिक रीति-रिवाजों का पालन करते हैं । ब्राह्मण विधवा के लिए नियम संयम का विशेष विधान है । श्रीमती गायत्री देवी एकादशी व्रत, वार रविवार और बृहस्पतिवार को अलोना भोजन, कभी फलाहार, कभी उपवास आदि के पारम्परिक नियमों का पूरा पालन करती हैं ।

समाज में, कुल-कुटुम्ब में कहने वालों की कोई कमी नहीं है । अब

यही कि श्रीमती गायत्री देवी उपाध्याय आखिर रतलाम छोड़कर उज्जैन क्यों रहने लगीं ? यह हो सकता है पुत्र बसन्ती और बहू नहीं चाहते रहे हों कि वह यहाँ रहें - - या कि गोविन्द उनका क्या लगता है जो उसे साथ में रखे हुए हैं - - - - ।'आप चाहे जवाब दें या न दें लोगों के पास प्रश्न और उत्तर सदा तैयार रहते हैं ।'[212]

ब्राह्मण समाज में यज्ञोपवीत संस्कार विवाह से कुछ कम नहीं । मामा के घर से 'मामेरा' {मामा की ओर से दिये जाने वाले वस्त्रादि} आता है । मण्डप शामियाने सजाये जाते हैं । दुर्गा के बच्चों का यज्ञोपवीत संस्कार होता है तो गणपति मन्दिर के पास वाली खुली जगह पर मण्डप बनाया गया है । शामियाने का सारा सामान राज्य के तोषाखाने से आया है । उज्जैन के सबसे प्रसिद्द फूल बनाने वाले आलम मियाँ ने शामियाने में कागज के फूलों की अनुपम सज्जा की है । हण्डे वाले शमादान, झाड़फानूस देवास के महाराज के यहाँ से आये हैं और उनका ही राजकीय बैंड भी । जगह - जगह पर इत्रदान और गुलाब का प्रबंध है । सब जगह चाँदी के बड़े-बड़े तश्त में पानी, सुपारी, लौंग, इलायची और भोपाली गुटका रखा है । चबूतरे पर शहनाई, नफेरी या नगाड़े वाले बारी-बारी से कुछ न कुछ बजाते रहते हैं ।

ऐसे आयोजनों में तो स्त्रियों को अपने वस्त्र अलंकार के प्रदर्शन का अवसर मिलता है । यहाँ वे आयोजन में सम्मिलित होने के साथ-साथ प्रदर्शित होने के लिए उपस्थित हैं । कम उमर वाली बहुयें सास चर्चा 'जेठों का रसिया-पन, देवरों की ललचायी आँखों'[213] का वर्णन करते करते खिलखिला उठती हैं । सास और जिठानी वर्ग की स्त्रियाँ 'कब किसके कितने पूरे बच्चे हुए, अधूरे कितने हुए - - - - -'[214] पर बात करती करती जमाने को कोसने लगती हैं 'क्या जमाना आ गया कि बड़ों के सामने आजकल के ये लड़के बहुयें अपने बच्चों को गोदी में लेने लगे हैं । - - - - और क्या अब तो साथ सोना ही देखना बाकी रह गया है ।'[215] फिर छोटे भाई की विधवा को किस जेठ का गर्भ रह गया था तो कैसे जगन्नाथ जी की यात्रा में पार लगा आये । कौन अपनी विधवा बहन या लड़की को विधुर ससुर और बदमाश देवर के कारण ससुराल नहीं भेज

{212}-	उत्तर कथा	प्रथम खण्ड	: नरेश मेहता	{पृष्ठ 394}
{213}-	" "	" "	: " "	{पृष्ठ 413}
{214}-	" "	" "	: " "	{पृष्ठ 214}
{215}-	" "	" "	: " "	{पृष्ठ 215}

रहा है — इस पर बातें करने लगती हैं, और नहीं तो क्या स्त्रियाँ देश-मामलों की बात करेंगी ।

इधर काशी यात्रा के बाद बटुकों के सामने चाँदी की थालियाँ रखी जाती हैं । सम्बन्धी लोग आते हैं और टीका लगाकर रुपये अंगूठी आदि दे रहे हैं । बटुक लोग "भवति भिक्षां देहि" बोलकर भिक्षा ले रहे हैं । चाँदी की थालियों के पास दो सज्जन बैठकर बही में दाता का नाम और वस्तुएँ, रुपये लिखते जा रहे हैं । सारे विवाह उपनयनों का हिसाब-किताब इसी प्रकार रखने की प्रथा है क्योंकि आज जिससे लिया है कल उसके "आरपावर" में लौटाना होगा ।

सभी स्थानों की तरह यहाँ भी ज़मीन जायदाद को लेकर हत्या तक हो जाती है । महादेव शुक्ल की ज़मीन लच्छू चौबे खरीदना चाहते थे पर शुक्ल जी उसे बेचना नहीं चाहते थे । अतः लच्छू चौबे शुक्ल जी की हत्या कर देता है । हत्याकाण्ड से उज्जैन इतना आतंकित नहीं हुआ जितना कि लच्छू चौबे और विष्णु की फाँसी की खबर से उत्तेजित । भैरोगढ़ में उन दोनों को फाँसी लगने को थी, सारा का सारा उज्जैन पैदल, घोड़े पर, ताँगे पर भैरोगढ़ भागा जा रहा है ।

उज्जैन के सामान्य स्त्री समाज में टोने – टोटके का प्रचलन है । रूप मदन शुक्ल की भाभी श्रीमती गंगादेवी व्यास दुर्गा के लिए मारण अनुष्ठान करती हैं । अपने कमरे में वह खुले बाल बैठी हैं, सामने दीया जल रहा है । दीया और गंगा देवी के बीच में एक बेसन का पुतला रखा है जिसके चारों ओर काला सरसों और काले तिल पड़े हैं । गंगा देवी के गले में गुड़हल के फूल की माला है और पुतले पर भी गुड़हल के फूल पड़े हैं । उनकी दाहिनी ओर एक कण्डे में आग है जिस पर वह कुछ "बुदबुदाते" हुए गुग्गुल आदि डाल रही हैं । दुर्गा को देखो तो वह सोचती है – – – – तू डायन है ? मेरे बेटे को खा गई न ? – – –पर अब मेरी बारी है ; – – –यह तेरा पुतला है । – – – देख रही है पास में रखा यह छुरा – – – आज की रात – – – बस आज की रात ।"[216]

दुर्गा की पुत्रवधू – बूढ़ी की बच्ची को विवाह के चार-पाँच साल बाद तक बच्चा नहीं हुआ तो वह भी सोचती-कहती है कि सासु माँ ने कुछ

[216]- [illegible] | प्रथम खण्ड | : [illegible] | पृष्ठ 457 |

का करवा दिया है -- स्त्री समाज में यह सब सहज प्रचलित है ।

उज्जैन के अतिरिक्त प्रसंग वश आये अति संक्षिप्त चित्र कुछ आस-पास के गाँव के हैं । बड़ नगर में दुर्गा के मामा की लड़की के विवाह का चित्रण है जिसमें विवाह के अवसर पर भित्ति चित्र बनवाने का रिवाज है । पेशेवर चित्रकार बुलाये जाते हैं । वे हाथी गणपति के चित्र के अलावा 'राम जानकी, शिव पार्वती के विवाह के प्रसंग'[217] के चित्र दीवारों पर बनाते हैं ।

रतलाम मालवे का मानो पश्चिमी द्वार है । बम्बई, बड़ौदा जाने वाली रेलें यहाँ होकर निकलती हैं और अजमेर, खण्डवा जाने वाली भी रेलें । रतलाम की बाहरी सीमा में रेलवे वर्कशाप, छोटे-मोटे उद्योग, जीन फैक्ट्रियाँ आदि हैं जो मालवी लोगों के लिए आश्चर्य का विषय हैं । वहाँ के जन सामान्य का रहन-सहन सामान्य मालवी जनों जैसा ही है । पर कामदार साहब पंडित मनोहर लाल उपाध्याय ठाकुर जमींदार के सम्पर्क में रहने के कारण वेश-भूषा, रहन-सहन और आचरण में भी वैसे ही हैं । 'नीची सफेद कलमों, क्लीनशेव तथा गरम एडवर्ड कोट पैन्ट तथा इटालियन गोल टोपी में उनका व्यक्तित्व बहुत रोबीला लगता था'[218], उनके एडवर्ड कोट में घड़ी की झूलती हुई सोने की चेन प्रभाव उत्पन्न करती है । शहर के बाहर एक कोठी में ऊपर के तल्ले में उनकी पत्नी गायत्री और परिवार रहता है । नीचे तल्ला कामदार साहब का अपना है जिसमें रात के दो बजे तक मजलिसें, मुजरा, शराब-कबाब सभी चलता है । उनकी कमला नाम की एक वेश्या रखैल भी है जिसके रहने-सहने के लिए उन्होंने अलग प्रबंध कर रखा है ।

इस प्रकार एक शुक्ल परिवार को केन्द्र में रखकर कथाकार ने मालवा प्रदेश का प्रतिनिधित्व करने वाली उज्जैन नगरी को अपनी कथा भूमि बनाकर उज्जैन के जन जीवन का चित्रण किया है ।

।217।- उत्तर कथा । प्रथम खण्ड । नरेश मेहता । पृष्ठ 150 ।
।218।- उत्तर कथा । प्रथम खण्ड । नरेश मेहता । पृष्ठ 159 ।

उत्तर कथा { द्वितीय खण्ड 1982 ई० }

प्रथम खण्ड में चित्रित सन् 1900 ई० से 1930 ई० तक के पुराने मालवा का जन जीवन आधुनिक, सामाजिक, राजनीतिक वातावरण के परिप्रेक्ष्य में इस द्वितीय खण्ड में प्रस्तुत किया जा रहा है जिसकी काल अवधि 1930 से 1947-48 ई० है ।

मालवा में ऋतुचक्र जन-मानस के साथ घुल मिल कर प्रगट होते हैं आषाढ़ में मालवी स्त्रियाँ गाने लगती हैं 'चालो रे गामड़े मालवे ।।'[219] श्रावण पूर्णिमा पर तीज के लिए पीहर आयी नवविवाहिता लड़कियाँ रक्षाबंधन के बाद ससुराल लौटती हैं । श्रावण में उपवनों, जलाशयों के किनारे 'गोठें' होती हैं। वैष्णव मन्दिरों से ठाकुर जी भी पूरी 'ताम झाम' के साथ निकल पड़ते हैं । स्त्रियाँ, पूड़ियाँ, गुलगुले, भजिये, अचार, मुरब्बे आदि पीतल के डब्बों में लेकर आँवला पूजन के लिए घर से निकल पड़ती हैं ।

भाद्रपद में तो मूसलाधार वृष्टि होती है कि आठ-दस दिन बादल छँटने का नाम ही नहीं लेते । पर मूसलाधार वृष्टि का यह जल मालवी धरती पर ठहरता नहीं । उत्तरी पठार का सारा जल नालों से, नदियों से बड़ी नदियों में पहुँचकर 'मालवी पठार और कान्तार लाँघ कर गंगा यमुना के मैदान में पहुँच जाता है ।'[220] 'ग्राम गौसरे के नदी नाले, काली सिंध और क्षिप्रा से होते हुए पार्वती में मिलते हैं'[221] और पार्वती यमुना में विसर्जित होकर अन्त में तीर्थराज प्रयाग में पहुँच कर मालवी पठार की पार्वती भी गंगा ही बन जाती है । मालवे का दक्षिणी जल नर्मदा के माध्यम से अरब सागर में पहुँचता है । अधिकांश पठारी जल ढलंग जाता है तब भी वर्ष-भर के लिए तालाब, बावड़ियाँ, कुंड, कुएं—सब जल भरे रहते हैं । कमल और सिंघाड़े, ऊख और घुंघड़े गेहूं और कपास को सींचता मालवी पठारी जल खेतों खेतों बहता रहता है । मालवे के लिए प्रसिद्ध है 'मालव धरती गहन गंभीर, डग-डग रोटी, पग-पग नीर ।'[222]

{219}- उत्तर कथा { द्वितीय खण्ड } : नरेश मेहता { पृष्ठ 21 }

{220}-{221}- उत्तर कथा { द्वितीय खण्ड } : नरेश मेहता { पृष्ठ 23 }
{222}- उत्तर कथा { द्वितीय खण्ड } : नरेश मेहता { पृष्ठ 23 }

श्रावण पूर्णिमा वस्तुतः ब्राह्मणों का पर्व रहा है जिसे 'श्रावणी' कहा जाता है । मालवा में श्रावणी के दिन ब्राह्मण लोग सामूहिक रूप से सूर्योदय के पूर्व ही किसी नदी, कुंड या जलाशय पर एकत्र होते हैं । पंचगव्यादि के साथ अनेक बार सामूहिक स्नान होता है, समवेत वेद मंत्रों के पाठ के साथ केसर कुंकुम रंजित नये यज्ञोपवीत धारण किये जाते हैं । पुराने यज्ञोपवीत खण्डित करके प्रवाहित कर दिये जाते हैं । 'विभिन्न वर्णी रेशमी पोलों मुकुटों में त्रिपुण्ड या वैष्णवी तिलक लगाये, शिव गाँठ या विष्णु गाँठ'[223] के नये यज्ञोपवीत धारण किये जाते हैं । श्रावणी में ब्राह्म मुहूर्त में घर से गए लोग अपरान्ह में ही घर लौट पाते हैं । इसीलिए रक्षाबंधन का पर्व मालवा में संध्या को ही मनाया जाता है । पंडित त्र्यम्बक शुक्ल, पंडित नागेश्वर उपाध्याय, गोविन्द आदि बरसते पानी में भीगते और रास्ते में घुटने घुटने पानी को लाँघते - फाँदते गंगा-घाट जाते हैं । तब लोग पूजा का पाट लगा कर रेशमी वस्त्र बिछाते हैं । पाट के चारो ओर रंगोली सजाई जाती है, नव ग्रह पूजने के लिए लीपा जाता है, फिर पंचगव्यादि के तीन-चार स्नान, सारा कर्मकाण्ड, पूजा-पाठ, हवनादि, यज्ञोपवीत बदलना करते कराते, गुरु-दक्षिणा देते दिलाते तीसरा पहर हो जाता है और तब घर वापस चलने की तैयारी होती है ।

पितृ-पक्ष में घर-घर 'गौरी कन्यायें' गुडपाटी के फूलों से प्रतिदिन 'संझा' माँडती हैं जिसका विसर्जन महालया के दिन लड़कियाँ खूब गाते-बजाते शिप्रा या पास के जलाशय में जाकर करती हैं । नवरात्र में देवी की स्थापना होती है । 'यव' बोये जाते हैं । इन यवों की रक्षा की जाती है । सप्तमी से नवमी तक घर-घर पूजा अर्चना सम्पन्न होती है । नव रात्र भर घर-घर प्रति रात्रि को आँगन में बड़ी सी समई {दीपाधार} रख कर स्त्रियाँ, लड़कियाँ पार्वती के विवाह के गीत गाती हैं । गरबा नृत्य होता है । साल-साल के इस पर्व पर परिवार के सारे लोग, अपने घर, देवी की इस पूजा पर अवश्य आते हैं ।

कार्तिक में पूरे महीने भर स्त्रियाँ सबेरे चार बजे ही धोती और पूजा पात्र लेकर शिप्रा जी स्नान करने जाती हैं । शिप्रा नदी के तट-घाटों पर साँड़ घूमते रहते हैं और शायद कभी ही किसी-किसी को अपने सींग से उठा कर पटक भी देते हैं । श्रीमती कृष्णा देवी शुक्ल को इसी कार्तिक स्नान के बीच में ही

{223}- उत्तर कथा { द्वितीय खंड } : नरेश मेहता { पृष्ठ 25 }

एक सांड ने पटक दिया था ।

ऋतुचक्र और पर्व-त्यौहारों के समानान्तर उज्जैन के जन-जीवन की सामान्य दिनचर्या चलती रहती है । कंठाल की ओर निकलने वाली गोविन्द जी की गली, सराफे और आढ़तियों के सेठों की थी । इसलिए यहाँ बड़ी-बड़ी हवेलियाँ हैं जिनके नीचे सेठों की गद्दियाँ हैं । गोविन्द जी की इस गली में जहाँ नमक मंडी की ओर मुड़ते हैं वहाँ नीम और पीपल के दो पेड़ हैं जिनके कारण गर्मियों में भी ठंडक बनी रहती है । दिन के समय इन हवेलियों के विस्तृत ओटलों {चबूतरों} पर सबेरे-सबेरे लोटे, गडुवे लिए प्रातः से ही छाछ के लिए लोगों की भीड़ लग जाती है । सेठानियाँ या हवेली के नौकर लोटे भर-भर छाछ बाँटते हैं । इन्हीं चबूतरों पर सबेरे से मालिनें हार-गजरे, पूजा के फूल, बिल्वपत्र आदि लेकर बैठ जाती हैं, मन्दिर जाते समय लोग पूजा के लिए इन्हें खरीदते हैं । इन्हीं चबूतरों पर लकड़ियां बेचने वाली अपनी 'मूली' {लकड़ी के गट्ठर} और घास वालियाँ अपने 'घास के पूले' टिका कर सुस्ता लेती हैं, मुहल्ले के लड़के इन चबूतरों पर गोलियाँ या 'पाकड़ पाटी' या लंगड़ी खेलते हैं। यह गली जहाँ कंठाल वाली गली से मिलती है, वहाँ दाहिनी ओर सेठ आढ़तियों ने एक शिवाले को अपना हाथ लगाकर हैसियत बख्शी है । मन्दिर की सम्पन्नता पुजारी की वेश-भूषा से झलकती है —'भस्मी का त्रिपुण्ड, भांग के लाल डोरे, बड़े मनको की रुद्राक्ष माला, खाये-पीये गौर वर्ण वाला पुजारी शंकर गुरु अपने को किसी सेठ साहूकार से कम नहीं समझता ।'[224]

राम मन्दिर वाली गली कंठाल वाली गली में जहाँ खुलती है उसमें बायें हाथ दो हलवाइयों की खूब बड़ी दुकाने हैं जो आधी रात के बाद तक खुली रहती हैं । सेठ-साहूकार, दलाल, आढ़तिये, वकील शाम को पूरी फुर्सत के साथ यहाँ आस-पास की दुकानों की पटरों पर दो-चार के झुंड में जमते हैं । भाँग बूटी छनती है, पान-पत्ता खाया जाता है, सिर में चम्पी करवायी जाती है और तब बड़ी ही फुर्सत के साथ कान का मैल निकलवाते हुए रबड़ी-बासुंदी खायी जाती है । कोई कोई शौकीन घर के लिए भी रबड़ी के दोने ले जाते हैं, तो उस पर यार लोग वो-वो फब्तियाँ" बोलियाँ कसते-मारते हैं कि हँसते-हँसते गले की नसें की चैन तक कुरतों के बाहर आ जाती हैं ।'[225] गर्मियों में

{224}-{225}- उत्तर कथा {द्वितीय खण्ड} : नरेश मेहता { पृष्ठ 146 }

आम पाक की बहार होती तो जाड़े में बादाम-पिश्ते की बरफियाँ चलतीं। यहीं मोहल्ले टोले की विलक्षण घटनाओं की चर्चा, मचलती तबियत के साथ, इस प्रकार होती कि 'भाषा की ऐसी की तैसी हो जाती'[226]। इधर गाँधी, आज़ाद और भगत सिंह आदि व्यक्तियों से बात चलते चलते रूस, जापान और जर्मनी तक पहुँचने लगी हैं।

गोपाल मन्दिर में सड़क की ओर पूजा-पाठ की सामग्री तथा धार्मिक पुस्तकों की कई दुकानें हैं। मन्दिर के दाहिनी ओर 'म्यूनिसीपाल्टी' का बैरकनुमा आफिस है। सबेरे के समय इन बैरकों के सामने मेहतर, जमादार और इन्सपेक्टरों की काफी भीड़ लग जाती हैं। बैरकों से लगी बोहरों की बड़ी सी मस्जिद है और उसी के सामने उज्जैन के सबसे बड़े व्यापारी की खूब बड़ी सी बम्बई के ढंग की दुकान है। मन्दिर की इस चौक में दुकानों का सिलसिला बोहरे की प्रसिद्ध दुकान तक चला गया है। प्रसिद्ध फोटोग्राफर "काले" का स्टूडियो यहीं पर है। इन्हीं से लगी शहर की सबसे नामी दर्जी 'टेलर मास्टर फकीरचन्द' की दुकान है जिसने 'रोलर कालर का डबल ब्रेस्ट का' पहला कोट उज्जैन में सिला था। अभी नयी-नयी 'हिज मास्टर्स वायस' के चूड़ी बाजे {ग्रामोफोन} की दुकान भी खुली है। मस्जिद के सामने बोहरों की जो बड़ी सी दुकान खुली है उसमें 'साधारण तो क्या अच्छों-अच्छों के जाने की हिम्मत नहीं होती'[227] साज-सज्जा, सफाई, रख-रखाव में उसका मुकाबला उज्जैन में कोई न था। पटनी बाजार को बजाजखाना, सराफा या कसेराबाड़ी कुछ भी कहा जा सकता है। इनके अलावा चतुर बिहारी लाल बुकसेलर की किताबों की प्रसिद्ध दुकान यहीं पर है, खादी भण्डार भी यहीं है। सराफे की दुकानों में कुछ तो सराफे की दुकाने हैं जो चाँदी-सोने के गहने बेचतीं हैं पर कुछ सुनार भी हैं जो गहने बनाते हैं। इन दिनों सोने का तैयार माल खरीदने का रिवाज नहीं था। ग्रामीण या आदिवासी लोग चाँदी का तैयार माल खरीदते थे। सम्पन्न लोग सुनार घर बुलवा कर गहने बनवाते थे। अभी अभी पटनी बाजार में जूतों की नई दुकान --'बाटा' की दुकान खुली है, इससे पहले 'फ्लैक्स' के जूतों का रौब था। इसी लाइन में कबाड़ियों, पेट्रोमैक्स वाले, बैण्ड वाले की दुकानें हैं। इसके बाद नयी पट्टी पर मोटर के स्पेयर पार्ट्स की दुकान, टायर-

{226}- उत्तर कथा {द्वितीय खण्ड} : नरेश मेहता {पृष्ठ 147}
{227}- उत्तर कथा {द्वितीय खण्ड} : नरेश मेहता {पृष्ठ 160}

ट्यूब की दुकान है । मोटर के स्पेयर पार्ट्स वाली दुकान पर लाल कनस्टरों में पेट्रोल भी मिलता है क्योंकि शहर में कोई पेट्रोल पम्प नहीं है । आगे इस पट्टी में छापे के कपड़ों के आढ़तियों की गद्दियाँ हैं ।

जहाँ ये गद्दियाँ समाप्त होती हैं उसके ठीक सामने उज्जैन का एक मात्र पुस्तकालय एवं वाचनालय 'युवराज जनरल लाइब्रेरी' है जो दूसरी मंजिल पर है । यहाँ गिनती के सौ-पचास घरों में मुश्किल से बम्बई दिल्ली के अखबार आते हों वरना बाकी तो सब लोग शाम को लाइब्रेरी में आकर अखबार पढ़ लिया करते हैं । हिन्दी अखबार—'वेंकटेश्वर समाचार' 'विश्वमित्र', 'वीर अर्जुन', 'अखण्ड भारत', अंग्रेजी के 'टाइम्स आफ इंडिया', 'बाम्बे क्रानिकल' 'ट्रिब्यून' 'नागपुर टाइम्स' यहाँ आते हैं । मराठी का 'केसरी' 'सकाल', गुजराती का 'जन्मभूमि' आता है। साप्ताहिकों में हिन्दी का 'देशदूत' अंग्रेजी का 'इलस्ट्रेटेड वीकली' खूब पढ़ी जाती है । मासिकों में 'चाँद' 'माधुरी' 'सरस्वती' आती है'[228]। पहले लाइब्रेरियन वामन गणेश आइनापुरे के समय प्रकाश के लिए लालटेन का प्रबंध था । पर लालटेन से आग लग जाने के कारण अब लाइब्रेरी में बिजली लग गई है और अब लाइब्रेरियन हैं पंडित वासुदेव उपाध्याय ।

उज्जैन की सारी सामाजिक, साहित्यिक और अब राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र गोपाल मन्दिर का चौक हो चला है और प्रकारान्तर से 'युवराज जनरल लाइब्रेरी' भी महत्वपूर्ण हो गयी है । अवकाश प्राप्त अफसर, तार बाबू, पोस्टमास्टर, अध्यापक सामाजिक संगठन से सम्बन्धित लोग मासिक पत्रिकाओं वाली दालान में रखी कुर्सियों और बेंचों पर बैठे सामाजिक साहित्यिक और राजनीतिक लेखों पर बहस करते होते हैं । राजनीति में अब नये नाम सुनाई पड़ने लगे हैं - दयानन्द, विवेकानन्द से उतर कर तिलक और गाँधी की चर्चा होने लगी है । असहयोग आन्दोलनों तथा सन् 30 के नमक सत्याग्रह के कारण देसी रियासतों में भी यह नाम पहुँच रहा है ।

अब भारत माता का भी मन्दिर होने लगा है । बच्चों के मुख से 'वन्दे मातरम' और 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' सुनाई पड़ने लगा है । मालवा में वैष्णव और जैन प्रभाव अधिक होने से और मुसलमानों की संख्या कम होने के कारण 'हिन्दू - मुस्लिम विरोध' की समस्या नहीं उठने पायी है ।

[228]- उत्तर [illegible] [द्वितीय खण्ड : [illegible] मेहता] पृष्ठ 174]

उज्जैन में राजनीतिक जागरूकता पहुँच पा रही है । 'सार्वजनिक सभा' 'चरखा सेवक संघ के दफ्तर में स्थानीय कांग्रेस नेता आते रहते हैं, बैठकें होती हैं । स्त्रियों में जागृति फैलाने का काम श्रीमती नर्मदा देवी उपाध्याय कर रही हैं । जनता कुछ नये शब्दों --'भारत माता की जय', 'वन्दे मातरम' 'कर्मवीर गांधी की जय' स्वराज्य आदि शब्दों से परिचित हो रही है । खादी पहनने वाले लोग 'नेता जी', 'सुराजी' कहे जाते हैं । प्रभात फेरी में निकली, गाती हुई महिलाओं और उनके पीछे पंक्तिबध्द चलते नेता वकील आदि को देखकर, आँख मलते हुए, चाय का कप थामे, चबूतरे पर दातौन कुचलते या दूध का लोटा हाथ में लिए हुए उज्जैन के जन सामान्य आश्चर्य से देखने लगते हैं कि यह क्या हो रहा है । सबेरे-सबेरे भगवान का नाम न लेकर 'चरखा चला चला कर लेंगे स्वराज्य प्यारा ।।' गा रहे हैं । "स्वराज्य क्या है और किससे लेंगे ।"[229]

पूरे मालवा में उन दिनों किसी भी भाषा में न तो दैनिक प्रकाशित होता था और न साप्ताहिक । नीमाड़ के खण्डवा से पं0 सिध्दनाथ माधव आगरकर एक हिन्दी दैनिक निकालते थे और पंडित माखन लाल चतुर्वेदी "कर्मवीर" साप्ताहिक । मालवा के अधिकांश लेखक और राजनेता उसी में छपते थे या जुड़े हुए थे । मालवा में परिवर्तन आ रहा है तब भी मालवा "केटलाग और वी0 पी0, गोल इटालियन टोपी या गुजराती टोपी, विभिन्न पगड़ियाँ, जेबघड़ी, छड़ी, और बहुत हुआ तो शाम को हवाखोरी के युग से बहुत आगे"[230] नहीं जा पाया है । सन् 1920 से 30 का दशक जिसमें तिलक का देहान्त हुआ और सक्रिय राजनीति में गाँधी का पदार्पण हुआ, "मालवा के लिए वह श्रुति का महत्व रखता है ।"[231]

मालवा या उज्जैन में सक्रिय राजनीति ने 'सार्वजनिक सभा' और 'युवा मण्डल' के माध्यम से पदार्पण किया । खादी भण्डार खुलने से लोगों में खादी के प्रति रुचि जगी और लोगों ने 'टुकड़ो' में खादी पहनना प्रारम्भ किया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी के उपयोग के कार्यक्रम लोगों में फैलाये जाने लगे ।

उज्जैन में गाँधी जयन्ती का पहला उत्सव मनाया जा रहा है । खादी

{229}- उत्तर कथा {द्वितीय खण्ड} : नरेश मेहता { पृष्ठ 179 }
{230}- उत्तर कथा {द्वितीय खण्ड} : नरेश मेहता { पृष्ठ 181 }
{231}- उत्तर कथा {द्वितीय खण्ड} : नरेश मेहता { पृष्ठ 182 }

भण्डार में टोपी और बीड़ियों की खूब बिक्री हो रही है । घर-घर से विदेशी कपड़ों को एकत्र करके विदेशी कपड़ों की होली जलाये जाने का कार्यक्रम है । स्त्रियाँ ही विदेशी कपड़ों को एकत्र कर रही हैं । श्रीमती नर्मदा देवी उपाध्याय सक्रिय महिला कार्यकर्ता हैं । वह दुर्गा को भी अपने साथ ले जाना चाहती हैं तो उसके पति त्रयम्बक शुक्ल कहते हैं "- - - - - - आपकी बहू है, आप ही लोगों से जवाब देही करियेगा । मुहल्ले के, जाति के चार लोग जब आपकी बहू को घर-घर डोलते देखेंगे तो फिर मैं नहीं जानता कुछ ।"[232]

यहाँ 'पीठा बाखल' से पहले कई 'कच्चे-पक्के अधपके' घर हैं । खपरैल वाले इन घरों में आमतौर से कमरा तो एक ही है पर आँगन खूब बड़े हैं, जहाँ रंगीन तागें बटने, कातने, बुनने वालों के नीचे-नीचे घर हैं । मर्द लोग या तो तागों को लम्बे-लम्बे करके खास तरह से बँटते रहते या स्त्रियाँ चरखेनुमा चरखियों पर कात रही होतीं । बड़ी लड़कियाँ, बहुएं इन रंगीन तागों की लच्छियाँ बनाने में व्यस्त रहतीं जबकि लड़के मार खाने के बाद भी हाथ का काम छोड़कर गोलियाँ खेलते रहते । यहीं पतंग बनाने वाले, कागज के फूल, कंदील, पंखे बनाने वाले के भी घर हैं । चूड़ीवाला मनियार और कुम्हार यहीं पास में हैं । कुम्हार के घर के सामने, रंगे जाने की प्रतीक्षा में पके हुए लक्ष्मी-गणेश, घुड़सवार, तोते, बच्चों के खेल के बर्तन धूप में रखे हुए हैं ।

बोहरों के बाखलों - लकड़ियों के पीछे, फनीचर की दुकानों और तेली की दुकान के बाद, कुछ दक्षिणियों {मालवा में महाराष्ट्रियों को सामान्यत: दक्षिणी ही कहा जाता है} के मकान आ जाते हैं । साधारण से जापरी लगे दो कमरों के एक तल्ले के मकान घर से अधिक क्वार्टर लगते हैं । इनमें से अधिकांश रेलवे में काम करने वाले निम्न मध्यवर्गीय लोग रहते हैं । इनकी स्त्रियाँ मराठी ढंग की कछे वाली लुगड़ी बरारी या नागपुरी साड़ियाँ पहने दिन भर कपड़े धोतीं रहती हैं या बरतन चमकाने में लगी रहती हैं । बीनना-घूंटना लेकर, लम्बे फैले पैरों पर थालियाँ रखे आपसे ये तब तक बातें करती रहेंगी जब तक लड़ने की सीमा न आ जाये । शाम को पतियों के लौटने पर पीतल के 'कप-बशी' में चाय देंगी और रात का भोजन पोली {रोटी} भाजी या बेसन-भात बनाने में लग जायगी । गोधूलि बेला में "देवा सम्बोदर गिरिजा नन्दना ।।" की प्रार्थना हर घर में होती है । प्रत्येक गुरुवार को अंब 'दत्तात्रय भगवान' का साप्ताहिक भजन-पूजन

कथा-गायन का कार्यक्रम होता है तो उन घरों में थोड़ा सौहार्द आ जाता है अन्यथा इनके 'दिनकर' और उसके 'भास्कर' को लेकर आपस में जो 'तुला-तुका' {तू-तू, मैं-मैं} होती है कि कहना ही क्या ? शाला {स्कूल} से 'मुल्गा-मुल्गी' {लड़का-लड़की} खेलते, बात करते घर लौटते हैं । लड़कियाँ या तो दरवाजों के पल्ले पकड़े बातें करती होती या 'आई' {माँ} द्वारा थमा दिया गया कोई सीना-पिरोना थामें या थाली, सूप में दालें फटकारते हुए, किसी की नकल उतारते हँसती होतीं । इनके घरों में शाम को ताजी रंगोली बनी होती है ।

इन निम्न मध्यवर्ग परिवारों के एकदम विपरीत झालानी जी का परिवार है । झालानी परिवार यहाँ के सम्पन्नतम लोगों में आता है । इनकी हवेली इतनी बड़ी है कि छोटे-छोटे जमींदारों, जागीरदारों की गढ़ियाँ भी इतनी बड़ी नहीं होंगी । झालानी जी का, शहर और दूर देहात तक सूद-ब्याज लेन-देन का बहुत फैला हुआ धंधा है । इनके गद्दी के बड़े मुनीम हवेली में ऊपर बैठते हैं ताकि मालिक से सम्पर्क करने में इन्हें और मालिक को ऊपर-नीचे आने-जाने का कष्ट न करना पड़े । बाकी मुनीम, गुमाश्ते नीचे दालान में बैठते हैं ।

झालानी परिवार कट्टर वैष्णव परिवार है । अतः यहाँ विशेष-विशेष अवसरों पर ठाकुर जी की झाँकियाँ सजती हैं । बसन्त पंचमी, रंग पंचमी और होली पर भगवान होली खेलते हैं । श्रावण-भाद्रपद में 'जल विहार' होता है, वन यात्रा का ठाट सजता है या फिर नाथ द्वारा या बम्बई से गुसाई जी आते हैं तो उनके प्रवचन होते हैं, मण्डली होती है । दीवाली के तत्काल बाद 'अन्नकूट' जैसा झालानी जी के मन्दिर में होता है वैसा मालवा के किसी मन्दिर में शायद ही होता हो । रोज ठाकुर जी को इतना भोग लगता है कि हवेली के लोगों, नौकर-चाकरों के अलावा पचासों का पालन अनायास हो जाता है । मन्दिर का काम करने वाले अलग हैं और हवेली के नौकर चाकर अलग । इन नौकर-चाकरों की निगरानी के लिए कुछ लोग और दो-एक मुनीम, गुमाश्ते भी अलग हैं ।

पंडित महादेव शुक्ल उज्जैन के सम्पन्न लोगों में गिने जाते हैं । उनकी पौत्री पं० त्र्यम्बक शुक्ल की पुत्री कुन्ती के विवाह में कन्यापक्ष और वर पक्ष दो सम्पन्नताओं के प्रतिस्पर्धात्मक के दर्शन होते हैं । जब एक कुंटी का विवाह होता

है तब बामाबा डाक्टर माधव मेहता के आग्रह पर घर का सूट {प्रथम बार} "हैं-केजी टेलर्स" से सिलवाया जाता है और 'लड़कों की जिद और जीजा जी के शह पर'[233] लड़कों के 'अंग्रेजी फैशन' के बाल पहली बार काटे जाते हैं ।

परम्पराओं और रीतिरिवाजों के समानान्तर राजनीतिक सजगता और सक्रियता भी उज्जैन में अपना पाँव जमा रही है । यहाँ की 'सार्वजनिक सभा' में अब दो ग्रुप स्पष्ट दीखते हैं -- प्रथम मराठी ग्रुप, राज्य की राजनीतिक गतिविधियों में सिंधिया घराने के स्वार्थों की रक्षा करते रहना चाहता है जिसमें अधिकांश नामांकित वकील हैं । दूसरा ग्रुप समाज-सेवी लोगों का है जो पूरे देश की कांग्रेसी राजनीति से 'सार्वजनिक सभा' को जुड़ी हुई बनाए रखना चाहते हैं ।

विनोद मिल के मजदूरों में अधिकार चेतना जग रही है या जगाई जा रही है । यहाँ तक कि हड़ताल की स्थिति आ गई है । विनोद मिल के फाटक के बाहर सड़क पर तम्बू कनात लगे हैं । चारों ओर मजदूर यूनियन के लाल झंडे और कांग्रेस के तिरंगे झंडे लहरा रहे हैं । मिल के बन्द फाटक पर पुलिस का कड़ा पहरा लगा हुआ है । चारों ओर मजदूर यहाँ - वहाँ 'जत्थों में' बातें करते टहल रहे हैं । मिल के भीतर वीरानगी छायी हुई है । मिल मालिक और मजदूरों की यह लड़ाई उज्जैन में पहली बार हो रही है । इसमें मार्ग निर्देशन है गिरिधर ठक्कर का । गिरिधर गोपाल भूख - हड़ताल को अन्तिम अस्त्र के रूप में स्वीकार करता है और भूख हड़ताल पर बैठ जाता है ।

'पुरोगामी साहित्य परिषद' नामक कम्यूनिस्ट लेखकों की भी एक संस्था उज्जैन में चल रही है ।

जयपुर सम्मेलन के बाद पंडित नागेश्वर उपाध्याय और गोविन्द जोशी जैसे 'सार्वजनिक सभा' के नेताओं की गिरफ्तारियों के बाद उज्जैन के चौराहे पर लोग 'अपने-अपने राग' भूल कर केवल इसी विषय पर बात कर रहे हैं ।

उज्जैन में प्रगति के चिन्ह अब स्पष्ट हो चले हैं । यहाँ कालेज हो जाने पर भी छात्रावास की व्यवस्था अभी तक नहीं हो पायी है । अतः

{233}- उत्तर कथा {द्वितीय खण्ड} नरेश मेहता : { पृष्ठ 316 }

बाहर से आये छात्र कालेज के आस-पास के मुहल्लों में रह रहे हैं। साधारण हैसियत के विद्यार्थी अधिकांशतः देवास गेट, मालीपुरा या ब्राह्मणगली में अकेले या दो चार मिलकर रहते हैं। सम्पन्न घरों से सम्बद्ध विद्यार्थी फ्रीगंज में रह रहे हैं। वस्तुतः 'फ्रीगंज' उज्जैन का 'सिविल लाइन्स' है।

समय का परिवर्तन प्रत्यक्ष परिलक्षित हो रहा है। गौरा के प्रसव के लिए अस्पताल में व्यवस्था की जाती है जबकि दुर्गा के सारे बच्चे घर में हुए थे।

रावल जी, अयाचित जी, गोपीकृष्ण विजय वर्गीय जी आदि नेता के पकड़ लिये जाने पर उज्जैन ने पहली बार अपनी सड़कों पर इतना बड़ा जुलूस देखा है। गोपाल मन्दिर चौक पर सभा के रूप में परिवर्तित इस जुलूस जितनी भीड़ तो सिंहस्थ के मेले में भी कभी नहीं हुई।

और पहली बार हिन्दू मुस्लिम के साम्प्रदायिक नारे 'जय महाकाल' और 'अल्ला हो अकबर' उज्जैन के कानों में पड़ते हैं। ईंट, पत्थर, छुरेबाजी, हत्या-सब कुछ पुलिस के सामने, उज्जैन के लोगों के लिए अकल्पनीय दृश्य आज सामने घटित हो रहा है।

विश्वयुद्ध का प्रभाव मालवा में भी स्पष्ट है। मँहगाई जो बढ़ी तो बढ़ी ही, मिट्टी के तेल, गेंहू, चावल, चीनी पर राशन की इस नई प्रथा ने लोगों को 'उलझन' में डाल रखा है। कपड़ा तक राशन कार्ड पर मिल रहा है। वनस्पति घी - - -डालडा यह क्या है, घी तेल तो सुना था। परिवर्तन की इस तीव्र गति ने पूरे मालवा को स्तम्भित कर दिया है।

परिवार और व्यक्ति के स्तर पर भी परिवर्तन लक्षित है। पंडित त्र्यम्बक शुक्ल के पुत्र किशोर जो जज है, ने बिना माता-पिता को बताये एक दक्षिणी लड़की से विवाह कर लिया है।

जिस मालवा ने ताऊन (प्लेग) की विभीषिका देखी थी कि गाँव घर खाली हो गए थे। 'क्वारन्टाइन' में रात-दिन मरते लोगों को देखा था। तब भी मालवा चाहे जितने भी मर जाँय पर इस प्रकार किंकर्तव्य विमूढ़

नहीं हो गये थे जिस तरह आज हैं । राष्ट्र राज्य बन गया है । लाखों नर-नारी हत्या, लूट-पाट, बलात्कार, धर्म-परिवर्तन में तबाह हो रहे हैं। 'शरणार्थियों से पूरी धरती खौला जल'[234] हो गई है । 'अपने ग्राम नगर भय के पर्याय'[235] बन गए हैं । सारे मूल्य निरर्थक हो गए हैं । निश्चय ही मालवा का यह नगर उज्जैन इन सबसे अप्रभावित नहीं रहा है ।

इस प्रकार इस द्वितीय खण्ड में कथाकार ने मालवा का 1930 से 1947-48 तक के पारिवारिक सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों को कथा एवं पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है । जिसमें ऋतुचक्रों के साथ प्रकृति के बदलते रूप और उनके साथ मालव जन-मानस का औत्सविक प्रतिफलन का चित्रण करते हुए वहाँ के लोगों की दिनचर्या और दिनचर्या से इतर क्रिया-कलापों का वर्णन मालव के जन-जीवन का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करता है ।

मँहगाई, कांग्रेस में गुटबाजी, मिलों की हड़ताल, राजनीतिक जुलूस, हिन्दू-मुस्लिम के साम्प्रदायिक दंगे और सबसे बढ़कर आधुनिक जीवन मूल्य, यह सब कहीं न कहीं मालवा की उज्जैन नगरी में प्रवेश करने लगे हैं ।— साक्षी है नरेश मेहता की 'उत्तर कथा ।'

'उत्तर कथा' के दोनों खण्डों पर समग्र दृष्टि डालने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि उत्तर कथा' में लगभग आधी शती की अवधि के अन्दर तीन पीढ़ियों {पं0 महादेव शुक्ल, त्रयम्बक शुक्ल और दुर्गाटी, विद्योत्तमा आदि} तथा अनेकानेक परिवारों की कथा गाथा के माध्यम से उज्जैन बनास मालवा के जनसमूहों का चित्रण किया है ।

{234}- उत्तर कथा {द्वितीय खण्ड} नरेश मेहता {पृष्ठ 546}

{235}- उत्तर कथा {द्वितीय खण्ड} नरेश मेहता {पृष्ठ 546}

चतुर्थ अध्याय

उपन्यास में गाँव, नगर, महानगर : विकास क्रम और तुलना

चतुर्थ अध्याय

उपन्यास में गाँव, नगर, महानगर : विकास क्रम और तुलना

अपने जन्म से ही मध्यवर्गीय सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते रहने के कारण विश्व की भाषाओं के प्रारम्भिक उपन्यासों के कथानक किसी न किसी नगर या नगरीय सभ्यता से जुड़े हैं । कालान्तर में उपन्यासों ने गाँवो और कस्बों को अपनी कथाभूमि बनाया । अतः उपन्यासों में चित्रित गाँव, नगर महानगर एक ऐसा विकास क्रम प्रस्तुत करते हैं जो समाज शास्त्रीय विवेचना के उद्धरण हो सकते.हैं । आबादी का विकास गाँव से नगर की ओर हुआ है, उपन्यास का कथानक नगर से गाँव की ओर चलता है ।

कृषि कार्य करते हुए मानव ने सर्व प्रथम समूह में रहकर जिस समाज की स्थापना की वह क्षेत्र गाँव कहा गया । गाँव में प्रकृति प्रमुख होती हैं और यहाँ के जनजीवन का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध होता है । हरेन्द्र, राधाकान्त के गाँव में आकर देखता है और कहता है "ऐसा सुन्दर हरा-भरा खेत, ऐसा सुहावना बगीचा, ऐसे सुन्दर ताड़ और खजूर के पेड़ एवं पल्लव वहाँ {कलकत्ता में} कहाँ दिखाई देते थे ? यहाँ के पक्षी कैसे स्वच्छन्द बोल रहे हैं? यहाँ की हवा कैसी सुखद है ?"[1] 'मेरीगंज' बूढ़ी कोशी के उस पार, ताड़-खजूर के पेड़ों से भरे जंगल के पास स्थित है, जहाँ कमला नदी बहती है, जिसमें कमल के फूल खिले होते हैं ।[2] "करैता" गाँव को दो हिस्सो में बाटती हुई तलैया के पूर्वी हिस्से में जलकुम्भी के खिले फूल देखे जा सकते हैं और पश्चिमी भाग में कुई के फूल ।[3] जिस 'आंचलिक परिपार्श्व' को लेकर चला है 'यह पथ बंधु था' उसमें भी लाल पत्थरों की पहाड़ियों की श्रृंखला है तथा अशोक, आम, बरगद के पेड़ यहाँ से वहाँ तक लगे हैं ।[4]

"उत्तरकथा" में जिस मालवा प्रदेश का वर्णन है वह."वट वृक्षों की सघीय गंभीरता, पीपलों का वासुदेवत्व, बौने बबूलों की वानस्पतिकता,

{1}- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय {2}- मैला आँचल : 'रेणु' फणीश्वर नाथ {3}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह {4}- यह पथ बंधु था : नरेश मेहता

कुप्पत लहरावों की संकोची कौटुम्बिकता, पीले घासों वाले कुछ चरागाह, विभिन्नवर्णी कमल, झीलें और कम पानी वाले नालों'.[5] से युक्त हैं । उपन्यासों के ये कथा क्षेत्र स्पष्ट संकेत करते हैं कि प्राकृतिक पर्यावरण गाँव की विशेषता है ।

ग्राम समाज में परिवार सबसे प्रमुख है । गाँव में अधिकांशतः सम्मिलित परिवार की परम्परा और प्रतिष्ठा है । लखनपुर के जमींदार प्रभाशंकर [यद्यपि कि वे बनारस में रहते हैं] अपने बड़े भाई की विधवा पत्नी उनके बच्चे तथा अपने पत्नी बच्चों के साथ रहते हैं ।.[6] लखनपुर में मनोहर, उसकी पत्नी बिलासी, पुत्र बलराज और पुत्र वधू सब साथ - साथ रहते हैं।[7] पांडेपुर में ताहिर अली अपनी विमाता, सौतेले भाई के साथ पत्नी बच्चों को लेकर रहते हैं ।.[8] बेलारी गाँव में होरी का परिवार और उसके भाई का परिवार साथ साथ रहता था । गृह-कलह के कारण होरी को अपने भाई से अलग हो जाना पड़ता है जिससे उसके सामाजिक प्रतिष्ठा को धक्का लगा है । उसके पुत्र गोबर के विवाह के लिए लोग आते हैं पर लौट जाते हैं ।.[9]

गाँव में व्यक्ति और परिवार से भी अधिक महत्वपूर्ण है उसकी जाति । क्योंकि जाति मात्र के ज्ञान से ही उसका व्यवसाय, स्तर और संस्कृति [परम्परा] आदि का अनुमान हो जाता है । बुन्देलखण्ड के 'बरौल' गाँव का पन्ना लाल 'बजटा' के देवीसिंह को पहला प्रश्न करता है, "कौन लोग हो ?".[10] 'मेरीगंज' में डाक्टर आता है । नाम जान लेने के बाद पहला प्रश्न होता है 'क्या जात' ?".[11]

---

[5]- उत्तर कथा : नरेश मेहता
[6]- प्रेमाश्रम : प्रेम चन्द
[7]- प्रेमाश्रम : प्रेम चन्द
[8]- रंगभूमि : प्रेम चन्द
[9]- गोदान : प्रेम चन्द
[10]- लगन : वृन्दावन लाल वर्मा
[11]- मैला आँचल : रेणु फणीश्वर नाथ

गाँव में व्यक्ति के अस्तित्व से अधिक महत्वपूर्ण है जाति का अनुशासन और शुद्धता । 'बेलारी' गाँव के पं० दातादीन का पुत्र मातादीन सिलिया चमारिन को रखे हुये है । पर सिलिया उसकी रसोई नहीं कर सकती । संध्या-पूजा और रसोई की पवित्रता के द्वारा पंडित मातादीन अपनी जाति की शुद्धता बनाए हुए हैं ।'[12] 'मेरीगंज' के महंथ के भंडारे में ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ सबकी अलग अलग पंगत बैठी थी ।'[13] यहाँ तक कि गाँव में मुसलमानों में भी जाति धर्म की रक्षा आवश्यक है । 'गंगौली' के सुलेमान खाने एक चमाइन डाल रखी है पर वे उसके हाथ की कोई गीली चीज नहीं खाते और अपना खाना खुद पकाया करते हैं — वे "मजहबी आदमी" हैं ।'[14]

सवर्णों की जाति रक्षा के लिए प्रत्येक गाँव में 'अछूत जात' की बस्तियाँ गाँव के एक कोने पर होती है । 'करैता' गाँव [15] में तलैया के दक्खिनी कगार पर "चमरौटी" — चमारों, शूद्रों का मुहल्ला बसा है । शिवपालगंज'[16] में 'चमरही' नामक एक अलग मुहल्ला है जिसमें चमार आदि रहते हैं । यहाँ हर जाति के अपने-अपने सामाजिक अनुशासन होते हैं और उन्हें मानना ही होता है गाँव में ।

गाँव में जाति और धर्म का अन्योन्याश्रयी सम्बन्ध है । पृथक अध्यात्मवाद अनेकेश्वरवाद, जादू, भूत-प्रेत विश्वास आदि उनकी, धार्मिक अवधारणा के आधार हैं । गाँव की धार्मिक भावना परिष्कार रहित और स्थूल है । मौजा बुद्धीपुर'[17] के प्रियानाथ अच्छे पढ़े लिखे होने पर भी सपत्नीक तीर्थ-यात्रा पर निकलते हैं ; गया में अपने पितरों का श्राद्ध करते हैं । अनन्तपुर'[18] में जनमानस के {अंध} विश्वास ने एक चबूतरे को पूजापीठ का दर्जा प्रदान कर दिया है । वहाँ के लोगों का विश्वास है कि वहाँ की

{12}- गोदान : प्रेमचन्द
{13}- मैला आँचल : रेणु फणीश्वरनाथ
{14}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा
{15}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह
{16}- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल
{17}- आदर्श हिन्दू : मेहता लज्जाराम शर्मा
{18}- सौ अजान एक सुजान : बालकृष्ण भट्ट

गई मनौती पूरी होती है । इसी प्रकार 'गुनार'[19] गाँव से दो मील पर एक पीपल का वृक्ष है, वहाँ यह जनश्रुति है कि उक्त पीपल का पेड़ भूतों का अड्डा है । अंध विश्वास गाँव की स्त्रियों का विशेष चरित्र है । रमाकान्त के पुत्र के मर जाने पर गाँव की स्त्रियाँ रमाकान्त के मकान को अशुभ करार दे देती हैं ।[20] बीमारी यहाँ प्रेत बाधा है — डाक्टर या वैद्य के इलाज से रोगी - प्रेत - बाधित व्यक्ति पर प्राण संकट आ सकता है । विधवा यहाँ कुलच्छिनी है और विधवा का पुनर्विवाह अधर्म ।[21]

मेरीगंज[22] में अस्पताल खुलने को है तो 'जोतखी जी' जो कहते हैं सो तो कहते ही हैं ।' सबसे बड़ी बात तो यह है कि 'बिलैती दवा में गाय का खून मिला होता है[23] जिससे धर्म भ्रष्ट हो जाता है । पर स्त्री और पर पुरुष में सम्बन्ध होना गाँव में आम बात है जैसे कि 'फुलिया की माये' अपने खास भतीजे के साथ भागी थी ।[24] रमजूदास की स्त्री 'सिंघवा की रखेली'[25] है, उचित दास की बेटी[26] कोयरी टोले के सरन महतो से फँसी है । इन सब बातों को लेकर धर्म की रक्षा के लिए जब तब पंचायत होती रहती है । 'पंचायत का अर्थ है 'फोकट में भोज' मिल जाना और 'जाति की बन्दिस' भी बनी रहती है ।

करैता गाँव की 'अलकामिनी देवी'[27] "बाँझ और निपूती" स्त्रियों को पुत्र वरदान देने वाली सिद्ध देवी हैं ऐसी गाँव और उसके आस-पास प्रसिद्ध है।'मेरीगंज' में विवाह - शादी में कमला नदी को निमंत्रित करने से 'काज-परोजन' सकुशल सम्पन्न हो जाते हैं । यहाँ ओझा भूत-प्रेत को वश में कर सकते हैं, बाँझ निपूती को पुत्रवती बना सकते हैं ।[28]

{19}- सेवा सदन : प्रेमचन्द
{20}-{21}- अमर अभिलाषा : चतुरसेन शास्त्री
{22}-{23}- मैला आँचल : रेणु फणीश्वर नाथ
{24}- मैला आँचल : रेणु फणीश्वर नाथ
{25}- मैला आँचल : रेणु फणीश्वर नाथ
{26}- मैला आँचल : रेणु फणीश्वर नाथ
{27}- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह
{28}- मैला आँचल : रेणु फणीश्वर नाथ

जाति और धर्म-नीति का कट्टरता से पालन करता हुआ ग्राम समाज [नगर की तुलना में] अन्य धर्मों के प्रति उदार दृष्टि रखता है । [29]"संनीमी" गाँव में हर मुहर्रम को गाँव की चमाइनें अहीरिनें ताजिये के आगे मन्नतें माँगती, धारी [भोजपुरी में [illegible] माथा] चढ़ातीं और शरबत चढ़ातीं । हिन्दू लोग इमाम साहब को भोग चढ़ाते, मुसलमान "दशहरे" का चन्दा देते । हिन्दू मठ के बाबा को फकीर मियाँ ने पाँच बीघे की माफी दे रखी है । लछमपुर के कादिर मियाँ[30] भजन गाते हैं —

मैं अपने राम को कैसे रिझाऊँ —

'गाँव और राजनीति' के संदर्भ में हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास कुछ विशेष नहीं कहते, न ही उनमें किसी राजनीतिक संस्था का उल्लेख मिलता है । अलबत्ते जाति-बिरादरी की अपनी अपनी पंचायतें हुआ करती थीं । वे अधिकांशतः सामाजिक अनुशासन के लिए होती थीं । 'पंच परमेश्वर' का न्याय मान्य होता है क्योंकि वह "धरम" है ।

कालान्तर में, गाँव में, राजनीति के कर्णधार हुए गाँव के जमींदार, पटवारी और कारिन्दा । 'गोदान' के जमींदार रायसाहब अमरपाल सिंह ब्रिटिश हुकूमत और गाँव की किसान जनता दोनों के बीच के सेतु हैं ।[31] 'बाबापुर' के तालुकेदार ठाकुर रामनाथ अपने गाँव की राजनीति का संचालन करते हैं ।[32]

स्वाधीनता आन्दोलनों के साथ-साथ गाँव में नई राजनीतिक गति-विधियों का आगमन हुआ । जमींदारी प्रथा में गाँव की जनता का राजनैतिक उद्देश्य केवल जमींदारों से मानवता पूर्ण व्यवहार की आशा के लिए था । मनोहर का लड़का बलराज अन्याय के विरुद्ध गाँव के कारिन्दे और पटवारी से भिड़ जाता है, यहाँ तक कि वह स्वयं डिप्टी साहब के पास जाकर उनकी ज्यादतियों की शिकायत करता है ।[33]

स्वतन्त्र उपन्यास पूँजीवादी विचारधारा की राजनीति का प्रतिनिधि उपन्यास कहा जा सकता है जिसमें अपनी जमीन के लिए शासन,

---

[29]- आधा गाँव : राही मासूम रजा
[30-31]- [illegible] : प्रेमचन्द
[32]- [illegible] : [illegible] [33]- प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द

प्रशासन की शक्ति से सत्य और अहिंसा की लड़ाई लड़ता हुआ सूरदास शहीद हो जाता है ।"[34] उपन्यास में गाँव स्वतंत्रता आन्दोलनों को भी लेकर चला है — 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' 'उत्तर कथा' आदि प्रमाण हैं ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तो राजनीति गाँवों में अपने पूरे अर्थ में सक्रिय हुई । 'मेरीगंज'[35] में बालदेव जी कांग्रेसी कार्यकर्ता हैं, कालीचरन सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना करता है, काली टोपी वाली पार्टी भी है वहाँ । 'करैता' गाँव में सुखदेव राम कांग्रेस पार्टी के लीडर हैं । करैता में ग्राम-सभा का चुनाव पार्टी-राजनीति का उदाहरण है ।"[36] 'शिवपाल गंज' तो समसामयिक एवं स्थानीय राजनीति का एक [illegible] 'चित्र' शैली प्रस्तुत करता है ।"[37]

आर्थिक समस्याएँ और गाँव लगभग पर्याय जैसे हैं । भाग्यवादी होने के नाते किसान आर्थिक समस्याओं के प्रति अधिक सजग नहीं रहा है । 'बेलारी' गाँव का होरी आर्थिक समस्याओं को भाग्य का लेखा मानकर जूझता जूझता मर जाता है पर गाँव छोड़ने की बात या खेती छोड़कर अन्य उद्यम अपनाने की बात उसके मन में नहीं आती । पर उसका लड़का गाँव छोड़कर लखनऊ चला जाता है, वहाँ रोजी-रोटी की समस्या नहीं है —'चौकीदारी का काम' '[illegible] का काम' और नहीं तो 'पान की दुकान ही खोल ली — आमदनी ही आमदनी' । वह शहर आकर जान गया है बस थोड़ी सी चतुराई की आवश्यकता है —'कैसे दूसरे को उल्लू बनाया जा सके' और अपना उल्लू सीधा किया जा सके ।"[38]

पाण्डेपुर में फैक्ट्री बन जाने पर वहाँ के लोगों ने पैसे के विषय में नये ढंग से सोचना शुरु कर दिया है । भैरो जो ताड़ी की दुकान चलाता था अब अपनी लकड़ी की दुकान में माँ के साथ रहने लगा है और मकान किराये पर दे दिया है । ठाकुरदीन सामने टट्टी लगाकर अपनी [पान की] दुकान में रहने लगा है और घर एक ओवरसियर को किराये पर दे दिया है । बजरंग,

---

[34]- रंगभूमि : प्रेमचन्द
[35]- मैला आँचल : रेणु फणीश्वर नाथ
[36]- अलग अलग वैतरणी : शिव प्रसाद सिंह
[37]- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल
[38]- गोदान : प्रेमचन्द

जो खोंचा लगाता था स्वयं फूस की झोपड़ी बना कर रहने लगा है और सारा मकान उठा दिया है । [illegible] ने भी मकान का एक हिस्सा उठा दिया है ।"[39]

गंगोली में जमींदारी जाने के बाद कुम्मू मियाँ ने इमामबाड़े वाले एक कमरे में जूते की दुकान कर ली है और कहते हैं कि 'खुद हज़रत अली ने भी जूते टाँके थे यद्यपि कि वह स्वयं जानते हैं कि आर्थिक समस्याओं के उत्तर में उनके पास अब यही विकल्प था ।'[40]

करैता गाँव के देवी चौधरी का लड़का 'जमेसर' सिपाही होकर जौनपुर शहर में है, बीतू बरेठा का लड़का 'सुरजितवा' ने भी गाँव छोड़ दिया है और कस्बे में लांड्री खोल ली है और वह अब पहले से [आर्थिक दृष्टि से] बेहतर है । डा० देवनाथ ने यद्यपि कि आर्थिक कारणों से कम, गाँव की मानसिकता से बचने के लिए ही कस्बे में अपनी डाक्टरी की दुकान खोल ली है और वह 'खुश मजे' में है । गाँव से दूध, घी, सब्ज़ी तो शहर भेजी ही जाती है — वहाँ अच्छे दाम मिलते हैं, आदमी भी 'पुलिस' 'पल्टन' 'मिल' 'मोटरी' में जा रहे हैं — अर्थ मुख्य और महत्वपूर्ण होकर गाँव को शहर की ओर खींच रहा है ।'[41]

गाँव में राजनीति की कुलीन और व्यावसायिक दृष्टि की स्वीकृति भी गाँव की संस्कृति को अपदस्थ नहीं कर सकी है । गाँव की अपनी पहचान है वहाँ की संस्कृति, सौन्दर्य-बोध एवं उनकी कलाभिव्यक्ति । ग्रामीण कलाएँ ग्रामीण जन-जीवन एवं उनकी जीविका के साथ जुड़ी है । उनके तीज-त्योहारों या [illegible] में इन कलाओं की अभिव्यक्ति होती रहती है । मालवा के गाँवों में पितृपक्ष में घर घर 'गोरी कन्यायें' कुम्हाटी के फूलों से प्रतिदिन 'संझा' माँडती हैं । नवरात्रि में स्त्रियाँ, लड़कियाँ आँगन में एकत्र होकर दीपाधार के सामने पार्वती के विवाह के गीत गाती हैं, गरबा नृत्य होते हैं ।'[42]

---

[39]- रंगभूमि : प्रेमचन्द

[40]- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा

[41]- अलग अलग वैतरणी : शिवप्रसाद सिंह

[42]- उत्तर कथा : नरेश मेहता

अशिक्षा, अंधविश्वास और गरीबी के बीच मेरीगंज में भी अब जागृति के लक्षण स्पष्ट हैं । गाँव के मठ में 'लरसिंह दास' को 'महंथी टीका' दिये जाने के पक्ष में सारे गाँव के दस्तखत कर दिये जाने पर भी गाँव का नव-जवान कालीचरन और उसके साथी सक्रिय विरोध करके स्वर्गीय महंत के शिष्य रामदास को टीका दिलवाते हैं, वे अब गाँव में अन्याय न होने देंगे ।'[64]

गंगौली के सैय्यद साहबान के कुनबे में परिवर्तन के पद चिन्ह स्पष्ट हैं । अब्बू मियाँ की लड़की सईदा अलीगढ़ में पढ़ रही है जो गंगौली के सैय्यद समाज की पहली लड़की है जो पढ़ रही है और बाहर पढ़ रही है । यही नहीं, यहाँ के सैय्यद जादे 'बागी खानदान' के 'हरामी' लड़कों से भी अपनी लड़कियों की निस्बत कर रहे हैं ।'[65]

समय के परिवर्तन का प्रभाव उज्जैन नगरी पर भी है - गौरा प्रसव के लिए अस्पताल ले जायी जाती है जबकि दुर्गा के सारे बच्चे घर में हुए थे । पंडित त्र्यम्बक शुक्ल के पुत्र विश्वेश्वर, जो जज हैं, ने बिना माता-पिता को बताये एक दक्षिणी लड़की से विवाह कर लिया है ।'[66]

प्रथम अध्याय में गाँव, नगर और महानगर की समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखते समय यह उल्लेख किया जा चुका है कि नगरों का, अस्तित्व गाँवों के विकास का प्रतिफलन है । गाँवो का प्रमुख व्यवसाय खेती रहा है । बेलारी'[67] का 'होरी' एक छोटा किसान है । बुन्देल खण्ड के 'बरौल'[68] और 'बमठा'[69] गाँव में प्रायः सभी के पास कुछ न कुछ खेत और जानवर हैं । धाम-पुर'[70] गाँव में बड़ी खेती और भूमि के स्वामी जमींदार हैं और उसी कृषि भूमि पर खेती और मजदूरी करने वाले किसान और मजदूर वर्ग । इसके विपरीत नग-रीय जनसमूह उद्योग, व्यापार तथा अन्य प्रतिष्ठानों में नौकरी द्वारा धन एवं जीविका कमाता है । वस्तुतः नगरीय व्यवस्था उद्योग, व्यापार आदि के लिए अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करती है अतः पंडित प्रियानाथ भारतीय तथा पाश्चात्य वैज्ञानिक ढंग के मिश्रित प्रयोग से अपने गाँव में खेती कराना चाहते हैं जबकि देशी

---

[64]- मैला आँचल : रेणु फणीश्वर नाथ [70]- आदर्श हिन्दू : मेहता लज्जाराम शर्मा
[65]- आधा गाँव : राही मासूम रजा
[66]- उत्तर कथा : नरेश मेहता
[67]- गोदान : प्रेमचन्द [68]-[69]- लगन : वृन्दावन लाल वर्मा

कारीगरों की बनाई व स्तुओं की बिक्री के लिए 'रमानाथ राधानाथ' नामक दुकान अजमेर शहर में खोलते हैं ।[70] शिवपुरा गाँव ॥जिला कानपुर॥ की लम्बरदारिन जैदेई का पुत्र लक्ष्मीचन्द इलाहाबाद में फर्नीचर का कारखाना खोलना चाहता है क्योंकि 'इलाहाबाद बड़ा शहर है ।'[71] लखनऊ में कल-कारखानों और मिलों का विकास 1936ई0 तक हो चुका था बल्कि मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष भी प्रारम्भ हो गया था ।[72]

जिस प्रकार गाँव की पहचान कृषि-कार्य के बिना अधूरी है उसी प्रकार नगरीय क्षेत्र की पूर्णता और पहचान, व्यव-साय, उद्योग, कारखाने और कार्यालय के द्वारा होती है। हिन्दी के पहले उपन्यास 'परीक्षा गुरु' में ही स्पष्ट संकेतित है कि मिस्टर रसल 'शीशे के बरतन का एक कारखाना'[73] दिल्ली में खोलना चाहते हैं । कानपुर शहर में प्रकाशकों और लेखकों का धंधा काफी पनप रहा है ।[74] जमींदार मदन सिंह के भाई पद्मसिंह बनारस शहर में वकालत करते हैं ।[75] रंगभूमि की कथावस्तु ही मूलतः ग्रामीण क्षेत्र के शहरीकरण की कथा है जिसमें सिगरेट कारखाने की स्थापना द्वारा टाउनशिप ॥township॥ में स्थान्तरित होते हुए पाण्डेपुर का चित्रण है । दिल्ली में जयदेव भारती आई0ए0एस0, भारत सरकार के सेक्रेटरी हैं — नौकरी पेशा हैं, लाला प्रेमलाल उद्योगपति एवं व्यापारी हैं ।[76] बरेली में पंडित सोमेश्वर दत्त डिप्टी कलक्टर हैं, मीर जाफर अली, डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट आफ पुलिस हैं, जो नाथन डेविड जज हैं — सभी नौकरी पेशा हैं ।[77] दिल्ली के राधाकान्त जौहरी का दिल्ली और कलकत्ता में आभूषणों एवं हीरे जवाहरात का व्यवसाय है ।[78] इन बड़े आदमियों के अतिरिक्त दिल्ली में पत्रकार, क्लर्क, अध्यापक आदि लोगों की काफी संख्या है ।[79] शहरों में वैविध्यपूर्ण

॥70॥- आदर्श हिन्दू : मेहता लज्जाराम शर्मा
॥71॥- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा
॥72॥- गोदान : प्रेमचन्द
॥73॥- परीक्षागुरु : श्री निवास दास
॥74॥- राधाकान्त : ब्रजनन्दन सहाय
॥75॥- सेवासदन : प्रेमचन्द
॥76॥- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा
॥77॥- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा
॥78॥- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा
॥79॥- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश

पीठिका के लिए देता है 'बूंद और समुद्र' जिसके कथा क्षेत्र लखनऊ में [illegible] कुमार त्रिभुवन नाथ वर्मा कलाकार, महिपाल शुक्ल लेखक और पत्रकार, नगीनचन्द जैन जिनकी दवाइयों की दुकान है, डा० शीला स्विंग लेडी डाक्टर आदि सभी हैं।[80] इसी प्रकार लखनऊ के राजा बाजार मुहल्ले में कोठरी वकील हैं और सेठ रतन लाल कारोबारी व्यक्ति हैं, उनका बेटा अमर सेठ डाक्टर है, मास्टर मथुरा प्रसाद वहीं रहते हैं ।[81]

शहर की जनसंख्या गाँव की अपेक्षा अधिक घनी एवं गतिशील है । अतः भीड़ नगरों की विशेषता है । सन् 1882 ई० की दिल्ली में भी भीड़ देखी जा सकती है ।[82] सन् 1912 ई० की कलकत्ता नगरी भीड़ और कोलाहल से भरी है । हावड़ा के पुल से ही रामदीन जब कलकत्ते को देखता है तो उसे लगता है जैसे "जनता का जंगल – सब मनुष्य जैसे समय और अवकाश का अतिक्रमण करके बहुत शीघ्र अपना काम कर डालने में व्यस्त हैं ।[83]

लखनऊ में भी यह भीड़ देखी जा सकती है । [illegible] के बाड़े में भी भारी भीड़ और [illegible] मच जाती है — गोमती से नहाकर लौटने वालों की आवा-जाही, भजन गाते भिखारी और फकीर, पेपर वालों की आवाज, चाय बेचने वालों की आवाज और [illegible] के मन पर औरत मर्दों की चल-चल ।[84] पुरानी दिल्ली की गली, [illegible] के बच्चों, सब्जी बेचने वालों और [illegible] वालों, नल से पानी भरने वालों तथा [illegible] करने वाली औरतों से भरी रहती है ।[85] नई दिल्ली की सड़कें मोटरों और कारों से भरी हैं । [illegible] विभिन्न बस्तियों से निकलती हैं और शाम को वापस आती हैं । अनेक प्रकार की नई पुरानी मॉडल की गाड़ियाँ, चुस्त-दुरुस्त कपड़े पहने लड़कियाँ, बस के पीछे दौड़ते हुए बाबू – सभी कनाट प्लेस पर भीड़ के रूप में देखे जा सकते हैं ।[86] इस भीड़ में विभिन्न पेशे वाले — बाबू, अफसर, पत्रकार, अध्यापक, दुकानदार, व्यापारी, राजनीतिक से लेकर भिखारी और वेश्याएँ तक सभी देखे जा सकते हैं ।

---

[80]- बूंद और समुद्र : अमृत लाल नागर
[81]- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल
[82]- परीक्षा गुरु : श्री निवास दास
[83]- तितली : जय शंकर प्रसाद [पृष्ठ 317]
[84]- बूंद और समुद्र : अमृत लाल नागर
[85]- अंधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश
[86]- अंधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश

एक विशेष बात दर्शनीय है कि गाँवों में वर्ग, जाति के आधार पर है जबकि शहरों में यह वर्ग आर्थिक स्तर के आधार पर है । पुरानी दिल्ली में ठकुराइन के घर जब नीलिमा {नई दिल्ली में रहने वाली} आती है, आस-पास के लोगों के लिए आश्चर्य की वस्तु हो जाती है । इसी प्रकार मधुसूदन को हरबंस के घर की व्यवस्था असुविधाजनक महसूस होती है क्योंकि वह उस वर्ग के समाज में रहने का आदी नहीं था ।[87]

नगर के संदर्भ में यह विशेष उल्लेखनीय है कि उसकी जनसंख्या का अधिकांश गाँव से नगर या छोटे शहरों से महानगरों की ओर आये हुए लोगों की है । रमानाथ इलाहाबाद से कलकत्ता जाता है, उसे शरण देने वाला देवीदीन भी जीविका की खोज में बलिया के गाँव से कलकत्ता आया था ।[88] घाँइसी गाँव का विमल आगरे में रहकर पढ़ता और जीविका कमाता है ।[89] गोबर बेलारी से लखनऊ आता है ।[90] "जहाज का पंछी" भी कलकत्ता में इसप्रकार के प्रवासियों का दस्तावेज ही प्रस्तुत करता है ।

गाँवों में समष्टि भावना प्रमुख है जबकि नगर में व्यक्ति भावना, 'अँधेरे बन्द कमरे' में पुरानी दिल्ली की ठकुराइन पेइंग गेस्ट को भी अपने परिवार का सदस्य समझती है जबकि नई दिल्ली में हरबंस और नीलिमा पति पत्नी होते हुए भी अपनी अपनी अस्मिता की रक्षा को लेकर एक दूसरे के लिए आत्मीय संस्पर्श से शून्य होते हैं ।[91] लखनऊ में रहकर वापस आया गोबर शहर के प्रभाव से मुक्त नहीं रह पाया है -- वह अपने माँ-बाप से अलग होकर शहर चला जाता है जबकि होरी अपने भाई के चले जाने पर उसके पूरे परिवार की परवरिश करने का दायित्व स्वेच्छा से अपने ऊपर ले लेता है ।[92]

नगरीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत गाँव क्रमशः कस्बा, नगर और महानगर के रूप में विकसित होते रहते हैं । कस्बा, चूँकि, गाँव और नगर दोनों प्रकार की जीवन शैलियों में जीता है अतः वहाँ गाँव और नगर दोनों की विशेषताएँ देखी जा सकती हैं । "शिवपालगंज"[93] में बुद्धू का पुर, 'पुरों से बढ़ाए

{87}- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश
{88}- गबन : प्रेमचन्द
{89}- रीछ : विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
{90}- गोदान : प्रेमचन्द
{91}- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश
{92}- गोदान : प्रेमचन्द
{93}- राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल

दुकानों' से लेकर तहसील, थाना, ताड़ीघर, विकास खण्ड का दफ्तर, शराबखाना और कालिज सभी कुछ हैं। यहाँ अछूतों का मुहल्ला 'चमरही' भी है और 'हुंगामल विद्यालय इण्टर कालेज' तथा डाक बंगला भी ; जहाँ पर दौरे पर आये शहरों के हाकिम ठहरा करते हैं। ग्राम सभा के चलेवाम होते हैं। मास्टर मोतीराम नामक शहर के समाचार पत्र के संवाददाता भी यहाँ रहते हैं। थानेदार, अध्यापक, वैद्य, कृषक और व्यवसायी {छोटे स्तर के} सभी की मिली जुली जनसंख्या है।

महानगर नगर का विकसित रूप है। महानगरों में जैसा कि पूर्व उल्लेख किया जा चुका है, अति व्यक्तिपरकता {या स्वार्थ भाव} अति बौद्धिकता एवं असंवेदनशीलता पायी जाती है। धन और अर्थनीति महानगरों को प्रभावित करने वाले तत्व हैं। अतः यहाँ व्यक्ति का व्यक्ति से या व्यक्ति का जनसमूह से एक अजनबीपन स्पष्ट दीखता है। 'अपने खिलौने'[94] में रानी अन्नपूर्णा, मीना भारती, अशोक सभी अपने स्वार्थ साधने में लगे हैं। हरेन्द्र का अनुभव प्रमाण है कि प्रेम, पवित्रता और सहानुभूति गाँव-देहातों की संस्कृति का सहज स्वभाव है। कलकत्ता जैसे बड़े नगरों में 'व्यर्थ की मान बड़ाई' के लिए लोग मरा करते हैं। स्वयं हरेन्द्र की माँ ने पैसे के लिए हरेन्द्र पर नालिश की है और बहन-बहनोई की माँ से मिली भगत है।'[95] {दिल्ली जैसे} महानगर के उच्चस्तरीय समाज के लिए रिपुदमन सिंह का कहना सत्य है "जिस जगह तुम हो, वहाँ हर चीज बिकती है — दीन, ईमान, सत्य, चरित्र। यह पूँजीवाद का युग है, बनिये की दुनिया है, सब कुछ बिकता है।"[96]

महानगरों में व्यक्ति अति व्यस्त है वह चाहे जीवन और जीविका को लेकर ही क्यों न हो। मधुसूदन दिल्ली की व्यस्तता को देखकर सोचता है "जिन्दगी की तेज रफ्तार"[97] के कारण कभी किसी के मन में यह बात उठने भी नहीं पाती कि जाड़े में थोड़ी देर धूप में बैठकर सुस्ता लें अथवा उमड़ते-घुमड़ते बादलों पर ही दृष्टि डाल लें। "जीवन का हर क्षण आगे आने वाले किसी एक क्षण की तरफ दौड़ा जाता था — — — — — — हर क्षण यही आशंका बनी रहती थी कि हम समय से पीछे तो नहीं छूट गए।"[98]

{94}- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा {95}- राधाकान्त : व्रजनन्दन सहाय
{96}- टेढ़े मेढ़े रास्ते [illegible] : भगवती चरण वर्मा
{97}-{98}- अंधेरे बंद कमरे : मोहन राकेश

महानगरीय बौद्धिकता या बुद्धि प्रधानता एक संवेदन शून्यता की सृष्टि करती है महानगर में । यह संवेदनशीलता का अभाव व्यक्ति के आपसी सम्बन्धों में एक अजनबीपन की सृष्टि करता है । अतः महानगर में व्यक्ति है जैसे "जंगल में भटकी रूह" और उनके पारस्परिक सम्बन्ध तो ऐसे हैं कि यदि कोई परिचित सामने पड़ जाय तो 'दोनों के चेहरे पर एक अर्थहीन मुस्कार आ जाती है जैसे न पहचानना चाहते हुए भी एक दूसरे को पहचानना पड़ रहा है ।'[99]

महानगर चूँकि विश्व ट्रैफिक और विश्व बाजार का प्रतिनिधित्व करते हैं अतः देशी-विदेशी व्यापारी, कलाकार, राजदूत सभी दिल्ली में देखे जा सकते हैं ।'[100] कलकत्ता में सेठ, ·बेवकारे, वेश्यायें, वेश्याओं के दलाल, पुलिस सभी हैं और सक्रिय हैं । रुपया 'महाचुम्बक'[101] बन महानगरी के लोगों को नचा रहा है । रेसकोर्स के मैदान भीड़ से भरे हैं । 'मिस सायमन'[102] जैसी सम्भ्रान्त [?] महिलायें चकला चला रही हैं — मूल में है अधिक और अधिक पैसा कमाना ।

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि नगर अथवा महानगर की जनसंख्या का अधिकांश भाग जीविका की खोज में गाँव या कस्बे से आये हुए लोगों का है । दिल्ली में मधुसूदन'[103], रमेशचन्द्र'[104], राम प्रकाश ; कलकत्ते में सेवक'[105] देवीदीन'[106], सब्जी वाला, मधुवन'[107] —— ये सभी छोटी जगहों से महानगरों में आये हैं ।

नगरों में राजनीतिक चेतना के उदय और विकास को उपन्यासों के दर्पण

---

[99]-[100]- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश
[101]-[102]- जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी
[103]- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश
[104]- रहस्य मयी : [illegible] चरण जैन
[105]- जहाज का पंछी : इलाचन्द्र जोशी
[106]- गबन : प्रेमचन्द
[107]- तितली : जयशंकर प्रसाद

में यदि देखा जाय तो इसकी परम्परा प्रेमचन्द के उपन्यासों से प्रारम्भ होकर नरेश मेहता की 'उत्तरकथा' तक अविच्छिन्न रूप से चलती रही है । राजा महेन्द्र कुमार और मिस्टर क्लार्क की राजनीतिक चाल के समानान्तर 'पांडेपुर' के दुरवास तथा वहां के रहने वालों का शासन के विरुद्ध सत्याग्रह, गांधी जी की राजनीति का छोटा एवं औपन्यासिक संस्करण कहा जा सकता है ।"[108]

इस संदर्भ में भगवती चरण वर्मा का "भूले-बिसरे चित्र" एक महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें चार पीढ़ियों को लेकर कथावस्तु का विकास किया गया है । मुंशी शिवलाल के समय में अंग्रेजी शासन था । अतः उनके युग में राजनीति नहीं, सामान्य जनता में राजभक्ति चलती थी । दूसरी पीढ़ी ज्वाला प्रसाद के समय में भी राजभक्ति राजनीति का पर्याय रही । तीसरी पीढ़ी गंगा प्रसाद के समय में राजभक्ति और देश प्रेम तथा अधिकार चेतना समानान्तर चलने लगी है हिन्दुस्तान की राजधानी कलकत्ते से बदल कर दिल्ली होने जा रही है. अतः दिल्ली दरबार का प्रबंध करने वाली कमेटी में अपना अपना नाम रखवाने के लिए हिन्दुस्तानी अफसरान अंग्रेज साहबों की चाटुकारी करते हैं । जबकि जौनपुर में शासक वर्ग के प्रतिनिधि गंगा प्रसाद डिप्टी कलक्टर के खिलाफ तो जुलूस निकलता ही है 'खिलाफत जिन्दाबाद - - - - गंगा प्रसाद मुर्दाबाद' के नारों के साथ, ब्रिटिश हुकूमत' के खिलाफ भी हड़तालें होती हैं, चरखा चलाया जाता है, खादी और स्वदेशी माल वस्तुओं का प्रचार किया जाता है, विदेशी माल का बहिष्कार किया जाता है । राष्ट्रीय आन्दोलन कानपुर में जोर शोर से चल रहा है -- कांग्रेस का जुलूस निकलता है, विदेशी कपड़ों की होली जलायी जाती है ।"[109] गंगा प्रसाद के पुत्र नवल की पीढ़ी [चौथी पीढ़ी] राजनीतिमें मात्र प्रेक्षक बनकर नहीं रहती । नवल स्वदेशी आन्दोलन के तहत नमक का कानून तोड़कर जेल जाता है ।

कांग्रेस के स्वदेशी आन्दोलन के देशव्यापी प्रभाव से लखनऊ भी अछूता नहीं है । सेठ रतन लाल जैसे लोगों ने "ढक्का हबिब" के स्थान पर 'महीन गाढ़ा' या देसी मिलों का मोटा कपड़ा प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है ।"[110] कोहली वकील अब 'काले विकोना' की शेरवानी छोड़कर 'देसी कपड़े' की खादी शेरवानी और 'किश्तीनुमा' टोपी पहनने लगे हैं -- यद्यपि कि ये लोग सक्रिय राजनीति

[108]- रंगभूमि : प्रेमचन्द [109]- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा[पृ045]।
[110]- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल

अथवा सामान्य राजनीति से भी दूर हैं ।"[111]

सन् 1945 ई0 तक आते - आते भारतीय राजनीति में हिन्दू-मुसलमान जाति-भेद प्रवेश करने लगा है । सेठ रतन लाल की कृपा पात्री 'हंसा' का नाती {मुन्नी रतनी का पुत्र} कहता है "हमारे लिए अव्वल सवाल रोटी-रोटी का नहीं, पूर्वे दीन हुकूमते इलाही कायम करना, पाकिस्तान है ।"[112] इस भेद की राजनीति की गवाह 'आधा गाँव' की 'गंगौली' भी है ।"[113]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीति ने दूसरा रुख लिया है । चुनाव के प्रत्याशी नेता लोग गली मोहल्लो में घटित दुर्घटनाओं का सदुपयोग {?} कर इलेक्शन में जनता का वोट अपनी तरफ खींचने में लगे हैं । लखनऊ की गली - मुहल्ले के पुरुष वर्ग जनसंघ, कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी में बंटे हैं पर स्त्रियों के लिए राजनीति यहाँ केवल वोट डालने तक ही सीमित है और वोट 'मेल-मुलाकिलों में की जाने वाली एक कार्यवाई' मात्र है ।"[114]

समसामयिक राजनीति का बेबाक लेखा जोखा प्रस्तुत करता है "नेता जी कहिन" जिसमें हट गये भी नेता का लक्ष्य है कि एक 'करोड़ रुपये की व्यवस्था' हो जाय ताकि 'भजन कीर्तन' चलता रहे । वह, यह मान कर चलते हैं कि "सकल पदारथ है जग माहीं" बाकी इतना जरुर है कि 'हेर-फेर बिन पावत नाहीं ।' बकौल 'नेता जी' नेता जी की हैसियत हर जगह सेवक की है और यह सेवा ऐसी जिसमें मेवा की गुंजाइश नहीं । राजनीति में कोई आदमी किसी का नहीं होता । जो भी राजनीति में आता है वह अपना जीवन राष्ट्र को समर्पित कर देता है । वह पूरे देश का आदमी होता है । "देश सेवा का ठेका जो भी है उसका यह साथ देता है ।"[115]

नगर की संस्कृति मूलतः अर्थ प्रधान रही है - नौकरी, व्यापार और उद्योग अर्थोपार्जन के साधन रहे हैं । ज्यों ज्यों जनसंख्या बढ़ती जाती है अर्थोपार्जन के साधन कम होते जाते हैं - भविष्य अनिश्चित और असुरक्षित होता जाता है । जनक का मित्र, इलाहाबाद में भरे इलाहाबाद विश्व विद्यालय के विद्यार्थियों

{111}-{112}- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल
{113}- आधा गाँव : राही मासूम रज़ा
{114}- बूँद और समुद्र : अमृत लाल नागर
{115}- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी

को देखता है और कहता है, "लेकिन इस उत्साह और उमंग की तह में है क्या ? परीक्षा पास करना, अच्छा डिवीजन पाना और फिर नौकरी की तलाश में दर-दर घूमना ।"[116]

अर्थ ही संचालित कर रहा है भारतीय समाज को । इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की छात्रा प्रभा अपने प्रेमी से विवाह न कर पाने का कारण बताती है कि 'एक छोटा सा बंगला' 'चार छः नौकर' 'एक कार और प्रति महीने कम से कम 'एक हजार रुपये' [1936 ई0 में] उसकी आवश्यकता है और चूँकि रमेश इन सब सुविधा करने में असमर्थ है अतः वह उससे विवाह नहीं कर सकती ।"[117] इसी प्रकार पिता गंगा प्रसाद के मर जाने पर विद्या का विवाह उस लड़के से नहीं हो पाता जिसे उसके पिता ने तय किया था क्योंकि वर पक्ष को अब पर्याप्त या अपेक्षित धन दहेज के रूप में नहीं मिल सकेगा । पुत्र नवल की भी सगाई टूट जाती है क्योंकि अब उसकी स्थिति आर्थिक रूप से डगमगा गई है । जहाँ समाज में अर्थ लिप्सा बढ़ी है वहीं नई पीढ़ी इन आर्थिक समस्या और सामाजिक रूढ़ि से निपटने के लिए सक्षम और सक्रिय हो रही है । स्वर्गीय गंगा प्रसाद डिप्टी कलक्टर की पुत्री विद्या नौकरी करने का निश्चय करती है और नारी शिक्षा सदन में अध्यापिका हो जाती है ।"[118]

नगर में मध्यवर्गीय आर्थिक समस्याओं से जूझता है और उसे पूरा करने के लिए महिपाल शुक्ल जैसा लेखक रेडियो के लिए नाटक, वार्तायें लिखता है ।"[119] राजा बाजार की छोटी गली में किराये के मकान में रहने वाले ठाकुर साहब ने मास्टर मथुरा प्रसाद को 'शिकमी किरायेदार' के रूप में रख लिया है ।"[120] पुरानी दिल्ली में ठाकुर साहब नामक व्यापारी ने अपने किराये के मकान का एक हिस्सा हरबंस और मधुसूदन को सबलेट कर दिया है ।"[121]

इसके अतिरिक्त प्रायः नगरों में समय के साथ परिवर्तन होते रहते हैं जिसे वहाँ प्रतिदिन के रहने वाले जान नहीं पाते । जब स्थानीय व्यक्ति कुछ

---

[116]- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा
[117]- तीन वर्ष : भगवती चरण वर्मा
[118]- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा
[119]- बूंद और समुद्र : अमृत लाल नागर
[120]- मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल
[121]- अँधेरे बंद कमरे : मोहन राकेश

अन्तराल के बाद उक्त क्षेत्र को पुनः देखता है तब वह इस परिवर्तन को लक्ष्य करता है। श्रीधर बीस वर्ष बाद वापस फिर मालवा में अपने कस्बे की ओर लौटता है तो वह देखता है कि कस्बे में नई-नई कालोनियाँ बन गई हैं ; 'फट-फटियों का शोर' 'ट्रक की भरमार' 'सायकिलों की बढ़ती' देखकर उसे लगता है शहर का प्रभाव बढ़ गया है।'[122] वेश – भूषा में भी परिवर्तन दिखता है, लाल पगड़ियाँ अब कम दिखती हैं।

दस बरस बाद 'तन्नू' जब अपने गाँव 'गंगौली' आता है तो उसे गाँव में बड़ा परिवर्तन दीखता है – कई मकान 'पुख्ता' बन गए हैं, दरजी गुलजार ने फौज वालों को गल्ला सप्लाई कर काफी पैसा कमा लिया है। गाँव वालों में अधिकार देखना जगी है, वे अब बगावत करना सीख गए हैं — थानेदार तक से। जवादमियाँ का लड़का कम्मो – कमाल ने होम्योपैथी डॉक्टरी से हकीम अली कबीर की हिकमत को परवश कर गाँव में 'हंगामा' खड़ा कर दिया है। सुखरमवा चमार का लड़का परसरमवा — परसराम गाँव का लीडर होकर एम०एल०ए० हो गया है ; सफेद बगुले की तरह उजले कपड़े पहनता है, प्रतिष्ठित ठाकुर कायस्थों के बीच बैठता है, मियाँ लोग भी उसे कुर्सी देते हैं।'[123]

मधुसूदन नौ साल बाद जब दिल्ली आता है तो उसे दिल्ली 'बिल्कुल नया और अपरिचित शहर' लगता है। उसे अपने परिचित चेहरे भी इतने बदले लगते हैं कि 'पहले चेहरे से उसकी कोई समानता नहीं रहती।'[124]

इस प्रकार विभिन्न संदर्भों – सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक के अन्तर्गत गाँव, नगर और महानगर के विकास क्रम में यह देखा जा सकता है कि वे अपने मूल चरित्र में एक दूसरे से कितने भिन्न होते गए हैं। संक्रान्ति-कालीन परिवर्तन की प्रक्रिया में गाँव, कुछ नगरीय और नगर महानगरीय विशेषताओं के निकट जा रहे हैं — मानसिक और भौतिक धरातलों पर समानान्तर रूप से। गाँव और नगर का यह विकास क्रम परिवर्तन की स्वाभाविक प्रक्रिया का प्रतिफलन है और उपन्यास इसके व्यापक दस्तावेज।

---

(122) – यह पथ बंधु था : नरेश मेहता
(123) – आधा गाँव : राही मासूम रज़ा
(124) – अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश

पंचम अध्याय

दिल्ली के विविध चित्र

प्रथम अध्याय

दिल्ली के विविध चित्र

परीक्षा गुरु ॥ श्री निवास दास 1882 ई0 ॥

उपन्यास आधुनिक नगरों की साहित्यिक देन है । विश्व की भाषाओं के प्रारम्भिक उपन्यास के कथानक किसी न किसी नगर से जुड़े हैं । हिन्दी के भी सभी प्रारम्भिक उपन्यास काशी, प्रयाग, दिल्ली अथवा आगरा से किसी न किसी प्रसंग से जुड़े हैं । हिन्दी का प्रथम मान्य उपन्यास 'परीक्षा गुरु' दिल्ली के एक 'कल्पित रईस' 'कुछ विदेशी व्यापारी, स्वदेशी व्यापारी, भिन्न भिन्न पेशों के लोग तथा इन सबके आपसी सम्बन्ध और रंग-ढंग, कचहरी, हवालात, रईसी घर-बार और इनसे सम्बध्द घटनाओं का चित्र प्रस्तुत करता है ।'[1]

दिल्ली में रह रहे रईस लाला मदन मोहन विलायती ढंग के रहन-सहन को अपना कर समाज में अपना विशिष्ट स्तर प्रदर्शित करना चाहते हैं । आज भी यह वैभव और स्तर प्रदर्शन, पाश्चात्य जीवन पध्दति महानगरीय सभ्यता का प्रमुख चरित्र है । लाला मदन मोहन 'मिस्टर ब्राइट' की दुकान से साज-सज्जा का सामान खरीदते हैं मिस्टर ब्राइट से हाथ मिलाते हैं । वे 'कम्पनी बाग' में मित्रों की टोली के साथ मौज मनाने आते हैं । उनके घर लखनऊ की 'अमीरजान' की महफिल जमती है । 'सोशल स्टेटस' के लिए घोड़साल में तरह तरह के घोड़े भी खरीदे जाते रहते हैं । तत्कालीन दिल्ली के सामाजिक जीवन में पुरानी विचार धारा और आधुनिक जीवन पध्दति दोनों समानान्तर चल रही हैं पर आग्रह आधुनिकता की ओर अधिक है ।

उन दिनों पुरुषों की घर की जिन्दगी और बाहरी जीवन अलग-अलग थे । अतः रईसों के विलास भवन घर से अलग और दूर हुआ करते थे । लाला मदन मोहन का विलास भवन विभिन्न वाद्य यन्त्रों, खेल के सामान, बहुमूल्य साज-सज्जा सामग्रियों एवं विलास उपकरणों से युक्त है । लाला मदन मोहन के आस-पास शिंभु दयाल, बैजनाथ, चुन्नीलाल आदि अनेक चाटुकार मित्र मंडली अपना उल्लू सीधा करने के लिए जुटी रहती है । धन-कुबेरों तथा अच्छी पोस्ट और पोजीशन वालों के पास आज भी ऐसे लोगों की भीड़ देखी जा सकती है-विशेष रूप से दिल्ली में ।

॥1॥- परीक्षा गुरु : श्री निवास दास ॥ पृष्ठ 6 ॥

इस दिल्ली में स्त्री अभी अपनी परम्परा में ही जी रही है। नाच रंग में लिप्त लाला मदन मोहन की उपेक्षिता पत्नी अपने पति को देवता समझती है। खाने-पीने से लेकर उसकी हर सुख-सुविधा का ध्यान रखती है। घर से बाहर यदि कभी उसे निकलना पड़े तो 'डहलनी' लेकर निकलती है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में स्त्री की भूमिका अन्तःपुर तक ही है। सम्मिलित परिवार चल रहे हैं – लाला व्रजकिशोर पर अपने भाइयों के पढ़ाने का दायित्व है।

अखबार का प्रचलन है तो पर विशेष वर्ग के लोगों के ही घर अखबार मंगाया जाता है। ये अखबार बुद्धिजीवी लोगों के शौक और साहस के बल-बूते पर निकलते थे — व्यावसायिक दृष्टि से दूर।

औद्योगीकरण जो नगर-महानगर का प्रमुख अंग बन गया है, उसके अंकुर भी इस उपन्यास में देखे जा सकते हैं। 'मिस्टर रसल' दिल्ली में 'शीशे के बरतन का एक कारखाना' खोलना चाहते हैं।

हिन्दी उपन्यास विधा का प्रथम सफल प्रयास होने के कारण प्रस्तुत कथाकृति में नगर अथवा मध्यवर्गीय जन-जीवन से सम्बद्ध हल्की रेखायें ही मिल पाती हैं जो उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध की दिल्ली है।

<u>दिल्ली का व्यभिचार |ऋषभ चरण जैन 1929 ई0|</u>

प्रस्तुत कथाकृति दिल्ली की तड़क-भड़क के पीछे पनप रहे व्यभिचार के ऐसे चित्र प्रस्तुत करती हैं जो तत्कालीन |सन् 1929| दिल्ली के |प्रदूषित| समाज को अनावृत्त से करते हैं।

दिल्ली में पीर-फकीर के नाम पर अनेक अनैतिक क्रिया-कलाप चल रहे हैं। कुतुब की लाट के पास, पहुँचे हुए पीर बाँझों को बच्चों का सफल वरदान देते हैं। लाला किशन की पत्नी कलावती को पुत्र पाने के लिए, फकीर के आग्रह पर 'खुदा' को सर्वांग दिखाने के लिए निर्वस्त्र होना पड़ता है और उस फकीर की भोग्या बनना पड़ता है। 'चीदानन्द' जैसे तथाकथित बाल ब्रह्मचारी अँधेरी गली के अपने छोटे से मकान में अनैतिक कर्म में रत हैं।

दिल्ली के इस्लामिया स्कूल के स्कूल मास्टरों में सम्लैंगिक संभोग की बीमारी घर करती जा रही है – ये सार्वजनिक रूप से बात देश-सेवा, अनुशासन और

चरित्र-निर्माण ही करते हैं । स्काउट मास्टर बालकों को लेकर आगरे जाते हैं। वहाँ लड़कों की मास्टर साहब के साथ सोने की 'ड्यूटी' लगी हुई है । इस बीमारी के शिकार स्कूल के लड़के भी हैं जो सम्पन्न घरों के हैं । स्कूल प्रांगण के बाहर सिनेमाघरों से लेकर एडवर्ड पार्क के कुंजों के अन्दर दिल्ली के सम्पन्न परिवार के लड़कों की आपस में यह पाप लीला चलती रहती है । पुलिस तक यदि बात पहुँचती है तो लेदे कर मामला रफा-दफा कर दिया जाता है । बहुधा तो सिपाहियों का हेड ही लड़के (राँद नारायण) को लेकर स्वयं कुंज में चला जाता है । यदि कोई जागरूक कर्तव्य-परायण नागरिक उन्हें अपने कर्तव्य के प्रति सावधान करता है तो दो-तीन दिन बाद उसकी लाश कुँए में मिलती है ।

बड़े घरों के लड़कों का अपने ट्यूटर के साथ अनैतिक सम्बन्ध है । कारण स्कूल का अस्वस्थ वातावरण और बच्चों के माता-पिता की उदासीनता या उपेक्षा तथा सतर्क दृष्टि का अभाव । संरक्षक व्यस्त हैं दफ्तर या दुकान को लेकर, पैसे के पीछे ।

स्कूलों के गुंडे टाइप लड़के सामान्य लोगों के लिए आतंक बने है । भले घर के लड़के - लड़कियों की जान और इज्जत के साथ खेलना इनका पेशा है मास्टरों को पिटवा देना उनके बायें हाथ का खेल है ।

कई गाँवों के ज़मीदार आसामियों से क्रूरता पूर्वक रुपये वसूल कर, दिल्ली में मौज-मजा करने के लिए आते हैं —"फिल्म ऐक्ट्रेस" के साथ, वेश्याओं के साथ । वे लोग, भिखारी भीख माँगता है तो कहते हैं, "कमा के खाओ और हंडी नचाते हैं तो उदारता की मूर्ति बन जाते हैं ।-2

यह व्यभिचार घरों के भीतर भी है । गृहपति "रंडियों पर सर्वस्व फूँक उड़ाने वाला" पत्नी पर-पुरुष-सम्बन्ध-रता, पुत्रियाँ नौकरों से "मुँह काला" करने वाली हैं । पुरुष वेश्यालय भी हैं यहाँ, जहाँ वेश्यागामिनी पुरुषों की पत्नियाँ साहचर्य-सुख लेने आती हैं । स्त्रियों को पथभ्रष्ट करने में घर में काम करने वाली "नौकरानियों" और गली मोहल्ले की "बूढ़ी भगतिनों" का विशेष हाथ होता है । ये ही भले घर की स्त्रियों को "औलियों" "फकीरों" तक पहुँचाती हैं ।

{2}- दिल्ली का व्यभिचार : कृष्ण चन्द्र जैन { पृष्ठ 47 }

और ओछे आदमी आपको धरती पर ढूंढे नहीं मिलेंगे । - - - - - यहाँ मिस उसी की लगती है जिसके मुँह में राम बगल में छुरी हो ।"[4]

'पाश्चात्य भारतीयता' में डूबी देवी जी 'लाइट प्रेस' की संचालिका और 'महिला' मासिक पत्रिका की सम्पादिका हैं । उनके विदुषी होने और समाज सेविका होने का बड़ा प्रचार है । कुछ ही लोग जानते हैं कि वह अपने स्वामी को मार कर "अपने यार" के साथ, दस हजार का जेवर लेकर भागी थीं — बाद में उसका भी काम तमाम करके निकल भागीं । अब प्रेस और पत्रिका चला रही हैं । व्यक्तिगत जीवन में अनेक सुन्दर नवयुवकों को फँसाकर भ्रष्ट करना इनका मनोरंजन है ।

उक्त उपन्यास के एक पात्र हकीम जी की निगाह में "दिल्ली वह माशूका है जो कभी बूढ़ी नहीं होती ।"[5]

"रहस्यमयी' में देवी जी" को केन्द्र में रखकर जिस दिल्ली का चित्रण लेखक ने किया है वह आकर्षक और सम्मोहक दिल्ली को बेनकाब करके उसके वास्तविक रूप के दर्शन कराती है —"देवी जी" मानो मानवीकृत [personified] दिल्ली ही हों ।

<u>अपने खिलौने : [भगवती चरण वर्मा 1957 ई0]</u>

दिल्ली में पैसे और पोजीशन वालों की अपनी बिरादरी है । जयदेव भारती आई0ए0एस0, युवराज वीरेश्वर प्रताप — फर्स्ट सेक्रेटरी फ्रांस के एम्बेसडर के, कई मिलों के मालिक अशोक गुप्ता, अपने मिल की मैनेजिंग डाइरेक्टर अन्नपूर्णा बंसल — ये सब एक बिरादरी के लोग हैं । अशोक गुप्ता अपने को कलाकार और साहित्यकार मानता और प्रदर्शित करता है — बड़े आदमी का शौक । उसका लिखा नाटक 'गरल तरल' स्कूलों में पढ़ाया जाता है । मीना के अनुसार 'तीन हजार की रिश्वत' देकर अशोक गुप्ता ने उसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित करवाया है जिसे वह 'सहायता के रूप में दान' कहता है ।

यहाँ यदि कोई चन्दा भी देता है तो यह सोचकर कि उस चन्दे से

[4]- रहस्यमयी : ऋषभ चरण जैन [पृष्ठ 22]
[5]- रहस्यमयी : ऋषभ चरण जैन [पृष्ठ 52]

उसका कई गुना लाभ वह कमा सकता है । अशोक गुप्ता 'कला भारती' को पाँच हजार का चन्दा देता है क्योंकि 'कलाभारती' को सरकार से पाँच लाख का अनुदान मिलने वाला है । 'कलाभारती' के चार लाख के वाद्य यन्त्र अशोक गुप्ता के बम्बई स्थित 'स्वरारोह' नामक वाद्ययन्त्र विक्रेता फर्म से खरीदे जायेंगे।

दिल्ली में कला प्रदर्शनियाँ फैशन बनती जा रही हैं विशेषकर सम्पन्न लोगों के बीच । युवराज की चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन गृहमंत्री के हाथों होता है । विशिष्ट अतिथियों में दूतावासों के कला प्रेमी प्रतिनिधि हैं । नगर के प्रमुख कलाप्रेमी — बड़े-बड़े व्यापारी और ठेकेदार तथा उनकी पत्नियाँ, सपत्नीक बड़े-बड़े सरकारी अफसर इधर-उधर बातें करते दीख पड़ते हैं। कलाकारों और प्रदर्शनी संयोजकों के लिए गृहमंत्री 'साक्षात भगवान' हैं और गृह-मंत्री पर विदेश (फ्रांस) में रह आये आधे देशी आधे विदेशी युवराज चौधेश्वर प्रताप का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है । कला समीक्षक भी युवराज से एक बात कर लेने के लिए आतुर हैं । दिल्ली में आयातित वस्तु और विदेश में रह आये भारतीय की विशेष मान्यता है लोगों की दृष्टि में ।

दिल्ली में चित्रकला सिखाने की कई संस्थायें या स्कूल चलते हैं । श्रीमती वेरा कोमल ने भी एक चित्रकला का स्कूल 'कोमल कला कुंज' के नाम से अपने निवास स्थान पर ही खोल रखा है जिसकी वह स्वयं प्रधान अध्यापिका है ।

यहाँ बड़े आदमियों के बीच पार्टियाँ देने का फैशन है — चौधेश्वर प्रताप अपने पुराने दोस्तों, परिचितों को खिलाना पिलाना चाहते हैं और उधर 'दिल्ली में ऐसे मुफ्त खोरों की कमी नहीं है जो किसी न किसी किस्म से जबर-दस्ती निमंत्रण पत्र प्राप्त करने के फिराक में रहते हैं ।'[6] यह मुफ्तखोरी खाने-पीने तक ही सीमित नहीं है, हीरे-पन्ने के बहुमूल्य आभूषण भी यदि धांधली-बाजी से हाथ आ जाँय तो वह भी हजम किये जा सकते हैं । आई०ए०एस० की पुत्री वीणा भारती जैसे लोगों में भी यह मुफ्तखोरी पायी जाती है ।

दिल्ली में हर सम्बन्धों के बीच या तो लेन-देन का सम्बन्ध है या फिर व्यावसायिक दृष्टि । भारती जी के साले का लड़का रामप्रकाश अपने

---

(6)- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा (पृष्ठ .97)

से काफी बड़ी अन्नपूर्णा जी से प्रेम करने का नाटक रचकर उनसे विवाह करना चाहता है क्योंकि 'डेढ़ दो करोड़ की मिल है उनकी, फिर वह ऐसी असुन्दर और बूढ़ी भी नहीं हैं।'[7] लाला प्रंचम लाल अन्नपूर्णा का विवाह होने नहीं देना चाहते कि मिल हाथ से निकल न जाय। भारतीय परम्परा और दिल्ली का जीवन दो अलग अलग चीज हो गई है आजकल। रामप्रकाश कहता है, "मैं तो अभी तक भारतीय परम्परा में पला हूँ। दिल्ली के जीवन में तो मैं आप लोगों की कृपा से प्रवेश कर रहा हूँ।"[8]

दिल्ली के जीवन में सब अपने-अपने खिलाड़ी हैं, सबके अपने-अपने खिलौने है। युवराज वीरेश्वर प्रताप पर मीना आसक्त है, युवराज पर ही रानी अन्नपूर्णा आसक्त हैं, इधर अशोक गुप्ता मीना पर भी जान से निछावर है और रामप्रकाश रानी अन्नपूर्णा को साध रहा है। यह दिलबहलाव और व्यावसायिक दृष्टि आज की दिल्ली का प्रमुख चरित्र है।

<u>भूले बिसरे चित्र :- (भगवती चरण वर्मा 1959 ई0)</u>

विभिन्न नगरों की पृष्ठभूमि पर कथानक का विस्तार करते हुए लेखक ने प्रासंगिक रूप से दिल्ली को भी कथा-क्षेत्र बनाया है। चित्रण उस समय का है जब भारत की राजधानी कलकत्ता से बदल कर दिल्ली होने जा रही है।

अब हिन्दुस्तान की राजधानी कलकत्ता से बदलकर दिल्ली होने जा रही है। गंगा प्रसाद डिप्टी कलक्टर अपनी पत्नी को दिल्ली दरबार दिखाने ले जाना चाहते हैं पर इलाहाबाद में रहने वाली उनकी पत्नी को पति के साथ बाहर घूमने में लज्जा आती है।

दिल्ली में नये सिरे से नये ढंग से दिल्ली दरबार के लिए नगर बस रहा है — दिल्ली के उत्तर में पहाड़ी के नीचे जहाँ आजकल विश्वविद्यालय है वहाँ से दिल्ली के किंग्स वे कैम्प तक हर जगह काम हो रहा है। हजारों मजदूर लगे हुए हैं, सड़कें बन रही हैं, खेमे डाले जा रहे हैं। बीस-पचीस वर्गमील में कनातों और खेमों का सुन्दर नगर बस रहा है। देश भर की सामग्री उमड़ी पड़ रही है - हीरे, जवाहरात, सोना, चाँदी से लेकर आटा, घास भूसी तक।

---

[7]- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ 74
[8]- अपने खिलौने : भगवती चरण वर्मा पृष्ठ 69

है कि मैं झूठ और फ़रेब की दुनिया में आ गई हूँ और ये झूठ और फ़रेब मेरे व्यक्तित्व के साथ घुल-मिल गये हैं । उस समय मुझे अपने से वितृष्णा होने लगती है, लेकिन दूसरे ही क्षण सत्य मेरे सामने आ जाता है । यह सफलता, यह सुख, यह वैभव - ये सब झूठ और फरेब की ही उपज तो है । जिसे लोग गिरना कहते हैं, वही ऊपर उठना है ।"[11]

कलकत्ता में सन्तो गंगा प्रसाद के सामने स्वीकार करती है कि मेजर वादल से उसके घनिष्ट सम्बन्ध थे, "मैं सन्तो से सत्यवन्त कुँवरि बन गई हूँ यह कुछ ऐसे ही ? उन्हें {सेठ राधा किशन को} ढाई - तीन लाख रुपये का मुनाफा हुआ, राजा-महाराजाओं के जौहरी बन गए । - - - मेजर वादल चाहता था मेरा रूप, वह चाहता था मेरी जवानी और बदले में दे रहा था पद, मर्यादा, रुपया-पैसा । क्यों, क्या बेजा था यह सौदा ।"[12] यह सौदेबाजी यहाँ के उच्च वर्ग के लोगों के जीवन का अंग हो गई है । यह सब देख-सुन कर मूलतः इलाहाबाद शहर और इलाहाबाद जनपद के कस्बों में पला-बढ़ा गंगा प्रसाद सोचता है 'यह वैभव, यह भोग - विलास, यह आमोद-प्रमोद, यह सब नरक है, भयानक नरक'[13]— यही दिल्ली है ।

अँधेरे बन्द कमरे {मोहन राकेश 1961 ई0}

लेखक ने प्रस्तुत कथाकृति को "आज {सन् 1961} की दिल्ली का रेखाचित्र' के रूप में प्रस्तुत किया है ।

नौ वर्ष बाद जब मधुसूदन फिर दिल्ली आता है तो उसे दिल्ली बहुत बदली हुई लगती है । जनपथ के चौराहे पर 'मोटरों और बसों की भीड़ में' सड़क भरी है । 'काफी हाउस' विशिष्ट वर्ग {?} का एक अड्डा बन गया है बल्कि यों कहना चाहिए कि आधुनिक सभ्यता का एक अंग बन गया है ।

बम्बई, दिल्ली आदि महानगर व्यस्तता के शिकार हैं । राजधानी

{11}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 379}
{12}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 390}
{13}- भूले बिसरे चित्र : भगवती चरण वर्मा {पृष्ठ 401}

में, जहाँ आये दिन कोई न कोई विशिष्ट व्यक्ति {वी0आई0पी0} आते रहते हैं उसकी व्यस्तता का क्या कहना ? 'राजधानी में जीवन की गति इन दिनों इतनी तेज हो जाती है कि एक दिन का समय दिन भर के कार्यों के लिए कम प्रतीत होता है ।'[14] "जीवन का हर क्षण आगे आने वाले किसी और क्षण की तरफ दौड़ा जाता था - - - - - हर क्षण यह आशंका बनी रहती थी कि हम समय से पीछे तो नहीं छूट गए ।'[15]

सुबह-सुबह हजारों साइकिलें विभिन्न बस्तियों से निकलती हैं और शाम को वापस जाती हैं। विभिन्न प्रकार की नई-पुरानी गाड़ियाँ हार्डिंग रोड, सुन्दरनगर, चाणक्यपुरी, नार्थ एवेन्यू, जनपथ, राजपथ, ओल्ड मिल रोड, पार्लियामेन्ट स्ट्रीट, कनाट प्लेस और कनाट सर्कस पर दौड़ती रहती हैं । चुस्त-दुरुस्त कपड़े पहने लड़कियों से लेकर बस के पीछे दौड़ते हुए बाबू, सभी कनाट सर्कस पर देखे जा सकते हैं ।

वक्त की दौड़ में स्वेच्छा से अपनाई गई यह व्यस्तता महानगर में आपसी सम्बन्धों से अधिक मूल्यवान हो गई है । हर आदमी 'व्यक्तिगत सुख'/'सोशल स्टेटस' प्राप्त करने के लिए व्यस्त है महानगर में —'दाँव-पेंच', 'मुलाकातें', 'पार्टियों', काफी हाउस आदि आदि में ।

यहाँ हर एक आदमी दूसरे को अविश्वास की नजर से देखता है, खुद झूठ बोलता है पर दूसरों के झूठ पर नाक-भौं चढ़ाता है । बड़े लोगों से मिल कर, अपने सहयोगियों, मित्रों को बेवकूफ बनाकर, अपना उल्लू सीधा करता है । सरकार से काम निकालता है और दोस्तों में बैठ कर सरकार की निन्दा करता है । {तथाकथित} इन्टेलेक्चुअल वर्ग का व्यक्ति बड़ी-बड़ी डींगें मारता हुआ विदेश में जाकर रहने का स्वप्न देखता है ।

पुरानी दिल्ली इससे काफी भिन्न है । पतली, गन्दी गलियों के अन्दर छोटे, अँधेरे घर में रहने वाले लोग अपने उस छोटे घर की छोटी कोठरी को सबलेट {sublet} कर पैसे लेते जीवन गुजारते हैं । कल्लाबपुरा की गली में 'शाहद लाइन' नामक एक दफ्तरी के घर के एक कमरे में अपने मित्र अरविन्द के

{14}-{15}- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश { पृष्ठ 160-161 }

साथ मधुसूदन रहता है शिकमी किरायेदार होकर ।

रात को चकाचौंध रोशनी वाले इलाकों में भी जब दुकानें बन्द हो जाती हैं तब दुकानों के बाहर, फुटपाथों पर कोई और कम्बल ओढ़कर लोग सोते दीखते हैं । छोटे-मोटे नगरों और गाँवों से जीविका के लिए इस महानगरी में आये हुए ये लोग यहाँ एक विसंगति से लगते हैं । दिल्ली के काठ बाजार में किया बाजार के सत्य एवं घिनौने दृश्य एक संवेदनशील आदमी को झकझोर से देते हैं ।

पुरानी दिल्ली के कस्साबपुरा का जीवन-समाज एक खास कस्बाई टाइप के जीवन समाज का चित्र है जो नई दिल्ली के जीवन से एकदम भिन्न है । दुर्गंध, सड़ांध भरी गलियाँ, किरायेदारों और उनके बच्चों की हू-हकार गली में सब्जीवालों के आस-पास भीड़ और शोर – एक सामान्य बात है । ठकुराइन, गोपाल की माँ और राजू की भौजाई जैसी औरतें भोंड़े हँसी मजाक करती हुई, गली-मोहल्ले वालों पर टीका-टिप्पणी करती हुई अँगीठी सुलगाती जाती हैं ।

नई दिल्ली के उच्च वर्ग के लोगों में काफी हाउस, क्लब, टैक्सी, पालिटिक्स के ऊपर बातें होती हैं, कहीं आफिस तथा उसकी दिनचर्या पर । न कला है, न कलावन्त और न कलापारखी । 'थियेटर, रेस्तोरांरियो और प्रदर्शक । कला की दुनिया का व्यावसायिक पक्ष ।'-16 दिल्ली में मानव सम्बन्ध, कला, शिष्टाचार – सबका व्यावसायिक पक्ष ही सब कुछ है, रूप कुछ भी हो । हर रख-रखाव में यहाँ एक 'अतिरिक्त सजगता' दिखाई पड़ती है । यहाँ लकदक लिबासों में विशिष्टता का व्यक्तित्व ओढ़े हुए (आम आदमी से अलग) दिखते लोग अपने वास्तविक और व्यक्तिगत जीवन में, हो सकता है किसी प्रकार मजबूर जिन्दगी जी रहे हों । महानगर का हर आदमी दोहरी, तिहरी जिन्दगी जीता है और यह पता चला पाना मुश्किल है कि उसका वास्तविक रूप क्या है ?

दिल्ली के दो रूप हैं —'चमक-दमक' और चहल-पहल भरी नई दिल्ली का जीवन और दूसरी तरफ 'गन्दगी और बदबू में पलती हुई सीलन-

---

(16)- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश (पृष्ठ 212)

बार कोठरियों' की जिन्दगी । और इन दोनों के बीच भी कुछ है — एक संक्रमण, एक बदलाव की स्थिति । 'एक नया शहर जो तेजी से बन रहा है, उसके पीछे एक पुराना शहर है जो धीरे-धीरे ढह रहा है ।'[17]

आमदनी और खर्च के बीच में सन्तुलन बनाए रखने के प्रयत्न में अविवाहित क्लर्क, पत्रकार, अध्यापक जैसे लोग रोहतक रोड के आस-पास के इलाकों में कई मंजिला इमारत के ऊपर बरसातियों में जो कमोबेश कमरे के रूप में है, रहते हैं । इस महानगर के विस्तार में व्यक्ति है जैसे 'जंगल में भटकी हुई रूह' और जीवन बड़ा ही औपचारिक और डिप्लोमेटिक । लेखक लेखन धर्मी नहीं, कलाकार कलाधर्मी नहीं – सबकी 'कामर्शियल थिंकिंग' । अपनी-अपनी महात्वाकांक्षा साधने के लिए किसी बड़ी हस्ती का पल्ला हर कोई पकड़ना चाह रहा है — पत्रकार, कलाकार, लेखक, प्राध्यापक सभी ।

अजनबीपन महानगरीय संस्कृति की अन्यतम विशेषता है । 'यह अजनबीपन परिचितों और सम्बन्धियों के बीच भी है और पति-पत्नी के बीच भी- हरबंस और नीलिमा इसके उदाहरण हैं (नीलिमा का कथन "हम आज तक भी एक दूसरे के लिए अजनबी थे") ।

दिल्ली का काफी हाउस "परमहंसों" (जो स्वार्थ को छोड़कर अन्य किसी व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति से प्रभावित नहीं होते) का अड्डा है । पत्रकारों का ग्रुप, 'आर्ट सर्किल' वालों का ग्रुप, लेखक, कवि आलोचकों का ग्रुप— काफी हाउस इन सबका अड्डा है ।

"बस पर धक्कम धक्का करते हुए लोगों की गाली-गलौज, मद्रास होटल के पास ग्राउन्ड में नवयुवती के साथ संदिग्ध स्थिति में पकड़े गए नवयुवक की भीड़ और पुलिस द्वारा मरम्मत, गेलार्ड के सामने बिकती हुई बेला और गुलाब की वेणियाँ, पुलिस वैन के डर से भागते हुए बूट पालिश करने वाले लड़के, थियेटर कम्युनिकेशन्स बिल्डिंग के सामने फुटपाथ पर पड़े अपाहिज की कराह, भीड़ में खोये हुये अपने लड़के के लिए बिलखती माँ, कुछ लड़कियों को होटल के कमरे में ले जाती हुई डी०एल०ओ०बी० के आस-पास नम्बरों की गाड़ियाँ – – फैक्ट्रियों से काम करके लौटते हुए मजदूर, दफ्तरों से आते हुए बाबू, विदेशों से नाजायज तौर पर

---

(17)- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश (पृष्ठ 249)

लाये गए माल को बेचते हुए लड़के, अखबारों की सुर्खियाँ, कान्फ्रेंसें और भाषण, स्वागत और अभिनन्दन इन्टरव्यू और बयान, फाइलें और फीते, कला की प्रदर्शनियाँ, सौन्दर्य की खोज, मूल्यों की खोज - - - - - -"[18] आदि नई दिल्ली के जन जीवन के चित्र हैं। नई दिल्ली पाश्चात्य ढंग में इस तरह ढंग गई है कि भारत की राजधानी में भारतीयता ही प्रवासी से नज़र आती है।

पुरानी दिल्ली और नई दिल्ली दोनों के जन-जीवन में इतना अन्तर देखकर यह विश्वास करना कठिन जान पड़ता है कि दोनों एक ही नगर के भाग हैं। दरीबा से होकर कटरा मशरू के अन्दर घुसने पर तंग दर तंग गलियाँ नज़र आती हैं 'जो पानी और कई लेसीले द्रव्यों से इस तरह चिपचिपी' हैं कि 'एक एक कदम बहुत सँभाल कर रखना पड़ता था। - - - - - - - सारी गली एक बहुत बड़े उगालदान की तरह थी जहाँ बरसों का उगाल कई तहों में जमा हुआ है। - - - - - हर गली का घर जैसे क्षय रोग का मरीज हो और दुर्गंध और बच्चों और स्त्रियों के शोर रूप में भयानक खाँसी उसके अन्दर से उठ रही हो।"[19]

नई दिल्ली में लड़कियों को कारों में होटल के कमरों में ले जाया जा रहा होता है और पुरानी दिल्ली के कस्साबपुरा की गली में तेरह चौदह साल की लड़की फिल्मी गीत गाती हुई नाच रही होती है। उसके इर्द-गिर्द जमा भीड़ उसे पास बुलाने के लिए चवन्नियाँ अठन्नियाँ दिखाती थीं, वह जिस किसी आदमी के पास जाती वही उसका हाथ थाम लेना चाहता था। यहाँ [पुरानी दिल्ली में] लोग पेट भरने के लिए सड़क पर नाचने को मजबूर हैं और वहाँ सोशल स्टेटस प्राप्त करने के लिए, बड़े लोगों को खुश करने के लिए लड़कियाँ होटल में ले जायी जा रही हैं।

महानगरीय जीवन पद्धति आदमी को एक अव्यक्त ऊब और थकान से बोझिल बना देती है। पोलिटिकल सेक्रेटरी के घर शराब और नृत्य की गोष्ठियाँ जमती हैं। पति आगे बढ़ने के लिए पत्नी को 'इस्तेमाल' करता है, पत्नी पति को साधन बनाती है। यहाँ पति पत्नी भी एक दूसरे के लिए अजनबी होते हैं। उधर सबर्बन भाभी मधुसूदन से [किरायेदार/पेइंग गेस्ट] से भी पूरे हक के साथ बात करती है चाहे वह गन्दे मोहल्ले की रपट के बारे में हो या

[18]- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश [पृष्ठ 302]
[19]- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश [पृष्ठ 303]

अपनी बेटी निम्मा की शादी के बारे में । नई दिल्ली में अविश्वास ही अविश्वास है और पुरानी दिल्ली की ठकुराइन भाभी कहती हैं, "यह सब विश्वास ही विश्वास है भैया- - - - -यह मरा विश्वास खाकर ही तो जिन्दगी काट रहे हैं ।"[20]

दमा के मरीज और अपने परिवार का समुचित रूप से भरण-पोषण न कर पाने वाले ठाकुर साहब के न रहने पर ठकुराइन अपने को असुरक्षित महसूस करती हैं जब कि नई दिल्ली के नीलिमा, हरबंस सारी आधुनिक सुख-सुविधाओं का भोग करते हुए आपस में एक दूसरे से असंतुष्ट होकर अलग हो जाते हैं । इधर इबादत अली की लड़की के विषय में सारी बातें स्वयं बताकर उसका अफसाना बन जाना ठकुराइन को अखरता है ---"वह मरी जैसी भी थी, तुम उसके बाप के दिल से तो पूछ कर देखो कि उसके चले जाने से उसको कैसा लगता है ।" नई दिल्ली में यह संवेदना कहाँ ? यहाँ तो हरबंस शुक्ला के बच्चों को प्यार तक नहीं दे सकता ।

ऐसा लगता है नई दिल्ली में हृदय नहीं है वह केवल बुद्धि -कम्प्यूटर बुद्धि से अनुशासित हो रही है जबकि पुरानी दिल्ली में सारे अभावों के बीच भावों का स्पन्दन अनुभव किया जा सकता है ।

"अँधेरे बन्द कमरे" नई दिल्ली बनाम पुरानी दिल्ली का रेखाचित्र है जो पाठक के सामने एक जीवन्त दृश्य उपस्थित कर देता है ।

<u>दिल्ली :'परीक्षा गुरु' और 'अँधेरे बन्द कमरे' की</u>

प्रायः सौ वर्षों के अंतराल में अंकित दिल्ली के स्फुट विविध चित्रों की झलक के परिप्रेक्ष्य में यह समीचीन लगता है कि विवेचना क्रम में दिल्ली को कथाभूमि बना कर चलने वाले प्रथम |परीक्षा गुरु| और अन्तिम उपन्यास |अँधेरे बन्द कमरे| की दिल्ली पर एक दृष्टि डाल ली जाय ।

'परीक्षा गुरु' की दिल्ली को 'अँधेरे बन्द कमरे' तक आते आते लगभग 80 वर्ष लगे हैं । इन 80 वर्षों में दिल्ली बहुत बदली है । उसकी इस यात्रा का प्रारम्भ 'परीक्षा गुरु' से ही हो गया था । और यहाँ वह पहुँची

|20|- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश | पृष्ठ 403 |

है 'अंधेरे बन्द कमरे' में, उसका पूर्व संकेत भी 'परीक्षा-गुरु' में देखा जा सकता है। कुछ ऐसे बिन्दु हैं 'परीक्षा-गुरु' में, जिन पर विस्तार और गहराई के साथ विचार किया गया है 'अंधेरे बन्द कमरे' में।

एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है — 'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक 'कल्पित रईस' का चित्र उतारा गया है और 'अंधेरे बन्द कमरे' में 'आज की [सन् 61 की] दिल्ली का रेखाचित्र' प्रस्तुत है। अतः परीक्षा गुरु में दिल्ली पृष्ठ भूमि में है, और 'अंधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के ही चित्र हैं। 'परीक्षा गुरु' की कथावस्तु दिल्ली के एक सीमित क्षेत्र को लेकर चलती है जो उन्नीसवीं शताब्दी की दिल्ली है जिसमें आधुनिक महानगरीय दिल्ली का चरित्र नहीं है।

दिल्ली की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इन दोनों उपन्यासों में दो विरोधी मान्यताओं का संघर्ष है। 'परीक्षा-गुरु' में पारम्परिक आदर्शों तथा नयी मान्यताओं का संघर्ष है। पुराने रईसी रहन-सहन, दूसरों के सर्टिफिकेट पर जीने का लोभ बनाम, अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त व्यावहारिक ज्ञान - चातुरी एवं व्यक्ति के स्वयं निर्णय के महत्व का प्रस्तुतिकरण है 'परीक्षा गुरु'। 'अंधेरे बन्द कमरे' में अपेक्षाकृत यह संघर्ष या द्वन्द्व मानसिक है और गहराई के साथ, अतः कथानक जीवन्त हो उठा है।

'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली है 1882 की। जो आज की आपा-धापी से दूर है। वहाँ अति व्यस्तता भागदौड़ और आज की महानगरीय मानसिकता आदि सभी का अभाव है। 'अंधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के दो रूप मिलते हैं — एक ओर व्यस्तता और 'ग्लैमर' से भरी नई दिल्ली का जीवन दूसरी ओर गन्दगी और बदबू में पलती हुई सीलनदार कोठरियों की जिन्दगी वाली पुरानी दिल्ली। इन दोनों दिल्ली के बीच कहीं 'परीक्षा-गुरु' की ‡ दिल्ली की स्थिति है, भले ही स्पष्ट न दिखती हो। 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली में आदमी के आपसी सम्बन्ध, मित्रता और इन सबके बीच स्वार्थ भी देखा जा सकता है और निस्वार्थ प्रेम भाव भी। लाला मदन मोहन के अवसरवादी चाटुकार मित्रों की जमात लाला मदन मोहन से अपना स्वार्थ साधने के लिए मित्रता बनाए रखना चाहती है। परन्तु ब्रजकिशोर इन सबसे अपने मित्र की रक्षा करने के लिए, मदनमोहन द्वारा उपेक्षित किए जाने पर भी, उससे अपनी मित्रता तोड़ता नहीं। 'परीक्षा-गुरु' में मानवीय मूल्यों

है 'अँधेरे बन्द कमरे' में, उसका पूर्व संकेत भी 'परीक्षा-गुरु' में देखा जा सकता है। कुछ ऐसे बिन्दु हैं 'परीक्षा-गुरु' में, जिन पर विस्तार और गहराई के साथ विचार किया गया है 'अँधेरे बन्द कमरे' में।

एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है — 'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक 'कल्पित रईस' का चित्र उतारा गया है और 'अँधेरे बन्द कमरे' में 'आज की (सन् 61 की) दिल्ली का रेखाचित्र' प्रस्तुत है। अतः परीक्षा गुरु में दिल्ली पृष्ठ भूमि में है, और 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के ही चित्र हैं। 'परीक्षा गुरु' की कथावस्तु दिल्ली के एक सीमित क्षेत्र को लेकर चलती है जो उन्नीसवीं शताब्दी की दिल्ली है जिसमें आधुनिक महानगरीय दिल्ली का चरित्र नहीं है।

दिल्ली की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इन दोनों उपन्यासों में दो विरोधी मान्यताओं का संघर्ष है। 'परीक्षा-गुरु' में पारम्परिक आदर्शों तथा नयी मान्यताओं का संघर्ष है। पुराने रईसी रहन-सहन, दूसरों के सर्टिफिकेट पर जीने का लोभ बनाम, अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त व्यावहारिक ज्ञान - चातुरी एवं व्यक्ति के स्वयं निर्णय के महत्व का प्रस्तुतीकरण है 'परीक्षा गुरु'। 'अँधेरे बन्द कमरे' में अपेक्षाकृत यह संघर्ष या द्वन्द्व मानसिक है और गहराई के साथ, अतः कथानक जीवन्त हो उठा है।

"परीक्षा-गुरु" की दिल्ली है 1882 की। जो आज की आपा-धापी से दूर है। वहाँ अति व्यस्तता भागदौड़ और आज की महानगरीय मानसिकता आदि सभी का अभाव है। 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के दो रूप मिलते हैं — एक ओर व्यस्तता और "ग्लैमर" से भरी नई दिल्ली का जीवन दूसरी ओर गन्दगी और बदबू में पलती हुई सीलनदार कोठरियों की जिन्दगी वाली पुरानी दिल्ली। इन दोनों दिल्ली के बीच कहीं 'परीक्षा-गुरु' की ≡ दिल्ली की स्थिति है, जो ही स्पष्ट न दिखती हो। 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली में आदमी के आपसी सम्बन्ध, मित्रता और इन सबके बीच स्वार्थ भी देखा जा सकता है और निस्वार्थ प्रेम भाव भी। लाला मदन मोहन के अवसरवादी चाटुकार मित्रों की जमात लाला मदन मोहन से अपना स्वार्थ साधने के लिए मित्रता बनाए रखना चाहती है। परन्तु ब्रजकिशोर उन सभी अपने मित्र की रक्षा करने के लिए, मदनमोहन द्वारा उपेक्षित किए जाने पर भी, उनसे अपनी मित्रता तोड़ता नहीं। 'परीक्षा-गुरु' में मानवीय मूल्यों

है 'अँधेरे बन्द कमरे' में, उसका पूर्व संकेत भी 'परीक्षा-गुरु' में देखा जा सकता है। कुछ ऐसे बिन्दु हैं 'परीक्षा-गुरु' में, जिन पर विस्तार और गहराई के साथ विचार किया गया है 'अँधेरे बन्द कमरे' में।

एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है —'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक 'कल्पित रईस' का चित्र उतारा गया है और 'अँधेरे बन्द कमरे' में 'आज की (सन् 61 की) दिल्ली का रेखाचित्र' प्रस्तुत है। अतः परीक्षा गुरु में दिल्ली पृष्ठ भूमि में है, और 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के ही चित्र हैं। 'परीक्षा गुरु' की कथावस्तु दिल्ली के एक सीमित क्षेत्र को लेकर चलती है जो उन्नीसवीं शताब्दी की दिल्ली है जिसमें आधुनिक महानगरीय दिल्ली का चरित्र नहीं है।

दिल्ली की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इन दोनों उपन्यासों में दो विरोधी मान्यताओं का संघर्ष है। 'परीक्षा-गुरु' में पारम्परिक आदर्शों तथा नयी मान्यताओं का संघर्ष है। पुराने रईसी रहन-सहन, दूसरों के सर्टिफिकेट पर जीने का लोभ बनाम, अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त व्यावहारिक ज्ञान - चातुरी एवं व्यक्ति के स्वयं निर्णय के महत्व का प्रस्तुतीकरण है 'परीक्षा गुरु'। 'अँधेरे बन्द कमरे' में अपेक्षाकृत यह संघर्ष या द्वन्द्व मानसिक है और गहराई के साथ, अतः कथानक जीवन्त हो उठा है।

"परीक्षा-गुरु" की दिल्ली है 1882 की। जो आज की आपा-धापी से दूर है। यहाँ अति व्यस्तता भागदौड़ और आज की महानगरीय मानसिकता आदि सभी का अभाव है। 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के दो रूप मिलते हैं —एक ओर व्यस्तता और "ग्लैमर" से भरी नई दिल्ली का जीवन दूसरी ओर गन्दगी और बदबू में पलती हुई सीलनदार कोठरियों की जिन्दगी वाली पुरानी दिल्ली। इन दोनों दिल्ली के बीच कहीं 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली की स्थिति है, जैसे ही स्पष्ट न दिखती हो। 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली में आदमी के आपसी सम्बन्ध, मित्रता और इन सबके बीच स्वार्थ भी देखा जा सकता है और निस्वार्थ प्रेम भाव भी। लाला मदन मोहन के अवसरवादी चाटुकार मित्रों की जमात लाला मदन मोहन से अपना स्वार्थ साधने के लिए मित्रता बनाए रखना चाहती है। परन्तु ब्रजकिशोर इन सबसे अपने मित्र की रक्षा करने के लिए, मदनमोहन द्वारा उपेक्षित किए जाने पर भी, उनसे अपनी मित्रता तोड़ता नहीं। 'परीक्षा-गुरु' में मानवीय मूल्यों

है 'अँधेरे बन्द कमरे' में, उसका पूर्व संकेत भी 'परीक्षा-गुरु' में देखा जा सकता है । कुछ ऐसे बिन्दु हैं 'परीक्षा-गुरु' में, जिन पर विस्तार और गहराई के साथ विचार किया गया है 'अँधेरे बन्द कमरे' में ।

एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है —'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक 'कल्पित रईस' का चित्र उतारा गया है और 'अँधेरे बन्द कमरे' में 'आज की [सन् 61 की] दिल्ली का रेखाचित्र' प्रस्तुत है । अतः परीक्षा गुरु में दिल्ली पृष्ठ भूमि में है, और 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के ही चित्र हैं । 'परीक्षा गुरु' की कथावस्तु दिल्ली के एक सीमित क्षेत्र को लेकर चलती है जो उन्नीसवीं शताब्दी की दिल्ली है जिसमें आधुनिक महानगरीय दिल्ली का चरित्र नहीं है ।

दिल्ली की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इन दोनों उपन्यासों में दो विरोधी मान्यताओं का संघर्ष है । 'परीक्षा-गुरु' में पारम्परिक आदर्शों तथा नयी मान्यताओं का संघर्ष है । पुराने रईसी रहन-सहन, दूसरों के सर्टिफिकेट पर जीने का लोभ बनाम, अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त व्यावहारिक ज्ञान - चातुरी एवं व्यक्ति के स्वयं निर्णय के महत्व का प्रस्तुतीकरण है 'परीक्षा गुरु' । 'अँधेरे बन्द कमरे' में अपेक्षाकृत यह संघर्ष या द्वन्द्व मानसिक है और गहराई के साथ, अतः कथानक जीवन्त हो उठा है ।

'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली है 1882 की । जो आज की आपा-धापी से दूर है । वहाँ अति व्यस्तता भागदौड़ और आज की महानगरीय मानसिकता आदि सभी का अभाव है । 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के दो रूप मिलते हैं — एक ओर व्यस्तता और 'ग्लैमर' से भरी नई दिल्ली का जीवन दूसरी ओर गन्दगी और बदबू में पलती हुई सीलनदार कोठरियों की जिन्दगी वाली पुरानी दिल्ली । इन दोनों दिल्ली के बीच कहीं 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली की स्थिति है, जो ही स्पष्ट न दिखती हो । 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली में आदमी के आपसी सम्बन्ध, मित्रता और इन सबके बीच स्वार्थ भी देखा जा सकता है और निःस्वार्थ प्रेम भाव भी । लाला मदन मोहन के अवसरवादी चाटुकार मित्रों की जमात लाला मदन मोहन से अपना स्वार्थ साधने के लिए मित्रता बनाए रखना चाहती है । परन्तु ब्रजकिशोर इन सबसे अपने मित्र की रक्षा करने के लिए, मदनमोहन द्वारा उपेक्षित किए जाने पर भी, उससे अपनी मित्रता तोड़ता नहीं । 'परीक्षा-गुरु' में मानवीय मूल्यों

है 'अँधेरे बन्द कमरे' में, उसका पूर्व संकेत भी 'परीक्षा-गुरु' में देखा जा सकता है । कुछ ऐसे बिन्दु हैं 'परीक्षा-गुरु' में, जिन पर विस्तार और गहराई के साथ विचार किया गया है 'अँधेरे बन्द कमरे' में ।

एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है —'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक 'कल्पित रईस' का चित्र उतारा गया है और 'अँधेरे बन्द कमरे' में 'आज की [सन् 61 की] दिल्ली का रेखाचित्र' प्रस्तुत है । अतः परीक्षा गुरु में दिल्ली पृष्ठ भूमि में है, और 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के ही चित्र हैं । 'परीक्षा गुरु' की कथावस्तु दिल्ली के एक सीमित क्षेत्र को लेकर चलती है जो उन्नीसवीं शताब्दी की दिल्ली है जिसमें आधुनिक महानगरीय दिल्ली का चरित्र नहीं है ।

दिल्ली की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इन दोनों उपन्यासों में दो विरोधी मान्यताओं का संघर्ष है । 'परीक्षा-गुरु' में पारम्परिक आदर्शों तथा नयी मान्यताओं का संघर्ष है । पुराने रईसी रहन-सहन, दूसरों के सर्टिफिकेट पर जीने का लोभ बनाम, अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त व्यावहारिक ज्ञान - चातुरी एवं व्यक्ति के स्वयं निर्णय के महत्व का प्रस्तुतीकरण है 'परीक्षा गुरु' । 'अँधेरे बन्द कमरे' में अपेक्षाकृत यह संघर्ष या द्वन्द्व मानसिक है और गहराई के साथ, अतः कथानक जीवन्त हो उठा है ।

'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली है 1882 की । जो आज की आपा-धापी से दूर है । वहाँ अभी व्यस्तता भागदौड़ और आज की महानगरीय मानसिकता आदि सभी का अभाव है । 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के दो रूप मिलते हैं — एक ओर व्यस्तता और 'ग्लैमर' से भरी नई दिल्ली का जीवन दूसरी ओर गन्दगी और बदबू में पलती हुई सीलनदार कोठरियों की जिन्दगी वाली पुरानी दिल्ली । इन दोनों दिल्ली के बीच कहीं 'परीक्षा-गुरु' की ‡ दिल्ली की स्थिति है, जो ही सम्भव न दिखती हो । 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली में आदमी के आपसी सम्बन्ध, मित्रता और इन सबके बीच स्वार्थ भी देखा जा सकता है और निःस्वार्थ प्रेम भाव भी । लाला मदन मोहन के अवसरवादी चाटुकार मित्रों की जमात लाला मदन मोहन से अपना स्वार्थ साधने के लिए मित्रता बनाए रखना चाहती है । परन्तु ब्रजकिशोर उन सभी अपने मित्र की रक्षा करने के लिए, मदनमोहन द्वारा उपेक्षित किए जाने पर भी, उससे अपनी मित्रता तोड़ता नहीं । 'परीक्षा-गुरु' में मानवीय मूल्यों

है 'अँधेरे बन्द कमरे' में, उसका पूर्व संकेत भी 'परीक्षा-गुरु' में देखा जा सकता है। कुछ ऐसे बिन्दु हैं 'परीक्षा-गुरु' में, जिन पर विस्तार और गहराई के साथ विचार किया गया है 'अँधेरे बन्द कमरे' में।

एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है — 'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक 'कल्पित रईस' का चित्र उतारा गया है और 'अँधेरे बन्द कमरे' में 'आज की {सन् 61 की} दिल्ली का रेखाचित्र' प्रस्तुत है। अतः परीक्षा गुरु में दिल्ली पृष्ठ भूमि में है, और 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के ही चित्र हैं। 'परीक्षा गुरु' की कथावस्तु दिल्ली के एक सीमित क्षेत्र को लेकर चलती है जो उन्नीसवीं शताब्दी की दिल्ली है जिसमें आधुनिक महानगरीय दिल्ली का चरित्र नहीं है।

दिल्ली की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इन दोनों उपन्यासों में दो विरोधी मान्यताओं का संघर्ष है। 'परीक्षा-गुरु' में पारम्परिक आदर्शों तथा नयी मान्यताओं का संघर्ष है। पुराने रईसी रहन-सहन, दूसरों के सर्टिफिकेट पर जीने का लोभ बनाम, अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त व्यावहारिक ज्ञान – चातुरी एवं व्यक्ति के स्वयं निर्णय के महत्व का प्रस्तुतीकरण है 'परीक्षा गुरु'। 'अँधेरे बन्द कमरे' में अपेक्षाकृत यह संघर्ष या द्वन्द्व मानसिक है और गहराई के साथ, अतः कथानक जीवन्त हो उठा है।

'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली है 1882 की। जो आज की आपा-धापी से दूर है। वहाँ अति व्यस्तता भागदौड़ और आज की महानगरीय मानसिकता आदि सभी का अभाव है। 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के दो रूप मिलते हैं — एक ओर व्यस्तता और 'ग्लैमर' से भरी नई दिल्ली का जीवन दूसरी ओर गन्दगी और बदबू में पलती हुई सीलनदार कोठरियों की जिन्दगी वाली पुरानी दिल्ली। इन दोनों दिल्ली के बीच कहीं 'परीक्षा-गुरु' की ₹ दिल्ली की स्थिति है, भले ही स्पष्ट न दिखती हो। 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली में आदमी के आपसी सम्बन्ध, मित्रता और इन सबके बीच स्वार्थ भी देखा जा सकता है और निस्वार्थ प्रेम भाव भी। लाला मदन मोहन के अवसरवादी चाटुकार मित्रों की जमात लाला मदन मोहन से अपना स्वार्थ साधने के लिए मित्रता बनाए रखना चाहती है। परन्तु ब्रजकिशोर इन सबसे अपने मित्र की रक्षा करने के लिए, मदनमोहन द्वारा उपेक्षित किए जाने पर भी, उससे अपनी मित्रता तोड़ता नहीं। 'परीक्षा-गुरु' में मानवीय मूल्यों

है 'अँधेरे बन्द कमरे' में, उसका पूर्व संकेत भी 'परीक्षा-गुरु' में देखा जा सकता है । कुछ ऐसे बिन्दु हैं 'परीक्षा-गुरु' में, जिन पर विस्तार और गहराई के साथ विचार किया गया है 'अँधेरे बन्द कमरे' में ।

एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है —'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक 'कल्पित रईस' का चित्र उतारा गया है और 'अँधेरे बन्द कमरे' में 'आज की {सन् 61 की} दिल्ली का रेखाचित्र' प्रस्तुत है । अतः परीक्षा गुरु में दिल्ली पृष्ठ भूमि में है, और 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के ही चित्र हैं । 'परीक्षा गुरु' की कथावस्तु दिल्ली के एक सीमित क्षेत्र को लेकर चलती है जो उन्नीसवीं शताब्दी की दिल्ली है जिसमें आधुनिक महानगरीय दिल्ली का चरित्र नहीं है ।

दिल्ली की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इन दोनों उपन्यासों में दो विरोधी मान्यताओं का संघर्ष है । 'परीक्षा-गुरु' में पारम्परिक आदर्शों तथा नयी मान्यताओं का संघर्ष है । पुराने रईसी रहन-सहन, दूसरों के सर्टिफिकेट पर जीने का लोभ बनाम, अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त व्यावहारिक ज्ञान - चातुरी एवं व्यक्ति के स्वयं निर्णय के महत्व का प्रस्तुतीकरण है 'परीक्षा गुरु' । 'अँधेरे बन्द कमरे' में अपेक्षाकृत यह संघर्ष या द्वन्द्व मानसिक है और गहराई के साथ, अतः कथानक जीवन्त हो उठा है ।

'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली है 1882 की । जो आज की आपा-धापी से दूर है । वहाँ अति व्यस्तता भागदौड़ और आज की महानगरीय मानसिकता आदि सभी का अभाव है । 'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली के दो रूप मिलते हैं — एक ओर व्यस्तता और 'ग्लैमर' से भरी नई दिल्ली का जीवन दूसरी ओर गन्दगी और बदबू में पलती हुई सीलनदार कोठरियों की जिन्दगी वाली पुरानी दिल्ली । इन दोनों दिल्ली के बीच कहीं 'परीक्षा-गुरु' की ई दिल्ली की स्थिति है, [illegible] ही स्पष्ट न दिखती हो । 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली में आदमी के आपसी सम्बन्ध, मित्रता और इन सबके बीच स्वार्थ भी देखा जा सकता है और निस्वार्थ प्रेम भाव भी । लाला मदन मोहन के अवसरवादी चाटुकार मित्रों की जमात लाला मदन मोहन से अपना स्वार्थ साधने के लिए मित्रता बनाए रखना चाहती है । परन्तु ब्रजकिशोर उन सभी अपने मित्र की रक्षा करने के लिए, मदनमोहन द्वारा उपेक्षित किए जाने पर भी, उससे अपनी मित्रता तोड़ता नहीं । 'परीक्षा-गुरु' में मानवीय मूल्यों

की उपेक्षा भले ही कुछ पात्र कर रहे हों ; पर उनका अवमूल्यन 1882 की दिल्ली में नहीं हुआ है । इसके विपरीत 'अँधेरे बन्द कमरे' की दिल्ली में मानवीय मूल्य जैसी कोई बात नहीं है । 'टैक्ट और कान्टैक्ट' ही सब कुछ है और साध्य है 'व्यक्तिगत सुख' ।

'अँधेरे बन्द कमरे' में पोलिटिकल सेक्रेटरी के इर्द गिर्द जुटे हुए पत्रकार, कलाकार, लेखक, प्राध्यापक आदि में 'परीक्षागुरु' के लाला मदनमोहन के आस-पास उसे घेरे रहने वाले मुंशी चुन्नीलाल मास्टर शिंभूदयाल आदि से साम्य देखा जा सकता है । अन्तर केवल काल और ढंग का है । उद्देश्य – स्वार्थ साधना एक ही है ।

'परीक्षा-गुरु' में पति पत्नी के सम्बन्ध में कहीं कोई तनाव नहीं है । पति मदनमोहन की उपेक्षिता पत्नी अपने पति के लिए सर्व भावेन समर्पिता है । हरबंस और नीलिमा की तरह उनमें यह स्थिति नहीं है कि एक साथ रह भी नहीं सकते और एक दूसरे को छोड़ भी नहीं सकते । मदनमोहन का अपनी पत्नी के प्रति उपेक्षा भाव पूर्ण उपेक्षा भाव है, उसमें कोई द्वन्द्व नहीं है और पत्नी का समर्पित भाव पति की उपेक्षा या गुण-दोष से विचलित या प्रभावित नहीं होता । 'अँधेरे बन्द कमरे' का हरबंस लेखक बनने की महत्वाकांक्षा लेकर असंतुष्ट है और नीलिमा एक कलाकार बनने का सपना संजोए है । दोनों एक दूसरे को अपनी अपनी असफलता का जिम्मेदार मानकर एक दूसरे से असन्तुष्ट जैसे तैसे एक साथ रह रहे हैं । इसके समानान्तर शुक्ला और उसके पति में कुछ ऐसा ऐडजस्टमेन्ट या मूक समझौता है कि शुक्ला की जरूरत से ज्यादा अपने 'भापा जी' की देखरेख उसके पति को बुरी नहीं लगती । पुरानी दिल्ली के कस्साबपुरा की गली में रह रहे ठाकुर साहब भले ही समुचित भरण पोषण अपने परिवार का न कर पाते हों पर उनकी पत्नी उनके न रहने पर अपने को असुरक्षित और असहाय महसूस करती है । सन् 1882 से सन् 1961 तक के मानवीय सम्बन्धों के विकास-क्रम में यह बात विशेष रूप से दिखती है कि समष्टि चेतना के स्थान पर व्यक्ति परकता जन-मानस में अधिक घर करने लगी है — वह समाज के सन्दर्भ में हो या पति-पत्नी के बीच ।

बड़े आदमियों के मनोरंजन के साधन के रूप में वेश्याओं का प्रचलन

और प्रयोग दोनों पुस्तकों में समान रूप से चित्रित है । 'अँधेरे बन्द कमरे' में पुरानी दिल्ली के चावड़ी-बाजार-काठ बाजार का चित्रण है और नई दिल्ली में बड़े आदमियों को खुश करने के लिए लड़कियाँ (?) उनके घर भेजी जाती होती हैं । जबकि 'परीक्षा-गुरु' में 'ये महफिलें' बड़े आदमियों के घर आयोजित की जाती हैं । दृष्टि का थोड़ा अन्तर आया है । तब 'रौनके-महफिल' और 'खातूने-खाना' में अन्तर था । अब यह अन्तर क्षीण हो चला है । एक बात और, तब (परीक्षा - गुरु में) घर पर 'महफिल' का प्रबन्ध करना बड़े आदमियों के 'स्टेटस' को प्रदर्शित करता था, अतः न यह गर्हित था और न छुपा कर किया जाता था । 'अँधेरे बन्द कमरे' में इसका रूप बदल गया, 'भरत नाट्यम वहाँ नृत्य नहीं एक मनोरंजन है, भाव अभिनय मुद्रा सब कुछ मनोरंजन है । ------ उस प्रदर्शन में सबसे महत्वपूर्ण अंग-विज्ञापन है ।'[2]

'परीक्षा-गुरु' में वर्णित दिल्ली का जीवन एक परम्परागत भारतीय जीवन का चित्र है, कुछ स्वार्थी लोग हैं तो एक आध परोपकारी लोग भी हैं । लोगों के बीच केवल व्यावसायिक दृष्टि से ही पोषित सम्बन्ध नहीं है । ब्रजकिशोर अपने मित्र की भरसक सहायता करना चाहता है और करता भी है । अपने भाई के भरण-पोषण और शिक्षा के दायित्व का निर्वाह करता है । सम्मिलित परिवार का विघटन अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है । इसके विपरीत 'अँधेरे बन्द कमरे' में सभी सम्बन्ध 'कामर्शियल थिंकिंग' पर आधारित हैं — पति पत्नी के बीच भी । हाँ, पुरानी दिल्ली इससे भिन्न है । वहाँ निम्न मध्य वर्ग के लोग हैं । उनकी भावुकता और उनकी नैतिकता जहाँ उन्हें नई दिल्ली की जीवन पद्धति से अलग करती है, वहीं 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली के जन जीवन से भी साम्य नहीं है । 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली का क्षेत्र सीमित है । कुछ अभिजन को कथा नायक बनाकर उसके आस-पास कुछ पात्र जुटा कर पूरी दिल्ली का चित्र उस फलक पर चित्रित नहीं हो पाया है । इसके विपरीत 'अँधेरे बन्द कमरे' दिल्ली का चित्र ही है । लगता है 'परीक्षागुरु' की दिल्ली यहाँ पुरानी दिल्ली में अवशिष्ट रह गई है ।

नारी की स्थिति को लेकर यदि विचार करते हैं तो 'परीक्षा-गुरु' में देखते हैं कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में स्त्री की भूमिका अन्तःपुर तक सीमित थी । प्रतिष्ठित महिलाएँ यदि आवश्यकतावश बाहर निकलती थीं तो

---

(2)- अँधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश (पृष्ठ 212)

'टहलनी' लेकर ही । पर घरेलू स्त्रियों में वैचारिक सजगता और कला के प्रति अभिरुचि का प्रारम्भ 'परीक्षा-गुरु' के काल से ही देखा जा सकता है । लाला मदन मोहन की पत्नी अपने बच्चों के सही ढंग के लालन-पालन और शिक्षा के लिए पूर्ण सजग है - स्वतंत्रता और अनुशासन दोनों को आवश्यक मानती है । वह कशी-दा काढ़ती है और चित्रादि भी बनाती है । स्त्रियों में परम्परा का पालन चल रहा था पर वैचारिक सजगता घर कर रही थी । 'अँधेरे बन्द कमरे' की नई दिल्ली में स्त्री पुरुष के समकक्ष है । दफ्तर, स्कूल, रंगमंच से लेकर बाजार, सार्वजनिक स्थानों और हर क्षेत्र में हम स्त्री पात्रों को पाते हैं । काफी हाउस में हरबंस मधुसूदन, जीवन भार्गव, शिवमोहन के साथ नीलिमा, शुक्ला, सरोज आदि को देखा जा सकता है । ऐसे ही पोलिटिकल सेक्रेटरी के घर पर या अन्य स्थान पर भी । स्त्री अपने व्यक्तित्व की पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील है - यह नीलिमा में देखा जा सकता है । स्त्री भी अपने 'टैक्ट और कान्टैक्ट' के बूते पर अपना एक 'सोशल स्टेटस' बना रही है - सुषमा श्रीवास्तव इसका उदाहरण है । पुरानी दिल्ली अभी संक्रान्ति काल से गुजर रही है । ठकुराइन भाभी और गोपाल की माँ में संकुचित मनोवृत्ति के साथ सहृदयता के भी दर्शन होते हैं, वहीं खुरशीद के अहंवादी, आत्मपरक व्यक्तित्व की भी झलक मिलती है ।

'अँधेरे बन्द कमरे' में दिल्ली का आदमी और किसी अन्य आदमी को नहीं जानता, जानना चाहता भी नहीं, कदाचित स्वयं को भी जान पाने में असमर्थ है । वह महान जनसमूह की एक इकाई है जैसे 'जंगल में भटकी रूह' । हर आदमी अजनबी है अपनी नजर में तथा औरों की नजर में भी । कभी मजबूरी में किसी को पहचानना पड़ता है और कभी काम साधने के लिए सम्पर्क बनाया जाता है । इस स्थिति से 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली मुक्त है ।

'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली में अखबार का प्रचलन तो था - केवल अभिजन अखबार खरीदा करते थे । सामान्य लोगों में अखबार सुप्रचलित नहीं हुआ था । अतः समाज में, बुद्धिजीवी लोगों में पत्रकार की प्रतिष्ठा तो थोड़ी बहुत थी, पर पत्रकार का महत्त्व तब इतना नहीं था जितना 'अँधेरे बन्द कमरे' की दिल्ली में पाया जाता है । कारण शिक्षा का अभाव नहीं है बल्कि दृष्टि का है । अब घर-परिवार से लेकर संस्थान, संस्थान, समाज, राष्ट्र तक कहीं राजनीति की अन्तर्व्याप्ति है । अतः अखबारों द्वारा बाखबर रहना जितना आवश्यक है उससे कहीं अधिक सत्ता के हित में पत्रकारों को मिलाए रखना जरूरी है ।

इस प्रकार सन् 1882 की दिल्ली को सन् 1961 में ढूढ़ पाना आसान नहीं है। 'अँधेरे बन्द कमरे' की दिल्ली के विविध चित्रों में कहीं एक आध ऐसे चित्र हैं जिसमें 'परीक्षा-गुरु' की दिल्ली की झलक भर मिल जाती है। बोली, वेश परिवेश, मानसिकता, विचारधारा सभी में इतना अन्तर आ गया है कि सहसा विश्वास नहीं होता कि यह वही दिल्ली है। पुरानी दिल्ली और नई दिल्ली में ही बड़ा अन्तर है, फिर सन् 1882 की दिल्ली को सन् 1961 में खोजना एक दुराशा होगी। नौ साल में मधुसूदन को दिल्ली इतनी बदली लगी कि उसे यह 'एक बिलकुल नया और अपरिचित शहर' लगा। अस्सी वर्ष के अन्तराल में 'परीक्षा गुरु' की दिल्ली को आत्मसात करके 'अँधेरे बन्द कमरे' की जिस दिल्ली को जन्म दिया उसके लिए उर्दू शायर का यह प्रश्न - कि 'क्या वह |भारत-माता| दिल्ली आई ही नहीं या दिल्ली की हवा रास न आने से वापस गाँवों में चली गई ?' - हर दर्शक का प्रश्न बन जाता है।

नेता जी कहिन |1982 ई0|

'नेता जी कहिन', यद्यपि कि व्यंगचित्रों | | का संकलन है, शास्त्रीय दृष्टि से उपन्यास की सीमा में नहीं आता है तो भी वह समसामयिक दिल्ली की 'राजनीतिक बिरादरी का एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करता है जिसे 'दिल्ली के विविध चित्र' की रंगशाला में न शामिल करना, दिल्ली के अति महत्वपूर्ण रूप की अवहेलना करना होगा।

दिल्ली में रहने वाले ये नेता जी किसी भी दल के नेता नहीं हैं, नेता बिरादरी में उनका उठना-बैठना है इसलिए दोस्तों ने उन्हें यह नाम दे डाला है। उनकी वेश-भूषा है - खादी की गंजी |जिसमें नोटों की गड्डी रखने के लिए गहरी जेब हो|, खादी का कुर्ता-पैन्ट, जवाहर 'जाकेट' और कोल्हापुरी चप्पल। 'गाँधी टोपी' वे नहीं पहनते क्योंकि 'ऊ सब ढकोसला अब चलता नहीं। एक तो ढकोसला करो, दूसरे यह खतरा मोल लो कि कोई भी लहरा-महरा आके उछाल दे टोपी ससुरी को'।[22] वह समझते हैं महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सोहबत करते-करते वह स्वयं एक दिन महत्वपूर्ण हो जायेंगे। न-भी महत्वपूर्ण हुए, 'अरे माल बरसा तो बनबे करेगा'।[23] नेता जी का लक्ष्य है कि एक करोड़ रुपये की व्यवस्था हो जाय ताकि 'भजन कीर्तन' चलता रहे।

|22|-|23|- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी | पृष्ठ 9 |

भारत की संस्कृति धर्म प्रधान रही है । चूंकि दिल्ली भारत की राजधानी है अतः वहाँ भी धर्म उपेक्षित नहीं है । हाँ, राजनीति में धर्म की अवधारणा कुछ अलग है । जो मन्दिर, जो देवता सिध्द हों, जहाँ जाकर कुछ काम धाम बनता हो, वी0आई0पी0 वहाँ ही जाता है जैसे 'नार्थ' में विन्ध्यवासिनी' और 'साउथ' में तिरुपति बाला जी —'मय-इमो गयी रहीं - - -'[24] इसी प्रकार स्वामी जी की भी स्थिति है — पर वह 'टाप' - 'फ्लाप' होते रहते हैं ।

नेता बिरादरी और गीता के कर्म योग के संदर्भ में नेता जी कहते हैं'अरे करम तो करबे करता है राजनेता । कउन करम छूटा है सपुरे मे ।'[25] राजनीतिक मंच पर नेता 'फुललाइट' पर होता है और पृष्ठभूमि में 'चालू चमचे' । राजनीति में कोई आदमी किसी का नहीं होता । जो भी राजनीति में आता है, अपना जीवन राष्ट्र को समर्पित कर देता है, वह पूरे देश का आदमी होता है । "देश-सेवा का मउका जो भी दे' उसका वह साथ देता है । उनके विचार से संसार में क्या नहीं है "सकल पदारथ है जग माहीं, बाकी इतना जरुर है कि हेर-फेर बिन पावत नाहीं" ।'[26]

नेता जी हर सार्वजनिक स्थान पर सबकी सी कहते हैं । वे जानते हैं 'पालटक्स में सीरआमी कामहिं तब चलता है', और तभी सबका 'ओट' पाया जा सकता है जब आप सबकी सी कहो क्योंकि कोई 'ओटर' इस खयाल का, कोई 'ओटर' उस खयाल का ।'[27]

नेता बिरादरी की 'डिमोक्रेसी' के लिए अपनी अवधारणा है । उनके विचार में डिमोक्रैसी में कोई भी इन्सान कुछ भी बन सकता है 'सामन्त साही नहीं है कि सतुरी अश्वपाती सामन्ती कर सकेगा अउर कउनो नहीं ।'[28]

नेता जी हिन्दी को 'फटीचर' मानते हैं और अपनी मौलिक अंग्रेजी का प्रयोग वे बात-चीत के दरम्यान करते हैं । अपनी भारतीय जनता के लिए उनका सन्देश है - जनता को 'सैक्रीफिकेसन' - कुर्बानी के लिए तैयार रहना चाहिए, 'प्रोडक्टिबिलिटी - उत्पादनशीलता' बढ़ाना चाहिए । सारे झगड़े भुला कर मिल-जुल

---

(24)- नेता जी (कहिन : मनोहर श्याम जोशी (पृष्ठ 13-14)
(25)- " " " : " " " (पृष्ठ 16)
(26)- " " " : " " " (पृष्ठ 26)
(27)- " " " : " " " (पृष्ठ 28)
(28)- " " " : " " " (पृष्ठ 29)

कर रहना और काम करना चाहिए —'लिव इन फैमिली है' । वे 'सिफला' [सिफर] में 'आमूल चूल' परिवर्तन के हिमायती हैं । जनता को यह कभी नहीं पूछना चाहिए कि देश मेरे लिए क्या कर रहा है, यह पूछो कि 'देश' के लिए मैं क्या कर सकता हूँ ।"[29] जनता के दुःख-तकलीफ के संदर्भ में नेता जी कहते हैं कि जीवन में दुख-पीड़ा इतनी ज्यादा है कि नेता के पास एक मात्र उपाय है कि वह देखा अनदेखा करे और सुना अनसुना ।

नेता जी अपने राजनीतिक गुरु को दाँव पर लगा कर किसी 'तगड़ी डील' का डौल लगा रहे हैं । स्पष्टीकरण देते हुए वे कहते हैं' 'राजनीति में बाप को भी बाप कभी नहीं समझा गया - - - तब गुरु की क्या बिसात' ।"[30]

आफिस में काम किस तरह कराया जाता है इसका पूरा व्यावहारिक ज्ञान उन्हें है । अपने चच्चा – लेखक का काम उन्होंने उक्त॰ कार्यालय से आनन-फानन में करा दिया – हाँ, हर मेज पर वे दो रुपये से पंद्रह रुपये तक की भेंट चढ़ाते गए । वे मानकर चलते हैं कि 'अट मालमीयर फुलमनी राजे के पाही' ।"[31]

नेता जी का अपना जीवन-दर्शन है कि 'पचतक नाइक के लिए चाणक्य नीति और चाटुकृत्य के लिए उपनिषद ।' एस0एन0एस0 से उनका तात्पर्य है –'ए से ले' 'ओ से ले' और 'ओ हु मे ले' । इस व्याख्या के अन्तर्गत 'सकल सृष्टि' आ जाती है जिससे वे ले सकते हैं ।"[32]

दिल्ली में राजनीति केवल शासन-प्रशासन के स्तर पर ही नहीं है— साहित्य के क्षेत्र में भी राजनीति का पूरा दखल है । नेता जी तो 'पटीचर हिन्दी साहित्यों' से लेखक का उद्धार करा दे सकते हैं । किसी पुस्तक को सर-कारी संरक्षण दिलवा कर 'बुक संगी से चिमोचर करवा कर', इधर उधर दान दक्षिणा' देकर दौड़-धूप करके, पाव-पानी पिला कर, किताब छपवाने का खर्च निकालने के बाद भी पचास हजार रुपये की रकम लेखक के मद में बचा कर उसे दिला सकते हैं और यदि लेखक चाहे तो वे उसकी पुस्तक को कोर्स में भी लगवा सकते हैं नेता जी, क्योंकि 'वी0सी0 [वी0सी0] 'हैड डिपार्ट' वे सब 'भजन कीर्तन

[29]- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी | पृष्ठ 34 |
[30]- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी | पृष्ठ 43 |
[31]- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी | पृष्ठ 48 |
[32]- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी | पृष्ठ 55 |

मण्डली' के सदस्य हैं ।[33] कवि और पत्रकार बिरादरी के लोगों को, यदि राजनीति के खेल में सत्ता ठीक से खेलना आता हो तो उन्हें 'इनफारमेशन ब्राडकास्टिंग' या 'एजूकेशन' में डिप्टी मिनिस्टर का वास्ता मिल सकता है ।[34]

यह राजनीति, पैसा है, राजनीति आदमी से नहीं वोट से चलती है और वोट मिलता है 'नोट' से या 'लाठी की चोट' से — अर्थात् राजनीति में भी पैसा की प्रमुख भूमिका है । पैसे से सत्ता, और सत्ता से पैसा ।

मिनिस्टरों के बीच उठना-बैठना है नेता जी का । वे जानते हैं कि अपने फुरसत के समय सी०एम० तीन में से एक जगह बैठा होता है इस देश में —— 'पाखाने में, प्राइवेट में' या 'पूजाघर में'। नेता जी के सी० एम० को कब्ज़ की शिकायत नहीं है अतः वे पाखाने में नहीं बैठते । और 'मेहरारू'—पत्नी उनकी केन्द्रीय मंत्री जी की सेवा में रहतीं है अतः 'प्राइवेट' में बैठने की गुंजाइश नहीं। बचा 'पूजाघर' जहाँ वे फुरसत के वक्त बैठते हैं ।[35] इस फुरसत के वक्त में नेता जी उन्हें नोटों से भरी ब्रीफ केस पहुँचाते हैं, कमीशन अलबत्ता वे दोनों तरफ से काट लेते हैं । इस छूट भैया नेता जी को भी 'न्यू इयर' की गिफ्ट के रूप में कैलेण्डर डायरी से लेकर पारकर सैल्फ पेन तक मिल जाता है । वस्तुतः 'पालिटिक्स' 'करोड़ों का खेल' है ।[36]

शादी, ब्याह, पार्टी, उद्घाटन, विमोचन ये सब किसी न किसी 'डील' को पटाने-सटाने का आयोजन है राजनीति के क्षेत्र में — चाहे आई० आई० आई० सी० |इन्टरनेशनल इन्टीग्रेशन इण्डिया सेन्टर| के लॉन में सांस्कृतिक समारोह का आयोजन हो या 'हमार |यार| की शादी' हो । ऐसे समारोहों तथा आयोजनों में 'गुड्डी जी,' 'पिंकी जी' 'बब्बी जी' या 'शकुन्तला जी' जैसी 'इन्दर सभा की अप्सराओं' की उपस्थिति महत्वपूर्ण होती है । ये लोग 'डांस' नहीं करतीं, सूंत करवा सकती हैं वी०आई०पीज को । इसलिए 'सौदा' कराने में और कमीशन पाने के क्षेत्र में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है । यार की शादी |गोविन्द एवं गीता की शादी| हो रही है या सत्ताओं में विधायिके के माध्यम से सौदे - समझौते, यह जान पाना कठिन है ।[37]

[33]- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी | पृष्ठ 60 |
[34]- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी | पृष्ठ 85 |
[35]- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी | पृष्ठ 80 |
[36]- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी | पृष्ठ 85 |
[37]- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी | पृष्ठ 135 |

दिल्ली में वी०आई०पीज 'जिसे सितारों ने कुछ बनाय दिया है' की बायोग्राफी बनाई जाती है यद्यपि कि आधार 'पिराइवेट' बायोग्राफी ही होती है 'आफिसियल बायोग्राफी' की । अब सियाबर बाबू को ही लीजिए । उनके बाबा को जेल हुई थी हेरा-फेरी से जमीन हड़पने के आरोप में जो आफिसियल बायोग्राफी में 'किसान आन्दोलन' के रूप में उल्लिखित हुआ । सियाबर बाबू के पिता श्री ने राशन का 'मलेशिया' 'लट्ठा' ब्लैक में बेच कर जेल की सजा काटी जो 'असहयोग आन्दोलन के रूप में लिया गया । स्वयं सियाबर बाबू अनेकानेक दफा के तहत जेल गए -- फिर नर्सों के हास्टल के बाहर पिटाई हुई हो या ब्रिटिश शासकों के कोड़ों से, निशान तो एक ही जैसे होंगे : सो 'आफिसियली' उनके पीठ पर ब्रिटिश शासकों के कोड़ों के निशान अभी भी हैं । नेता के अनुसार हमारी परम्परा रही है विशिष्ट व्यक्तियों की बायोग्राफी बनाने की । वे प्रमाण में ~~कहते हैं कि~~ रामचन्द्र जी की बायोग्राफी तब बनी जब गोसाईं तुलसीदास जी ने बनाया । 'बाल्मीक रिसी' सीता जी की बायोग्राफी बनाने के चक्कर में रामचन्द्र जी की 'लपटिंग' थोड़ी गड़बड़ कर गए थे ।"[38]

यह राजनीति, दिल्ली में, सभी विभागों में अन्तर्व्याप्त है - विदेश जा रहे भारतीय तांत्रिकों एवं ज्योतिषियों के डेलीगेशन में, युवा पर्यटन के सेमिनार में, साहित्य में, ~~साहित्य में~~, शिक्षा में, फिल्म में, यहाँ तक कि सामाजिक कार्य-व्यापारों में, समारोहों में कहाँ नहीं है ?

'नेता जी कहिन' के आधार पर सम-सामयिक दिल्ली का जो चित्र उभरता है उसमें राजनीति की अमरबेल व्यक्ति के स्तर से लेकर प्रशासन-शासन के स्तर तक सबको छाये हुए है और राजधानी में 'नेता संस्कृति' की सृष्टि कर रही है ।

---

[38]- नेता जी कहिन : मनोहर श्याम जोशी [पृष्ठ 163-64]

सहायक ग्रन्थ सूची

।1।– आधुनिक हिन्दी उपन्यास – नरेन्द्र मोहन, द मैक मिलन कम्पनी दिल्ली । 1975 ई0

।2।– आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास – बेचन, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली । 1971 ई0 ।

।3।– आधुनिक हिन्दी उपन्यास और जनजीवन – डा0 शिवशंकर राय, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर 69 नया बैरहना, इलाहाबाद-3 । 1981 ई0 ।

।4।– उपन्यास : स्थिति और गति – चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, पूर्वोदय प्रकाशन 7/8 दरियागंज, नई दिल्ली । 1977 ई0 ।

।5।– प्रेमचन्द पूर्व के कथाकार और उनका युग – डा0 लक्ष्मण सिंह बिष्ट, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद । 1972 ई0 ।

।6।– प्रेमचन्द युग का हिन्दी उपन्यास – डा0 मोहन लाल रत्नाकार, प्रकाशक: दिग्दर्शन चरण जैन, [illegible] चरण जैन एवं सन्तति 21, दरियागंज, नई दिल्ली ।

।7।– प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यास साहित्य में पारिवारिक जीवन – डा0 आशा वाष्णेय, शोध प्रबंध प्रकाशन दिल्ली । 1974 ई0 ।

।8।– प्रेमचन्द साहित्य में ग्राम्य जीवन – डा0 कुन्दा: ओंकार प्रकाशन 666 [illegible], दिल्ली – 5 । 1972 ई0 ।

।9।– हिन्दी उपन्यास – सुषमा धवन, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 दिल्ली । 1961 ई0 ।

।10।– हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक विकास – डा0 शैल बाला, प्रकाशक – सत्य सदन बाराबंकी । 1973 ई0 ।

।11।– हिन्दी उपन्यासों का परिचयात्मक इतिहास – डा0 प्रताप नारायण टंडन, विवेक प्रकाशन, किशोर बुक डिपो, लखनऊ । 1967 ई0 ।

।12।– हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन – रमेश तिवारी, रचना प्रकाशन 45 ए0 खुल्दाबाद, इलाहाबाद-1 । 1972 ई0 ।

।13।– हिन्दी उपन्यास: सामाजिक चेतना – कुंवर पाल सिंह, पाण्डुलिपि प्रकाशन दिल्ली । 1976 ई0 ।

।14।– हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा – रामदरश मिश्र, गिरनार प्रकाशन गुजरात । 1984 ई0 ।

(15)- हिन्दी उपन्यास साहित्य - ब्रजरत्न दास, हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस (सं० - 2013)

(16)- हिन्दी उपन्यासः पहचान और परख - इन्द्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन, दिल्ली (1973 ई०)

(17)- हिन्दी उपन्यास कोश खण्ड-1 - डा० गोपाल राय, ग्रंथ निकेतन, रानी घाट पटना - 6 (1968 ई०)

(18)- हिन्दी उपन्यास कोश खण्ड-2 - डा० गोपाल राय, ग्रंथ निकेतन, रानी घाट पटना - 6 (1969 ई०)

(19)- हिन्दी उपन्यास कोश - सं० सूर्यकान्त गुप्त, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली (1974 ई०)

(20)- हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष - सं० राम दरश मिश्र, गिरनार प्रकाशन पिलाजीगंज, मेहसाणा (उ० गुजरात) (1984 ई०)

(21)- हिन्दी उपन्यासों में लोक तत्व - इन्दिरा जोशी, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद

(22)- हिन्दी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ - डा० बाल कृष्ण गुप्त, अभिलाषा प्रकाशन कानपुर - 208012 (1978 ई०)

(23)- हिन्दी उपन्यासों में मध्य वर्ग - डा० हेमराज निर्मम, सिद्धु प्रकाशन गाजियाबाद 201005 (1978 ई०)

(ख)- <u>उपन्यास (मौलिक) :-</u>

<u>लेखक</u> — <u>उपन्यास</u>

(1)- अमृत लाल नागर - 1- बूंद और समुद्र.
किताब महल, इलाहाबाद पाँचवां संस्करण
(1978 ई०)

(2)- इलाचन्द्र जोशी - 2- मुक्ति पथ,
प्रकाशकः हिन्दी भवन, 312 रानी मंडी,
इलाहाबाद । दूसरा संस्करण (1951 ई०)
2- जहाज का पंछी,
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन

प्रकाशक:- भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
| प्रथम संस्करण सं0 2014 |

- 3- भूले बिसरे चित्र,
राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 दिल्ली-7|1959|ई0 ।

4- टेढ़े मेढ़े रास्ते,
छठा संस्करण |1972 ई0|, प्रकाशक तथा विक्रेता-भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।

|12|- भगवती प्रसाद वाजपेयी - 1- धरती की साँस,
प्रकाशक:- राम नरायण लाल, प्रयाग
प्रथम संस्करण | 1955 ई0 |

2- गोमती के तट पर,
प्रकाशक:- हिन्द. बुक कम्पनी, 2[illegible] दरियागंज, दिल्ली प्रथम संस्करण |1959ई0|

|13|- मेहता लज्जाराम शर्मा - 1- आदर्श हिन्दू | प्रथम भाग |
प्रकाशक:- नागरी प्रचारिणी सभा, भारत जीवन प्रेस, बनारस में मुद्रित दूसरा संस्करण |सन् 1922 ई0|

2- आदर्श हिन्दू |द्वितीय भाग|
प्रकाशक:- नागरी प्रचारिणी सभा, लीडर प्रेस प्रयाग में मुद्रित |1915 ई0|

3- आदर्श हिन्दू |तृतीय भाग|
प्रकाशक:- नागरी प्रचारिणी सभा, लीडर प्रेस प्रयाग में मुद्रित |1915 ई0|

|14|- मोहन राकेश - 1- अँधेरे बंद कमरे,
राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0 दिल्ली ।
द्वितीयावृत्ति | 1972 ई0 |

|15|- मनोहर श्याम जोशी - 1- नेता जी कहिन,
प्रथम संस्करण |1983 ई0| राज कमल प्रकाशन

- प्रा0लि0 8 नेता जी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली -110002 ।

[16]- यशपाल - 1- मेरी तेरी उसकी बात,
लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1 प्रथम प्रकाशन [1974ई0]

[17]- राही मासूम रज़ा - 1- आधा गाँव
राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, दिल्ली-6, द्वितीय संस्करण [1966 ई0]

[18]- वृन्दावन लाल वर्मा - 1- लगन,
प्रकाशक:- श्री दुलारे लाल भार्गव, गंगा पुस्तक माला लखनऊ, द्वितीय संस्करण [1955 वि0]

2- संगम,
प्रकाशक:- श्री दुलारे लाल भार्गव, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, द्वितीयावृत्ति [सं0 1996 वि0]

3- प्रत्यागत,
प्रकाशक:- श्री दुलारे लाल भार्गव, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ द्वितीयावृत्ति [सं0 1997 वि0]

[19]- विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक - 1- माँ
प्रकाशक:- श्री दुलारे लाल भार्गव, गंगा पुस्तक माला, कार्यालय, लखनऊ द्वितीयावृत्ति [सं0 1991 वि0]

2- भिखारिणी,
प्रकाशक:- विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा । तृतीया संस्करण [1952 ई0]

[20]- श्री निवास दास - 1- परीक्षा गुरु:
प्रथम संशोधित संस्करण 1974 ई0
प्रकाशक: दिग्दर्शन चरण जैन एवं संगति

21 दरियागंज, दिल्ली - 6

|21|- सियाराम शरण गुप्त - 1- गोद,

प्रथम बार |1980 वि०| श्री राम किशोर गुप्त द्वारा साहित्य प्रेस चिरगाँव झाँसी में मुद्रित एवं प्रकाशित

2- अन्तिम आकांक्षा

साहित्य प्रेस चिरगाँव |झाँसी| में मुद्रित और प्रकाशित प्रथम बार |1991 वि०|

|22|- श्री लाल शुक्ल - 1- राग दरबारी

राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० 8 फैज बाजार दिल्ली - 6

|23|- शिव पूजन सहाय - 1- देहाती दुनिया,

प्रकाशक:- ग्रंथमाला कार्यालय, पटना बिहार छठा संस्करण वि०सं० |2008 वि०|

|24|- शिव प्रसाद सिंह - 1- अलग अलग वैतरणी

लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, तृतीय संस्करण|1977ई०|

|25|- ऋषभ चरण जैन - 1- दिल्ली का व्यभिचार,

प्रकाशक:- राजस्थान बुक डिपो नई सड़क, देहली चौथी बार|सन् 1938 ई०|

2- रहस्यमयी,

प्रकाशक:- चाँद कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद प्रथम संस्करण |मार्च 1931 ई०|

-----||-----||-----